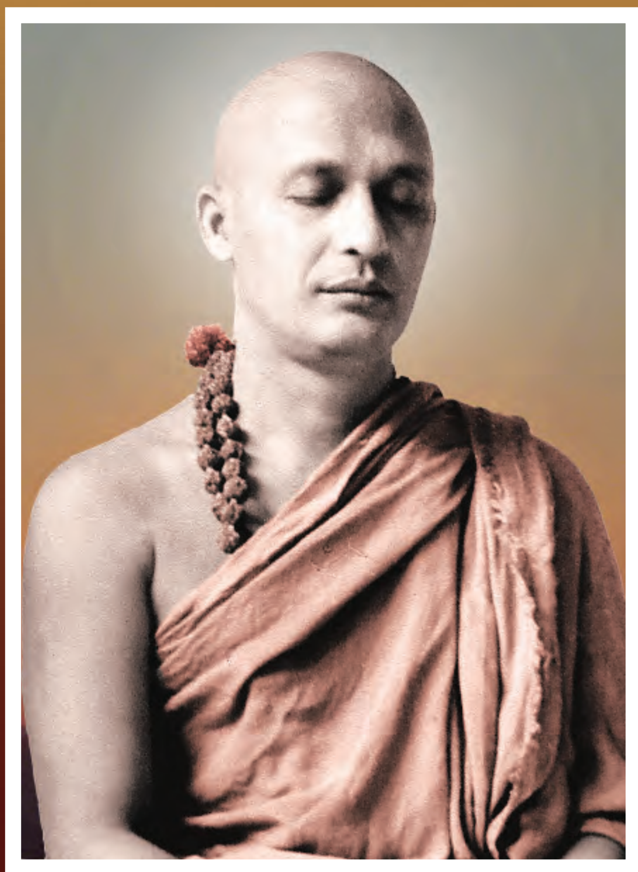
स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

मेरे आराध्य

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

मेरे आराध्य



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

मेरे आराध्य

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती



गिरियों के हिम पर देखा, उसे ध्यानमग्न आसीन ।
लोकों के हिय में देखा, उसे सतत् कर्म में लीन ॥



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

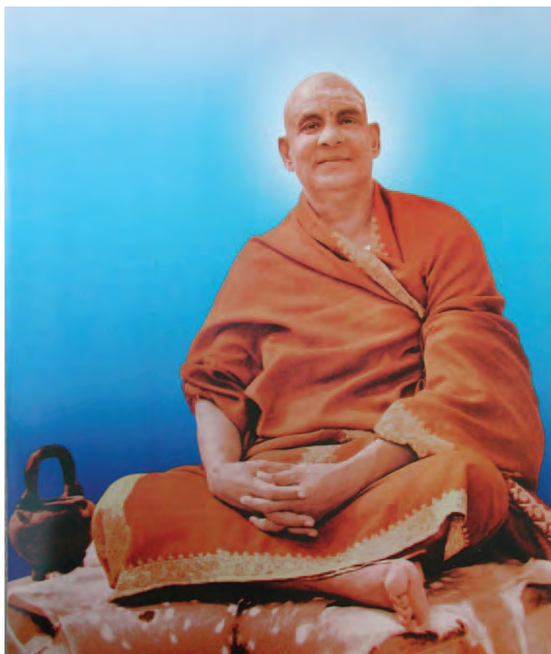
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा

प्रथम संस्करण 2010
द्वितीय संस्करण 2013

ISBN: 978-81-86336-88-5

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली

वेबसाइट: *www.biharyoga.net*
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

समर्पण

मेरे गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, जो योग की सिद्धि व मानव कल्याण हेतु उसके उपयोग में तत्पर हैं, सद्व्यवहार में परिपूर्ण व अद्वैतवाद को मानव प्रेम का रूप देने में संलग्न हैं, उन्हीं यतिवर के कुछ शब्द-सुमन।

3 अप्रैल 1953 को मैंने श्री स्वामीजी को पहली बार देखा और अपना इष्ट-गुरु मान लिया। तब से अब तक श्री स्वामीजी के विचार, व्यवहार, योजना, कल्पना आदि से पूर्ण अवगत हो चुकी हूँ। कभी-कभी सोचती हूँ, क्या इन्सान इस हद तक दिव्य बन सकता है जैसे श्री स्वामीजी हैं। ये तो मर्यादा-पुरुष के आदर्श हैं, इनके लिये त्याग, तपस्या, योग व संन्यास जीवन की विधाएँ हैं।

पूर्ण समन्वय और प्रकृति के तमाम तथ्यों का जीवन में सदुपयोग कराने हेतु जब श्री स्वामीजी अकेले ही चल पड़े, तब हमारी भेंट उनसे हुई और मैं विधिवत् दीक्षित हुई, हमने सेवा-व्रत की दीक्षा ली। मैं, मेरे पति व मेरे पुत्र श्री स्वामीजी के पुनीत लोक-कार्य के प्रति समर्पित हो चुके हैं। हमारे पसीने की हर एक बूँद, खून का हर कण, प्राणों का हर स्पन्दन, विचारों के प्रत्येक शब्द, सब कुछ श्री स्वामीजी का ही है। हमने व्रत लिया, जिस पवित्र धर्म को जीवन में उतारने को श्री स्वामीजी कहते हैं, उसी पवित्र धर्म के प्रचार हेतु हम तीनों का जीवन समर्पित है, न्योछावर है।

श्री स्वामीजी का सम्बन्ध स्वामी सत्यव्रतानन्द जी से प्रथम तो गुरुभाई के रूप में हुआ। कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने पर सत्यव्रतजी ने श्री स्वामीजी को गुरु रूप में पूजा। गुरु-शिष्य, भगवान-भक्त ने दो शरीर एक आत्मा होकर कार्य किया। शिष्य ने गुरु के दर्शन व गुरु पर अटल विश्वास रख गुरु का काम करने के अलावा, कुछ और भी है, यह जानने की अभिलाषा कभी नहीं की।

सत्यव्रत जी के शब्दों में, 'मैं भाग्यशाली हूँ, मुझे जगत् गुरु शिवानन्द जी से दीक्षा मिली और श्री गुरुदेव के आशीष से उन्हीं की प्रतिमूर्ति स्वामी सत्यानन्द जी ज्ञान गुरु, संन्यास गुरु के रूप में मिले। स्वामी शिवानन्द जी को गुरु रूप में प्राप्त कर जो अनुभूति हुई वह अवर्णनीय है, और स्वामी सत्यानन्द जी को जैसा मैंने समझा, वह दुनिया वाले भी कभी-न-कभी समझेंगे ही, लोग आज भले ही न समझें, पर मैं देख रहा हूँ वे क्या हैं। वह समय भी आएगा जब मेरे गुरुदेव को दुनिया पहचानेगी। भले ही मैं उस शुभ घड़ी आते तक न रहूँ, पर मेरी आत्मा जहाँ भी रहेगी, प्रतीक्षा करेगी।'

और इन्हीं भाग्यवान् शिष्य के लिए श्री स्वामीजी कहते हैं, 'हमने जीवन में एक आदमी को देखा और सीखा कि किस प्रकार गुरु की सेवा करते हुए चेले को गुरु अपना गुरु मानता है। हम उनको बहुत मानते थे। हम लोगों में इतनी अन्डरस्टैण्डिंग थी, एक-दूसरे को जितना समझते थे उतना समझने वाला हमको आज तक नहीं मिला, इसीलिए हम उनको हमेशा याद करते हैं।'

और वही कर्मठता, गुरु के प्रति समर्पण भाव, गुरु का काम, गुरु का नाम, वही अभिलाषापूर्ण गुरुमय जीवन, कर्त्तव्य के प्रति सजगता, वही सब कुछ उनकी प्रतिमूर्ति स्वामी निरंजन जी में है। निरंजन क्या हैं, समय बता ही रहा है और भविष्य गुरुदेव जानते हैं। स्वामी निरंजन पर अगाध विश्वास, उत्कट स्नेह-प्रेम, गुरुदेव का अपनत्व, शिष्य का भाव सहित समर्पण आज की दुनिया के सामने अद्भुत संस्मरणीय उदाहरण है। और माता तो धन्य है, उसे तो कुछ कहना नहीं है। श्री स्वामीजी के शब्दों में– *'पुत्रवती युवती जग सोई, जाकर सुत प्रभु भक्त होई' (गुरु भक्त होई) ...*

जगत् की विभीषिका से व्यथित, विद्रोहिनी व क्रांतिकारी विचारों वाली होने पर भी प्रभु की कृपा से एक महान् संत को गुरु रूप में पाया, अटूट आत्मविश्वास, सेवा-भाव, कर्त्तव्य-परायणता से द्रवित हो, महामानव महान् संत ने शिष्या बनाकर पुत्री का स्थान दिया, विशेष कार्य के निमित्त शिक्षा व आशीर्वाद दिया। कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने पर उसने जो आदर्श भरी कल्पना संजोई थी, वह पूरी हुई।

सत्यव्रत जी की, जो अपने घर-परिवार व समाज में साधु स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे, प्रेरणा से ही घर-बाहर-समाज में हमने बहुत काम किया। उनकी प्रेरणा से ही पत्र-पत्रिकाओं में लिखने भी लगी। फिर श्री स्वामीजी की

प्रेरणा से लिखने में गति आई। उनके प्रवचनों को लिखना, फाइल बनाना, उनके पत्रों का जवाब देना, यह सब करने लगी। सत्यव्रत जी ने एक दिन कहा, 'तुम्हें गुरुदेव की जीवनी लिखनी है।' मैं घबरा गई, यह सब मेरे सामर्थ्य के बाहर है। सत्यव्रत जी के बार-बार कहने व आदेश से उनके कहे अनुसार लेखादि सामग्री का संग्रह करना शुरू कर दिया। मेरी डायरी, पत्र व फाइलों में बहुत कुछ था, उन्हें फिर से देखना शुरू किया। श्री स्वामीजी से सत्यव्रत जी की बातें हमेशा होती ही रहती थीं, उनके पूर्वाश्रम की बातें होतीं तो सत्यव्रत जी उन्हें शार्टहैण्ड में लिख लेते, फिर उसे हम अपनी डायरी में लिख लेते थे। मुझे भी विचार पर विचार आने लगे। श्री स्वामीजी से भी यही चर्चा करते रहते।

विधि का विधान भी विचित्र है। सत्यव्रत जी के एक्सीडेंट के बाद सब कुछ बदल गया, लगा कि जीवन ही खत्म ...। श्री स्वामीजी ने आकर सब कुछ सम्भाला, धीरे-धीरे उनके आशीष, आदेश व प्रेरणा से सब कुछ यथावत् चलने लगा। हमने अधूरे कार्य को फिर से शुरू किया। पुस्तक के बारे में भी सोचने लगी, याद आता कि सत्यव्रत जी ने कहा था, 'पुराण तो अठारह हैं, तुम्हें जो इतिहास लिखने कह रहा हूँ, वह तुम्हारे लिए गुरु-गीता है, जब उसे लिख लोगी तो समझना कि तुमने उन्नीसवाँ पुराण लिखा है', और गुरुदेव हँसे थे। फिर कहा, 'अच्छा जी, देखेंगे क्या लिखते हो।' यही सबकुछ याद आता रहता। लिखने के लिए विचार उमड़ते रहते, लगता कि सत्यव्रत जी कह रहे हों, 'तुमने अभी तक लिखना शुरू नहीं किया है।' स्वामी निरंजन जी भी चाहते थे हम श्री स्वामीजी का जीवन चरित्र लिखें। मुझे भी लगा कि गंगा माँ की लहरों पर पहुँच चुकी हूँ (याने जीवन का अंतिम अध्याय)। इस स्वर्णिम इतिहास को लिखकर ही जाना है। और अपने गुरु और गोविन्द से क्षमा व शक्ति माँगते हुए लिखना शुरू कर ही दिया ...।

इस रत्न भण्डार को छः भागों में विभक्त किया है, वे इस प्रकार हैं–

1. प्रथम खण्ड में–श्री स्वामीजी के बाल जीवन की झाँकियाँ
2. द्वितीय खण्ड में–गुरु आश्रम की झाँकियाँ
3. तृतीय खण्ड में–परिव्राजक जीवन की झाँकियाँ
4. चतुर्थ खण्ड में–आश्रम संचालन व दिग्विजय की झाँकियाँ
5. पंचम खण्ड में–देश-विदेश में योग गंगा की लहरों की झाँकियाँ
6. षष्ठ खण्ड में–महर्षि की जीवन-ज्योति के अद्‌भुत दर्शन

प्रयत्न तो यही रहा कि श्री स्वामीजी के कार्य-कलाप व प्रोग्राम का पूरा चित्र प्रस्तुत कर सकूँ। उनके कार्यों और प्रवचनों की कितनी ही पुस्तकें, कितनी ही भाषाओं में छप चुकी हैं, और छपती जा रही हैं। श्री स्वामीजी के जीवन की कुछ अद्‌भुत बातों का संग्रह, आध्यात्मिक रत्नों की मंजूषा ही तो है।

मुझे आशा ही नहीं विश्वास है, श्री स्वामीजी के आध्यात्मिक रत्नों के प्रकाश में सभी मार्ग बन्धुओं का मन-प्राण आलोकित होगा। इस दु:साहस के लिए क्षमा माँगते हुए ...

हे जीवन साधना के साकार प्रतीक! आपकी बहुमुखी विद्वत्ता ने अन्तर्मुखी आध्यात्मिकता की प्रखरता के द्वारा हमें जो उपदेशों का आलोक प्रदान किया है, उसके प्रकाश में हमने शाश्वत आनन्द की अनुभूति को प्रशस्त कर, आपके स्नेहामृत से सने इन पुष्पों को प्रकाशित करने का दु:साहस किया है। आपके स्नेहामृत आशीष प्राप्त होते रहें, यही कामना है, प्रार्थना है।

बालमीक का साहित्य जागा, क्रौंच का सुन कर रुदन ।
लेखनी चली तोड़ सरिता, ज्ञान-पायल की सुन रुन-झुन॥

पतझड़ में आया वसन्त, बही संतप्त में पीयूष धारा।
हर्षोन्मत्त लेखनी नाचे कागज पर, प्रमुदित होगा पढ़ जग सारा॥

मेरी लेखनी में नहीं ताकत, कि जड़ चेतन हो जाये।
प्रभु इसमें इतनी शक्ति दो, गुरु की जीवन गीता लिख जाये॥

गुरु चरणों की धूल
स्वामी धर्मशक्ति

प्रथम खण्ड

श्री स्वामीजी के बाल जीवन की झाँकियाँ



जब संसार में अज्ञान का अंधकार बढ़ने लगता है, तब इस अज्ञान रूपी अंधकार को छिन्न-भिन्न कर ज्ञान की ज्योति जलाने, किसी महान् विभूति का अवतरण होता है।

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती इस युग के महान् व्यक्तियों में से एक हैं। आपने भोग वासना को त्याग कर वैराग्य का वल्कल सहर्ष अंगीकार किया है। आप आदिगुरु श्री शंकराचार्य की तरह महान् ज्ञानी और त्यागी हैं। आपकी ज्ञान रूपी प्रतिभा को देखकर यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने ज्ञान और मधुरता की सारी पूँजी आपको ही अर्पित कर दी है। श्री स्वामीजी अपनी गुरुभक्ति और मधुरतापूर्ण प्रेम व्यवहार से इस अंधकारयुक्त संसार को आलोकमय बना रहे हैं।

अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य: ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय: ॥ गीता 6/1 ॥

इस सिद्धान्त का आदर्श संसार में रखते हुए, साथ ही युवावस्था में सांसारिक व्यसनों से अनासक्त रह कर, ज्ञान, कर्म और उपासना की त्रिवेणी में मानवता को स्नान कराते हुए 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' के रूप में हम उन्हें एक महान् तपस्वी, महान् ज्ञानी और महान् कर्मठ के रूप में पाते हैं।

प्रथम खण्ड

हिमालय प्रदेश के सौन्दर्यालंकृत आँचल में झूमते हुए उत्तुंग शिखरीय चीड़ तथा सौर भस्मायुक्त देवदारु की वृक्षावलियों के क्षितिजान्त विस्तार से परिधानावृत्त प्राचीन चंद्रवंशी साम्राज्येश्वरों के पदारविन्दानुरंजित तथा नेपालगत राज्येश्वरों की वीरता से अभिषिक्त कूर्माञ्चलीय परम्पराओं की क्रीड़ास्थली अलमोड़ा की वैष्णवी भूमि के अन्तर्गत भिकियासेन व गाज बैगन नाम की 'एक छोटी सी जमींदारी' है, वहीं के पूर्व पोषित जीवन के वंशावतंश हैं, 'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'।

वंश परम्परा

भिकियासेन व गाज बैगन के जमींदार परम्परागत संभ्रान्त कुल-किरण, शुद्ध वैष्णव सम्प्रदायाचरण पुनीत जैमिनी शाखानुयायी थे। सुशिक्षित थे, विचारों के धनी थे तथा चालीस गाँवों के मालिक थे। उनका सम्मिलित परिवार भी बड़ा था। उनकी पत्नी तिब्बत की धर्म-परायणा महिला थी। उनके पुत्र कृष्णचन्द्र नायाल होनहार युवक थे। उनके पूर्वजों के बनवाये हुए कई मंदिर हैं। मंदिरों के नाम पर जमींदार द्वारा प्रदत्त काफी जमीन थी, जिस पर पुजारियों का अधिकार था। जमींदार ने उनसे कहा – अपने व आस-पास के बच्चों को पढ़ाओ। पुजारियों को भी हिन्दी, संस्कृत, गीता, रामायण का ज्ञान होना चाहिए।

कृष्णचन्द्र जी शिक्षा पूरी करके पुलिस इन्सपेक्टर हो गए। इन्होंने भी शिक्षा पर बहुत जोर दिया, फिर तो गाँवों में भी शिक्षा शुरू हुई। कृष्णचन्द्र जी की शादी नेपाल में हुई थी। उनकी पत्नी भी राज परिवार की विदुषी लड़की थी। कृष्णचन्द्र जी के पिताजी कुमाऊँ गढ़वाली थे, माता तिब्बती थीं, पत्नी

नेपाली थी। माता-पिता सनातन धर्मी थे, पर कृष्णचन्द्र जी स्वयं आर्यसमाजी और नये विचारों के थे। गाँव में सम्मिलित परिवार विभिन्न संस्कृतियों का गुलदस्ता था। विचार वैभिन्य तो रहा ही होगा। गाँव की घर-सम्पत्ति त्याग कर कृष्णचन्द्र जी अलमोड़ा में ही रहने लगे। अलमोड़ा के नयाल खोली में इनकी भी कोठी थी।

जन्म

कृष्णचन्द्र जी की प्रथम सन्तान कन्या हुई, फिर पुत्र की प्राप्ति हुई। अलमोड़ा के प्राकृतिक दृश्यों में रमणीय तथा नयनाभिराम चेतना है। इसी पर्वतीय वातावरण की सुखद गोद में नैसर्गिक विभूतियों के प्रकाश की किरणें बालक के अन्त:प्रदेश में पूर्णत: कलामय हुईं तथा उसे विश्व सृष्टि में व्यापक पारलौकिक कला के साक्षात्कार का वरदान प्राप्त हुआ।

अलमोड़ा के स्वर्णिम प्रांगण में, जहाँ रातें चाँदी की और दिन सोने के होते हैं, जहाँ कुहेलिकामयी उषा रहस्यमयी पहेलिका का निर्माण करती है, जहाँ सूर्य अपनी स्वर्णिम आभा से स्वप्निल इन्द्रधनुषी रंगों का सृजन करते, वहीं कैलाश के पाद प्रदेश में इस शिशु नभचर ने 25 दिसम्बर 1923 की मध्यरात्रि को अपनी अर्द्धोन्मीलित आँखें खोलीं और सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा, 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'। वही बालक धर्मेन्द्र कुमार नायाल थे।

वे रजत परिधानाच्छन्न शिखरों तथा रहस्यमयी कन्दराओं की कोटि कन्दर्पलावराय छटा में विस्मय विमुग्ध हो नित्य नवीन प्रभात का उदय देखते रहे। आत्म प्रेरणा से अभिप्रेरित हुए वे मलयानिल के स्पन्दनों में, खगवृन्दों के स्वरों में तथा अरण्य पशुओं की प्रतिनिनादिनी ध्वनि में, विशाल उपत्यकाओं के गर्भ से प्रति मुखरित प्रशान्त और नीरव गाने तथा उन वेदों की जन्मभूमि में आदि महर्षियों के पावन संदेश सुनते रहे।

धर्मेन्द्र को शुरू से ही प्रकृति की लीला रहस्यमय लगती। फूलों का खिलना-मुरझाना कौतूहलपूर्ण लगता। सुबह का सूर्योदय सुहाना लगता, और चाँदनी रात में मन गद्-गद् रहता। घण्टों सोचते, 'कौन इन्हें चलाता है?' कभी पिताजी से सवाल करते तो उत्तर मिलता–'इन बातों को जानने से कोई लाभ नहीं, ये सब प्राकृतिक घटनाएँ हैं, न कोई इन्हें जान पाया है न जानेगा।' माँ से पूछते, तो माँ कहती, 'अरे भगवान की लीला है, उसका किसी ने पार पाया है। तुम्हें जीवन में यश प्राप्त करना है, ऐश्वर्य कमाना

है, अच्छे जीवन के लिए उपाय सोचना है।' बालक के प्रश्नों का समाधान तो होता नहीं, उल्टे विचार-प्रवाह और बढ़ जाता। सोचते, कभी तो पता लगेगा ही।

बचपन

बालक धर्मेन्द्र 4 वर्ष के हो गये। माता-पिता ने पुत्र के लिए क्या-क्या नहीं सोचा होगा, कितने ही स्वप्न संजोये होंगे। धर्मेन्द्र बड़े मनस्वी थे, आज लगता है उनका खेल भी भविष्य का सूचक था। लकड़ी के रंग-बिरंगे गुटकों से ऊँचे स्तंभ बनाने में इतने व्यस्त होते कि सबकुछ भूल जाते थे। एक दिन वे अपनी सात चक्री (मंजिला) बिल्डिंग बनाने में व्यस्त थे। लकड़ी के रंग-बिरंगे गुटकों को छोटे-छोटे हाथों से एक के ऊपर एक रखते, वे सब धराशायी हो जाते, पर बालक हार मानने वाला न था। ऊँचा स्तंभ बनाने का प्रयत्न फिर चालू हो जाता। बालक को लम्बा-सा स्तंभ बनाने में व्यस्त देख माता-पिता अति प्रसन्न होते। पिताजी कहते, 'लड़का बड़ा लगनशील है, इसे इंजीनियर बनाऊँगा।' माँ कहती, 'आप भी क्या बातें करते हैं, यह तो अपने मामा की तरह बहुत बड़ा देशभक्त बनेगा।' पर बालक अपने भविष्य से अनासक्त वर्तमान के कार्य (ऊँचे स्तंभ बनाने) में संलग्न रहता।

धर्मेन्द्र मेधावी तो थे ही, महत्त्वाकांक्षी भी थे। हमेशा दीदी के साथ बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते रहते थे–अस्पताल बनायेंगे, सब को दवाई बाँटेंगे, दुनिया में कोई बीमार नहीं रहेगा। मंदिर बनायेंगे, उसमें दरवाजा ही नहीं लगायेंगे, सभी अन्दर जा सकेंगे। मकान बनायेंगे, उसमें इतना बड़ा चूल्हा बनायेंगे, बड़े-बड़े बरतन में दाल-चावल बनायेंगे, सब को खाना देंगे, कोई भूखा नहीं रहेगा। दुनियाभर में हवाई जहाज से घूमेंगे। कभी-कभी ज्ञान-विज्ञान की बातें करते, तो कभी प्राकृतिक दृश्यों में खो जाते और कितनी ही देर बैठे ही रह जाते। पिताजी की नाराजगी से भी नहीं डरते थे। कभी-कभी तो गूढ़ और विचित्र बातें करते थे।

दादी पुराने ख्याल की थीं, तीन-चार वर्ष का बच्चा धर्म-कर्म, ज्ञान-विज्ञान की बातें करे, उनका मन शंकाशील हो उठता। वे हमेशा देवी-देवता मनातीं, पण्डितों से जप-हवन और शांति पाठ करातीं थीं। चिन्तित तो माँ भी होती थीं, पर पारिवारिक व्यस्तताओं में उन्हें बच्चों को कुछ सिखाने और समझाने का समय ही नहीं मिलता। पवित्रता के विचार से घर का पूरा काम

स्वयं करतीं, रसोई भी स्वयं बनातीं थीं, यहाँ तक कि बच्चे रसोई में नहीं जा सकते थे। बच्चे दरवाजे के बाहर बैठते, माँ अन्दर से भोजन परोस कर दे देतीं, दुबारा कुछ चाहिए तो ऊपर से डाल देती थीं। शायद इसी कारण से धर्मेन्द्र विद्रोही प्रकृति के हो गये। वैसे तो माँ बहुत धार्मिक थीं, पूजा-पाठ करती थीं, गीता-रामायण पढ़ती थीं, उदार विचारों की थीं, पर पारिवारिक परम्पराओं का भी तो पालन करना ही था।

पिताजी आर्यसमाजी थे। बहुत अध्ययन करते थे, रोज सुबह हवन करते थे। क्षत्रिय थे, जमींदार थे, छोटी उम्र से ही पिता के साथ प्रजा पर शासन किया था, फिर पुलिस की नौकरी ने और कठोर बना दिया था। जब क्रोध आता तो कहते, 'कहना नहीं मानोगे तो गोली मार दूँगा।' डरना और दबना तो धर्मेन्द्र ने सीखा ही नहीं था, वही बात वे भी दुहरा देते थे। शिकार करने जाने व शेर मारने की बातें हमेशा करते थे।

शिक्षण

माता-पिता को इन दोनों बच्चों की शिक्षा की चिन्ता हुई। चिन्तन कर के तय किया कि इन बच्चों की शिक्षा घर में नहीं हो सकती। घर का वातावरण, दादी का लाड़-प्यार, परिवार, रिश्तेदार सभी हैं, पूरा मुहल्ला ही सम्बन्धियों का है। फिर पुराने रीति-रिवाज भी बच्चों के अनुकूल नहीं होंगे। यही सब सोच कर कृष्णचन्द्र जी ने 8 वर्ष की पुत्री एवं 6 वर्ष के पुत्र, दोनों को नैनीताल के कॉन्वेंट में भर्ती करवा दिया।

ब्रिटिश साम्राज्य का अँग्रेजी स्कूल, वहाँ अँग्रेजों के बच्चे व राजे-महाराजों के बच्चे ही प्रवेश पाते थे। धर्मेन्द्र बहुत चालाक व शरारती थे, पर उनमें तथा उनकी बातों में बहुत आकर्षण था। सब प्रभावित होते थे, उनकी बातें भी विलक्षण महत्त्वाकांक्षाओं से भरी रहती थीं। वे वहाँ सब के नेता बन गये। कान्वेन्ट की सिस्टर उन्हें बहुत प्यार करने लगी। घर से दूर होकर वे पूर्ण स्वतंत्र हो गये। उनकी विचारधारा व कार्य चतुर्दिक बहने लगे। यह भविष्य का संकेत था।

गोरे बच्चों को यह बात सहन नहीं होती, पर इनसे सब बच्चे डरते थे। जो धर्मेन्द्र का विरोध करता या डराने-दबाने का प्रयत्न करता, वे उसकी पिटाई भी कर देते थे। सिस्टर इन्हें बहुत समझातीं भी थीं, पर ये अपने में ही मस्त रहते थे। गलत बातें व अन्याय सहन नहीं कर सकते थे।

प्रथम आध्यात्मिक अनुभव

धर्मेन्द्र छुट्टियों में घर आये थे, एक रोज बेहोश जैसे हो गये। सब लोग परेशान हो गये। परन्तु थोड़ी ही देर में ठीक हो गये। इनको कभी-कभी अद्‌भुत अनुभव होता। कभी भौतिक शरीर की चेतना समाप्त हो जाती, कभी इन्हें अपना शरीर सामने स्पष्ट दिखाई देता। यह अवस्था स्थायी तो नहीं रहती, पर शरीर शून्यावस्था में रहता। घर के लोग परेशान रहते। डॉक्टर, वैद्य, ओझा, सभी के पास दौड़ते, पर कोई इस रहस्य के बारे में कुछ समझ नहीं पाता था। पूर्व जन्मों के शुभ-कर्मों तथा साधना-संस्कार के कारण ही यह स्थिति होती थी। इन्हें पूर्ण पता भी चलता था, इनका मन सबकुछ समझता भी था। परन्तु शरीर सात वर्ष का था, किसी को बता या समझा नहीं पाते थे। अगर कभी कुछ कहते तो किसी को विश्वास भी न होता। कोई भी इस रहस्य को नहीं समझ पाता। पहले कैलाश मानसरोवर का रास्ता अलमोड़ा से होकर जाता था। संत-महात्मा उधर आते-जाते समय अलमोड़ा में ठहरते थे। उन सबको भी इनके घर के लोग दिखाते थे।

स्वामी नित्यानन्द एक बहुत वृद्ध व अनुभवी साधु, उच्च कोटि के साधक, संयोगवश वहाँ आये। उसी समय धर्मेन्द्र को फिर वैसी ही शून्यावस्था हो गयी। कुछ लोग साधु के पास गये और अनुरोध किया कि एक बार आप चल कर बालक को देखें। वे भी उत्सुकतावश आये, बालक को देखा। कुछ समझे और इनके कान में कुछ देर 'श्रीराम-श्रीराम' कहते रहे। इन्हें जल्दी चैतन्यता आ गयी। स्वामी नित्यानन्द ने इनके माता-पिता से कहा, 'इस बालक को बीमारी नहीं है। यह कभी-कभी चेतना की ऊँची अवस्था में पहुँच जाता है, जिसे योग में प्रत्याहार की अवस्था कहते हैं। इस बालक को आध्यात्मिक शिक्षा दी जाये। उसी से इसका कल्याण होगा। यह तो दिव्य आत्मा है।'

स्वामी नित्यानन्द ने यह भी कहा, 'इस बच्चे को आप लोग अपने रास्ते पर मत लाना, इसको योग-मार्ग पर ही जाने देना।' उन्होंने धर्मेन्द्र को ॐ का जप करने व राम प्रभु के बारे में बतलाया। जब भी इन्हें शून्यता का आभास होता, तो ये ॐ का जप करने लगते और राम प्रभु का चिन्तन करने लगते। तब इन्हें बहुत अच्छा लगता। कैसी अद्‌भुत विलक्षणता थी। शरीर तो बालक का था, पर चेतना अथाह थी। लगता किसी महान् कार्य के निमित्त ही शरीर मिला है।

बहुमुखी प्रतिभा

अल्पावस्था में भी धर्मेन्द्र के मित्र बहुत थे। खेल-कूद में होशियार थे। शिकार का विशेष शौक था। पढ़ने में भी बहुत तेज थे। लेख और कविता भी लिखते व हर तरह की कला व विज्ञान में भी रुचि रखते थे। इन सबके बावजूद भी हमेशा आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होती रहती थीं। मानो उन्हें अनुभूतियाँ हमेशा स्मरण करातीं थीं कि तुम्हारे अन्दर आध्यात्मिकता के संस्कार विद्यमान हैं, भविष्य में जिनके विकास की पूर्ण संभावना है।

अपने बराबर के बच्चों को पीछे छोड़कर ये आगे बढ़ते जा रहे थे। कक्षा में प्रथम रहते थे, वाद-विवाद प्रतियोगिता व भाषण देने में भी प्रथम रहते थे। बड़े बच्चे इनसे डरते, ईर्ष्या भी करते थे। इनकी प्रतिभा देख शिक्षकों को बड़ी प्रसन्नता होती थी। एक बार विशेष उत्सव था, विदेश से कुछ विशिष्ट पादरी व प्रमुख लोग आये थे। स्वागत भाषण व कविता पाठ में इनका ही नाम था। 8–9 वर्ष के बच्चे की प्रतिभा देख कर उन लोगों ने कहा था, 'यह बच्चा भविष्य में बहुत नाम करेगा, काम करेगा। यह बहुत बड़ा नेता बनेगा या धर्म प्रचारक।' उसके बाद कॉन्वेंट की सिस्टर धर्मेन्द्र से और अधिक स्नेह करने लगीं। हमेशा सिखाती-समझाती रहती थीं।

धर्मेन्द्र की आध्यात्मिक स्थिति से कुछ चिन्तित व प्रतिभा से चकित होकर पिताजी ने सोचा, बच्चे को अपने पास ही रखना उचित है। फिर इन्हें नैनीताल से लाकर अलमोड़ा में ही अच्छे विद्यालय में दाखिला करवा दिया। सिस्टर के विशेष अनुरोध पर कभी-कभी इन्हें कुछ दिनों के लिए नैनीताल भी भेज दिया करते थे।

अलमोड़ा की रत्न गर्भा वसुन्धरा की गोद में इन नवोदित बाल रवि को देख कर देवगण प्रसन्नता से झूम उठे थे। माँ सरस्वती ने इन्हें वरदान दिये, कोकिला ने अपनी मधुरता दी, चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्सना और उषा ने अपने तेज के उपहार दिये।

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई, अल्पकाल विद्या सब पाई।

विद्या के साथ ही साहित्य, संगीत, कला के क्षेत्रों में धर्मेन्द्र नायाल की प्रतिभा फूट पड़ी। पल्लव, हृदयहीन, प्रेमी, निराला, वही उपनाम से लिखी कविताओं ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। लोगों को आश्चर्य होता कि 10 वर्ष का बालक, जो मिडिल स्कूल का विद्यार्थी है, इतनी सुन्दर व भावपूर्ण

रचनायें कैसे कर लेता है। इनकी कविता 'माँ' पत्रिका और दूसरी पत्रिकाओं में भी छपती थी। 'माँ' पत्रिका उत्साही नवयुवकों ने शुरू की थी। उसमें कहानियाँ, लेख, कविताएँ रहती थीं। परन्तु 'हृदयहीन' उपनाम से लिखने वाले विद्यार्थी की कविताओं ने उसे और लोकप्रिय बना दिया।

धर्मेन्द्र के पिताजी आर्यसमाजी व उन्मुक्त विचारों के थे, तथा पुलिस अफसर होने के कारण दुनियादारी का अनुभव भी था। धर्मेन्द्र 10 वर्ष के थे, तब से सुबह स्नान कर हवन करने का नियम बना दिया था। माँ कहती, 'गीता पाठ करो, बाद में नाश्ता करना।' दादी कहतीं, 'शंकर जी की पूजा कर आओ, मंगलवार है हनुमान जी की पूजा करो या नौकर के साथ पंडित जी के यहाँ देवार्पित अन्न पहुँचा कर आओ, फिर नाश्ता करना।' धर्मेन्द्र सब कुछ करते, पर सोचते थे, अभी तो सभी का काम कर देता हूँ, पर बड़ा होकर ये सब नहीं करूँगा।

गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव

धर्मेन्द्र की माँ हमेशा व्यस्त रहतीं थीं। गीता-रामायण, व्रत-पूजा, रसोई का पूरा काम करतीं, पवित्रता का उन दिनों बड़ा ध्यान रखा जाता था। छोटे-छोटे बच्चों को आया संभालती थी या दादी माँ देखती थीं। फिर भी समय निकाल कर माँ कुछ-न-कुछ पढ़ती थीं। उन्हें गाँधी साहित्य में विशेष रुचि थी।

1930 में गाँधी जी अलमोड़ा आये, तो उनका भाषण सुनने गईं। बहुत प्रभावित हुईं, उनसे मिलीं भी। फिर तो माँ के भीतर बहुत परिवर्तन हुआ, पवित्रता के विचारों में शिथिलता आई, नौकरानी काम करने लगी। वे सभाओं में जाने लगीं। अन्तत: स्वतंत्रता आंदोलन की सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गईं। धरना देने या विदेशी कपड़ों की होली जलाने में अगुवा बन गई थीं। गाँधी जी के साथ दूसरे शहरों में भी जाने लगीं। कभी-कभी खादी कपड़े का गठ्ठर लेकर भी जाती थीं। कई बार तो ऐसा भी समय आया कि धरना देने पर माता जी सहित स्वयं सेविकाओं को इन्सपेक्टर कृष्णचन्द्र सिंह स्वयं गिरफ्तार करके शहर से 20–25 मील दूर जंगल में छोड़कर आ जाते थे।

पर्वत की कन्या का तो ऊँचे-नीचे पहाड़ों से परिचय था ही, फिर देशभक्ति का जोश। सभी महिलाएँ आराम से पैदल चल कर घर आ जातीं थीं। यहाँ तक तो ठीक ही रहा। जब गाँधी जी ने वेश्याओं के उद्धार की योजना बनाई, तब धर्मेन्द्र की माता जी भी जातीं, उन्हें समझातीं, उनके घरों में बैठतीं, उनके साथ भोजन करतीं ...। तब तो बहुत तहलका मचा, रिश्तेदारों ने बहुत बातें

बढ़ाईं। पिताजी को भड़काने की कोशिश भी की, परन्तु वे सभी परिस्थितियों को समझते थे। उनका मन मजबूत था। उन्होंने कह दिया, 'आप लोगों को परेशान होने की जरूरत नहीं है, परिवार मेरा है, और मुझे अपनी पत्नी पर विश्वास है। हर आदमी अपने इच्छानुसार काम करने को स्वतंत्र है, वह भी जो कुछ कर रही है, गलत नहीं, ठीक ही है।'

गाँधी जी के साथ माता जी भी जेल गईं। लोग पिताजी से कुछ कह नहीं सकते थे, पर दादी को बहुत डराया, जाति बहिष्कार करने की धमकी दी। दादी भी बेटे के सामने न कुछ कह सकती, न कुछ कर सकती थीं। दादी ने 50–100 ग्राम सोना बेच कर प्रायश्चित के रूप में पंडितों से यज्ञ-हवन करा कर, दान-दक्षिणा देकर शान्ति पाठ कराया। बाद में पिताजी बहुत नाराज हुए। इसी निर्भीकता की छाप बच्चों पर भी पड़ी।

साहित्य विशारद

धर्मेन्द्र के मित्र तो बहुत थे, पर दो विशेष प्रिय थे। के.सी. जोशी (नानू) और अश्विनी कुमार पंत (आमि)। धर्मेन्द्र के साथ रहने से आमि ने भी 'माँ' पत्रिका में कुछ-कुछ लिखना शुरू कर दिया। इन लोगों में प्रगाढ़ मैत्री थी।

कुछ दिनों बाद धर्मेन्द्र ने 'भारत' पत्रिका का सम्पादन शुरू किया। मित्र के सत्संग और प्रोत्साहन से 'आमि' ने भी 'अग्रगामी' नाम से दूसरी पत्रिका शुरू की। ये लोग पूरी पत्रिका हाथ से लिखते थे, और बहुत-सी कॉपियाँ बनाकर सबको देते थे। एक बार कविवर सुमित्रानन्दन पंत अपनी जन्मभूमि अलमोड़ा आये। उन्हें इन लोगों ने अपनी-अपनी पत्रिकाएँ दिखाईं। उन्होंने इन लोगों के प्रयास की सराहना की। उन्होंने सलाह दी कि यदि तुम दोनों मिलकर एक ही पत्रिका निकालो तो अधिक अच्छा रहेगा। नवीं कक्षा के होनहार विद्यार्थी धर्मेन्द्र सिंह नायाल से मिलकर सुमित्रानन्दन पंत ने प्रसन्नता व्यक्त की। अब दोनों मित्रों ने मिलकर 'अग्रगामी भारत' पत्रिका संयुक्त रूप से प्रकाशित की। आमि के बहुत अनुरोध करने पर भी 'पल्लव' ने प्रधान संपादक बनना स्वीकार नहीं किया। विवश होकर आमि प्रधान व पल्लव सहायक संपादक बने और कार्य शुरू किया। परन्तु पत्रिका के प्राण पल्लव थे, सम्पूर्ण सम्पादन व निरीक्षण वे ही करते थे।

इन बालकों के इस उद्योग से छोटे-बड़े सभी प्रभावित हुए। इन्हें प्रोत्साहन मिलता रहा। इन लोगों ने सुमित्रानन्दन पंत को पुन: अपनी पत्रिका दिखाई

तो वे बहुत खुश हुए और इनकी पत्रिका में उन्होंने कई कविताएँ लिख दीं। पत्रिका की आत्मा तो धर्मेन्द्र ही थे, वे पल्लव, हृदयहीन, निराला, प्रेमी, वही के नाम से अनेक कहानियाँ, कविताएँ और लेख लिखते। हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी में इनकी योग्यता देख अध्यापक लोग तक आश्चर्यचकित हो जाते थे। इसी समय इन्होंने हिन्दी के मुख्य-मुख्य छन्दों व अलंकारों का प्रदर्शन करने हेतु कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रयास में इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। पल्लव की काव्य प्रतिभा पल्लवित हो चली थी।

इन्हीं दिनों कविवर सुमित्रानन्दन पंत के सम्मान में एक कवि गोष्ठी का आयोजन हुआ। उसमें पल्लव की कविता सर्वोत्तम रही। उसी समय पंत ने कहा था, 'यह बालक अवश्य ही हिन्दी साहित्य में अपना नाम उज्ज्वल करेगा।' सुमित्रानन्दन पंत की वाणी आज सत्य सिद्ध हो गई है। कल के बालक धर्मेन्द्र और आज के स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की हिन्दी और अँग्रेजी में अनेक पुस्तकें संसार में विख्यात हैं।

धर्मेन्द्र को हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा अँग्रेजी से भी विशेष प्रेम था। इन्होंने संस्कृत में भी लिखना शुरू किया। इनका विचार अँग्रेजी की भी एक पत्रिका निकालने का था। इतनी अल्पावस्था में तीन भाषाओं और साहित्यों का विशेष ज्ञान होना वास्तव में अपौरुषेय था। इनकी प्रवृत्ति बचपन से ही पवित्र और चिन्तनशील थी। पढ़ने में बहुत ही तेज थे, हिन्दी और अँग्रेजी में इन्हें सदा पूरे अंक मिलते थे। संस्कृत के विषय में इनके शिक्षक कहते, इतना अच्छा लिखते हो कि हमें ज्यादा अंक देने का अधिकार होता तो हम दूने अंक देते। अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में बाइबिल का भी अध्यापन होता था। इनकी कुशाग्र बुद्धि देखकर वहाँ के संचालकों को कुछ ऐसा लगा कि बालक धर्म-प्रचारक पादरी बन सकेगा और उन लोगों ने इनकी तरफ विशेष ध्यान देना शुरू किया। ईसाई शिक्षकों की धारणा एक प्रकार से सही निकली। धर्मेन्द्र धर्म के प्रचारक ही नहीं, धर्म के व्याख्याकार और मूर्धन्य अधिकारी बन गए। सच्चे अर्थों में ये भारतीय संस्कृति के संदेश वाहक ही हैं।

अध्यात्म की ओर रुझान

अब धर्मेन्द्र का मन विद्यालय की निरर्थक पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगता था। जब अध्यापक एल्जेब्रा अथवा ज्यामीति समझाते, तब वे सब से पीछे की सीट

पर बैठे या तो कविता बनाते रहते या 'अग्रगामी-भारत' के लेखों का संशोधन करते रहते। पल्लव आमि के साथ अक्सर पहाड़ों में घूमते-घूमते काफी दूर चले जाते और एकान्त में प्रकृति की शोभा देखते बैठे रहते। धर्मेन्द्र हिमालय के अगम्य शिखरों को अपलक एकटक देखते रहते और अपने आपको भी भूल सा जाते थे। जब कभी 'आमि' इस विषय में पूछते तो वे हँस कर टाल दिया करते थे। उन मित्रों को क्या मालूम कि वे हिमालय के उन शिखरों में अपने उस अनागत भविष्य की छवि देखते हैं।

कैलाश मानसरोवर जाने वाले साधु-महात्मा अलमोड़ा आते ही रहते थे। धर्मेन्द्र उन सबसे मिलते व कुछ पूछते भी रहते थे। वे लोग भी बालक की उत्सुकता और तेजस्विता से प्रभावित हो योग के सम्बन्ध में बहुत बता जाते। स्वामी नित्यानन्द वहाँ हर वर्ष आते थे। वे वृद्ध, अनुभवी और उच्चकोटि के क्रियायोगी साधक थे। उन्होंने धर्मेन्द्र को आसन-प्राणायाम के विषय में काफी कुछ समझाया। जब धर्मेन्द्र 6–7 वर्ष के थे, तब स्वामी नित्यानन्द से जादू-मंत्र, भूत-प्रेत के बारे में पूछा था। उनके हाथ में छोटा-सा डण्डा रहता था। धर्मेन्द्र ने पूछा था, 'क्या यह जादू का डण्डा है?' उन्होंने कहा, 'यह योग दण्ड है, तुम्हें चाहिए तो ले लो।' ये बहुत खुश हुए डण्डा लेकर।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी का जीवन चरित्र धर्मेन्द्र को बहुत अच्छा लगता, हमेशा उस पर चिन्तन करते थे। ये संत-महात्माओं से रामायण पर अनेक प्रश्न करते। भगवान राम के चरित्र ने इन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया, और इन्होंने राम को अपना इष्ट मान लिया।

तंत्र का पहला अनुभव

जब पल्लव 10 वर्ष के हो गये, स्कूल की पढ़ाई, लेख, कविता, कहानी तो चलती ही थी, इनके मन में विभिन्न पुस्तकों को पढ़ने और जानने की इच्छा प्रबलतर होती गई। इसी समय किसी प्रकार तंत्र की एक पुस्तक इनके हाथ लग गई। इन्होंने पुस्तक का विशेष अध्ययन किया। पड़ोस में रहने वाले मित्र ने भी इनका साथ दिया। दोनों मिलकर उसका अध्ययन करने लगे। इसी बीच एक तांत्रिक बाबा इन्हें मिल गये। ये दोनों मित्र उनसे हमेशा मिलते और तंत्र के बारे में पूछते रहते थे। अब इन लोगों की साधना शुरू हो गयी। कुछ दिनों के बाद श्मशान में जाकर मंत्र सिद्ध करने का विचार किया। दोनों मित्र जादू का डंडा हाथ में लेकर जाते और सोचते, हमारे पास तो जादू का डंडा है, हमें

किसका डर ...। अब तो मंत्र-बल से भूत हमारे वश में हो जाएगा। फिर उससे सब काम करायेंगे।

किसी तरह श्मशान में जाने की बात का पूरा पता पिताजी को चल गया। वे बहुत नाराज हुए। बोले, अगर रात के समय घर से बाहर निकले तो शूट कर दूँगा ...। इन्होंने सोचा, मंत्र तो जरूर पूरा करेंगे, अधूरा नहीं छोड़ना है। दोनों मित्रों ने सोच-विचार कर सलाह की कि श्मशान में जहाँ पर बैठते हैं, वहीं से राख लाकर रात को घर की छत पर ही साधना पूरी करेंगे। अगली सुबह राख लाकर 'स्यौन' के गमले में रख दी। जैसे इधर तुलसी का पौधा हर घर में गमले में रखते हैं, वैसे ही कुमाऊँ में 'स्यौन' का पौधा हर घर की छत पर रखते हैं। रात में सब सो गये तो ये छत पर पहुँचे। अपनी छत से मित्र भी आ गया। दोनों ने अपना काम विश्वास से शुरू किया।

मंत्र पूरा होते-होते लगा कि कुछ हो रहा है। चमत्कार ...। मानो पूरा मकान हिल रहा है। छोटा भाई रोने लगा, माता जी व दादी डरने लगीं। पिताजी इनको खोजने निकले, पर ये तो छत पर थे। दरवाजा बाहर से बंद था। पिताजी नाराज हो रहे थे, खोलो दरवाजा, नहीं तो दरवाजा तोड़ दूँगा, गोली मार दूँगा। वातावरण अजीब हो रहा था। मित्र तो छत की दीवाल फाँदकर अपनी छत पर चला गया, पिताजी गुस्से से चीख रहे थे। धर्मेन्द्र ने राख वगैरह उठा कर नीचे फेंक दी और दरवाजा खोल दिया। मंत्र पूजित सामान फेंकते ही वातावरण शान्त व स्वाभाविक हो गया। पिताजी नाराज बहुत हुए, पर कुछ न मिलने से फिर शान्त हो गये। जिस तांत्रिक साधक से ये लोग सलाह लेते थे, उससे दूसरे दिन जाकर इन्होंने सभी बातें बता दीं। उसने इन्हें बहुत डराया कि तुमने मंत्रित राख क्यों फेंक दी। अब भूत नाराज होकर तुम्हें कुछ भी कर दे सकता है।

धर्मेन्द्र तो डरने वालों में से थे नहीं। कह दिया, भूत हमारा कुछ भी नहीं कर सकता। पर मित्र डर गया। (संयोग कि 2 दिन बाद ही मित्र का अचानक एक्सीडेंट हो गया और पैर की हड्डी टूट गई) अब इन्होंने भूत साधना छोड़ दी।

सामाजिक परिवेश

छुट्टियों में धर्मेन्द्र जब अपने गाँव 'गाज' या 'भिकियासेन' जाते तब इन पर घर, रिश्तेदारों, समाज और गाँव के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता। उन दिनों

बाल-विवाह की प्रथा थी ही। पर्दा प्रथा व लड़के वालों द्वारा लड़की के पिता को धन देकर शादी करने की भी प्रथा थी। अलमोड़ा में भी यही रीति-रिवाज और सभी पुरानी प्रथाएँ चलती ही थीं। इनका जमींदार घराना था, पिताजी सरकारी ऑफिसर थे, इस कारण लोग सामने तो कुछ नहीं कहते, पर पीठ पीछे बहुत बातें बनाते थे। जैसे, लड़की इतनी बड़ी हो गई है, क्या जरूरत है कॉलेज में पढ़ाने की। शादी कर देनी चाहिए। लड़का भी तो शादी लायक हो गया है। लड़के की शादी कर दें, पढ़ाते भी रहें। दादी माँ भी चाहती थी पोता-पोती की शादी हो जाए। समाज के कर्णधारों से नहीं रहा गया, तो सबने मिल कर पिताजी को समझाना चाहा। परन्तु उन्होंने कह दिया, आप लोगों को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, मुझे भी समझ है, बच्चे मेरे हैं। माता जी कांग्रेसी थीं, वे भी जल्दी शादी के पक्ष में नहीं थीं। पर दादी माँ बहुत दु:खी होती थीं, रिश्तेदार उन्हें बहुत ही परेशान करते थे।

एक विशेष कारण यह भी था कि दादी माँ ने पोते की सगाई 2 वर्ष की उम्र में ही बड़े शौक से कर दी थी। कुमाइयों में 1-2 वर्ष तो क्या 1-2 माह के बच्चों की भी सगाई करते थे, कभी-कभी शादी भी कर देते थे। जन्म के पहले भी बात तय कर लेते थे। जैसे दो महिलायें आपस में निश्चित कर लेती थीं कि एक को लड़का तथा दूसरे को लड़की होगी तो शादी पक्की है। समय पर ऐसी शादियाँ होती भी थीं। दादी माँ ने भी अपने परिचितों में खूब अच्छी लड़की देखी तो सगाई कर दी थी। संभवत: पिताजी ने मना भी किया हो, पर माता जी ज्यादा विरोध नहीं कर सकीं होंगी। जब धर्मेन्द्र नैनीताल में पढ़ते थे तब छुट्टियों में घर आते थे। छुट्टियों में पूरे मुहल्ले के बच्चे आते और खेलते थे। वह बच्ची भी आती थी। सरस्वती नाम की सुन्दर सी लड़की, बहुत अच्छी लगती थी। सब इनसे मजाक करते। पर ये कुछ समझ नहीं पाते थे। जब दादी माँ ने इन्हें बताया, तब तो इनको बहुत गुस्सा आया था।

इधर सरस्वती के माता-पिता भी परेशान थे। लड़की बड़ी हो गई, शादी की समस्या सामने है। वे कृष्णचन्द्र जी से मिले, बातें भी हुईं। कृष्णचन्द्र जी ने उनको समझाया और आश्वासन भी दिया। उन्हें भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। और दूसरी ओर बेटे की शादी की समस्या अजीब मोड़ ले रही थी। लड़के की बीमारी (संज्ञाशून्य होना), संतों की बातें, भविष्यवाणियाँ, और बच्चे का व्यवहार, क्रिया-कलाप ...। वे कई बार बच्चे के सामने कह चुके थे, 'सम्पत्ति जीवन के लिए निरर्थक वस्तु है, सिद्धान्त जीवन के लिए उत्तम वस्तु है और

वैराग्य सफलता का मार्ग है। छाया के पास जाओगे तो छाया दूर भागेगी, और छाया को पीछे करके चलोगे तो वह तुम्हारा अनुसरण करेगी। संसार तुम्हारी छाया है, विद्या तुम्हारी छाया है, सम्पत्ति तुम्हारी छाया है। इनके पीछे पड़ना ठीक नहीं, वैराग्य और संन्यास का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है।'

तांत्रिक योगिनी से भेंट

नैनीताल में पढ़ते समय धर्मेन्द्र के जीवन में एक निर्णायक मोड़ आया। उनकी भेंट एक ऐसी तांत्रिक योगिनी से हुई जिसने उनकी चेतना में विस्फोट कर, विलक्षण आध्यात्मिक अनुभवों की झलक दी। उन अद्भुत अनुभवों का विवरण धर्मेन्द्र के अपने शब्दों में–

सत्रह-अठारह साल की अवस्था में नैनीताल में मेरी अकस्मात् मुलाकात हो गई एक तांत्रिक योगिनी से, जो कि उम्र में मुझ से काफी बड़ी थी। उस समय मुझे गुरु और शिष्य के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। मुझे संन्यासी बनने की इच्छा भी नहीं थी। मैं एक नवयुवक था, जिसकी रुचि क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी और स्कूल की पढ़ाई-लिखाई में ही थी। क्षत्रिय परिवार का होने के कारण मैं बड़ा दम्भी भी था और समझा करता था कि मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। लेकिन उस योगिनी ने मुझे वश में कर लिया।

एक दिन शाम को जब मैं झील के किनारे से होकर जा रहा था, तब मैंने उसे पहली बार देखा। वह किसी संन्यासी की तरह अपनी चिलम लेकर एक चट्टान पर बैठी थी। कुछ लोग उसके चारों तरफ बैठे थे। मैंने उसकी ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया, लेकिन वह मुझे देखकर बोली, 'ऐ लड़के! इधर आ।' मैंने उसकी ओर देखा, वह मुझे ही बुला रही थी। मगर मैं तो अपने जीवन में किसी का आदेश सुनने का आदी नहीं था। कभी किसी ने मुझे आदेश नहीं दिया था।

परन्तु उस औरत ने कहा, 'ऐ लड़के, इधर आ।' मैंने मन-ही-मन सोचा कि यह क्या बदतमीजी है। मुझे बहुत बुरा लगा। मगर मैं एक मेमने की तरह, एक पालतू कुत्ते की तरह चुपचाप उसके पास चला आया। उसने मुझे एक लोटा दिया और कहा, 'जा, दूध ले आ। हम चाय पीना चाहते हैं।' उसने मुझे पैसे भी नहीं दिए। खैर, मैं नैनीताल बाजार गया, जो पास ही था और दूध खरीद लाया। उसने कहा, 'यहाँ बैठ।' मैं बैठ गया। उसने मुझे चिलम दी, मैंने कहा, 'नहीं, मैं चिलम नहीं पीता।' वह जोर से बोली, 'क्या! मैं तुझे दे

रही हूँ, ले इसे।' मैंने दम लगाया, मगर मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने सोचा, चाय ठीक है, कॉफी ठीक है, चॉकलेट भी ठीक है, पर चिलम? यह तो केवल बेस्वाद धुआँ है। फिर भी मैंने कश लगाया। वहाँ कुछ और लोग भी थे, पर वे पढ़े-लिखे लोग नहीं थे, गाँव के साधारण लोग थे।

वह उन लोगों से आज्ञा चक्र, कुण्डलिनी, नाड़ियों, लोकों और दूसरी चीजों की बातें कर रही थी। उन दिनों मैं अपने काल के संत-महात्माओं, जैसे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य समाज के परिव्राजक सत्यदेव तथा स्वामी विवेकानन्द की जो पुस्तकें निकलती थीं, उन्हें पढ़ता था। चक्रों पर लिखी पुस्तकों को पढ़ता था। जब मैं वहाँ बैठा सुन रहा था, उसने एक-एक चीज की बहुत अच्छी व्याख्या की। उसकी बातों में बहुत स्पष्टता थी।

मैंने सोचा, 'यह किस विषय पर बोल रही है?' मैं तो उसे बेवकूफ समझ रहा था, पर उसका ज्ञान बहुत प्रभावशाली था। वह ब्रह्म और चित्रिणी नाड़ियों के बारे में समझा रही थी। मैं वापस आया। पहली चीज जो मुझे लगी कि यह एक असाधारण महिला है।

मैं, जो क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ, जिसने आज तक किसी के आदेश को स्वीकार नहीं किया था, तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन करने लगा। उस दिन के पहले किसी ने मुझसे यह नहीं कहा था कि यह करो, वह करो। अगर किसी ने कहा भी होता तो मेरा उत्तर होता, 'खबरदार! तुम होते कौन हो मुझे बताने वाले कि मुझे क्या करना है!' मैं हमेशा एक राजा की तरह रहा, दूसरों को बताता था क्या करना है। अगर मेरे पिताजी भी कभी मुझे कोई आदेश देते तो मैं नहीं सुनता। मेरे पिताजी ने एक बार मुझको गीता पढ़ने को कहा। मैंने कहा, 'छोड़िये, मैं नहीं पढ़ता।' उन्होंने मेरे को विवश करना चाहा। मैंने बन्दूक उठाई और कहा, 'चुप रहिए, अगर मैं चाहूँगा तभी पढ़ूँगा, नहीं तो नहीं पढ़ूँगा।'

फिर भी मैंने उस योगिनी के निर्देशों का पालन किया। उसने मुझे बुलाया, मैं उसके पास गया। उसने मुझसे दूध लाने को कहा और मैं दूध ले आया। उसने मुझे बैठने को कहा, मैं बैठ गया। उसने मुझे चिलम दी, मैंने चिलम ले ली। मैंने सोचा, यह सब मेरे स्वभाव के विपरीत हुआ है। मुझे वापस घर पहुँचने के बाद मालूम पड़ा कि वह कितनी शक्तिशाली थी।

अगले दिन मैं फिर उसके पास गया और यह सिलसिला चल पड़ा। फिर मैं रोज शाम को उसके पास जाने लगा। वह मूलाधार चक्र, इड़ा-पिंगला नाड़ियों, प्राण और स्वर आदि के बारे में वही बातें कहती, जो अनेक स्वामियों

ने लिखी हैं। फिर वह तंत्र के वामाचार, कौलाचार, दक्षिणाचार आदि विषयों के बारे में समझाती थी। वह कहती थी कि वामाचार सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। मुझे उसकी बात बिल्कुल समझ में नहीं आती थी, क्योंकि यदि वाम-मार्ग श्रेष्ठ है, तब तो सबके भीतर वह जागृति हो जानी चाहिए थी। मगर किसी की कुण्डलिनी जाग्रत तो नहीं हो रही है, बच्चे ही अधिक पैदा होते जा रहे हैं। मैं उसके इस विचार से संतुष्ट नहीं हो सका।

एक बार मैंने उससे पूछा – 'तुम्हें यह सब कहाँ से मिला? तुमने कौन-कौन सी किताबें पढ़ी हैं?' उसने कहा, 'किताबें? मैं तो यह भी नहीं जानती कि किताब पकड़ी कैसे जाती है।' वह बिल्कुल निरक्षर थी और देखने में अत्यन्त वीभत्स। भैंस जैसी स्थूलकाय और कोयले जैसी काली और बदसूरत। उसके शरीर से बदबू निकलती रहती थी, क्योंकि वह न कभी दाँत साफ करती थी, न कभी स्नान करती थी और न अपने वस्त्र बदलती थी। वह सड़क-छाप भाषा बोलती थी। हर वाक्य के बाद एक गाली या गन्दा शब्द इस्तेमाल करती थी। किसी को कभी भी फटकार देती थी। लेकिन वह कुण्डलिनी, तंत्र और नाड़ी पर बोलती थी। वह आत्म-साक्षात्कार के सोपानों की व्याख्या करती और बताती कि अज्ञान का अन्धकार क्या है। वह कई शास्त्रों की ऊँची-ऊँची बातें बताती थी, हालाँकि उसको यह पता नहीं था कि ये बातें शास्त्रों में लिखी हैं।

एक दिन मैंने उससे पूछा, 'क्या तुम मुझे तंत्र सिखाओगी?' उसने कहा, 'हाँ'। मैंने पूछा, 'वाम मार्ग?' उसने कहा, 'हाँ।' 'श्मशान तंत्र?' 'हाँ।' 'कपाल तंत्र?' 'हाँ।' मैंने अपने पिताजी से कहा कि मैं उसे घर बुलाना चाहता हूँ, उससे तंत्र सीखना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, 'ठीक है, जैसा तुम चाहो।' मैंने उसे बुलाया और वह गाँव आयी। मेरी जमींदारी में ही नदी किनारे एक बहुत सुन्दर गुफा थी, वह वहीं रहने लगी।

उसका आदेश था कि कोई उस तरफ न आने पाए। मैंने गाँव वालों से कह रखा था कि तुम लोग उस तरफ मत जाना, क्योंकि वह अपने सारे कपड़े उतार कर फेंक देती थी और यूँ ही खुले में लेट जाती थी। वह शाम से ही पीना शुरू करती, पूरी रात पीती रहती। पीती जाती, दम लगाती जाती और मांस खाती जाती। वह दिन-रात चिलम और गांजा पीती रहती थी। वही उसकी श्वास थी। दिन में वह बाहर बिना कपड़ों के सो जाती, एक विशाल भैंस की तरह। मुझे लगता है कि अगर कोई आदमी अचानक उसे देख लेता, तो उसे हृदयाघात हो

जाता। उस समय वह एकदम राक्षसी, महाचण्डालिनी की तरह दिखायी देती थी। उसके रहने वगैरह की व्यवस्था कर मैं अलमोड़ा चला आया।

सप्ताह के अन्त में जब मैं उसके पास गया, तब मैंने उससे पूछा, 'अब क्या कार्यक्रम है?' उसने कहा, 'रात के ठीक बारह बजे आना और अपनी रायफल साथ मत लाना।' उधर के जंगलों में कहीं भी रात को बिना रायफल के नहीं चल सकते। चारों तरफ बाघ, चीते, भेड़िये और जंगली जानवर घूमते रहते हैं। उस अन्धेरी रात में मुझे लगभग डेढ़ मील का रास्ता तय करना पड़ा। मैं रात को वहाँ पहुँचा और उस रात मुझे वास्तविक और गहन अनुभव हुए, जो इस लोक से सम्बन्ध नहीं रखते। वे स्वप्न नहीं, शक्ति जागरण के अनुभव थे।

मैंने उससे वाम मार्ग सीखा और लगभग छः महीने तक इसका अभ्यास किया। हर सप्ताह मैं अपनी स्कूल की छुट्टियों में वहाँ जाता था। इस अवधि में मुझे अनुभवातीत अनुभूतियाँ हुईं, मेरे शरीर की चेतना खो गयी, मैं मानवीय अस्तित्व की चेतना से परे चला गया, वहाँ जहाँ सूर्य नहीं और चन्द्रमा नहीं। उसके पास मैं कोई पचास-पचपन बार गया होऊँगा। सारी रात मैं उसके पास रहता था और दिन के समय लौटता था। हर दिन मुझे शराब पीनी पड़ती थी। मांस उसके लिए जरूरी था। हमें इसका इन्तजाम करना पड़ता था।

मुझे बहुत अच्छे-अच्छे अनुभव हुए, मगर मैंने अपने पर नियंत्रण रखा। मैं पागल नहीं हुआ। मैं स्कूल जाता था, मैंने परीक्षा दी, मैं अपनी कक्षा का मॉनीटर था, खिलाड़ी टीम का कप्तान था। इस तरह सभी काम मुझे करने पड़ते थे। मेरा व्यवहार असामान्य नहीं हुआ, मैं सभी कार्य सही तरीके से करता रहा। लेकिन मुझे वही अनुभव हुआ जो काकभुशुण्डि को श्रीराम के मुँह में प्रवेश करने पर हुआ था। जब मैंने काकभुशुण्डि के अनुभव के विषय में पढ़ा तब यह बात मेरी समझ में आयी। भगवान कृष्ण के मुँह खोलने पर जो अनुभव माँ यशोदा को हुआ था, वही अनुभव मुझे हुआ। भागवत पुराण का वह अंश पढ़ने पर यह बात मेरी समझ में आयी। उसने मुझे इन्द्रियातीत, अलौकिक अनुभूति प्रदान की, जो मन, शरीर, इन्द्रियों और समस्त पारिभाषिक शब्दावली से परे की अनुभूति थी। हम उसे शक्तिपात कहते हैं, वह उसे अनुग्रह कहती थी।

वह योगिनी एक समर्थ शिक्षक थी। उसका नाम था सुखमन गिरी। वह जूना अखाड़े की संन्यासिनी थी। एक दिन उसने अचानक कहा, 'मैं जा रही हूँ।' मैंने कहा, 'तब तुम मुझे दीक्षा देकर जाओ।' उसने कहा, 'नहीं, मैं किसी

को दीक्षा नहीं देती। तुम्हें अपना गुरु खोजना पड़ेगा।' और साथ ही उसने कहा, 'ये जो अनुभव तुम्हें हुए, मैंने तुम्हें दिये हैं। ये तुम्हारे व्यक्तिगत अनुभव नहीं हैं। मैंने तुम्हें लोकोत्तर अनुभवों की झलक भर दिखायी है, जो व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक जीवन में एक समय होते हैं। अब जाओ और उन्हें अपने बल पर प्राप्त करो।' मैंने कहा, 'कैसे?' उसने कहा, 'अपना गुरु खोजो।' और चल दी। उस समय से उस अनुभवातीत अनुभूति को मैं खोजता रहा।

भाई-बहन के क्रांतिकारी विचार

समय आगे बढ़ता जा रहा था, स्कूल-कॉलेज, कविता-लेख, मित्र-दोस्त, संत-महात्मा, शहर-जंगल में घूमना, घुड़सवारी करना, शिकार करना, सब चल रहा था। शौक तो बहुत थे, पर कभी-कभी सोचते थे सब निरर्थक है। दोनों भाई-बहन में विद्रोह की भावना पनप चुकी थी। क्रांतिकारी विचार भी स्वरूप लेने लगे। दोनों सलाह करते, हम लोग शादी करेंगे ही नहीं। बाल-विवाह और छुआ-छूत की कुप्रथा भी मिटानी है। नये समाज की रचना करेंगे, देश-विदेश घूमेंगे, दीन-दु:खियों की सेवा करेंगे।

इन्हीं दिनों दोनों भाई-बहन ने छुट्टियों में स्वेच्छा से अस्पताल जाकर मरीजों की सेवा का व्रत ले लिया। इस तरह सेवा कर्म भी चलने लगा। अब धर्मेन्द्र का मन कहीं पर नहीं लगता। कभी तो पूरे मनोयोग से पढ़ते-लिखते। कभी कुछ सोचते रह जाते, तो कभी घण्टों जंगल, पहाड़, नदी, पेड़ों को देखते रहते। कभी चाँद-तारों को निहारते ही रहते। कभी दुनिया की बातें सोचते रहते, तो कभी राम, कृष्ण, बुद्ध की बातें सोचते। और अब संन्यास की बातें भी सोचनी शुरू हो गयीं।

अलमोड़ा में विवेकानन्द आश्रम भी था। इन्होंने सोचा, संन्यास लेना है तो यहीं अच्छा रहेगा, नजदीक भी है। आश्रम के स्वामीजी से बात की, उन्होंने सलाह दी कि पहले पढ़ाई पूरी करो। इधर धर्मेन्द्र का चिन्तन दिनों-दिन बढ़ता गया।

पिताजी पुलिस विभाग के बड़े अफसर थे, बहुत व्यस्त रहते, ब्रिटिश शासन काल के पुलिस अफसर, 1940 का समय था, कांग्रेसियों का जोर बढ़ता जा रहा था। माता जी प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता थीं। उनका एक पैर सभा-सोसाइटी में, दूसरा पैर जेल में रहता। सभी अपने में व्यस्त रहते थे। धर्मेन्द्र भी बनारस जाकर युनिवर्सिटी में शरीर विज्ञान का अध्ययन करने लगे।

पिताजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनको लगा कि लड़का अब सुलझ जायेगा। पर होनी तो होकर ही रहती है। सबकी डोर तो भाग्य-नियन्ता के हाथ में रहती है। धर्मेन्द्र का स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वे जो चाहते उसे फटाफट पूरा कर ही लेते थे। छः माह में ही इनका यह अध्ययन पूरा हो गया। जो भी जानना था, उस सबकी जानकारी हो गयी। पेपर, परीक्षा और नतीजे की इन्हें परवाह नहीं थी। ये बनारस से अलमोड़ा आ गए। कुछ दिन रह कर फिर कहीं चले गये। अश्विनी कुमार पंत बनारस में कानून पढ़ रहे थे। के.सी. जोशी अलमोड़ा में थे। उनकी नजरों में ये अद्भुत बालक थे। ये कहाँ गये होंगे सोचकर जोशी बड़े परेशान थे। चार माह बाद उन्हें अकस्मात् मित्र का पत्र मिला कि वे वेटरिनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मुक्तेश्वर में हैं।

अपने मित्र से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा लिये के.सी. जोशी दूसरे दिन ही मुक्तेश्वर की ओर चल दिये। चौदह मील का रास्ता पार कर अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। भगवान की कृपा से वे समय पर पहुँच गये। धर्मेन्द्र अपने ग्राम 'गाज', जो मुक्तेश्वर से 4 मील दूर है, जाने वाले थे। दो दिन मुक्तेश्वर में रहकर दोनों मित्र अलमोड़ा आये। धर्मेन्द्र जोशी के घर एक दिन रह कर मुक्तेश्वर लौट गये और कीटाणु विज्ञान का अध्ययन करने लगे।

बहन का देहान्त

धर्मेन्द्र जब मुक्तेश्वर में रहकर अध्ययन कर रहे थे, उसी बीच अचानक दीदी का स्वर्गवास हो गया। परिवार तड़प उठा। धर्मेन्द्र का मन जैसे टूट गया। कल्पनाओं का महल धराशायी हो गया। जीवन की क्षण-भंगुरता देख मन फिर वैराग्य की तरफ दौड़ने लगा। प्रिय बन्धु के बिछोह ने उन्हें झकझोर दिया। अध्ययन-अध्यापन छूट गया। सोचते, अब क्या करना है? पर सोचने लगते तो विचारों का प्रवाह रुकता ही नहीं था।

धर्मेन्द्र को जिस धरती पर नयनों के सौन्दर्य का वरदान मिला था, अद्भुत विश्रांति मिली थी, वहीं पर कला का मर्म भी उन्होंने सीखा था। उषा की अरुणिम और संध्या की मरकत मधु-प्याली ने इन्हें कविता का वरदान दिया था। कल्पना की बाढ़ में कवि ने अपना कल्पित नाम रखा था 'पल्लव', 'हृदयहीन', 'प्रेमी', 'वही', 'निराला'। पर पल्लव की कविताओं की अधिक प्रबलता रही। शनैः-शनैः कवि इस अन्वेषण की ओर उन्मुख होता गया कि क्या प्रकृति के परे भी कोई सत्तात्मक विभूति है अथवा प्रकृति ही एकमात्र

अधिष्ठात्री है। इसी उधेड़बुन में कविता के कुसुम-कोमल-कुन्तलों का श्रृंगार विशृंखलित हो चला। और कवि का मन अद्वैत और सनातन की उपलब्धि करने का हो गया, जिसके ज्ञान के उपरान्त कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता। पर आँधी का एक ऐसा झोंका आया कि कवि का हृदय दहल उठा। दीदी का वियोग असहनीय हो उठा। कवि का आहत मन जीवन की क्षणभंगुरता से उद्वेलित हो उठा। 'मेरे मन कछु और है, कर्त्ता के मन कछु और'। क्या सोचते थे क्या हो गया। भविष्य के चित्र कई रूपों में सामने आने लगे। विचारों के कणों को किस तरह पिरोया जाए, सोचते ही रह जाते। कहीं ओर-छोर नहीं मिलता। इनकी यह मनोदशा देख, माता-पिता भी इनके लिए सोचने को बाध्य हो गए। रिश्तेदारों ने भी सलाह दी कि शादी कर दो, सब ठीक हो जाएगा। सरस्वती के माता-पिता भी कहने लगे, हमारी लड़की बड़ी हो गयी, अब शादी जल्दी करनी ही है। पिताजी का मन भी डगमगा रहा था। क्या बंधन इसके लिए उपयुक्त होगा?

आन्तरिक मंथन

धर्मेन्द्र ने भी बहुत चिन्तन किया। उन्हें अपने भीतर किसी प्रकार की इच्छा, अभिलाषा नजर ही नहीं आती थी। किसी प्रकार का, कोई भी अभाव नहीं था। सुख-सुविधा, भोग-विलास सभी उपलब्ध थे। नियति का चक्र चलने लगा। कवि हृदय चिन्तन में लीन रहने लगा। अब इनके मन में आध्यात्मिक जीवन की बातें ही तरंगित होने लगीं। मानो जन्म-जन्म के संस्कारों ने सुअवसर देख कर सिर उठाना शुरू कर दिया। मन के अन्दर छिपी हुई अजेय शक्तियाँ अँगड़ाई लेने लगीं। आध्यात्मिक शक्तियाँ शीघ्रतापूर्वक प्रकट होने लगीं। कभी कुछ ध्वनि सुनाई पड़ती तो कभी दृश्य दिखाई देते। इनके ऊपर दैवी शक्तियों की कृपा तो थी ही। चार वर्ष का बालक अपना शरीर स्पष्ट देख सकता है, कुछ अनुभव भी कर सकता है। आठ-नौ वर्ष की उम्र में हिन्दी, संस्कृत, अँग्रेजी में कविता, कहानियाँ, लेख लिखकर सबको चकित कर सकता है। दस वर्ष की उम्र में निर्भीकतापूर्वक तंत्र साधना कर सकता है। जिसे कलम पर अधिकार हो, जिसकी लेखनी अविराम गति से चलती हो, उसका मार्गदर्शन देव शक्तियाँ ही करती हैं, यह तो निश्चित बात है।

कभी सोचते, क्या है विधि का विधान? क्या मुझे सांसारिकता में फँसना पड़ेगा? पर मेरे पथ का आभास मुझे हो रहा है। अगर इस संसार से हट भी

गया, और मेरे सांसारिक जीवन के कुछ संस्कार बाकी भी होंगे तो आगे चलकर मेरा व्यक्तित्व क्या अछूता रह पाएगा? अगर अपने को हठात् संसार में डुबा भी दूँ, तो क्या मेरा मन सांसारिकता में टिक सकेगा? मार्ग तो निश्चित है ही। चाहे अभी तोड़ दूँ या भगवान बुद्ध की तरह उस दुनिया में जाकर। कभी सोचते, मैंने जीवन में समस्त सुखों का उपभोग किया है, बहुत सारे अनुभव भी प्राप्त किए हैं, लेकिन अब मुझे ऐसा लगता है कि मेरे मन में सांसारिक विषयों के लिए वासना है ही नहीं। उन्हें प्राप्त करने की कोई महत्त्वाकांक्षा भी नहीं है। सुख चाहे किसी भी प्रकार के हों, सबका अंत तो एक ही है। भले ही मन में जो विचार उठें, अन्तर तो अपने भाव में रहता है।

लगने लगा कि संसार के लोग जिस जीवन को जी रहे हैं, वह अत्यन्त कठिन है, भयानक भी है। अब धर्मेन्द्र को स्पष्ट अनुभव होने लगा कि संसार में कुछ दिव्य सूक्ष्म शक्तियाँ हैं जो मुझे कुछ आध्यात्मिक आदेश और संकेत दे रही हैं। जब ये दिव्य शक्तियाँ मेरे साथ हैं, मेरी मदद कर रही हैं, तब फिर मुझे भी जल्द ही कुछ भी हो निर्णय ले लेना है। लेना ही होगा। मुझे प्रसिद्ध नेता, विद्वान्, वैज्ञानिक, धनी सेठ, बड़ा ऑफिसर, यह सब कुछ नहीं बनना है। सच्चा आदमी बनना है।

उनके मन में विचार उठ रहे थे, जब मैं कच्ची माटी था, मेरे माता-पिता ने कुम्हार की भाँति चाक पर रख कर मुझे खूब सँवारा। किन्तु उन्हें मालूम नहीं था कि जिस घड़े को वे इतने ध्यान से बना रहे हैं, उसमें पानी भी रखा जा सकेगा या नहीं। ऊपर बैठे विधाता ने तो यह घट अमृत के लिए सृजित किया ...।

सभी कार्य प्रकृति के नियमानुसार ही होते हैं। मनुष्य किसे रोक सका है। क्या यशोधरा सिद्धार्थ के मार्ग में बाधा बनी थी? या रत्नावलि ही तुलसीदास के मार्ग में बाधक बनी थी? फिर सरस्वती ही किसी के सरस्वती बनने में बाधक कैसे होती? और अचानक ही एक दिन उस देवी का भी स्वर्गवास हो गया। प्रभु अपने प्रिय जन का हमेशा मंगल ही करते हैं। परिस्थितियाँ भी अनुकूल बना देते हैं।

गृह-त्याग

चिन्तन तो धर्मेन्द्र का निरंतर चलता ही रहता था। सम्पदा है, पर उसकी कामना नहीं है। भोग उपलब्ध है, पर उसमें रस नहीं है। ऐश्वर्य है, मगर उसकी आसक्ति नहीं है। विद्या भी है, किन्तु उसका अभिमान नहीं है। यह वैराग्य

नहीं तो क्या है? इस यथार्थ वैराग्य का उदय तब होता है, जब वासनाओं की पंखुड़ियाँ झड़ जाती हैं, जब अन्त: का प्रकाश प्रस्फुटित हो जाता है। ग्रह योग सभी अनुकूल हो रहे थे।

1942 के आन्दोलन में माता जी जेल गईं थीं, यह भी एक संयोग ही था कि ममता का बंधन दूर था। दीदी से स्नेह का बंधन था, जो टूट चुका था। कर्त्तव्य के बंधन में बँधे ही नहीं थे। कच्चा धागा जरूर बंधा था, पर वह भी टूट गया था। उससे भी मुक्ति मिल गई थी। एक छोटा भाई था, जो 2-3 वर्ष की उम्र में नहीं रहा। दो और छोटे भाई थे, जो हाई स्कूल में पढ़ रहे थे। एक अदृश्य डोरी धर्मेन्द्र को अपनी ओर खींच रही थी।

नियति का चक्र तो रुकता नहीं। जीवन का अध्याय बदलने के लिए पुस्तक के पन्ने फड़फड़ाते हुए उड़ते जा रहे थे। हृदयहीन ने सब कुछ त्याग कर, लक्ष्य की ओर बढ़ने का दृढ़ निश्चय कर, पिताजी को अपना निश्चय बता दिया। पिताजी ने समझाने का प्रयास किया, कहाँ जाओगे? अच्छी तरह सोचो, कहाँ जाओगे, क्या करोगे? धर्मेन्द्र ने कहा, 'देखेंगे, कहीं जाएँगे, संन्यासी बनेंगे। क्या रखा है इस दुनिया में? आप तो कहते थे वैराग्य और संन्यास जीवन की पूर्णता है। आप ही तो हमेशा कहते हैं कि हम संन्यासी हो गये होते, इन झंझटों में नहीं पड़े होते तो अच्छा होता, फिर मुझे क्यों रोकते हैं।'

पिताजी ने इन्हें समझाया, 'मेरी परिस्थिति में रहकर देखो, क्या गलत कह रहा हूँ? कितना सुखी जीवन बिता रहा हूँ? कैसा सुखी हूँ? मेरे लिए तो यह दुनिया झंझट व परेशानी से भरी हुई है। पर तुमने अभी दुनिया देखी ही कहाँ है? तुम्हारी उम्र ही कितनी है?'

धर्मेन्द्र ने कहा, 'हमने जो सोचना था, सोच लिया। हमें आशीष दीजिए, कुछ देना हो दीजिए, रोकिये नहीं।' पिताजी ने कहा, 'सबकुछ तुम्हारा ही है धर्मेन्द्र, पर तुम्हें एक बार फिर से सोचना होगा। भावना में कुछ भी कर लेना ठीक नहीं है। मुझे विश्वास है तुम गलत कदम नहीं उठाओगे। पथ और कर्त्तव्य सतर्क होकर निर्धारित करना होगा।'

पिताजी समझदार, विवेकशील और धर्म-परायण पुरुष थे। दुनिया देखी थी, परिस्थितियों ने भी उन्हें बहुत कुछ सिखाया था। उन्होंने स्नेह से समझाया। न डराया, न धमकाया और न किसी तरह का दबाव ही डाला। उन्हें भी लगा कि धर्मेन्द्र तो किसी बंधन के लिए बना ही नहीं है।

कोठी की चहारदिवारी के अन्दर क्या वह कभी समा सकता है? उसे सदा ही स्वतंत्रता प्रिय रही। वह उन्मुक्त पक्षी की तरह स्वच्छन्द आकाश में विचरण करेगा ...।

धर्मेन्द्र अपने मित्र के.सी.जोशी के पास एक रात अकस्मात् पहुँचे। उन्होंने मित्र से कहा, हमने सबकुछ त्याग दिया है। दो-तीन दिन साथ रहे। फिर एक प्रतिछवि (फोटो) देकर कहा, 'देखें कहाँ किनारा मिलता है। हम ऋषिकेश की तरफ जा रहे हैं।' और चले गये। बेबस मित्र दुःखी तो हुए, पर सोचा, ईश्वर की यही इच्छा है।

कुछ माह बाद के.सी.जोशी को मित्र का पत्र ऋषिकेश से मिला। उन्होंने लिखा था, मित्र यह मेरा तुम्हारे लिये अंतिम पत्र है। अगला पत्र तुम्हें उस समय मिलेगा, जब मैं एक सच्चा मनुष्य बन जाऊँगा।

दो लाइन की कविता भी थी–

इन गीतों में सुख मेरा है, इन छन्दों में सूनापन है।
इन भावों में चिता सजग है, पर मुझमें तो पागलपन है॥

द्वितीय खण्ड

गुरु आश्रम की झाँकियाँ



हे अनासक्त नर रत्न!

आपके गुणों और सुकर्मों की व्याख्या करना या लेखनी में बद्ध करना, जितना श्रोता और अध्ययन करने वालों के लिए आनन्दप्रद है, उतना ही वक्ता और लेखक के लिए दुष्कर। प्रभु से यही प्रार्थना है– श्री गुरुदेव युगों-युगों तक जगत् कल्याण हेतु अमर रहें।

ओ कठोरता व सत्य के पुजारी! आप चिरकाल तक संसार को योग सिखाते रहें, सत्य व शान्ति का मार्ग बताते रहें।

शान्तो नम्रस्वभावी च शुद्धवेदान्त वाचकः ।
लेखको ज्ञानग्रंथानां निबन्धानां विधायकः ॥

द्वितीय खण्ड

सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य किसी एक मूलांश पर अवलंबित है। ब्रह्मा से जीव पर्यन्त सभी अपने संस्कार जन्य कर्मों के चक्र में पड़े इधर-उधर भटकते फिर रहे हैं। सभी प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति ही है। दु:ख से छुटकारा पाने की आकांक्षा प्रत्येक प्राणी के अन्तरतम में है। किन्तु भुवन मोहिनी माया के पाश में आबद्ध प्राणी व्याकुल एवं संतप्त रहता है। जीव मात्र का कल्याण भूत भावन भगवान की परम अनुकम्पा पर ही आश्रित है। उन परमात्मा का सहज स्नेह पात्र उनकी अनन्य भक्ति में लीन प्राणी ही हो सकता है।

सभी जीवों में मनुष्य को श्रेष्ठ माना गया है। विवेक वैभव ही गुण विशेष है। प्रत्येक मनुष्य को ज्ञानाज्ञान का आभास होता है। लेकिन इतने पर भी वह अपने मस्तिष्क का सन्तुलन किसी एक लक्ष्य की ओर केन्द्रित नहीं कर सकता। मझधार में फँसी हुई नौका की तरह वह किसी माँझी की प्रतीक्षा करता है। वे माँझी संतों के रूप में उन्हें दर्शन देते हैं। उन्हीं संत शिरोमणि समुदाय के वंदनीय हैं, किशोर धर्मेन्द्र सिंह नायाल।

माँझी की तलाश

जन्म-जन्मान्तर के संस्कार आज प्रबल हो धर्मेन्द्र का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। योग और वैराग्य की भावना एक जन्म की उपलब्धि नहीं। मोक्ष फलदायी इस वैराग्य वृक्ष के बीज कितने ही जन्मों के तप के पश्चात् अंकुरित होते हैं। अध्यात्म की प्रबल पवित्र भावना इनके अन्तर में निश्चय ही चिरन्तन थी। सब कुछ त्याग दिया। माता की ममता, पिता का वैभव, बन्धु जनों का स्नेह त्याग कर जन-जन के हृदय में राज्य करने का सौभाग्य प्राप्त करने चल पड़े। चलते गये, चलते ही गये। असंख्य मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों और गिरजाघरों को

देखा, परखा और पार किया। कितने ही संत-महात्मा, धूनी वाले, जटा वाले, तांत्रिक, मांत्रिक के पास पहुँचे, रहे, समझा, सीखा और आगे बढ़ते गये। दुनिया बहुत देखी, अनुभव लिया, हर क्षेत्र में पहुँच कर उन्हें परखा। हर गुफा के अन्दर घुस कर चट्टानों की मजबूती देखी, पर रुके कहीं नहीं। आगे बढ़ते ही गये। राह में आँधी-तूफान, ग्रीष्म और शीत, बादल और बरसात आए, पर वाह रे देवदूत! मंजिल पर मंजिल तय करते ही गये। अवस्था भी क्या थी, 19-20 वर्ष के युवक बच्चे ही कहलाते हैं। और यात्रा में साथी चाहते हैं। पर इस बालक के लिए तो सारा विश्व ही अपने घर-आँगन जैसा था।

किसी साधु ने इन्हें कहा, 'बच्चा, सेवा करो, चिलम भरो, सब कुछ मिलेगा।' इन्होंने समझ लिया कि ये बाबा जी कितने पानी में हैं। कई महात्माओं ने तो इनसे बात करने के बाद कह दिया, 'तुम्हें ज्ञान बताने की क्षमता हममें नहीं है।' किसी ने कहा, 'बच्चा, तुम ऋषिकेश जाओ, वहाँ तुम्हें योग्य गुरु मिलेंगे।'

तांत्रिकों के चंगुल में

धर्मेन्द्र आगे बढ़े तो यू.पी. में ही कुछ तांत्रिक इन्हें मिल गये। उन लोगों ने इन्हें फँसाया। इन्होंने भी सोचा देख ही लेते हैं। क्या हर्ज है। इन्हें तंत्र में दिलचस्पी तो थी ही। सोचा कुछ सीख ही लें। वे अघोरी तांत्रिक थे। उनका पूरा दल ही था। तीन-चार दिन में ही उन लोगों ने अनुभव किया कि यह लड़का हमारे चंगुल में नहीं फँसेगा, भागेगा ही। कुछ बातें भी जान गया है। अत: तय किया कि इनकी बलि देना ही अच्छा रहेगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा। हमें सिद्धि भी मिलेगी। उन लोगों ने योजना भी बना ली। विशेष आयोजन हुआ। आग जला कर सब बैठे चारों तरफ। मंत्र के साथ खाना-पीना भी चल रहा था।

धर्मेन्द्र को कुछ ऐसा आभास हुआ कि मुझको भागना है। सामने दरवाजे पर हमेशा ताला बंद रहता था। संयोग ही था, जब इन्होंने देखा वे लोग ताला बंद करना भूल गये हैं। ताले में चाबी लटक रही है। प्रभु को याद करते तुरन्त बाहर निकले और बाहर से ताला बंद करके सीधा स्टेशन पहुँचे। जो गाड़ी सामने खड़ी थी, उसमें बैठ गये।

गाड़ी ने हरिद्वार पहुँचा दिया। वहाँ सब तरफ घूमे। जानकारी ली और पहुँचे ऋषिकेश। वहाँ काली कमली वालों के पास रहने लगे। नियति के चक्र ने इन्हें ऋषिकेश तो ला ही दिया, थोड़ी-सी कसर रह गयी थी। उसके भी पूरे होने का समय शीघ्र ही आ गया।

गुरु से साक्षात्कार

साधु सम्मेलन में सभी साधु-संन्यासी इकट्ठे हुए हैं। वहाँ भू-मण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द सरस्वती भी पधारे हैं। हजारों की भीड़ है। पर उनकी नजर एक अद्भुत तेजोमय किशोर पर टिक गई। किशोर था तो 19–20 वर्ष का ही, पर लगता 14–15 वर्ष का। देखते ही आत्मा का सम्बन्ध आत्मा से हो गया। धर्मेन्द्र ने भी उन्हें आश्चर्य व उल्लास से देखा। स्वामी शिवानन्द जी ने इशारे से बुलाया। धर्मेन्द्र का मन तो उनके पास पहुँच ही चुका था, संकेत पाते ही शरीर भी पहुँच गया। स्वामी शिवानन्द जी ने कहा, 'ओ जी, तुम कल सुबह शिवानन्द आश्रम में आकर मिलो।'

जब पर्वत का वक्ष तोड़कर प्रवाह के रूप में वेगवती सरिता निकल पड़ती है, तब कहीं-न-कहीं उसे सागर का कूल मिल ही जाता है। जिसकी अनन्तता में वह अपने समस्त आवेग-प्रवेग का विसर्जन कर लीन हो जाती है। उसी प्रकार यह किशोर भी आनन्द कुटीर के द्वार पर आ ही पहुँचा।

ज्ञान की किरणें बिखेरने वाले गुरु ने विस्मित होकर युवक का अन्तरतम तक निहार लिया। वे पहचान गये कि यह युवक उनके संदेश को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, दूर-दूर तक पहुँचाने के लिए सुयोग्य दूत होगा। कृष्ण का अर्जुन, और नारायण का नर भी यही है। यही है जिसका मुझे इन्तजार था। उसे देखते ही उन्होंने आश्रम आने को कहा।

दूसरे दिन 19 अप्रैल 1943 की प्रात: वह तेजस्वी किशोर 'चिदानन्द चिन्मय' की मनोवांक्षा ले चल पड़ा त्यागी 'आनन्द कुटीर' की ओर। किशोर ने जब गुरु चरणों में सिर झुकाया होगा, उस समय गुरु-शिष्य, भगवान-भक्त, आध्यात्मिक पिता-पुत्र के मिलन पर माँ भागीरथी खुशी से झूम उठी होंगी। और माँ धरित्री आह्लादित हो गई होंगी।

गुरु सेवा

संन्यास हेतु उत्सुक होने के कारण गुरुदेव ने धर्मेन्द्र को शिष्य दीक्षा दे दी। 'अखण्ड-कीर्तन भवन' उसी वर्ष बना था। वहाँ पर माँ सरस्वती की मूर्ति है। सभी वाद्य यंत्र वहाँ रखे रहते हैं। वहाँ पर चौबीस घण्टे 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' महामंत्र का अखण्ड कीर्तन निरंतर चलता रहता है। स्वामी लोग दो-दो घण्टे का नियम बना कर दिन-रात कीर्तन करते रहते हैं। इन्हें भी भजन करना और सबके साथ रसोई

के बरतन साफ करना, गंगा जी से जल लाना, सब्जी काटना, रसोई बनाने में मदद करना, जंगल से फूल, बेल पत्र व लकड़ी लाना, सब कुछ करना था। साथ ही शास्त्रों का अध्ययन भी चलने लगा।

ज्ञानानुरागी युवक शीघ्र ही शास्त्रों के अवगाहन में दत्तचित्त हो गया। आत्म-समर्पण, सेवा, स्वाध्याय आदि विविध सोपानों को तय करने लगा। युवक ने सभी काम मन से किए। अभिमान तो उसमें जरा भी नहीं था। पर स्वभाव की विचित्रता वही थी। पानी भरने का समय होता, तो सभी शिष्य पानी भरते। गंगा जी में 75–80 सीढ़ियाँ चढ़नी-उतरनी पड़ती थीं। सैकड़ों बाल्टी पानी लाना पड़ता था। जब सब पानी भरते होते, तो ये फूल, बेल-पत्र के लिए टोकरी लेकर जंगल चले जाते। जब सुबह सब सोये होते तो 2 या 2.30 बजे उठते और 70–80 बाल्टी पानी लाकर सबमें भर कर रख देते थे। कर्म योग चाहे कैसा भी कठिन हो, पानी भरना, बरतन साफ करना, भोजन बनाना, या छः-आठ घण्टे तक कीर्तन करना। भवन निर्माण के काम के लिए चाहे ईंट-पत्थर ढोना हो या दवाइयाँ (जड़ी-बूटी) कूटनी-पीसनी हों या अतिथि की सेवा करनी हो, या जो भी काम हो, बड़ी लगन व प्रेम से करते थे। उनकी लगन देख सभी आश्चर्यचकित रहते थे। उनके सभी गुरु भाई भी आश्चर्य करते, पर गुरु जी तो जानते थे कि शैशवावस्था में ही वैराग्य की भावना इनमें पूर्णतः परिलक्षित हो चुकी है। अलमोड़ा की प्रकृति की गोद में पल कर भी प्रकृति की माया से जो नहीं बंध सका, वह निश्चय ही महान् कार्य के निमित्त ही धरती पर आया है।

एक चिन्तनशील व्यक्ति जब जीवन की विभीषिका को देखकर कराह उठता है, तब वह अध्यात्म की गोद में जा गिरता है। अध्यात्म उसे अपनी शान्तिदायिनी गोद में बिठा कर कोलाहलमय जगत् से दूर, बहुत दूर ले जाता है। परन्तु उसे पलायनवादी या निष्क्रिय नहीं बनाता, बल्कि उसकी चेतना को सत्य के क्षितिज में ले जाकर मानवता के पावन आदर्श निर्माण के लिए सन्नद्ध करता है।

विद्यालय की चहारदिवारी में पराविद्या के अजस्र स्रोत का दर्शन ये नहीं कर सके थे। विद्यालयों में जिस लौकिकता का आभास इन्हें मिला, वह वस्तुतः इनके व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं थी। अतः इस सिद्ध योगी की यात्रा काव्य सृजन से प्रारंभ होती है। पल्लव उपनाम रखकर एक कवि के रूप में सर्वप्रथम इन्होंने प्रकृति में असीम सत्ता के आलोक को देखने का प्रयत्न किया।

आगे चलकर इनका कवि रूप बहुत अधिक पल्लवित हुआ और ये कवि तक ही सीमित नहीं रहे। स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में बैठकर इन्होंने प्रथम

तो उस असीम सत्ता की विशालता में अपने अस्तित्व को विलीन करने की साधना की और स्वामी शिवानन्द जी को ही इष्ट गुरु के रूप में पूजा।

सौंप दिया सब भार, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' के अनुसार आगे चल कर संसार को इनकी सेवा तथा परोपकारमय जीवन की महती अपेक्षा थी और इन्हें भी जीवन-साफल्य की कुंजी मिलनी थी। इसी से गुरु आश्रम में आने पर गुरुदेव ने हृदय से इनका स्वागत किया और अपने सान्निध्य में रखा।

धर्मेन्द्र बड़ी ही कुशाग्र बुद्धि के थे। जिस कार्य में इन्हें नियुक्त किया जाता या जिस कार्य का उत्तरदायित्व दिया गया, उसकी कार्य प्रणाली को शीघ्र ही सीखते और फिर उसे बड़ी निपुणता से पूरा करते थे। स्मरणशक्ति बहुत ही विलक्षण थी। सभी वेद-वेदान्त, उपनिषद्, स्तोत्रादि कण्ठस्थ करते गये। सभी विभागों में काम करते थे। बड़ी कुशलता के साथ करते थे। सबसे हिलमिल कर भी रहते थे। शीघ्र ही सभी के प्रेम व प्रशंसा के पात्र बन जाते थे। सत्संग में नियमित भाग लेते। भजन-कीर्तन बड़ा ही सुन्दर व अंत:मन से करते थे। गाने व सभी वाद्य बजाने में तो सिद्धहस्त थे ही। सुनने वाले तो भाव-विभोर हो झूमने लगते।

ब्रह्मचर्य व्रत

मार्च, 1945 में शिवरात्रि के पावन पर्व पर गुरुजी ने धर्मेन्द्र को ब्रह्मचर्य आश्रम में दीक्षित कर, अपनी परम्परा में समाविष्ट कर 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य' नाम दिया। धर्मेन्द्र सिंह नायाल ने माया के बंधन तोड़ कर 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य' बनकर सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया। ये काम तो बहुत करते थे, पर करते थे अपने इच्छानुसार ही। मनस्वी जो थे।

सुबह 3 बजे स्वामी शिवानन्द जी सभी शिष्यों को जगाते थे, सबके कमरों में जाते थे। कौन क्या कर रहा है, देखते, पूछते, उनको बताते क्या करना है, कैसे करना है, काम करने का तरीका समझाते। जब स्वामीजी चले जाते तब 'सत्य-चैतन्य' फिर आराम से सो जाते थे। स्वामीजी को सब पता चल ही जाता था। उन्होंने सोचा, इसे विश्वनाथ मंदिर में पूजा-सेवा का काम दिया जाए, तो यह समय पर उठेगा और सब काम विधिवत् करेगा। लेकिन ये भी तो कम थे नहीं। 'गुरुजी डाल-डाल तो चेला पात-पात'। दो या ढाई बजे

जब भी नींद खुले, उठकर खिचड़ी चढ़ा देते (विश्वनाथ मंदिर में खिचड़ी का भोग लगता था) और 3 बजे जोर-जोर से घण्टी-शंख बजा कर नैवेद्य लगाते, आरती और भजन-कीर्तन करते थे। कई बार गुरुजी ने इन्हें समझाया, सिखाया, पर ...। फिर रसोई में काम बताया। भोजन बनाने व सफाई में लगा दिया। इन्होंने अन्नपूर्णा विभाग का पूरा काम संभाला। भोजन बनाने व परोसने की व्यवस्था में काफी परिवर्तन किया।

आश्रम में विभिन्न भूमिकाएँ

8 सितम्बर को हर वर्ष स्वामी शिवानन्द जी के जन्म दिवस पर कई दिनों का सत्संग और भण्डारा होता था। बाहर से भी बहुत लोग आते थे। बहुत काम होता था सब तरफ। हजारों लोग भोजन करते थे। समारोह में सत्य चैतन्य ही सब तरफ काम करते दिखते थे। बड़े-बड़े बरतनों के अंदर घुस कर उन्हें स्वयं साफ करते। समय मिलने पर उपनिषदों की पढ़ाई करते, कभी कुछ लेख-कविता लिखते। यह देख कर गुरुजी उन्हें काम बताते। कुछ शिक्षा प्रेमी लड़के-लड़कियाँ आश्रम में गीता-उपनिषद्-संस्कृत पढ़ने आते थे। और कुछ होनहार गरीब लड़कों को आश्रम में रखकर भोजन-पुस्तक व फीस की व्यवस्था की जाती थी। उन्हें कॉलेज भेजा जाता था। गुरुजी ने इन सब बच्चों को पढ़ाने का काम सत्य चैतन्य को ही दिया था। ये सब बच्चों को संस्कृत-हिन्दी-अँग्रेजी पढ़ाने लगे। बाद में जो समय मिलता लेख-कविता लिखते। यह देखकर गुरुजी ने सत्य चैतन्य को प्रेस में काम करने की अनुमति दी। इन्होंने प्रेस विभाग के सभी काम सीखे–फोल्डिंग, बाइन्डिंग, कम्पोजिंग, प्रूफ देखते, मशीन भी चलाते। इसके बाद गुरुजी की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करने लगे। स्वामीजी की पुस्तकों का अनुवाद करके छापने के बाद इन्हें इतना आनन्द आया कि गुरुदेव की पुस्तकों का अनुवाद करने में दिन-रात एक कर देते थे।

1945 में आयुर्वेद ओषधि शाला, ओषधि वितरण केन्द्र का काम शुरू हुआ। तब इन्होंने ओषधालय में काम किया। जंगल से जड़ी-बूटियों के पौधे लाना व कूट-पीस कर दवा बनवाना, बीमारों को दवा देना, उनको सब समझाना। सत्य चैतन्य के बात-व्यवहार से सब समझते थे कि इन्होंने आयुर्वेद का डिप्लोमा लिया है। लोग तो कहते थे, स्वामी शिवानन्द के दिव्य कर्म को पूरा करने हेतु ही इनका जन्म हुआ है। गुरुदेव का स्नेह भी इन पर अपार था। वे इन्हें 'सत्यम्' कहते थे। ऐसा कोई विभाग नहीं था,

जहाँ सत्यम् ने पूरी निपुणता से काम न किया हो, और इन्हें पूर्ण सफलता न प्राप्त हुई हो।

आसन-प्राणायाम भली-भाँति जानते थे। शरीर हल्का, स्वस्थ एवं फुर्तीला था। प्रत्येक काम को प्रसन्नता, कुशलता, शीघ्रता और लगन के साथ करते थे। सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी 'सत्य चैतन्य' सर्वगुण सम्पन्न थे। इनका जीवन साधकों के लिए अनुकरणीय है।

संन्यास दीक्षा

8 सितम्बर 1947 को स्वामी शिवानन्द जी की हीरक जयन्ती मनायी गयी। श्री सत्य चैतन्य गुरुदेव के अन्तरंग शिष्य थे। उन पर स्वामीजी का अटूट स्नेह, आन्तरिक विश्वास और अक्षय प्रीति थी। 12 सितम्बर 1947 की पुण्य तिथि में स्वामीजी ने सत्य चैतन्य को साधना पथ का एक उत्तराधिकारी बनाया। अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर सभासीन करते हुए, स्वामीजी ने 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य' को संन्यास दीक्षा दी, और नूतन नामकरण हुआ, 'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'। शुभ दिन में इस 'परमहंस संन्यास' की सुगम सुकृति का श्रीगणेश कर 'स्वामी सत्यम्' मात्र 24 वर्ष की अवस्था में चतुर्थ आश्रम में उपविष्ट हुए। उसी दिन महर्षि स्वामी शिवानन्द जी की हीरक जयन्ती का पुण्य पर्व भी था। जिसके उत्सव से आनन्द कुटीर में आनन्द सदेह विराजमान था। दो हर्ष एक साथ ही आ मिले। यह संयोग भी चिरस्मरणीय है। इस शुभ मुहूर्त्त से स्वामी सत्यम् ने विगत जीवन को विस्मृत कर दिया और गुरुदेव के परम पावन आदेशों-उपदेशों को दैनिक आचार-विचार में घटित करते हुए उस परा-वैभव की दुर्लभ यात्रा पर चल पड़े, जिसका आभास उनके अन्त:सागर में बाल्यकाल में ही हो गया था। सत्य, आनन्द और ज्ञान के अर्जित अलंकार को तपा कर गुरु ने साधक के सच्चे स्वरूप को सबके सन्मुख ला दिया। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती मानो 'सत्यदेव जगदीश्वर' के अभिन्न स्वरूप ही हैं।

संन्यस्त होने, 'सत्यानन्द' नाम धारण करने के पश्चात् स्वामी सत्यानन्द के जीवन के तीन पहलू हैं–'गुरुभक्त सत्यानन्द', 'कर्मयोगी सत्यानन्द' तथा 'राष्ट्रभाषा का पुजारी सत्यानन्द'। उनके विषय में कुछ कहना, उनके जीवन के उपर्युक्त पहलुओं की झलक भर प्रस्तुत करता है।

शास्त्रानुकूल संन्यास दीक्षा ग्रहण करने के बाद जैसा नियम है, गुरुदेव के आदेश से एक वर्ष के लिए 'पारिव्राजक जीवन-यापन' करने हेतु रामाश्रम,

ऋषिकेश में रहने गये। अध्ययन-मनन-सत्संग करते थे। कभी नेपाली क्षेत्र से, कभी और कहीं से भिक्षाटन करते थे। हमेशा गीता-उपनिषद् की ही चर्चा चलती थी। गीता तो इनके रोम-रोम में रमी थी। एक बार चन्द्रभागा पुल पार करते समय आपने विनोदपूर्वक गीता का यह श्लोक पढ़ा–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन

और हँस कर कहा, 'गीता के इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार अधिक रोचक प्रतीत होता है, यद्यपि मेरे अनेक जन्म हुए, किन्तु केवल चार जून को।' पुन: उन्होंने यही श्लोक व अर्थ 1987 में गंगादर्शन में, अर्थात् चालीस साल पश्चात् बता कर सबका विनोद किया था।

स्वामी सत्यानन्द 'रामाश्रम' एक वर्ष के लिए गए थे। आनन्द कुटीर का कार्य बहुत बढ़ गया था। इनका कार्य भी बहुत था, जिसे अन्य स्वामी पूरा नहीं कर पाते थे। इसलिए गुरुदेव ने इन्हें वापस बुला लिया। आने के बाद आपने आश्रम के नियमादि को हिन्दी रूप दिया। स्वामी शिवानन्दजी की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करते ही थे। स्वामी शिवानन्दजी रात को लिखने बैठते, लिखते ही जाते। वे लिखने में इतने तन्मय हो जाते कि कुछ भी ध्यान नहीं रहता। और लिखे पन्ने पूरे कमरे में फैल जाते। नित्य 40–50 पेज लिखते थे। स्वामी सत्यम् सुबह आकर सब कागजों को बटोरकर क्रम से सजाते, फिर कुटिया साफ करते व सभी काम करके टाईप करने बैठते। टाईप करके प्रेस कॉपी बनाते और प्रेस में दे देते थे। कुटिया की सफाई व स्वामी शिवानन्द जी की लिखी पाण्डुलिपियों को टाइप करना, गुरुजी का पूरा काम भी इन्हें ही करना था।

संस्कृत पर पूर्ण अधिकार

1948 में श्री बुद्ध जयन्ती का शुभ पर्व आया। 23 मई 1948 को परम पावनी श्री भागीरथी के तीर 'रामाश्रम' में बुद्ध जयन्ती मनाने का आयोजन हुआ, साथ ही 'सार्वभौम साधु मण्डल' की स्थापना का भी। इसी योजना को लेकर स्वामी भास्करानन्द तथा भिक्षु 'महेन्द्र' भी पधारे थे। इस सभा में बहुत से विद्वान् महात्मा भी आए थे। सभापति का आसन स्वामी शिवानन्द जी ने सुशोभित किया था। कीर्तन व कुछ महात्माओं के प्रवचन के बाद स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द को कहा, 'संस्कृत में प्रवचन करो।' गुरु आदेश

से इन्होंने संस्कृत भाषा में ही प्रवचन दिया – *'अयि समागत सन्तवृन्द! एवं भक्तमंडल! अद्य हि सौभाग्येन वयमत्र परमपावने सुरतटिनीतटे तिष्ठामः। सर्वे सम्यक् विदन्ति यज्जीवनस्योद्देश्यं मोक्षत्वमेव वर्त्तते। विना जीवनमुक्त्या न हि कश्चिदपि पुण्यमनन्तानन्दप्रदं स्थानं प्राप्तं समर्थः। भगवद्भक्तिरेव सुखकरा च मोक्षदा। अद्य त्वस्माभिः सर्वैरेकमनसा भूय सर्वेश्वर-परात्पर-निखिलकोटिब्रह्माण्डनायक-प्रभुः समभ्यर्थनीयस्तत्रैवास्माकं जीवनस्य लक्ष्यपूर्तिर्भवितुं शक्यते...'*।

इनके संस्कृत भाषा के प्रवाह एवं प्रांजलता को देख-सुन कर सम्पूर्ण समुदाय आश्चर्यचकित रह गया। पाँच मिनट के प्रवचन ने महात्माओं को भी भाव-विभोर कर दिया। इन्हें हिन्दी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। स्वामी शिवानन्द जी ने इन्हें आश्रम का सेक्रेटरी भी बना दिया।

आदर्श कर्मयोगी

वर्तमान काल में भौतिकवाद का बोलबाला है। उसके निवारणार्थ स्वामी शिवानन्द जी अपने शिष्यों को कर्मयोग की साधना का आदेश देते हैं। और उनके सभी शिष्य कर्मयोगी ही हैं। कर्मयोग के दो रूप हैं – एक सकाम और दूसरा निष्काम। प्रथम में कर्म किसी-न-किसी कामना पूर्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इसका क्षेत्र एक देशीय तथा सीमित होता है। जो सब प्रकार की एषणाओं को त्याग कर केवल संसार के योग-क्षेमार्थ किया जाता है, वही कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। इसका क्षेत्र विशाल, व्यापक तथा असीम है। स्वामी सत्यम् ने संन्यासी होने के नाते कर्मयोग (निष्काम कर्म) का वरण किया है। स्वत्व और परत्व के परिव्रजन का दूसरा नाम ही 'न्यास' है। इसमें 'सन्' उपसर्ग के योग से 'संन्यास' शब्द बनता है। स्वामी सत्यानन्द ने इस मार्ग का पूर्णरूपेण पालन किया। संसार में दिव्य ज्ञान प्रसार हेतु ही वे सतत् कर्म में रत रहते थे। शिवानन्द आश्रम के सभी स्वामी कर्मयोग परायण थे। पर उन महात्माओं में स्वामी सत्यम् अक्षरशः निष्काम कर्मयोग पालन में सर्वाधिक तत्पर रहते थे। *'कर्म करण मे वार्चनम्'* के सिद्धान्त वाक्य के तो आप अनन्य पुजारी हैं।

स्वामी सत्यम् शुद्ध कर्मयोगी ही नहीं, वरन् इनके हृदय की विशालता भी अपूर्व है। आश्रम में आने वाले सभी लोग इन्हें अपना हितैषी समझते व निःसंकोच उनके साथ सभी विषयों पर वार्तालाप करते थे। सभी विषयों का स्वामी सत्यम् का अध्ययन अत्यन्त गंभीर तथा विचार अत्यन्त सुस्पष्ट एवं

प्रौढ़ होते। इनकी तर्क प्रणाली इतनी सटीक होती कि बड़े-बड़े तार्किक भी सहज ही घुटने टेक देते थे। इनकी व्याख्यायें सरल, सरस और हृदयग्राही होतीं तथा इनकी हिन्दी तो ऐसी थी जैसे सरिता का अबाध शांत प्रवाह हो। भाषा परिमार्जित, रोचक एवं प्रशंसनीय हुए बिना नहीं रह सकती।

स्वामी सत्यम् आश्रम के सेक्रेटरी के रूप में पूरी व्यवस्था की तरफ ध्यान रखते थे। स्वामी शिवानन्द जी की रचनाओं के अनुवाद की तरफ विशेष ध्यान रहता था। स्वामी सत्यम् में काम करने की अद्भुत क्षमता थी। इन्हें प्रेस का मैनेजर भी बना दिया गया था। गुरु जी की अँग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद करते समय स्वामी सत्यम् को समाधि सी लग जाती, पूरी रात लिखते ही रहते थे। कई बार तो दिन-रात लिखते ही रहते थे। परमगुरु शिवानन्द जी की जो कुछ देन हिन्दी जगत् को मिल रही है, वह स्वामी सत्यम् के परिश्रम का ही फल है। एक बार स्वामी सत्यम् ने कहा था, 'मैं तो चाहता हूँ कि स्वामी शिवानन्द जी की कृतियों का अनुवाद हर भाषा में हो जाए। इसलिए नहीं कि प्रचार हो, वरन् इसलिए कि इस वैज्ञानिक युग को उसकी आवश्यकता है।' उनके इस कथन में कितना सार, कितना सत्य था, आज स्पष्ट है। यही है सच्ची गुरुभक्ति। लोग कहते–आपने वही मस्ती, मुस्कान और कर्मठता पायी है जो 'शिवम्' में है।

नित्य-प्रति आप गुरु-दर्शन को जाते थे। उस समय एक अद्भुत छटा-सी बिखर जाती थी। वहाँ आप गुरु की छाया के समान खड़े होते थे। लगता था निर्मल जल में शरद के चन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। उस समय आप का बाल-सुलभ भाव दर्शनीय होता। विचित्र होता था वह समय, मानो गुरु-शिष्य न हों, नारायण-नर हों।

अनुवाद का काम जोरों से चलने लगा। लिखने की क्षमता तो स्वामी सत्यम् में शुरू से ही थी। अब तो मानो अविरल प्रवाह मिल गया। लेखनी अविराम गति से चलने लगी। दो-तीन सौ पेज की पुस्तकों का अनुवाद करने में दिन-रात एक कर देते थे। भूख और नींद तो जैसे इनकी दासी थीं। जब ये चाहें तो आयें, नहीं तो दूर ही रहें। अब तो स्वामी शिवानन्दजी को इनका ध्यान हमेशा रखना पड़ता था। रात के समय गंगा जी में भँवर की तरफ तैरना व आधी रात को गंगा जी के किनारे थोड़े जल में जो बड़ी-बड़ी चट्टानें (पत्थर) रहती हैं, उन पर बैठ कर ध्यान करना इन्हें बहुत प्रिय था। स्वामी शिवानन्दजी को तो सब पता चल ही जाता था। हमेशा रात को स्वामी सत्यम्

के बारे में पूछते। किसी को भेज कर इनका पता लगाते और बुलवाते थे। कई पत्रिकाएँ हिन्दी व अँग्रेजी में प्रकाशित होती थीं। स्वामी सत्यम् उसमें भी मदद करते, लेख लिखते।

आश्रम जीवन में स्वामी सत्यम् के अनेक कार्यक्षेत्र रहे हैं। गुरु जी का काम, जन-सेवा के साधारण-से-साधारण कार्य, लेखन, पठन-पाठन, भजन-कीर्तन और कठिन साधना, सभी कुछ समभाव से करते रहते थे। आश्रम में कई तमिल, तेलगू भाषा-भाषी साधक भी रहते थे। उन्हें हिन्दी भाषा से परिचित कराकर राष्ट्रीय एकता का भाव लाने का श्रेय एकमात्र स्वामी सत्यम् को रहा है। अपने गुरु के आदेशों और आदर्शों को जन-सामान्य के सम्मुख रख कर उनके संदेशों को स्पष्ट करना भी स्वामी सत्यम् का ही बहुद्देशीय प्रयास रहा है।

योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय की स्थापना में सहयोग देकर वहाँ की पुस्तकों के प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों की देखभाल स्वामी सत्यम् ने सदैव की। आरण्य विश्वविद्यालय प्रेस की संस्थापना के बाद तो स्वामी सत्यम् ही उसके सर्वेसर्वा हो गये। तब से वही उनकी अहर्निश साधना का स्थल व गुरु-सेवा का साधन बना रहा। निरन्तर कार्य में लीन, किन्तु कर्म जाल से परे, पर्वत शृंगों पर विचरते मेघों की भाँति निर्लिप्त।

जीवन और धर्म के प्रति स्वामी सत्यम् के विचार स्वतंत्र ही थे। संसार के प्रति उदासीनता होते हुए भी जीवन के प्रति आदर और उसके उत्तरोत्तर विकास के प्रत्येक क्षण की प्रतीक्षा का आग्रह देख इन्हें केवल संन्यासी नहीं कह सकते। किसी भी क्षेत्र में हों, कर्म मान्य है, जीवन मान्य है, और जीवन के प्रति, जीवन देने वाले के प्रति श्रद्धा व भक्ति मान्य है। यही भाव जैसे इनकी उदारता को व्यक्त करता है।

स्वामी शिवानन्दजी ने स्वामी सत्यम् के शील, सौजन्य और शौर्य से प्रभावित होकर 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' की ओर से इनको दो उपाधियाँ प्रदान कीं– 'अध्यात्म रत्न' और 'प्रवचन प्रवीण', जिनको ये वस्तुतः सुशोभित करते थे।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

स्वामी सत्यम् ने एक बार कहा था, 'आध्यात्मिक मार्ग में गुरु का स्थान प्रथम है। योगाभ्यास का द्वितीय तत्त्व है 'मंत्र'। गुरु-शिष्य दो बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं। दो स्तंभ हैं, परन्तु दोनों के बीच का सम्बन्ध बड़ा विचित्र है। समाज इसे

समझ नहीं सकता। गुरु ईश्वर नहीं है, और शिष्य भक्त नहीं है। यदि तुम शक्तिशाली ट्रांसमिशन लाईन (सम्प्रेषक सूत्र) नहीं बन सकते, तो कम-से-कम छोटी लाईन तो बनो।'

आज भी स्वामी सत्यम् कहते हैं–शिष्य बनना कोई खेल नहीं है। गुरु बनना भी आसान नहीं है। गुरु होना बड़ा कठिन है। शिष्य होना उससे भी कठिन है। अपनी ही बात बताता हूँ। मैं संन्यासी हूँ, एक गुरु का शिष्य हूँ। मैं जब स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में आया तब मुझे एक कमरा दिया गया। मेरा स्वभाव बड़ा ही विचित्र था। बिना कम्बल के जमीन पर सोता था, आश्रम से कम्बल मिला था, उसे भी लौटा दिया था। दरवाजा भी बंद नहीं करता था, क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं। कमरे में घड़े में पानी व गिलास भी नहीं रहता था। जब भी प्यास लगे, सीधे गंगाजी में जाता था। जंगल में शौच जाना पड़ता था, पर पास में जलपात्र भी नहीं रखता था। परन्तु मैं आश्रम का ज्वाइंट सेक्रेटरी था। गीता रोज पढ़ता था, उस पर चिन्तन भी करता था।

स्वामी शिवानन्दजी की व्यावहारिक शिक्षण विधि

एक दिन स्वामी शिवानन्द जी निरीक्षण के लिए मेरे कमरे में आये। मेरी अलमारी देखी, खाली थी। चौकी भी खाली थी। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारे कमरे में गिलास नहीं है क्या?' मैंने कहा, 'मैं गिलास नहीं रखता।' उन्होंने पूछा, 'क्यों नहीं रखते?' मैंने कहा, 'मुझे परिग्रह (चीजों को इकट्ठा करना) अच्छा नहीं लगता।' वे बोले, 'धत्, क्या फालतू बात बोलते हो, कहाँ से तुम यह सब सीख कर आये हो?' स्वामी शिवानन्द जी ज्यादा व बेकार नहीं बोलते थे।

शाम को स्वामीजी नीचे गये तो उन्होंने आठ गद्दे, रजाई, मसहरी, चादर, तकिया, आठ गिलास, एक स्टोव, मिट्टी का तेल, चाय-शक्कर का डिब्बा, सब मेरे कमरे में भिजवा दिया। मेरी समझ में नहीं आया कि यह सब क्यों भेजा गया है। सोचा भण्डार गृह जैसे सब पड़ा रहेगा। मैंने सब सामान कोने में रखवा दिया। कई दिनों बाद स्वामीजी फिर आये। सब देखा और पूछा, 'चाय का डिब्बा इस्तेमाल करते हो या नहीं?' मैंने कहा, 'नहीं।' बाद में गुरुजी ने ऐसा फँसाया कि दूसरे दिन से चाय बनानी शुरू कर दी। दरवाजा भी बंद करने लगा। एक दिन स्वामीजी आये और बोले, 'चाय खत्म हो गई है या है?' मैंने कहा, 'रोज थोड़ी-थोड़ी बनाता हूँ।' वे बोले, 'किसके लिए बनाते हो?' मैंने कहा, 'अपने लिए बनाता हूँ।' वे

बोले, 'अरे, माधवानन्द, कृष्णानन्द आदि को भी बुला लिया करो।' मैंने सोचा, यह तो बड़ा झंझट है। कहाँ तो एक गिलास भी नहीं रखता था, अब दो आदमियों के लिए चाय बनाओ।

एक दिन जब स्वामी शिवानन्द जी को पता चला कि इस अंधे चेले के दिमाग में कुछ घुसने का नहीं है, तब उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'धन-सम्पदा, गद्दा, चाय-चीनी, सब रख सकते हो, दूसरों के लिए जरूर। जो अपनी चाय नहीं पी सकते, वे दूसरों को दे सकते हैं।' मुझसे पूछा, 'गीता पढ़ते हो?' मैंने कहा, 'हाँ, पढ़ता हूँ।' उन्होंने कहा, 'आज से तुम बिल्कुल किताब बंद कर दो। आज से तुम पैसा रखो, एक कमरे की जगह पाँच कमरे रखो। तीस गद्दे रखो। जो भी आता है उसे चाय बना कर दो। बीमार को दवाई दो।' मैंने कहा, 'ये सब बहुत अच्छा है क्या?' उन्होंने कहा, 'जब तुमको मालूम पड़ जाएगा कि ऐसा करने से दूसरों की सेवा होती है, दूसरों को सांत्वना मिलती है, तब तुम्हारा आनन्द और बढ़ जाएगा। दवाइयाँ रखो, बीमारों को दो।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा स्वामीजी, मगर इसमें झंझट बहुत होता है। आदमी फँस जाता है।' स्वामीजी बोले, 'नहीं, सेवा की महत्ता को जानना चाहो तो ऐसा ही करो। दूसरों को इसमें सुख मिलता है, उन्हें मदद मिलती है। जब तुम्हें पता चलेगा तब तुम्हारा आनन्द बढ़ जाएगा।'

इसके बाद मेरा कमरा एक अजायबघर बन गया। मेरे कमरे में दवाई, लिफाफा, टिकट, पेन्सिल व फाउन्टेन पेन की इंक तक सब कुछ मिल सकता था। कोई भी आता, कहता, 'यह चाहिए।' 'ठीक है, यह लो।' कोई आता, 'स्वामीजी, मेरे पेट में दर्द है।' 'अच्छा यह दवाई ले लो।' तब मेरे को मालूम पड़ा कि त्याग का मतलब वस्तु का त्याग नहीं होता है। अपने लिए जो काम किया जाता है, वह स्वार्थ है। त्याग का मतलब अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए काम करो। *'काम्यानां कर्मणां न्यासं'*, यही संन्यास है। ऐसे थे स्वामी शिवानन्द जी। उन्होंने अपने शिष्यों को इसी तरह सच्चा मनुष्य बनाया है। उन्हें अपने शिष्यों की एक-एक गतिविधि का ध्यान रहता था।

स्वामी शिवानन्द जी का शिष्यों के प्रति प्रेम

स्वामी सत्यम् स्वामी शिवानन्द जी की बातें बताते-बताते विभोर हो जाते हैं। उन्होंने कहा, 'अधिक क्या कहूँ, मेरे सोने और जागने तक की खबर उन्हें रहती थी। शुरू-शुरू में मैं एक नंबर का 'लेट राइजर' था, यह बात स्वामीजी

की नजर में आ गई। सुबह 3 बजे खड़ाऊँ खट्-खट् करते और दरवाजा पीट-पीट कर मुझे जगा देते। मैं जग तो जाता, पर ज्योंही वे आगे बढ़ते, मैं पूर्ववत् बिस्तर में समाधिस्थ हो जाता।

आखिर यह बात भी उन्हें मालूम हो गयी और उन्होंने मेरे कमरे में सोने के लिए, बल्कि यों कहिए कि मुझ पर चौकीदारी करने के लिए विधिवत् एक आदमी को नियुक्त कर दिया। अब मेरी कठिनाई बढ़ गई, पर संकल्प लेने पर कठिनाई क्या है? मैं सबेरे उठ जाता और उस आदमी को कुछ जरूरी काम बता कर बाहर भेज देता, ज्योंही वह आदमी आँखों से ओझल होता, दरवाजा बंद कर बिस्तर पर पड़ जाता, और अपनी सफलता पर मन ही मन प्रसन्न होता। पर स्वामीजी को यह भी पता चल गया। आखिर मुझे अपनी आदत बदलनी पड़ी और अब तो ब्रह्ममुहूर्त्त और जागरण मेरे लिए पर्यायवाची हो उठे हैं।'

स्वामी शिवानन्दजी अपने शिष्यों को सन्तान की तरह प्यार करते थे। रात को दो घण्टे रोज अखण्ड कीर्तन का कार्यक्रम रहता था। कीर्तन की महिमा समझाते हुए गुरुजी अक्सर चैतन्य महाप्रभु के बारे में बताते और उनकी बातें बताते-बताते वे विभोर हो जाते।

ललिता सहस्त्रनाम की साधना रात-रात भर चला करती, शाम को सात बजे से सुबह सात बजे तक सवा लाख जप करना पड़ता था। स्वयं स्वामीजी रातभर बैठ कर जप करवाते और करते थे।

गीता और महाभारत का पाठ कभी-कभी सुबह से शाम तक चलता। इसी क्रम में तमाम उपनिषदों की 108 आवृत्तियाँ हम लोगों ने पूरी कर लीं।

साल में दो बार सात दिनों की अखण्ड मौन साधना करायी जाती थी। दरअसल कर्म और इस प्रकार की साधना के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींच देना कठिन था।

स्वामी शिवानन्द जी का शिष्यों के प्रति स्नेह भी बहुत था। जाड़े में बादाम, किशमिश वगैरह मेवा बहुत मँगाते थे। बादाम तोड़कर गिरी निकलवाते, फिर अपने हाथ से पैकेट बनाकर सबके कमरे में रखवाते थे। पूछते, 'मेवा खाते हो न?' किसी दिन अचानक जाकर देखते भी कि खाता है या नहीं।

अहं की शल्य-क्रिया

स्वामी शिवानन्द जी जितने स्नेहशील थे, कर्त्तव्य के प्रति कठोर भी उतने ही थे। एक बार की बात है, एक बूढ़ा यात्री कहीं से घूमता-भटकता आश्रम

आ गया। भोजन के बाद थाली धोने को हुआ, तो मैं बोल उठा, 'रहने दो बाबा, रामधनी साफ कर लेगा।' भोजनालय की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी और रामधनी भोजनालय में ही सेवक के रूप में नियुक्त था। सामान्यत: रामधनी को मेरे आदेश का पालन करना था, पर उस यात्री की जूठी थाली साफ करने का प्रस्ताव सुनते ही वह हठात् बरस पड़ा, 'मैं जिस-तिस की जूठी थाली नहीं साफ करूँगा। साफ कर दीजिए मेरा हिसाब, घर चला जाऊँगा।'

उसके बर्ताव से मेरे अहम् को ठेस लगी। मैंने उसका हिसाब साफ कर दिया और आश्रम का दरवाजा दिखा कर कहा, 'अभी निकल जाओ यहाँ से।' जाने के पहले रामधनी शायद स्वामीजी से विदा लेने गया होगा, उन्होंने सारा प्रसंग सुना और कहा, 'ठीक है, सत्यम् ने तुम्हें निकाला है, मैंने तो नहीं निकाला है। आश्रम से तुम्हें जाने की जरूरत नहीं, वह चाहें तो जा सकते हैं। तुम अभी से मेरे सेवक हो, तुम्हें मेरे साथ रहना है।'

मैंने सुना तो सिर पीट लिया। कैसा भयंकर अपमान था मेरा।

दूसरे दिन प्रात:काल स्वामीजी के रातभर लिखे गये तमाम कागजों को समेट कर, उनका कमरा साफ करने के बाद, नियमित रूप से टाईप करने बैठा। कुछ एक पृष्ठों के बाद ही हठात् हाथ रुक गया। स्वामीजी ने एक पूरी कविता ही लिख डाली थी, 'ओ संन्यासी, अहंकार का त्याग कर ..., त्याग कर ...।' और मेरी आँखें कृतज्ञता से भर आईं। फिर तो मैं उनके आगे करबद्ध जा खड़ा हुआ और बोला, 'मुझसे भूल हुई, मुझे क्षमा कर दीजिए। रामधनी जहाँ भी चाहे रहे, मैं उसके साथ रहकर काम कर सकता हूँ।'

'दरअसल स्वामी शिवानन्द जी अहंकार को संन्यासी का सबसे प्रबल शत्रु मानते हैं, और अपने शिष्यों को बचा ले चलने के क्रम में जरूरत पड़ने पर एक शल्य-चिकित्सक की तरह कठोरता की सीमा छू लेते थे। सोचता हूँ, कितनी करुणापूर्ण थी वह कठोरता।'

स्वामी सत्यम् चुप हो जाते हैं। उनकी भारी हो उठी आवाज का गीलापन क्षणभर के लिए वातावरण को गीला कर जाता है। ऐसे महान् गुरु स्वामी शिवानन्द और महान् शिष्य स्वामी सत्यानन्द धन्य हैं।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं, 'श्रम भी एक साधना है। उससे संस्कारों का क्षय होता है। मन को एकाग्रता मिलती है।'

गुरु तो महान् हैं ही, पर शिष्य ..., वैभव की गोद में पला, कॉन्वेंट में शिक्षा प्राप्त की। अब शिष्य बन कर गुरु के एक-एक शब्द को जीवन में

उतारने वाला कितना महान् है! जंगल से लकड़ी, बेलपत्र और फूल लाना, सैकड़ों सीढ़ियाँ उतर कर और उतनी ही सीढ़ियाँ चढ़कर गंगाजी से 60–70 बाल्टी पानी लाना, ईंट, पत्थर, चूना, गारा ढोना; कई मील पैदल चलकर बाजार से सिर पर सब्जी ढोकर लाना। जिसने कभी घर में थाली नहीं धोयी हो, खुद गिलास में पानी लेकर नहीं पीया हो, वही बड़े-बड़े बरतन माँजे, साफ करे। लकड़ी के धुएँ से काले पड़े बरतन माँजना सहज नहीं है। इतनी मेहनत करने के बाद जो भोजन मिलता था, वह तो सिर्फ पेट में डालने वाली चीज थी। पर उसी रूखे-सूखे भोजन को अमृत समझ कर प्रेम से खाने वाले शिष्यों के लिए वह सच ही अमृत का काम करता। भात और रसम, खिचड़ी और छाछ (मठा) खाकर ये लोग दिनभर दौड़-दौड़ कर काम कर सकते थे। गंगा जी में स्नान कर पूरी रात कीर्तन कर सकते थे। पूरी रात पद्मासन में बैठकर ध्यान कर सकते थे, पूरी रात पुस्तकों का अनुवाद कर सकते थे। यह अद्भुत क्षमता गुरुजी के आशीष की विशेषता ही थी, और शिष्य का भक्ति संकल्प। शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति प्रबल होती है।

स्वामी सत्यम् जब अनुवाद करने बैठते तो रात कब आई और कब गई पता नहीं चलता था। दूसरे दिन भी लिखते ही रह जाते थे, तब गुरुजी को इनके पास आना पड़ता था। एक प्रसंग है ...

एक मोटी पुस्तक को लेकर बैठे थे। भोजन व नींद त्याग कर अविराम लिखते जा रहे थे। ऐसे समय में इनके चेहरे पर अपूर्व तेज चमकता था। माता कृष्णानन्द जी बार-बार कह रहीं थी, भोजन व विश्राम हेतु। पर इन्हें तो लिखते समय समाधि सी लग जाती थी। कृष्णानन्द जी ने देखा कि वे दूसरे दिन भी नहीं उठ रहे हैं, न भोजन, न विश्राम। उन्होंने भोजनालय में दूध देखा तो एक गिलास दूध लाकर टेबल पर रख दिया और कहा, 'आपने कल से भोजन नहीं किया है, दूध को पी लें, फिर लिखते रहें। कृपा करके इसे पी ही लें।' लिखने में बाधा पड़ने से गुस्सा आ गया, 'डोन्ट डिस्टर्ब', कह कर जोर से टेबल पर हाथ मारा तो दूध का गिलास लुढ़क गया। कृष्णानन्द जी बाहर चली गयीं। इनका चेहरा लाल हो गया, दरवाजा बंद किया, चादर से सिर बाँधा और सो गये। गुरुभाई सब परेशान हो उठे, जब स्वामी सत्यम् ने दरवाजा नहीं खोला, तब गुरुजी को बतलाया। वे तुरन्त आए और आवाज दी, स्वामी सत्यम् ने दरवाजा खोला, गुरुजी को प्रणाम किया। स्वामी शिवानन्दजी ने इनकी पीठ थपथपा कर कहा, 'ओ जी स्वामी सत्यानन्द जी, भोजन करके मेरे

पास आइए।' और भोजन कराकर अपनी कुटिया में ले गये। कुछ बातें कीं, कुछ काम बताए। स्वामी सत्यम् फिर प्रसन्न मुद्रा में अपने काम में लग गए। गुरुजी इतना ध्यान रखते व स्नेह करते थे।

शिष्यों को बीमारों के कपड़े धोने व रोगियों के पैर दबाने तक के आदेश मिलते थे। निन्दा करने वालों को नमस्कार करना होता था। अहम् की ग्रंथि से आत्मा को मुक्त करने का शायद यही उत्तम उपाय होगा।

कुष्ठ रोगी की सेवा

आश्रम में स्वामी सत्यम् की हैसियत 'आध्यात्मिक स्वयं-सेवक' जैसी ही थी। उन्होंने हमें एक अद्भुत घटना सुनायी थी–

घटना का सूत्रपात हरिद्वार से होता है। अर्द्धकुम्भ का मेला लगा हुआ था। हमारे आदरणीय गुरुभाई स्वामी चिदानन्द जी मेले में गये थे। एक दिन शौच के लिए वे हरिद्वार के पार्श्ववर्त्ती बेलवन में कुछ दूर चले गये। वहाँ देखते क्या हैं कि बेल के पेड़ के नीचे एक आदमी पड़ा कराह रहा है। कुष्ठ रोग से उसका शरीर गल रहा है, और अंग-प्रत्यंग पर मक्खियाँ भिनक रही हैं।

यह दृश्य देखकर चिदानन्द जी का हृदय भर आया, वे तुरन्त आश्रम दौड़े आये। आकर मुझसे कहा, 'सत्यम्, एक चीज देख आया हूँ, उसे जल्दी आश्रम ले आना है। एक बड़ा बोरा ले लो और झटपट हमारे साथ चलो।' उनकी व्यग्रता ने कुछ पूछने, समझने का अवसर ही न दिया, और हम लोग अपनी सेवा-साधना के उस इष्ट देवता को बोरे में लपेट कर आश्रम ले आये। पता चला, पहले वह एकदम स्वस्थ था, भला-चंगा था। कुंभ-स्नान करते ही हठात् कुष्ठ रोग ने धर दबोचा। कुंभ-स्नान और कुष्ठ के बीच हम दोनों की बुद्धि कुछ सम्बन्ध नहीं जोड़ पा रही थी। पर उससे बड़ी समस्या हमारी बुद्धि के सामने यह थी कि उसकी चिकित्सा की व्यवस्था कैसे हो? दोनों गुरु भाइयों ने मिल कर अनुमान से हिसाब लगाना शुरू किया तो अनुमानित व्यय लगभग चार हजार की राशि तक जा पहुँचा। अब भला इतनी बड़ी राशि आये तो कहाँ से?

तभी खड़ाऊँ की खट्-खट् सुनाई पड़ी, और स्वामी शिवानन्दजी सामने आ खड़े हुए। हँसते हुए बोले, 'ठीक है, ठीक है, सेवा करो, सेवा करो,' और आगे बढ़ गये।

अब तक हम लोगों ने जो कुछ किया था, उनसे छिपा कर किया था। पर लगा उनसे छिपा कर कुछ भी कर लेना असंभव था। हार कर हम लोग अपनी

समस्या लेकर उनके पास जा पहुँचे, और बात ही बात में उन्होंने चार हजार रुपये रख दिये। जैसे रुपये लेकर तैयार बैठे हों।

अब शुरू हो गयी सेवा की साधना। मैंने और चिदानन्द जी ने आपस में काम बाँट लिया। पर 'देवता' गाली से नीचे बात ही नहीं करता। किसी काम में देर हुई नहीं कि फूल झरने लगते, 'मैं आराम से बेल के नीचे पड़ा था। ये साले मुझे आश्रम उठा ले आये। क्या जरूरत थी यहाँ ले आने की?'

एक दिन चिदानन्द जी देवता की देह पोंछ कर दवा लगा रहे थे। इसी क्रम में कहीं पर जरा-सा दबाव पड़ गया। और भले आदमी ने एक भद्दी सी गाली देते हुए उनके मुँह पर थूक दिया। क्षमा माँगते हुए चिदानन्द जी बोल पड़े, 'क्षमा कीजिए भगवन्! भूल हो गयी, अब फिर ऐसा नहीं होगा।' और देवता उबल पड़ा, 'साला तमीज नहीं तो मुझे हाथ क्यों लगाता है।'

एक दिन मैं उसकी दाढ़ी बना रहा था। अनभ्यस्त हाथ जरा हिल गया और हल्का-सा लहू निकल आया। उसने तुरन्त मेरे गाल पर चाँटा रसीद कर दिया, और गालियों की झड़ी लगा दी। मैं झल्ला उठा, चिदानन्द जी के पास जाकर बोला, 'आप संभालिये अपने देवता को, मैं बाज आया ऐसी सेवा से।'

पर सेवा होती रही। वर्षों की नियमित और विधिवत् चिकित्सा से भी जिस आदमी का चंगा हो सकना कठिन था, वह दो महीने में ही स्वस्थ होकर एक दिन हठात् जाने कहाँ चला गया।

गायब ही हो गया। तब से फिर किसी ने उसे नहीं देखा। पर जाते-जाते वह बोल गया, 'इस आश्रम में सब साले चोर हैं। बस, एक शिवानन्द सच्चा साधु है, और दूसरा चिदानन्द है। थोड़ा-थोड़ा सत्यानन्द भी है। मैंने सब सालों को देख लिया।' आश्चर्य कि वह एक भी चीज अपने साथ नहीं ले गया। और गया तो ऐसे गया कि फिर कभी उसकी आहट तक न मिली। पता नहीं कौन था वह!

हमने कहा, यह तो बड़ी दिलचस्प घटना है। हमें तो लगता है, स्वामी शिवानन्द जी ही सम्पूर्ण नाटक के सूत्रधार थे। स्वामी सत्यम् बोले, 'कुछ भी असंभव नहीं।'

हमने कहा, 'उनका हठात् आकर सेवा करो, सेवा करो कहना और अज्ञात कुल-शील वाले व्यक्ति के लिए चार हजार की रकम निकाल कर दे डालना, अनुमान को पुष्ट ही करता है।'

स्वामी सत्यम् ने कहा, 'उस समय तक स्वामी शिवानन्द जी उन ऊँचाइयों तक पहुँच चुके थे, जहाँ देश-काल की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। किसी

अज्ञात व्यक्ति की गोपन-से-गोपन कथा भी उनके लिए खुली हुई किताब थी। रही बात रुपये की, तो उनमें सत् पात्र की सेवा के सुख के साथ संभव है अपने शिष्यों की परीक्षा का भी भाव सम्मिलित रहा हो।’

आज्ञा-उल्लंघन का परिणाम

स्वामी सत्यम् बोले–एक और रोचक प्रसंग सुनिये ...

हरिद्वार में अर्द्धकुंभ का मेला लगा हुआ था। लोग आ-जा रहे थे। सोचा जरा मैं भी हो आऊँ। पर गुरुजी ने आदेश दिया–‘सत्यम्, कल पूजा है और प्रसाद तैयार करने का दायित्व तुम्हारा है। तुम मेला देखने नहीं जा सकोगे।’ पर मेरे अन्दर जैसे कोई शिशु मचल उठा, ‘अवश्य जाऊँगा। अपना दायित्व पूरा करके जाऊँगा, और क्या?’

आधी रात से काम में जुट पड़ा। सुबह तक प्रसाद तैयार। और आत्माराम (हम) कुंभ के मेले में ...

हठात् भीड़ का एक रेला आया और उत्तरीय जाने कहाँ सरक गया। भीड़ इतनी थी कि पलट कर देखना मुश्किल था। किसी तरह घाट तक पहुँचा। पानी में उतरा, पर लोग वहाँ भी धँसे पड़े थे। धोती का छोर किसी के पैर के नीचे आ गया। जब तक सम्हलूँ या धोती सम्हालूँ स्नानार्थियों का एक जोर का रेला आया और धोती भी साफ ...। द्रौपदी का चीर हरण याद हो आया।

अब हाल ये है कि पानी में निर्वस्त्र खड़ा हूँ और अपने हाल पर रोना आ रहा है। गुरु की वर्जना याद आ रही है। पर कोई सूरत नजर नहीं आती ...। हठात् इधर-उधर देखकर एक छलांग लगाई, और दौड़ कर पैरों और घुटनों से अपनी लाज ढकने की कातर चेष्टा करता हुआ एक पेड़ के नीचे आ बैठा। शायद उस पेड़ के नीचे किसी यात्री ने लिट्टी बनाई थी। उसकी राख (छाई) काम आ गई, सारे शरीर में झटपट राख मल कर आँखें मूंद लीं और ध्यान नहीं, ध्यान का अभिनय किया। मन में सोच रहा था, यहाँ इतने नागा साधु हैं, एक और ...।

तीर्थ यात्री ‘सिद्धनागा’ समझकर मेरे आगे पैसे व पकवान डालने लगे। अम्बार लग गया, प्रहर पर प्रहर बीत गए, पर कोई वस्त्र दाता नहीं आया। लगा कोई सामने खड़ा है, आँखें खोलीं तो एक परिचित व्यक्ति पर दृष्टि जा पड़ी। उसने मुझे पहचाना तो विस्मित रह गया। मैंने कहा, ‘अभी बात

करने का समय नहीं है, जल्दी से वस्त्र दो और मेरा त्राण करो, सारी बातें बाद में बताऊँगा।'

आश्रम लौटा तो स्वामी शिवानन्द जी प्रवेश द्वार पर खड़े थे, शायद मेरी ही प्रतीक्षा थी उन्हें। देखते ही बोले, 'कहो सत्यम्, क्या हाल है? वस्त्रं देहिम् ...।'

वे हँस रहे थे और मैं उनके चरणों में पड़ा कह रहा था, 'आपकी आज्ञा नहीं मानने का फल मुझे मिल गया। अब आज क्षमा कर दीजिए, फिर ऐसी भूल नहीं होगी।' निष्कर्ष यह कि अपने शिष्य पर हर पल, हर क्षण उनकी जाग्रत दृष्टि का पहरा था। अपने गुरु जी व अपने पूर्व आश्रम की बातें बताते समय स्वामी सत्यम् भाव विभोर हो उठते हैं।

शिवानन्द दिग्विजय

1950 में 9 सितम्बर से 8 नवम्बर तक भू-मण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्दजी ने हिमालय से लंका तक की धर्म-यात्रा दूसरी बार की। यह यात्रा 9 सितम्बर 1950 से शुरू होकर 8 नवम्बर तक पूरी हुई थी। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने संदेश दिए और जनता को धर्म तथा आत्मा की ओर आकृष्ट किया था। उनके साथ उनकी शिष्य मण्डली गयी थी, उनमें स्वामी सत्यानन्द जी भी थे।

स्वामी सत्यम् ने इस यात्रा के एक-एक मिनट का पूर्ण विवरण लिख कर एक पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' के नाम से तैयार की। उस पुस्तक में कब कहाँ गए, किससे गए, कहाँ क्या प्रोग्राम हुआ; कैसा स्वागत-सत्कार हुआ, कहाँ मान पत्र, अभिनन्दन पत्र मिला, कहाँ वाहन से गये, कहाँ कैसा मान-सम्मान हुआ, सब कुछ है। स्वामी ब्रह्मानन्द जी लिखते हैं–'शिवानन्द दिग्विजय' पुस्तक नि:संदेह पाँचवाँ वेद है।

प्रकाशक का कहना है, 'यशस्वी लेखक स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की कृपा के आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने भविष्य के मानव के लिए धर्म-चक्र-संस्थापक की ऐतिहासिक सत्यता को अमिट बना दिया है।'

इसके पहले स्वामी सत्यानन्द ने 'चैतन्य ज्योति' पुस्तक लिख कर सबको चकित कर दिया था। यह उनकी दूसरी मंजुल कृति थी।

प्रशंसकों के उद्गार

'गुरु-गीता' रूपी 'चैतन्य ज्योति' और 'शिवानन्द दिग्विजय' के रचयिता स्वामी सत्यानन्द के बारे में स्वामी रामानन्द लिखते हैं, 'सन् 1943 अप्रैल की

19 तारीख को जैसे शरद ऋतु में किसी दीर्घवाही सरिता में एक छोटी निर्झरणी आ मिली हो, वैसे ही हमारे पल्लव जी, स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में आकर नतमस्तक हुए थे। स्वामीजी के प्रगाढ़ आलिंगन से उनका जीवन धन्य (सार्थक) हो गया। पल्लव जी के संभावनाओं से पूर्ण व्यक्तित्व को देखकर स्वामीजी समझ गये थे कि वे अपने दिव्य अध्यात्म संदेश को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने के लिए एक देवदूत पा चुके हैं। स्वामीजी ने 'धर्मेन्द्र' को अपने शिष्य समुदाय में सर्वोच्च आसनासीन किया। श्रीकृष्ण और अर्जुन या नर और नारायण की उपमा भी अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती जब पल्लव जी के अपौरुषेय कार्य-कलाप का चिन्तन करते हैं। उनके हृदय में पूर्वार्जित सुसंस्कारों का अक्षय स्रोत था।

युवक कवि का 1945 में शिवरात्रि पर्व पर 'सत्य चैतन्य' नामकरण हुआ। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर 'ब्रह्मचारी' ने सत्य निष्ठा को अंगीकार किया। हमारे सत्य चैतन्य ने लौह-संकला पायी। अपूर्व बल और पौरुष का आदर्श प्रकट किया। हठयोग की विविध क्रियाओं में परिनिष्णात सिद्ध हुए। लगन तो अभूतपूर्व थी आपमें। दिनभर योग-पाठों के मनन-अनुशीलन और सक्रिय अभ्यास में लीन रहते थे। सत्यम् का व्यक्तित्व आश्रम तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने अपनी कला का प्रचुर प्रमाण प्रवचनों द्वारा बन्धु-बान्धवों को दे दिया था। आश्रम में तमिल भाषा भाषियों का आधिक्य था। श्री सत्यम् ने सबकी जिह्वा पर हिन्दी को स्थापित कर दिया, और स्वयं उनकी भाषा पर भी अधिकार प्राप्त किया। वे तो अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में अर्पित कर चुके थे। अत: वे जो भी करते, वह केवल यंत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन होता।

इनके कई रचना संग्रह पूर्वाश्रम में ही प्रकाशित हो चुके थे, जिसे इन्होंने गुरुजी को भेंट भी किया था। परन्तु यहाँ आते ही कविता भूल बैठे और गुरुजी का बृहत् और एक प्राकृतिक मानचित्र खींचना चाहा, जो सर्वथा अप्रतिम और अप्रमेय हो। वह अभिनव और अभिराम ग्रंथ रत्न 'चैतन्य-ज्योति' उसी योजना का मूर्त्त रूप था, जिसे औपन्यासिक अभिव्यंजना से आपने प्रणीत किया है। इस ग्रंथ के निर्माण के लिए गुरुदेव के प्रति अनेकानेक अनुसंधान किये थे। अनगणित पुस्तकें छान डाली थीं और प्रमाणिक क्रमनाओं के लिए व्यक्ति-व्यक्ति से पूछताछ की थी। जिन्होंने भी उस पुस्तक को पढ़ा होगा, समझ गए होंगे कि ग्रन्थकार की भाषा शैली कितनी सशक्त है, छायावाद और रहस्यवाद से अपने ग्रंथ को अछूता रख अभिधात्मक वास्तविकता की धरती पर उतारने

का प्रयास किया है। फिर भी उसकी झाँकी आ ही गई है। प्रकृति के पालने पर झूलने वाला कवि उन्मुक्त कल्पनाओं को पराभूत कर ठोस अध्यात्म भाव की धरती पर उतर जाए, यह भी एक पहेली है, चमत्कार ही है।

1948 में जब योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय का जन्म हुआ, तब आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए और अपनी बहुमुखी योग्यता से अपने तरुण कन्धों पर पूर्ण कार्यभार संभाल लिया। 1950 में गुरुदेव के साथ हिमालय से सिंहल द्वीप पर्यन्त यात्रा की और स्वामीजी के प्रवचनों को लेखनीबद्ध किया। स्वामीजी के मुखारविंद से विस्फुरित पराग रेणु को सम्पुटित करने का श्रेय इन्हीं अध्यात्म रत्न सत्यानन्द को है।

आज भगवन्नाम के सदृश स्वामीजी का नाम अधरों पर है और गुरुजी के सदृश शिष्य का यश उनके परिचित पाठकों के अन्तरतम में है। 'चैतन्य ज्योति' और 'शिवानन्द दिग्विजय' के लेखन का उत्तरदायित्व कोई ऐसा ही अनातुर, आत्मसंयमी और सुधी लेखक ही उठा सकता है। कहीं शब्दालंकार की गुम्फित है, तो कहीं अर्थालंकार के भँवर हैं, अनुप्रासों के ऐसे बन्दनवार लगे हैं कि पाठक पढ़ते-पढ़ते रम जाते हैं। ऐसा लगता है सरस्वती स्वयं ही अलौकिक शृंगार कर उनकी जिह्वा पर विराजमान हैं। आखिर अलमोड़ा के कवि हैं, जिनका लालन-पालन प्रकृति के पालने में हुआ है। भाषा के आरोह-अवरोह में पाठक, पाठ्य और पाठन की त्रिपुटी लय हो जाती है।

एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पुस्तक की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की। संस्कृत वाङ्मय, पौराणिक भाषा का माधुर्य, काव्यमयी धारा-प्रवाह का लालित्य तथा अन्तर्कथाओं, पौराणिक उद्धरणों का एक वृहत् कोष, सब एक ही ग्रंथ में पा लेते हैं। दिव्य जीवन के कर्णधार एक यशस्वी लेखक द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ स्वाध्याय की वस्तु है। 'आरोग्य जीवन', 'योग वेदान्त' के सम्पादक के अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप ही सभी घर बैठे स्वामीजी के उपदेशों को पा रहे थे। कई पुस्तकों के मूल से भाष्य करने का श्रेय भी स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को है।

श्री अश्विनी कुमार पंत (आमी) 1950 में बनारस यूनीवर्सिटी में थे। वे लिखते हैं, सात वर्ष पूर्व जो बालक धर्मेन्द्र एकाएक अलमोड़ा छोड़कर कहीं चला गया था, वही आज ऋषिकेश का तपस्वी 'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती' है। जिस बालक ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से एक छोटी सी पर्वतीय नगरी

को चकित कर दिया था, वह आज सारे भारतवर्ष को अपने अनवरत परिश्रम द्वारा पूज्य स्वामी शिवानन्द जी का पवित्र संदेश दे रहा है। यह मेरा अहोभाग्य है कि अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष मुझे इस महापुरुष के सत्संग में व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्री के.सी.जोशी (नानू) लिखते हैं, 'मेरे मित्र धर्मेन्द्र का समाचार सात वर्ष तक नहीं मिला, कितनों से पूछा, पर वे कुछ पता न दे सके। सन् 1950 में मैं अलमोड़ा में ही था। इलाहाबाद से मेरे मित्र अश्विनी कुमार पंत का पत्र मुझे मिला कि हमारे धर्मेन्द्र स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य हो गये हैं, और वे सितम्बर में कलकत्ता आने वाले हैं। मैंने कलकत्ते में उनके दर्शन किये। वे वास्तव में एक महान् पुरुष हो गये हैं। उनकी तेजपूर्ण दिव्य-मूर्ति को देखकर मेरे नेत्र गौरव से भर आये। उनके उस तेजस्वी स्वरूप को देखकर मुझे सचमुच आह्लाद का अनुभव हुआ। मेरे जैसा मनुष्य भी कितना भाग्यशाली है जिसने अपने जीवन के अनेक वर्ष उनके साथ व्यतीत किये हैं। वे अमर रहें। युगों-युगों तक उनका नाम-यश अमर रहे।'

1951 में 'योग वेदान्त' हिन्दी मासिक पत्रिका शुरू हुई। मिस मालती लिखती हैं, 'योग वेदान्त पत्रिका के प्रमुख संपादक होने के कारण, परम गुरु शिवानन्द जी के प्रत्येक वाक्य और आचरण को लेखनीबद्ध करने तथा अपने मौलिक और नवीनतम सत्य आदर्शों द्वारा सुषुप्त जनता में जागृति संचार करने का श्रेय स्वामी सत्यानन्द को ही है।'

स्वामी सत्यानन्द की निश्चल गुरुभक्ति इनके सद्गुणों को दिव्यतर बना रही थी। ये गुरु गुणगान में तो आत्म-विभोर से हो जाते थे। योग वेदान्त कार्यालय का कार्य जिस लगन, भावना, कर्म-निष्ठा और निपुणता से करते थे, वह इनकी उच्च कोटि की प्रशासनिक क्षमता का साक्षी है। ऐसे संन्यासी के चरणों में सब मस्तक झुकाते हैं।

प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति के प्रति स्वामी सत्यानन्द में अगाध आदर व श्रद्धा है। ये उच्च कोटि के वैज्ञानिक व संगीतज्ञ भी हैं। इन्होंने केवल आत्मिक व मानसिक विकास नहीं किया, बल्कि शारीरिक विकास में भी आश्चर्यजनक प्रगतिशील रहे हैं। इनका शरीर हल्का और योग आसनों में सिद्धहस्त होने की ओर इशारा करता है। तैराक तो प्रथम श्रेणी के हैं। इनके गुरु भाई कहते हैं, '14-15 मील तक एक ही हाथ से तैरना तो इनके लिए खेल है। भँवर की तरफ तैरने का विशेष शौक है।'

स्वामी सत्यानन्द हठ योग, राज योग, ज्ञान योग और कर्म योग के अधिकारी ज्ञाता होते हुए भी कर्म योग में सबसे अधिक श्रद्धा रखते हैं। आज भी कर्म योग इनका प्रिय प्रयोग है। कहते हैं, 'कर्म से आत्मा शुद्ध होती है। कर्म ही तो जीवन है।' स्वयं अथक परिश्रमी हैं। स्वामी सत्यानन्द पूर्ण लगन से काम करते हैं, दूसरों से काम लेने की भी अपूर्व कला इनमें है। हमने तो कभी इनके आराम और काम में कोई अन्तर नहीं देखा।

स्वामी सत्यानन्द के विचार से हमारे भारत के पतन का मुख्य कारण लोक-धर्म को अन्ध-परम्पराबद्ध करना है, और जब तक निरर्थक रूढ़ियों को मिटा कर भौतिकता तथा अज्ञान से छुटकारा नहीं पाया जाता, तब तक विकास तो क्या, रंच मात्र उन्नति की आशा करना ही व्यर्थ है। स्वामी सत्यानन्द के शब्दों में, 'वास्तविक धर्म मनुष्य को पूर्ण आत्म-अनुशासन में ढाल देता है। ऐसा मनुष्य किसी भी बाह्य शक्ति पर निर्भर नहीं रहता। वह तो अन्तर्मुखी होकर अपने दुर्गुणों का नाश कर और सद्गुणों को विकसित कर पीड़ित मानवता की सेवा में अनवरत तत्पर होता है और स्वयं भी सिद्धि की ओर अग्रसर होता है।'

सहृदयता, त्याग, करुणा, उदारता, सत्य-प्रेम, शिशु-सारल्य, विनम्रता, गंभीरता और दूरदर्शिता स्वामी सत्यानन्द में भरे हुए हैं। वास्तव में इनके आदर्श और सिद्धान्त अनुकरणीय हैं। आज कराहती और भटकती मानवता को धर्म के इसी स्वरूप की आवश्यकता है और आवश्यकता है स्वामी सत्यानन्द जैसे संत की, जो धर्म की सही व्याख्या कर सके।

प्रेस कर्मचारी श्री राधेलाल शर्मा ने स्वामी सत्यानन्द के बारे में बताया था, 'स्वामी सत्यानन्द संन्यासी ही नहीं, एक निष्काम कर्मयोगी भी हैं। यद्यपि आप के सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का ज्ञानाग्नि द्वारा नाश कर दिया गया है, तथापि 'लोक-संग्रह' के लिए कर्म करने में आप सतत् संलग्न हैं।

गुरुदेव महाराज के 'ज्ञान-यज्ञ' का संचालन इनके द्वारा किस प्रकार हो रहा है, वह भारतवासियों को, विशेषकर हिन्दी संसार को तो भलीभाँति ज्ञात है। स्वामी शिवानन्द की रचनाएँ अँग्रेजी भाषा में होती थीं। स्वामी सत्यम् ने उनका हिन्दी में भाषान्तर करके हिन्दी भाषी जनता का बड़ा उपकार किया है। हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी के साथ-साथ स्वामी सत्यानन्द को अनेक भारतीय भाषाओं पर भी वैसा ही अधिकार है। हो भी क्यों न? सरस्वती आपकी वाणी में सतत् विहार जो करती हैं। आपकी अमृतमयी वाणी को जिसने एक बार भी श्रवण किया हो, उसका अज्ञान समूल नष्ट हुए बिना नहीं रहता। कोई व्यक्ति

कैसी भी शंका या समस्या लेकर इनके पास जाए, उसकी शंका का नाश होता ही है, उसकी समस्या का समाधान होता ही है।

आप तार्किक भी हैं। किन्तु आपके तर्क वास्तविक होते हैं। आप कई घण्टों तक लगातार धाराप्रवाह प्रवचन दे सकते हैं। प्रवचन के क्रम में अनेक ग्रंथों के प्रमाण तो इतनी सहजता से उद्धृत करते हैं, मानो शास्त्र इनके लिए हस्तामलकवत हैं। उपनिषद् और गीता तो आपके दैनिक जीवन के अंग हैं।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' इस युवक संन्यासी का जीवन मंत्र है। किसी भी सत्कार्य की पूर्ति में जिस समय ये संलग्न हो जाते हैं, उस समय लगता अन्य कोई काम है ही नहीं। खान-पान की भी इन्हें चिन्ता नहीं रहती, सुधि रहती है तो केवल गुरुदेव के ज्ञान यज्ञ की। भगवान ही जानते हैं कि इस युवक संन्यासी ने कब और कहाँ प्रेस के काम में कुशलता प्राप्त की। आश्चर्य है मुझे इसी काम को करते हुए 25 वर्ष बीत गये, अभी भी मैं कोई नया काम या नयी बात इनसे सीखता रहता हूँ।'

श्री शर्मा जी ने आगे बतलाया–

एक बार श्री गुरुदेव ने एक रात में ही एक पुस्तक आरंभ कर समाप्त करने का विचार किया, और इन्हीं महारथी को आदेश दिया। अपने गुरु की प्रतिज्ञा पूरी करना इसी कर्म योगी का ही कौशल था; क्योंकि इतने कम समय में कठिन ही नहीं, असंभव भी था। परन्तु धन्य है इस वीर कर्मयोगी स्वामी सत्यानन्द की कार्य-कुशलता। प्रेस कर्मचारियों के प्रति बड़ा सहृदय व्यवहार रहता था। उन लोगों ने जी-जान लगा दी। 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' की विचारधारा ने असंभव को भी संभव कर दिया।

अपने योग्य शिष्य की कर्मठता पर गुरुदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्वामी सत्यानन्द को आशीर्वाद सहित 'प्रेस-स्तंभ' की उपाधि से सुशोभित किया। मुझे ही क्यों, सभी को इनकी कार्य-कुशलता तथा बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य होता है। व्यास स्वरूप स्वामी शिवानन्द की ग्रंथ रचना और सत्यानन्द स्वरूप गणेश द्वारा उनका प्रकाशन। लगता था महाभारत के प्रणेता व्यास को जैसे गणेश के समान आशुलेखक मिले थे, वैसे ही शिवानन्द जी को स्वामी सत्यानन्द मिल गये थे। न गुरु जी रचना में थकते और न शिष्य सत्यम् उनके प्रकाशन में थकते हैं।

इतनी अल्प अवस्था में, इस युवक संन्यासी में इस प्रकार दिव्य गुणों का विकास आश्चर्यजनक था। निःसंदेह गीता के अनुसार यह पूर्व-योगी-पुरुष

लोकहित करते हुए पृथ्वी तल में स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करते हैं, ज्ञान यज्ञ करते हैं। गुरु का ज्ञान, शिष्य की ग्रहणशीलता धन्य है।

स्वामी रामानन्द के शब्दों में–

आज मानव की धरा पर, देवता देते चरण।
आज धरती अंक में, विश्वेश का करती वरण ॥
आज भूला है दिवस भी, बावरी री सर्वरी।
कूंज ले जी खोल कर, तू कूंज ले कादम्बरी ॥

सब जग जीता, पर जब तक गुरु का प्रेम न जीता, कुछ न जीता। अपना वैभव, ज्ञान, अभिमान, गौरव, सब कुछ भूल कर जो गुरु के पास जाता है, वही सब कुछ पा सकता है। यही हैं जन्म-जन्म के संस्कार। एक पत्थर (रत्न) गुरु तक पहुँचने में समर्थ हुआ। गुरु ने देखा, समझा और फिर उसे तराश कर बहुमूल्य हीरा बना दिया। आज वह हीरा मानवता का प्राणाधिक प्रिय धन है, ऐश्वर्य है।

योग वेदान्त फॉरेस्ट युनिवर्सिटी के कम्पोजिटर श्री सेवकराम ने बताया था, "स्वामी सत्यानन्द के विषय में जितना भी कहा जाए, उतना थोड़ा ही रहेगा। जब प्रेस का श्रीगणेश हुआ, उसी समय स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द को प्रेस-मैनेजर नियुक्त किया था। स्वामी सत्यम् ने तन-मन से प्रेस का कार्य निभाया, इनमें सबसे बड़ी बात तो यह है कि निष्पक्ष, समद्रष्टा और उदार व्यक्ति हैं। स्वामी सत्यम् की चंद दिनों में ही प्रकाशन कार्य में इतनी पैठ हो गयी जितनी साधारण व्यक्ति की दस-पंद्रह वर्ष में भी नहीं हो सकती। स्वामी सत्यानन्द संन्यास दीक्षा के बाद शास्त्रानुकूल एक वर्ष परिव्राजक जीवन-यापन करने गुरुदेव के आदेश से 'रामाश्रम-ऋषिकेश' चले गये थे। प्रेस कार्य के लिए आश्रम के ही एक दूसरे स्वामी आये। उन्होंने मन लगाकर प्रेस का कार्य करना चाहा, मगर काम संतोषजनक न हो सका। इस जगह पर कई स्वामी लोगों ने काम किया। फिर वेतन पर एक मैनेजर रखा गया। फिर भी काम संतोषजनक नहीं चल सका। तब गुरुदेव ने छः माह बाद ही स्वामी सत्यम् को वापस बुला लिया, और पुनः उन्हें कार्य-भार सौंप दिया। स्वामी सत्यम् 'हिन्दी-संस्कृत' विभाग के अध्यक्ष तथा योग वेदान्त मासिक पत्रिका के सम्पादक थे ही, साथ ही प्रेस मैनेजर का पद भार भी इन्हें ही संभालना पड़ा। इतना काम होने पर भी आप कभी थके नहीं मालूम पड़ते। आपमें जैसे अजस्र शक्ति का भण्डार हो।"

आनन्द कुटीर के कण-कण में स्वामी सत्यम् छाये हैं। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सभी इन्हें शिवानन्द प्रतिध्वनि कहते। ऋषिकेश में इन्होंने यथार्थ में ऋषि जीवन बिताया था। आश्रम से 2 मील दूर शहर में हर काम के लिए जाना पड़ता था। आश्रम में गाड़ी-मोटर तो क्या, साइकिल भी नहीं थी। खाद्यान तो खैर जीप वगैरह में आ जाता था, पर दैनिक उपयोग के अन्य सामान और सब्जी आदि तो सिर पर ही लाद कर लानी पड़ती थी।

ऋषिकेश में आश्रम व साधु-संतों की कमी नहीं है। काली कमली वाले, नेपाली क्षेत्र तथा और भी कई अन्न क्षेत्र हैं, जहाँ साधु-महात्मा लोगों को भोजन मिलता है। गृह त्यागियों का काम इसी तरह भोजन प्राप्त कर चलता है। शिवानन्द आश्रम में भी 1950 से लंगर चलने लगा। गुरुदेव का आदेश था, जो भी भोजन के समय आए, उन्हें भोजन देना है। कभी-कभी तो 200–300 तक लोग आ जाते थे। परन्तु आदमी क्या, कुत्ता, बिल्ली, बंदर तक को स्वामीजी स्वयं भोजन देते थे। भोजन तैयार होते ही एक बड़ी थाली में 20–22 कटोरियों में भोजन भर कर गुरुदेव के पास लाया जाता था। सब अतिथि इन्तजार करते होते, गुरुदेव के 'आओ भगवन्' कहते ही सब पास आ जाते, उन्हें एक-एक कटोरी देते, वे सब उनके हाथ से लेकर बैठकर खाते, और उछलते-कूदते चले जाते। बाद में शिष्य सब कटोरी उठा कर ले आते थे। शिवानन्द जी के कर्मयोगी शिष्यों को लोग कितना आदर देते थे, जब ये शिष्य बाजार या दुकान जाते तो लोग इनके पैर छूते। इनका संकोच देख कर कहते, 'हम आप को प्रणाम करते हैं कि जब आप गुरुजी के पैर छुओगे तो हमारा प्रणाम भी उन तक पहुँचेगा।'

स्वामी शिवानन्द पुरातन संस्कृति को मानते थे। वैसे उन्होंने बहुत परिवर्तन भी किये। परन्तु उन्हें लिखना और सेवा-कार्य विशेष प्रिय था। संन्यास के मामले में नियम था, चतुर्थ आश्रम संन्यास जीवन है। उनके आश्रम में अधेड़ व बूढ़े संन्यासी ही थे। आश्रम बनने के बाद कम उम्र के जो लड़के आते, उन्हें ब्रह्मचारी के रूप में रखते थे। चालीस वर्ष से ऊपर आयु वालों को ही संन्यास देते थे। आश्रम में शाम को 5 बजे के बाद कोई महिला नहीं रह सकती थी। चाहे वह अतिथि हो या सत्संग में आयी हो। बच्ची हो या बूढ़ी हो। आश्रम में रहने का नियम नहीं था।

1940 के बाद परिवर्तन का समय आ गया। कुछ ऐसे युवक थे, जो वैराग्य लेकर ही दुनिया में आये थे। इसी प्रकार के 8–10 युवक वहाँ आ

पहुँचे थे। गुरुदेव का कार्यक्षेत्र बढ़ने लगा था। काम फैलता गया और ये युवक आश्रम के उन कार्यों में जी जान से भिड़ते गये। रसोई का काम, पानी भरना, बरतन मांजना, जंगल से लकड़ी लाना, लकड़ी काटना, फूल-बेल-पत्र लाना, पत्थर तोड़ना, ईंट-गारा ढोना, मकान बनाना, सब कुछ करने लगे। जैसे-जैसे सुविधाएँ बढ़ती गयीं, सभी प्रकार के सामान आते गये। पहले पुस्तक-पत्रिका छपवाने के लिए दिल्ली या लाहौर जाना पड़ता था, वहाँ रह कर प्रूफ देखना, छपाई करानी पड़ती थी। 20–25 वर्ष के 8–10 युवक कुछ आगे-पीछे वहाँ पहुँचे थे। सबके सब कट्टर वैरागी, दिन-रात काम करने वाले थे। हर काम में होड़ सी लगी रहती थी। दिनभर कठिन परिश्रम के बाद, ये सब रातभर उपनिषद्, वेद मंत्रों का पाठ करते थे। जो भी मिलता प्रसन्नता से खाते। न चौकी, न मच्छरदानी, पर नींद भर सोते थे। चाहे रातभर साँप-बिच्छू ही चारों तरफ घूमते रहें, इन पर तो गुरु का रक्षा-कवच था। लगता था मानो वैराग्य का रूप लेकर देवतागण ही आए हों। सभी श्री मंत घरों के लड़के थे। सभी भरे-पूरे घर से आये थे। सभी शिक्षित थे, ग्रेजुएट थे। परन्तु सभी संन्यास के इच्छुक थे।

गुरुजी संन्यास देने के पक्ष में नहीं थे। इन लोगों का तर्क था, आप बूढ़े लोगों को संन्यास देते हैं, जो दुनिया से रिटायर होकर, हार कर आने वाले हैं। दुनिया के लिए कुछ कर भी तो नहीं सकते। अपना ही भला करते हैं। गुरु आश्रम में, गंगा किनारे, मंत्र जपते-जपते हरि ॐ हो जाते हैं। हम लोगों को संन्यास दीजिए, तो हम कुछ करके दिखायेंगे। आप का संदेश लेकर हम दुनिया के कोने-कोने में जायेंगे। आपकी आज्ञा से पहाड़ को चूर्ण कर सकते हैं, नदी की धारा बदल सकते हैं। आँधी-तूफान, हवा-पानी में कहीं भी जा सकते हैं। आकाश-पाताल एक कर सकते हैं। आप कहते हैं, 'आज विश्व को जंगल के संत की आवश्यकता नहीं है, उन्हें एकान्त गुफा को छोड़ कर नगर-नगर और डगर-डगर घूमना होगा, तभी दुनिया का भला होगा। हम लोग दुनिया में बहुत कुछ करना चाहते हैं। पर जब तक आपका आशीर्वाद नहीं मिलेगा, हम क्या कर सकते हैं?'

बच्चों की जिद ने गुरुजी को सोचने के लिए बाध्य कर दिया। उन्होंने इनकी आँखों में जगत् के उज्ज्वल भविष्य की रेखा देखी। फिर तो इन बच्चों को संन्यास की अग्नि में तपा कर दुनिया के सामने आदर्श स्थापित किया।

गुरुदेव ने नव संन्यासियों से कहा, "भगवान सर्वव्यापक हैं। भगवान तुम्हारे अन्तरतम में वास करते हैं। वे ही प्रत्येक प्राणी में निवास करते हैं। तुम्हारा

अस्तित्व ही भगवान का रूप है। उस प्रणम्य देव को मेरा बारम्बार विनीत भाव से हार्दिक अभिनन्दन। प्रभु के आशीष से तुम्हें भक्तिपूर्ण हृदय, विशुद्ध बुद्धि, निश्चल एवं सुशान्त मन और संयत इन्द्रियाँ प्राप्त हों। मुक्त जीवात्मा की तरह ब्रह्मतेज की शुभ्र प्रस्फुटित ज्योत्सना से तेज प्राप्त कर विकीर्ण करो। नि:स्वार्थ सेवा में अपने को संलग्न कर दो। तुम शान्ति, प्रेम और एक्य की साक्षात् मूर्ति बनोगे। तुम विचार, वाणी और कर्म के उद्‌गाता बनोगे। तुम्हारे अद्भुत विचार, वाणी और कर्म से विश्व में सुख, शान्ति और समृद्धि का प्राचुर्य होगा। जीवन-मुक्त योगी एवं ऋषि-मुनि की भाँति तुम लोग विश्व में अपनी षोडश कलाओं से चमकोगे। विश्व में शान्ति परिव्याप्त रहे और प्रत्येक मनुष्य प्रेम पल्लवित बने। हृदय में प्रेम की सरिता का उद्वेग हो। तुम्हें सुख, शान्ति, समृद्धि और अखण्ड आनन्द प्राप्त हो। तुम चिरायु होगे। प्रभु की असीम कृपा तुम पर सदा रहे। प्रभु का आशीर्वाद तुम लोगों को प्राप्त हो।"

संन्यास प्राप्त कर ये सभी बाल-रवि-रूप संन्यासी धन्य हो गए, या संन्यास देकर गुरुजी धन्य हो गए, कहना कठिन है। गुरु-शिष्य दोनों ही महान्, मानो मानव रूप में सभी देव ही हों। गुरु जी भगवान शंकराचार्य जैसे सब शिष्यों को वेद, पुराण, उपनिषद्, गीता, भागवत, मानव-धर्म-कर्म, योग के सभी सूत्र समझाते। शिष्य भी एक-एक शब्द को हृदयंगम करते, एक-एक सूत्र को जीवन में उतारते। इन लोगों ने सब कुछ भूल कर अपने को गुरु में ही लीन कर दिया। जैसे गुरुजी के चारों ओर सब शिष्य उनकी ज्योति-किरण बन कर विकीर्ण हो रहे हों। आश्रम का पूरा काम, बड़े से बड़ा हो या छोटे से छोटा, इनके लिए बराबर था। नाम भी बढ़ा, काम भी बढ़ा।

पुस्तकें छपाने ये संन्यासी बाहर जाते, वहाँ रहकर पूरा काम कर लौटते। हिन्दी पुस्तकों के लिए स्वामी सत्यानन्द को ही जाना पड़ता था। सन् 1947 की बात है, स्वामी सत्यम् पुस्तक छपवाने लाहौर गये थे। प्रेस में ही रहते थे, और पुस्तक के काम में व्यस्त रहते थे। उसी समय हिन्दू-मुसलमान का दंगा हो गया। और बहुत बढ़ भी गया। सभी भाग गये, प्रेस में ताला लग गया। स्वामी सत्यम् अन्दर रह गये। ऊपर कमरे में पेपर की कतरन भरी थी। लोगों की आवाजें आतीं तो वहीं जा कर बैठते। गुरुजी को याद करते, भगवान का नाम जपते और निश्चिन्त रहते। दूसरे दिन मौका देख कर लोगों की नजर बचाकर चौकीदार अंदर आया, चाय-शक्कर दी। प्रेस में स्टोव था ही, किरोसिन था, वह भी दे गया। फिर बाहर से ताला बंद करके चला गया। इच्छा होती तो चाय

बना कर पी लेते या शक्कर ही खा लेते और जप-ध्यान में लीन रहते। एक सप्ताह बाद वहाँ मिलीटरी आई, तब स्थिति काबू में आई। स्थिति शांत होने पर चौकीदार ने उन्हें बताया, प्रेस के अंदर एक स्वामीजी हैं। तब वे लोग आकर इनसे मिले, बातें कीं और अपनी गाड़ी में सुरक्षा गार्ड साथ लेकर पहुँचवाया।

विश्व धर्म परिषद्

1953 अप्रैल में 2, 3 और 4 तारीख को स्वामी शिवानन्द जी ने 'विश्व-धर्म-परिषद्' का आयोजन किया। सभी कार्यों की जिम्मेदारी शिष्यों ने संभाली। उसमें स्वामी सत्यम् ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। लोगों ने इन्हें हर जगह, हर रूप में और हर काम करते हुए पाया। आपके द्वारा सम्पादित 'योग वेदान्त' पत्रिका का 'विश्व-धर्म-परिषद्' नामक विशेषांक आज भी अवलोकनीय है। इतने उच्च विचार के संन्यासी, कवि, आध्यात्मिक संत को पाकर सबने खुश होकर भावना व्यक्त की–इनसे हिन्दी भाषा की उन्नति होगी व ब्रह्म विद्या की विश्व में दुन्दुभी बजेगी। भगवान शंकराचार्य का युग पुनः वापस आ गया।

इस सम्मेलन में कई हजार लोग आये थे। हजारों लोग परिचित थे ही। उन लोगों ने स्वामी शिवानन्द जी से अनुरोध किया कि वे अपने शहरों में योग-शिविर, सम्मेलन व नेत्र यज्ञ करना चाहेंगे। उस समय यहाँ से स्वामी भेजने की कृपा करें। फिर लोगों ने प्रोग्राम बनाना व निमंत्रण देना शुरू किया।

आश्रम बहुत बड़ा हो गया था। भजन हॉल, मंदिर, प्रेस, पुस्तकालय, पोस्ट ऑफिस, ओषधालय, लंगर, सब कुछ आनन्द कुटीर में बन गया था। फिर भवन निर्माण का काम चलता ही रहता था। सैकड़ों पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद होकर छप भी गया था। प्रेस आने के बाद, पुस्तकें छपने में सुविधा हो गयी थी। बहुत-सी पुस्तकों का गुजराती अनुवाद हो गया था। अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद निरन्तर हो रहे थे।

विभिन्न स्थानों में शिविर-सम्मेलन

शिविर-कैम्पों में स्वामी सत्यम् का प्रोग्राम बनने लगा। स्वामी सत्यम् ने कुछ तो कॉलेज में पढ़ा ही था, गुरुजी के साथ रहकर छोटे-मोटे ऑपरेशन करने व दवा बताने का भी अनुभव हो गया था। नेत्र यज्ञ (आई-कैम्प) में गुरुजी स्वामी सत्यम् को ही भेजने लगे।

1953 अक्टूबर में पाटन नेत्र यज्ञ में गुजरात गये थे। प्रोग्राम के संयोजक शाह रतिलाल लिखते हैं–

श्री स्वामी सत्यानन्द 'पाटन नेत्र यज्ञ' के कार्यक्रम में उपस्थित हुए थे। दस दिन ठहरे थे। उनका सहवास प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला। सुबह-शाम उनके व्याख्यान होते थे। सूर्योदय के पहले वे हर रोज जंगल की तरफ घूमने जाते थे। अक्सर मैं भी उनके साथ हो लेता था। मुझे उनके सामीप्य के आनन्द के साथ ही ज्ञान-चर्चा में उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का दर्शन हुआ।

एक बार अद्वैतवाद के बारे में स्वामीजी से मेरी काफी चर्चा हो रही थी। जोरदार दलीलें देकर मैंने कहा कि अद्वैतवाद कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

स्वामीजी ने शांत, गंभीर भाव से मुझे समझाया कि मैं तो आपके पास एक सप्ताह तक हूँ। तर्क से अद्वैतवाद को प्रमाणित किया जा सकता है। परन्तु यह सब माथा-पच्ची की बात है। अद्वैतवाद का व्यावहारिक और सच्चा अर्थ तो प्रेम-भाव है। विश्व के हर एक जीव के साथ प्रेम अद्वैतवाद पैदा करता है। जड़-चेतन विश्व को अद्वैतवाद से देखना और इस प्रकार जीवन को बनाना ही तो अद्वैतवाद का संदेश है। वास्तविक तथ्य क्या है, उसकी माथा-पच्ची छोड़ो।

अद्वैतवाद का नया अर्थ सुनकर मेरे दिल में एक नया प्रकाश हुआ और मैं स्वामीजी की ओर आकृष्ट हुआ। यदि जगत् अद्वैतवाद का यह मार्ग अपना ले तो दुनिया में शान्ति और सुख बढ़ जाए।

मैं आशा करता हूँ 'अद्वैतवाद के अभिनव भास्कर' वैराग्य मूर्ति स्वामी सत्यानन्द अपने इस संदेश का प्रचार करने और सुख-शांति बढ़ाने के लिए दीर्घायु हों और क्षण-क्षण ज्ञान-तप शक्ति में आगे बढ़ते रहें।

स्वामी सत्यम् आश्रम में रहें या बाहर जाएँ, जो भी उनसे मिलता वही उनका भक्त हो जाता। जो एक बार भी उनसे मिला, वह उन्हें कभी नहीं भूल पाता था। पहले तो स्वामी शिवानन्द जी उन्हें कहीं बाहर नहीं भेजते थे। शिविर-कैम्प में जाने की इच्छा प्रकट भी करते तो टाल देते। कभी कहते, 'सत्यम्, मैं समझता हूँ बाहर का वातावरण तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है। तुम्हें काम करने का इतना नशा है कि तुम अपना सब कुछ भूल जाते हो। इसका स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।' उस समय उनकी आँखों में स्नेह की झलक दिख पड़ती थी। फिर इन्हें भी कभी-कभी भेजने लगे, पर बहुत सतर्कता से इन्हें हर बात समझाते व साथ के स्वामी को इनके प्रति सावधान रहने व भोजन-आराम का विशेष ध्यान रखने का आदेश देते। आश्रम में कुछ

अनुभवी बूढ़े स्वामी थे। उन्हें लगता कि स्वामी शिवानन्द जी को सत्यम् से बहुत मोह हो गया है। इसी से उनके बाहर जाने पर वे परेशान हो उठते हैं।

1953 नवम्बर या दिसम्बर में स्वामी सत्यम् उदयपुर गये थे। उनके बारे में श्री भैरव लाल जी लिखते हैं, 'दिव्य जीवन समिति' शाखा उदयपुर के कार्यकर्त्ताओं के प्रयास से साधना-समारोह उदयपुर में मनाया गया। इस अवसर पर मुझे श्री स्वामी सत्यानन्द के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

स्वामी सत्यानन्द की पवित्र जीवनचर्या से मेरे हृदय में एक ऐसी विचारधारा का संचार हो उठा कि किस प्रकार इस कुमार ने राजसी वैभव को त्याग कर संन्यास वेश धारण कर लिया। वास्तव में 'लाल गुदड़ी में कब तक छिपे रहेंगे।' परमपिता परमात्मा को यही स्वीकृत था कि इस हीरे की चमक द्वारा संसार में प्रकाश की किरण का प्रसार हो।

उदयपुर 'दिव्य-जीवन-समिति' के समारोह में स्वामी सत्यानन्द ने समय-समय पर मानव-जीवन को दिव्य जीवन में परिणत करने के सदुपदेश दिये। इससे उनकी अमिट छाप मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो गई। आप जिस विषय पर विचार प्रकट करते थे, उसको इस तरह से व्यक्त करते कि सारा-का-सारा वातावरण सजीव हो उठता था। उनके अमूल्य एवं प्रभावशाली उपदेशों द्वारा मेरा जीवन आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत हो उठा था। इसके पश्चात् उदयपुर से अजमेर तक स्वामी सत्यम् के सम्पर्क में रह कर मुझे सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। स्वामी सत्यम् की सौम्यता तथा उनके दिव्य प्रभा-पूर्ण जीवन से मुझे इस मानव जीवन के लिए जो उपदेश मिले हैं, उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता।

इस तरह स्वामी सत्यम् की यात्रा आगे बढ़ती ही गई। ये अपने गुरु के कार्य में इतने व्यस्त रहते कि इन्हें अन्य बातों से कोई मतलब ही नहीं रहता। गुरु और शिष्य की आत्मा एक, विचार एक, काम एक, भावना एक, कर्त्तव्य एक, दोनों एक ही थे, सिर्फ शरीर दो थे। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि।

31वीं जन्म जयन्ती

परमगुरु भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी ने यह निर्णय लिया कि 'ज्ञानयज्ञोपभृत, राजयोगी', स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की 31वीं जन्म जयन्ती

विशेष उत्सव के रूप में मनायी जाए। एक अभिनन्दन ग्रंथ भी प्रकाशित करने की योजना बनी। यह योजना कार्य रूप में परिणत होने लगी। परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने इस पुस्तक का नाम दिया, 'स्वामी सत्यानन्द, हिज लाइफ एण्ड वर्क' (स्वामी सत्यानन्द–कर्तृत्व और व्यक्तित्व)। परम गुरु शिवानन्द जी के आशीर्वाद के शब्द हैं–

इतनी कम उम्र में ऐसा वैराग्य विरले ही व्यक्तियों को होता है। स्वामी सत्यानन्द तो पूर्णतः नचिकेता तत्त्व से निर्मित हैं। फिर भी जिस कार्य को ये हाथ लगाते हैं, उसका सम्पादन सर्वथा निर्दोष होता है। चार-चार आदमियों का काम अकेले करते हैं, पर असन्तोष कभी व्यक्त नहीं किया। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं बहुभाषाविज्ञ हैं। साथ ही विनयी, सरल तथा आदर्श साधक और निष्काम सेवक भी हैं।

'दिव्य जीवन संघ' के तो आधार ही हैं। प्रभु इन्हें स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, शान्ति, प्रगति और शाश्वत आशीष दें।

स्वामी शिवानन्द
26 जुलाई 1954

भक्ति योगी स्वामी चिदानन्द जी ने भी उनके जीवन और कार्य पर प्रकाश डाला। वेदान्त केसरी स्वामी कृष्णानन्द एवं सभी गुरु भाइयों ने अपने अनुभव के आधार पर उनके जीवन पर प्रकाश डाला। लेख व कविता भी लिखी।

उपनिषद्-ब्रह्म स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी ने लिखा, "गंभीर गगन गामी होमा पंछी ने 3–4 अण्डे दिए, शून्य आकाश में ही। वे गिरने लगे, रास्ते में ही इनसे पंख युक्त बच्चे फूट निकले। कुछ तो चल पड़े आकाश की ओर माँ-माँ की रट लगाते, और एक चल पड़ा 'मृत्युलोक' की ओर, अमरत्व का संदेश सुनाने, वही है सत्यम् ... स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।"

हम इन्हीं की 31 वीं वर्षगाँठ मना रहे हैं। ईश्वर इन्हें चिरायु बनायें। मुक्त गगन का यह अमर पंछी युगों-युगों तक अपना वेद-ज्ञान सुनाता रहे।

स्वामी सत्यम् का कितना सही परिचय दिया है इन्होंने।

स्वामी सत्यम् ने दो रचनाएँ लिखी थीं, जो उस पुस्तक में छपी हैं। वे रचनाएँ बहुत ही सारगर्भित हैं। स्वामी शिवानन्द ने उनको 'सतत् प्रहरी' सा प्रथम स्थान दिया है इस पुस्तक में। पहली है, 'मैं संन्यासी हूँ।' रचना तो

काफी बड़ी है, जो बाद में योग वेदान्त में, फिर योग विद्या में भी छपी है, उसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है–

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्त्र अमृत की धारा,
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा ।
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा,
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा ॥

दूसरी रचना, 'मैं मंदिरों से भी ऊँचा हूँ' का कुछ अंश–

'मुझे चलते-फिरते मंदिरों में बसना प्रिय है। मैं सत्य की रक्षा करने वाला हूँ। मेरा वरदहस्त वहाँ पर अवश्य है, जहाँ व्यक्ति ने अपनी आत्मा को स्वच्छ कर लिया हो। अपने मंदिर में ज्ञान की आरती और सद्‌गुणों की सुरभित धूप जला ली हो। सद्विचारों की घण्टी भी बजा ली हो। अत: हे! आओ, मंदिर बनो, जहाँ मैं बैठ कर सदा तुम्हें असत्य से सत्य, मृत्यु से अमरत्व, अंधकार से प्रकाश, और विनाश से नवनिर्माण की ओर प्रेरित करता रहूँगा।'

250 पेज की यह पुस्तक अँग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, गढ़वाली, गुजराती, मराठी और तमिल भाषा में लेख-कविता, आशीर्वचनों से भरी है। सभी परिचितों ने अपने भावों के नैवेद्य अर्पित किए। अभिनन्दन ग्रंथ में सभी ने अपनी श्रद्धा-भावना के अनुसार अपने अनुभव लिखे और महान् संत को शुभकामनाएँ दीं। साथ ही ऐसे महापुरुष के माता-पिता का भी अभिनन्दन किया।

योग वेदान्त में स्वामी शिवानन्द कृष्णानन्द (स्वामी सत्यम् की गुरुबहन) का छोटा-सा लेख पढ़ा, 'सच्ची भेंट'–

"झिलमिलाते तुषार कणों को अपनी पंखुड़ियों पर धारण किए हुए परिमल से सुरभित, रवि-शशि के स्पर्श से रहित अभिनव कुसुमों को जो माली प्रभात होने के पहले ही तोड़ कर अपने इष्टदेव को अर्पित करता है, उसका समर्पण नि:संशय ही श्रेष्ठ है।

वैसे ही जीवन के सुप्रभात में सांसारिक सुख-स्पर्श से रहित अगाध शक्ति, ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ज्योतिर्मय रूप वाली प्रिय संतान को, जीवनमाली माता-पिता, अपने गृह उद्यान से लेकर आराध्य गुरुदेव को समर्पित करते हैं। यही है त्याग, यही है समर्पण, यही है जीवन का साफल्य। जिन हाथों से अभिसिंचित कर जीवन-वृक्ष का पोषण किया, उन्हीं परम पवित्र हाथों से ही फूलते-फलते

वृक्ष को गुरुदेव को समर्पित करना ही 'सच्ची भेंट' है। धन्य हैं वे माता-पिता, धन्य है वह सन्तान और धन्य हैं ऐसे पाने वाले आराध्य।''

धर्मेन्द्र के माता-पिता को मालूम था कि ये स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में हैं, संन्यासी हो गये हैं। उनके दो पत्र भी आये थे, जिनका जवाब स्वामी शिवानन्द जी ने दिया था। धर्मेन्द्र के पिता कृष्ण चन्द्र नायाल पर्वतीय थे, क्षत्रिय थे और जमींदार थे। स्वभाव में निर्ममता भी थी। पुलिस ऑफिसर होने के नाते, साधु-संन्यासियों से विमुख भी थे। पारम्परिक गढ़वाली विचारधारा भी थी। कुमायुनियों में अहंकार व अकड़ भी होती है। जिद्दी भी थे, और सामाजिक अंध-परम्पराएँ भी थीं। इसी कारण तो पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियाँ प्राय: विद्रोही हो जाते व कभी-कभी गलत काम करते या गलत कदम भी उठा लेते थे। उस परिस्थिति में माता-पिता अपने अहं के कारण बच्चों को त्याग देते थे। उनसे विमुख हो जाते थे। श्री कृष्णचन्द्र नायाल सुशिक्षित होते हुए भी इसके अपवाद न बन सके। आर्यसमाजी, उच्च विचार के सात्त्विक व्यक्ति थे, पर अपनी सन्तानों की तरफ से उदासीन ही रहे।

उनका दूसरा पुत्र भूपेन्द्र नायाल 1947 में क्रांतिदल का प्रमुख था, वह कलकत्ते में पुलिस की गोली का शिकार हो गया। उनके तीसरे पुत्र ने मुस्लिम लड़की से शादी करके खेती-बाड़ी संभाली। सब अपना-अपना संस्कार लेकर आए थे। वे चाहे जैसे भी हों, संतानों के प्रति जैसे रहे हों, पर हमारे आदर के पात्र हैं। उनसे जो अनमोल रत्न दुनिया को मिला, उनसे जाने-अनजाने जो भेंट दुनिया वालों को मिली, दुनिया वाले युगों-युगों तक उनके आभारी रहेंगे।

नैनीताल कॉन्वेंट की संचालिका जो इनसे बहुत स्नेह करने लगी थी, वह इनसे मिलने दो बार ऋषिकेश आश्रम आई थी। स्वामी सत्यम् के दोनों मित्र, श्री अश्विनी कुमार पंत और श्री के.सी. जोशी ने भी अभिनन्दन ग्रंथ के लिए बाल्यकाल की स्मृतियाँ लिख भेजी थीं। स्वामी सत्यम् 1950 में गुरुजी के साथ दिग्विजय यात्रा पर थे, उस समय दोनों मित्र, श्री पंत व श्री जोशी मिलने के लिए कलकत्ते आए थे।

श्री घनश्याम शास्त्री का अलमोड़ा से अभिनन्दन ग्रंथ के लिए आशीर्वाद पत्र आया। उन्होंने गढ़वाली भाषा में पत्र भेजा, और स्वामी शिवानन्द जी ने उसे वैसा ही छपवाया। वह पत्र स्वामी सत्यम् के पूर्व परिचित बुजुर्ग का है, अत: उस पत्र का हिन्दी रूपान्तरण दिया जा रहा है।

श्री घनश्याम शास्त्री, अलमोड़ा का पत्र हिन्दी में–

"आज बड़ी खुशी का दिन है, एक वीतरागी नवयुवक संत की जन्म तिथि मनाने का समारोह हो रहा है। संतों को इसकी आवश्यकता नहीं, पर संसारियों को इससे खुशी और प्रेरणा मिलती है।

कूर्माञ्चल के बाल तपस्वी का जन्म 31 वर्ष पहले अलमोड़ा जिले के एक छोटे से गाँव में 25 दिसम्बर 1923 को हुआ था। आपके पिता जी सम्पन्न एवं विद्वान् हैं, भरा-पूरा घर है। अभाव कुछ भी नहीं है। आपका पालन-पोषण भी बहुत अच्छी तरह हुआ। परिवार धार्मिक था, आपको भी उसी तरह शिक्षा दी गई थी। प्राचीन भक्तों की कथा, शिव पूजा का अभ्यास, गीता पाठ। पिता आर्यसमाजी थे, सो यज्ञ-हवन आदि की शिक्षा भी मिली। समय पर इन्हें शिक्षा केन्द्र भेजा गया, फिर अच्छे अँग्रेजी स्कूल में दाखिला दिलाया गया। सभी विषयों में हमेशा प्रथम आते। गणित ही कुछ कमजोर रहा। खेल-कूद में भी प्रथम रहते थे। विद्यालय की उपाधि लेकर जन्मभूमि आये।

अचानक एक दिन दुनिया के कोलाहल से खिन्न होकर, शान्ति प्राप्त करने के लिए घर छोड़ दिया। अनेक तीर्थों और आश्रमों का भ्रमण करते हुए तपोभूमि ऋषिकेश पहुँचे। आपको वहाँ विश्व विख्यात स्वामी शिवानन्द जी का दर्शन हुआ, पाठकों को विदित है ही कि वर्तमान समय में भौतिकवाद के विरुद्ध अध्यात्मवाद का प्रचार करने वाले ये एकमात्र संत हैं। स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन करके हमारा युवक स्वामी उनके चरणों में नतमस्तक हो गया। स्वामीजी ने आपको योग्य समझ कर अपनाया। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती नाम देकर दीक्षा प्रदान की। आप अँग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत के ज्ञाता हैं। छोटी उम्र से ही लेख-कविता में आपकी बहुत रुचि थी। आपने हिन्दी विभाग में काम किया और 'योग वेदान्त' हिन्दी मासिक का सम्पादन कार्य भली प्रकार करने लगे। स्वामी शिवानन्द जी की अँग्रेजी किताबों का हिन्दी अनुवाद करने लगे। आपने अनेक पुस्तकें लिखीं, उनमें 'चैतन्य ज्योति' व 'शिवानन्द दिग्विजय' प्रसिद्ध हैं।

इन दिनों आप ध्यान, भजन, कीर्तन के साथ मानव जाति के कल्याणार्थ प्रेस में सम्पादक, अध्यक्ष व निरीक्षक के रूप में कार्य करते रहे। दवा देने व बनवाने में विशेष दक्ष हैं। आपमें प्रतिभा है, पर अभिमान लेशमात्र नहीं है। प्रत्येक के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हैं। आपका बोलने का तरीका सशक्त और मधुर है। आपकी सेवा से निश्चय ही मानव जाति का कल्याण होगा। मैं अन्त में आपके चिरायु होने की कामना करता हूँ। आपका जीवन भारतीय

जनता के लिए समर्पित है। आपका जन्म निश्चय ही मानव जाति के कल्याण के लिए हुआ है।”

प्रियदर्शी स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को सब तरफ से शुभकामनाएँ मिलती रहीं। इस तरह स्वामी शिवानन्द की शुभेच्छा से महान् उत्सव शुरू हुआ और सम्पन्न हुआ। गुरु की कृपा और शिष्य के समर्पण का इतिहास जन-जन तक पहुँच गया। स्वामी शिवानन्द का काम और नाम देश-विदेश में जगमगा रहा था। जगह-जगह ‘दिव्य जीवन’ की शाखा तो थी ही, अब उनकी गति में तीव्रता आ गई।

आनन्द कुटीर में जो विशेष उत्सव हुआ, उसकी ज्योति चतुर्दिक फैल गई और सब तरफ बढ़ती ही जा रही है। वह ज्योति है गुरुदेव स्वामी शिवानन्द की अहैतुकी कृपा। स्वामी शिवानन्द, जो बहुत विशाल शक्ति के सागर हैं, उन्होंने स्वामी सत्यानन्द की जन्म तिथि मनाने की योजना बनाई, और विशेष प्रसन्नता से भाग लिया। इसी से पता चलता है कि उनकी स्वामी सत्यम् पर अहैतुकी कृपा थी। उनके आशीष की वर्षा इन पर निरन्तर होती रही है।

आनन्द कुटीर का देदीप्यमान् सितारा

सबकी शुभकामना और गुरुजी के मंगल आशीष प्राप्त कर ‘स्वामी सत्यम्’ आनन्द कुटीर में पूर्ण चन्द्रमा से चमकने लगे। दिनभर काम, रातभर अनुवाद, अध्ययन, साधना, यही सब चलता रहता। दुर्बल काया पर अपूर्व तेज लोग देखते ही रह जाते। जब बोलते तो लोग सुनते ही रह जाते। हिमालय का शीत, दिसम्बर-जनवरी की रात, प्रेस की मशीनों की कर्कश ध्वनि के साथ ही सामने के कमरे (स्वामी सत्यम् का कमरा) से, रात के 12 बजे हों या 2 बजे हों, तानपूरे के तार झनझना उठते। अगर कोई उत्सुकतावश जाकर देखता तो कमरे में चारों ओर पुस्तकों के ढेर लगे हैं। मेज पर कितने ही पत्र, कागज, फोटोग्राफ, पेपर वेट के नीचे समाचार पत्रों के छोटे-बड़े कटिंग रखे हैं। बीच में खुला रखा हुआ है उपनिषद्। रात्रि के दूसरे-तीसरे पहर में भी इतने कार्यों के मध्य उपनिषद् का गंभीर अध्ययन चलता है।

संसार के विविध ऐश्वर्यों की गोद में पालन-पोषण होने के उपरान्त स्वामी सत्यानन्द इस प्रकार वैरागी जीवन व्यतीत करते हुए, इतने व्यस्त कार्यक्रमों के मध्य उपनिषद् अनुराग को स्थिर रख साधना में लीन हो पाते थे। इनका जीवन वास्तव में साधना का साकार प्रतीक था। काषाय-वस्त्रों के कर्मनिष्ठ

वैराग्य की मर्यादा तो इन्होंने ही जानी है। उसका भली प्रकार पालन किया। इनके जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों का सम्मिश्रण है। प्रतिभा रूपी पक्षी के दो पंख होते हैं–परिश्रम और अध्यवसाय। स्वामी सत्यम् के दोनों ही पंख सशक्त थे। वे हमेशा योग सेवा, लोक सेवा, ज्ञान चर्चा में तल्लीन रहते थे। श्री शंकराचार्य के श्लोक, गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, धाराप्रवाह बोलते रहते थे। स्वामी शिवानन्द को तो ये जैसे प्राणों से भी प्रिय थे। इन्होंने गुरुजी के सिद्धान्तों का अक्षरश: पालन किया, तभी तो आज लोगों में आकर्षण-केन्द्र बने हैं। 'गुरु कृपा ही केवलम्।'

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट॥

गुरु कुम्हार है, शिष्य कुम्भ (घड़ा) है, कुम्हार घड़ा बनाता है तो उसके भीतर हाथ लगाकर ऊपर से थापी (चोट) मारता है। तब जाकर वह सब तरफ से सुडौल हो पाता है। गुरु की कृपा से ही वह घट अमृत धारण करता है।

स्वामी सत्यम् जब कभी शिविर-कैम्प में जाते, जरा भी आराम नहीं करते, नेत्र यज्ञ में ऑपरेशन में इतने व्यस्त होते कि दिन-रात का भी इन्हें पता नहीं चलता। यह करना है, वह करना है, आराम करते ही नहीं थे। जब वापस आते, तब स्वामी शिवानन्द जी इन्हें देख कर परेशान हो उठते। आराम करने को कहते, दूध-फल देते। कमरे से बाहर नहीं आना है, किसी से बात नहीं करनी है। सिर्फ आराम करना है। बाद में कहते, इसीलिए हम तुम्हें कहीं जाने नहीं देते हैं, तुम अपने प्रति बहुत लापरवाह हो।

जनवरी 1956 में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का महागुजरात व सौराष्ट्र के परिभ्रमण का कार्यक्रम बना। जनवरी के दूसरे सप्ताह से मार्च के दूसरे सप्ताह तक का प्रोग्राम। दो माह में 16 शहरों में प्रोग्राम बना। इनके साथ स्वामी भूमानन्द, स्वामी शान्तानन्द तथा श्री मनुवर्य गए। प्रोग्राम बहुत ही अच्छा होने लगा। सभी जगह से प्रवचनों की रिपोर्ट व लेखों की प्रतियाँ आने लगीं। योग-वेदान्त में छपने लगे। पीछे कवर पेज में 'मानव-मुक्तावली' के नाम से अनमोल वचन छपने लगे।

भगवान बुद्ध के समान समय-समय पर कई महापुरुष आए। समयानुसार महान् आत्माओं ने पृथ्वी पर पदार्पण किया। इस युग में स्वामी शिवानन्द आए। इन महापुरुष को अवतार कहें या देवदूत, ये ईश्वर की ही विशेष

शक्ति हैं। जो विश्व के कोने-कोने में आध्यात्मिक विचारों और शान्ति का प्रचार करके विश्व के दु:खी प्राणियों को नवजीवन का संदेश दे रहे हैं। भगवान भी समय-समय पर आकर अपने भूले-भटके प्रियजनों को आध्यात्मिक मार्ग पर ले जाते हैं। महापुरुष तो उनके माध्यम होते हैं। स्वामी शिवानन्द जी उसी परमात्मा की करुणा के मूर्तिमान् स्वरूप हैं, जो जगत् के कल्याणार्थ उसके कार्यों को आगे बढ़ाते जा रहे हैं। अब आपके शिष्यों में एक तपस्वी ने तो प्रण ही कर लिया कि इस दिग्विजय को उसके निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाना ही है। इस तपस्वी का प्रण है कि जो प्राणी अपना सच्चा स्वरूप भूलकर भौतिक दुनिया में अनित्य सुखों में रम रहे हैं, उनको अपने मूल स्वरूप का ज्ञान जरूर कराऊँगा। इस तपस्वी को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि विधाता ने इन्हें दुनिया में किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही भेजा है।

ईश्वर की कृपा और गुरु के आशीर्वाद से इन्हें सरस्वती ने पवित्र वाणी दी, चंद्रमा ने सौम्यता दी और दिवाकर ने ज्ञान का तेज दिया। अब आप शिवानन्द प्रतिध्वनि बनकर, गुरुदेव के आध्यात्मिक संदेश को गुजरात क्षेत्र के नगर-नगर और डगर-डगर में बिखेरते जा रहे हैं। गुरुदेव शिवानन्द के अमृतमय मनोहर उपदेशों का प्रसाद वितरण कर रहे हैं। इस तरह ज्ञान-योग का सागर बहाते हुए, बड़े-बड़े शहरों व छोटे-छोटे गाँवों में योग का शंखनाद करते, आध्यात्मिक गंगा की धारा बहाते हुए, दो माह तक गुरुदेव के अमर संदेश जन-जन में वितरण कर, वापस गुरु चरणों के दर्शन कर हर्ष विभोर हो उठे। गुरुदेव ने भी प्राण प्रिय शिष्य के आलोक से चकित हो उन्हें अपने में समेट कर स्नेह आशीष से भिंगो दिया। धन्य हैं–गुरु और शिष्य।

गुरु-आश्रम से प्रस्थान

एक दिन स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यम् को बुलाकर कहा, 'सत्यानन्द, तुमने ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ के लिए बहुत काम किया है, लेकिन अगर तुम यहाँ रहोगे तो 'बोनसाई' बनकर रह जाओगे। अब तुम यहाँ से जाओ, यह स्थान तुम्हारे लिए छोटा पड़ेगा।' उन्होंने स्वामी सत्यम् को 108 रुपये दिए और कहा, 'तुम इसमें दाहिनी ओर केवल शून्य बढ़ाते जाओ, और कुछ नहीं करना है।' स्वामी सत्याानन्द ने कहा, 'मैं तैयार हूँ।'

उसी दिन स्वामी सत्यम् ने आश्रम जीवन के बारह वर्ष पूरे किये थे। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने साधना कक्ष में ले जाकर पाँच-दस मिनटों में ही उन्हें

क्रिया योग की शिक्षा दे दी। मानो घोलकर पिला दिया। गुरु-शिष्य, दोनों ही समर्थ थे, नारायण व नर, भगवान व भक्त, प्रभु की महिमा अपरम्पार है। समर्थ गुरु ने अपने हाथ की संचित शक्ति, अधिकारी शिष्य के हृदय रूपी प्याले में उड़ेल दी। धन्य है गुरु की गरिमा व शिष्य की क्षमता।

स्वामी सत्यम् गुरुदेव को प्रणाम कर कमरे से निकले और थैले में दो कपड़े रख तुरन्त रवाना हो गए। दिल्ली पहुँचे, वहाँ शिवानन्द शिवांजलि (मुक्तारानी भटनागर) व हनुमान प्रसाद माथुर ने इन्हें सहयोग दिया। प्रोग्राम होने लगा। कार्यक्रम बनने लगा।

आश्रम में गुरु भाइयों को पता चला। इनका अभाव बहुत खला, पर थे तो संन्यासी ही। शान्त रहे, मोह-माया से अलग अपना काम करते रहे।

एक बार प्रसंगवश शिवानन्द ने कहा था– 'क्या नदी का बहना या सूर्य-चंद्रमा की गति को कोई रोक सका है, जो सत्यम् को मैं रोकता। उसे बहुत काम करना है। वास्तविक उत्तराधिकारी तो वही है। कुछ शिष्य गुरुभक्त होते ही नहीं, और कुछ होते हैं अन्ध भक्त। गुरु के अवसान के बाद उनकी नाव डूब जाती है। लेकिन सत्यम् तो वह ज्योति है जो विश्व में शिवम् का नाम आलोकित करता रहेगा। सत्यम् यथार्थ में सत्यम् है।' धन्य हैं शिवम् और सत्यम्, उनके चरणों में मेरा प्रणाम!

माँ की गोद से ही क्षणभंगुरता का अनुभव करके सब कुछ त्याग कर भगवान बुद्ध की तरह सुख-वैभव, इच्छा-अभिलाषा, माया-ममता का अभेद्य कवच तोड़ कर चिदानन्द, चिन्मय, कैवल्य और कूटस्थ की खोज की मनोवांछा ले अनन्त की ओर चल पड़ा और पहुँचा स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में ...।

गुरु के सान्निध्य में 12 वर्ष कठिन तपस्या करके, कठिन साधना की यज्ञाग्नि में तपकर, गुरु के ज्ञान से आलोकित ज्योति-सा संन्यासी परिव्राजक होकर, गुरु से दिग्विजयी होने का आशीष प्राप्त कर सनातन सत्य का प्रचार-प्रसार करने चल पड़ा। चल पड़ा, 'मैं संन्यासी हूँ' का पवित्र मंत्रोच्चारण कर विश्व-कल्याण का स्वर्ण विहान जगाने, योग-क्षेम का अभियान उठाने।

तृतीय खण्ड

परिव्राजक जीवन की झाँकियाँ



मेरी प्रेरणा के स्रोत ...
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को मैंने समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त किया है, वे मेरे गुरु हैं, इष्ट हैं, उनका शान्त, मुदित और क्रियाशील जीवन मुझे निरन्तर प्रेरणा दे रहा है।

उनकी जीवनी 'गुरु-गीता' सदृश लिखकर सर्वसाधारण तक पहुँचाने के इस अति कठिन कार्य में प्रभु गणेश जी, माता सरस्वती मेरी मदद करेंगे। गुरु-कृपा से मेरा यह कार्य पूरा होगा।

स्वामी रामानन्द के शब्दों में–

चित्र हो जिस सत्य के तुम, मैं उसी की हूँ निशानी ।
खोजते फिरते हो जिसको, मैं उसी की हूँ कहानी ॥

तृतीय खण्ड

राजनन्दगाँव (नन्दग्राम) के श्री सत्यव्रत श्रीवास्तव एवं बसन्ती, 1953 अप्रैल की 3, 4 एवं 5 तारीख को होने वाले 'विश्वधर्म सम्मेलन' में ऋषिकेश गये थे। भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी एवं उनके शिष्य समुदाय को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। तीन दिन के संत-समागम ने उनके जीवन की धारा ही बदल दी। उन्होंने स्वामी शिवानन्द को जगत् गुरु व महान् शक्ति के रूप में देखा और स्वामी सत्यानन्द को अपने जन्म-जन्म के प्रियजन के रूप में देखा। चार दिन बाद वापस आये, अपने को वहीं खोकर, वहाँ से बहुत पुस्तकें, पत्रिकाएँ लाये थे। उसी में खोये रहते, गुरुदेव से पत्र-व्यवहार चलने लगा। सत्यव्रत जी ने गुरुदेव से अनुरोध किया कि सितम्बर में गणेश उत्सव के समय सत्संग-प्रवचन के लिए एक स्वामी भेजने की कृपा करें।

गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी का पत्र मिला, आपका मध्य प्रदेश हिन्दी भाषा वाला देश है। हमारे आश्रम में हिन्दी भाषा प्रवीण एक स्वामी है स्वामी सत्यानन्द, हम उन्हें अवश्य भेजेंगे। पत्र पाकर उन लोगों को लगा, मुँहमाँगा वरदान मिल गया है। पर 8 सितम्बर शिवानन्द जयन्ती में आश्रम में एक हफ्ते का प्रोग्राम होता है। इससे स्वामी सत्यानन्द नहीं आ सके। बाद में फिर प्रोग्राम बना, हम लोगों ने उनके लिए पूरी व्यवस्था भी कर ली, पर आना नहीं हुआ।

1956 अप्रैल में स्वामी सत्यानन्द दिल्ली में थे। गुरुदेव ने माता कृष्णानंद से कहा, सत्यव्रत को पत्र लिख दो कि स्वामी सत्यानन्द परिव्राज्या लेकर अभी दिल्ली प्रवास कर रहे हैं। उन्हें पत्र लिखकर बुला लें। दिल्ली का पता भेज दो।

माता कृष्णानन्द का पत्र मिलते ही सत्यव्रत जी ने तुरन्त स्वामी सत्यानन्द जी को पत्र लिखा।

दिल्ली से स्वामी सत्यानन्द का पत्र मिला, 'गुरुदेव के आशीर्वाद से सत्यम् ने जो भी समझा है, उसी के आधार पर लक्ष्य की तरफ कदम बढ़ाया है। सत्यम् ने जीवन में चेतना पाई, तो सर्वप्रथम स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया। बुद्ध के जीवन संबल पर संन्यास धारण किया। वह यही बात जान पाया है कि उसे अपना मार्ग स्वयं ही तय करना होगा।

बारह वर्ष तक मैं शिवानन्द आश्रम में था, तब भी मेरा एक संन्यासी का ही स्वतंत्र व्यक्तित्व था, आज मैं आश्रम से बाहर हूँ, तो भी मेरा अपना ही व्यक्तित्व है। मैं यह नहीं चाहता कि पूज्य गुरुदेव के संदेश को प्रचारित करने का बहाना लेकर जन-संपर्क करूँ, यद्यपि ऐसा ही हो रहा है। मेरी वाणी, मेरे विचार, मेरे वर्तन शिवानन्द जी के युगान्तकारी संदेशों का संचरण कर रहे हैं। किन्तु एक अकेले साधु की हैसियत से मैं जहाँ भी जाऊँगा, संन्यासी बनकर, किसी संस्था का प्रतिनिधि बन कर नहीं।

मैं प्रत्यक्ष में ऋषिकेश का स्वामी सत्यानन्द हूँ, अप्रत्यक्ष में प्रच्छन्न रूप से शिवानन्द शिष्य हूँ। अपने अलग मंच से गुरुदेव के गीत गाऊँगा और उनके उपदेशों को उदार और उपयोगी तथा जन-व्यापक रूप दूँगा। जीवन की विभीषिकाओं को शान्त करने की गुरुदेव की जो देन है, वह मेरी प्रेरणा और कार्य-प्रणाली बन कर रहेगी। इसी मंच पर से मैं न केवल एक संस्था के पास जाऊँगा, बल्कि प्रत्येक संस्था के द्वार मेरे लिए खुले रहेंगे। मैंने यही समझा है कि मुझे जाना है, क्या शहर, क्या नगर, जहाँ जाने का आदेश होगा, चल दूँगा। मैंने इस पर न सोचा है और न ही सोचूँगा।

पूज्य गुरुदेव से आशीर्वाद पाकर चल पड़ा हूँ। किधर जाऊँगा, कब जाऊँगा, यह पता नहीं। मेरा कार्यक्रम निश्चित नहीं है, कहीं भी हो जाता है। श्री हनुमान प्रसाद माथुर और मुक्तारानी (शिवांजलि) बहुत मदद दे रहे हैं।

आपका गाँव नन्दग्राम है। मेरी भावनाओं के अन्त:स्थल में नन्दग्राम के प्रति आकर्षण है। आप लोगों ने मुझे बुलाया है, जरूर आऊँगा। मुझे कुछ ऐसा आभास हो रहा है कि वहीं से मेरा काम शुरू होगा। नन्दग्राम ही मेरा सारनाथ बनेगा। मेरा नाम सत्यम् है, आपका नाम सत्यव्रत, आपमें मेरे व्रत की विशेषता है।

मैं अकेले ही विचरण कर रहा हूँ। परिव्राजक अकेले ही विचरते हैं। परिव्राजक का मण्डली के साथ जाना उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। परिव्राजक जीवन के उद्देश्य की दो धारायें होती हैं–साधना का

पुष्टिकरण और ज्ञान का वितरण। ये कार्य उसे अकेले ही करने पड़ते हैं। मण्डली के साथ जाने से वह परिव्राजक नहीं, प्रचारक हो जाता है, जिसके जीवन में 'साधना के पुष्टिकरण' का तत्त्व नहीं होता, सत्यम् प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत है।'

स्वामी सत्यम् का दूसरा पत्र मिला, "आपका पत्र मिला। मनिआर्डर भी मिला। यहाँ पर लोगों के अनुरोध पर बुद्ध जयन्ती के अवसर पर प्रवचन के लिए मंजूरी दे दी है, प्रोग्राम प्रकाशित भी हो गया है। मेरा आना 23 मई के बाद ही होगा।

भगवान बुद्ध की जयन्ती की धूम है। जोर-शोर से मनाते हैं, पर यशोधरा को दुनिया वाले शायद ही कभी याद करते होंगे। भूल ही गये हैं कि यशोधरा के बिना बुद्ध अपूर्ण ही रहते। यशोधरा का त्याग बुद्ध के त्याग से श्रेष्ठ है। उसकी तपस्या पूर्णत: निष्काम ही रही; बुद्ध की साधनचर्या का एक उद्देश्य था। वे चले और निर्वाण पाते ही ठहर गये। वह अनन्त पथ पर चली, चलती ही गई।

बुद्ध चर्या की भूमिका में विकल्प रहे, विचित्रताएँ, भ्रम और अपूर्णता रही। यशोधरा की तपस्या, सनातन प्रकृति की गंभीरता की पार्थिव छटा थी, जो जीवन का नियम है। बुद्ध ने घर छोड़ा। वह घर पर ही रही। उन्होंने त्याग द्वारा निर्वाण पाया। उसने न त्याग किया, न ही निर्वाण की अपेक्षा की। स्त्री की सर्वश्रेष्ठ साधना-तपस्या यही है, क्योंकि उसमें चिर-संतोष जो है। पुरुष तो स्वभाव से ही असंतोषी और विक्षिप्त विचारों का पिटारा है। बुद्ध चर्या भी कुछ ऐसी ही थी। यशोधरा त्याग और भोग के संघर्षों में सच या झूठ मानने वालों को चुनौती रही। अन्यथा वह भी जीवन की उरुबेला में सघन जालों में फँसी रहती या फिर कपिलवस्तु के वैभव में अपने को भुला देती। क्या बुद्ध ऐसा कर सकेंगे?

क्या सचमुच किसी 'परम आनन्द' की खोज में बुद्ध चर्या का अनुसरण करना सृष्टि के सनातन सिद्धान्तों के अनुरूप है अथवा यशोधरा को अपने अनन्त के विस्तार को 'त्याग' और 'भोग' की परिधि में ले जाना चाहिए?

सत्य तो यह है कि यशोधरा ने अनन्त बुद्धत्व को अपने में ही पाया और सिद्धार्थ मात्र गौतम ही रहे। और सनातन साधना के पथ पर नहीं चल सके। खोजते रहे, पर नहीं पा सके, और इन्हीं बुद्ध की जयन्ती सारी दुनिया मना रही है। कितने वर्ष बीत गए इन बातों को, पर संत-महात्मा का अवतरण जो होता है, एक महान् संदेश को लेकर, और साधु का कर्त्तव्य होता है, उन

बातों को बार-बार दुहराना, जिससे लोग उन बातों को भूल न जाएँ और महान् आत्माओं के चरित्र से कुछ शिक्षा लें।

आप लोग मेरे विचार से परिचित हो ही गये होंगे। यहाँ का प्रोग्राम पूरा होते ही वहाँ आऊँगा। हमारे रहने व प्रोग्राम के बारे में ज्यादा आडम्बर नहीं करना। हरि ॐ।''

उनके पत्र पढ़कर उन महान् संत की छवि में हम विभोर हो गये। याद आया, जब 1953 अप्रैल में ऋषिकेश गये थे, वहाँ पुस्तक-पत्रिकाएँ ली थीं, उनको उलट-पलट कर देख रहे थे, 8 सितम्बर 1950 के एक लेख पर आँखें अटक गईं। उसे पढ़ा व कई बार पढ़ा। लगता कि वामन-सा सुदर्शन संन्यासी हँसते हुए कह रहा हो, 'श्री गुरुदेव की आन्तरिक प्रेरणा सजीव हो रही है, मैं उनके ऋण से उऋण तभी हो सकता हूँ जब मैं उनके उपदेश, उनका संदेश जन-जन के हृदय में भर दूँ और स्वयं इस दारुण जग-जीवन पथ पर उनके चरणारविन्द की विभूति के सौरभ में ओत-प्रोत हो उनकी तपोल्लसित स्निग्ध चन्द्रछाया में महा-निर्वाण, परमधाम तथा सद्गति की ओर चिरन्तन युगों के साथ चलता रहूँ और अविश्रान्तगत्या चलता रहूँ। शाश्वत सत्य और अविस्मरणीय परमार्थ के अखिल सौन्दर्य सज्जित महामहनीय परात्पर की ओर ...'

सत्यव्रत जी नन्दग्राम में 'सवालिस कम्पनी के बंगाल नागपुर कॉटन मिल्स' में ऑफिस सुपरिटेन्डेंट थे। मैनेजर सहित 9 ऑफिसर अँग्रेज थे। पर सत्यव्रत जी के स्वभाव, व्यवहार व काम से सभी प्रभावित थे। मिल एरिया का वातावरण बहुत ही अच्छा था। सभी हिल-मिल कर रहते थे। 1954-55 में कम्पनी ने अपना काम समेटा (भारत छोड़ना था) और कलकत्ते के बी.एन.अग्रवाल ने उसे खरीद लिया। सब नये ऑफिसर आये। सभी विदेशी चले गये। अब सत्यव्रत जी का काम बहुत बढ़ गया। जैसे सब तरफ छा गये। जब 1956 अप्रैल में स्वामी सत्यानन्द जी के आने की बात हुई, तो सबने उत्साह से सहयोग दिया। मीटिंग हुई, योजना बनी, कुछ तैयारी हुई, पेपर में छपा, पम्पलेट छपे ...

नन्दग्राम में पदार्पण

सत्य-धर्म के आवाहन पर 7 जून को प्रात: सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही अभिनव सूर्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का नन्दग्राम में शुभ आगमन हुआ।

सैकड़ों लोग स्टेशन पहुँचे, सबने आश्चर्य से देखा कि वामन भगवान जैसा सुदर्शन संन्यासी अद्‌भुत शक्ति बिखेरता हुआ हमारे सामने खड़ा है और सब उनके चरणों में नत हो गये। सत्यव्रत जी के निवास में मेला सा लग गया।

कुछ लोग जो अपने को उच्च कोटि का साधक व विद्वान् समझते थे, स्वामी सत्यानन्द जी के लेखों को पढ़कर प्रभावित होते थे, उन लोगों ने अपनी कल्पना के अनुरूप 'एक महामानव, शरीर से भी, डीलडौल में भी, चेहरे से भी, बोलने में भी', कुछ विचित्र कल्पना की रही होगी। पर जब उन्होंने देखा, एक सरल सा संन्यासी, जिसके अंग-प्रत्यंग में बालसुलभ कोमलता थी, मुखमण्डल पर उत्कट गंभीरता, मधुरता झलक दिख रही थी, वामन भगवान सा बाल रूप देख कुछ निराश से हो गये। लेकिन जब स्वामी सत्यानन्द जी ने मधुर स्वर में कुशल-क्षेम पूछी व पूर्व परिचित जैसे बातें करने लगे, तो उन लोगों का भ्रम भी दूर होने लगा। इस संसार रूपी मरुस्थल में प्रत्येक प्राणी सुख-रूपी मृग-तृष्णा की खोज में भटकता रहता है, ऐसे ही भटके पथिकों के पथ-प्रदर्शक हैं स्वामी सत्यानन्द। मानव हृदय ऐसी शक्ति का अन्वेषण किया करता है जो उनके सुख में तो सहयोग दे और दुःख से उसे निवृत्त करने के लिए सदैव तत्पर रहे, और ऐसी ही महान् शक्ति इनके व्यक्तित्व में निहित है। स्वामी सत्यानन्द जी के बात-व्यवहार, सत्संग-प्रवचन से लोग प्रभावित होने लगे।

नन्दग्राम में कई संस्थाएँ हैं जहाँ संत-महात्मा आते ही रहते हैं और सत्संग-प्रवचन चलते रहते हैं। सत्यव्रत जी सभी से जुड़े थे, पर शंकर-भवन के बाल-समाज के विशेष कार्यकर्त्ता थे। वहीं के लिए सितम्बर में पड़ने वाले श्री गणेश उत्सव के समय प्रवचन के लिए गुरुदेव शिवानन्द जी से स्वामी भेजने का अनुरोध किया था। उन्हीं शंकर-भवन वालों के विशेष अनुरोध पर तय हुआ कि रात का सत्संग-प्रवचन शंकर-भवन में होगा। सत्यव्रत जी के बंगले पर दिनभर लोगों का आना-जाना लगा रहता। सुबह 5 बजे से सभी लोग आते, आसन-प्राणायाम चलता, 6 बजे से बच्चों का मेला लगा रहता। स्कूल में गर्मी की छुट्टियाँ चल रही थीं, बच्चों का राज्य था। दोपहर 2 से 4 बजे तक महिलाओं का सत्संग चलता। 6 बजे से सब शंकर-भवन जाते और प्रोग्राम के बाद 9 बजे वापस आना शुरू होता। स्वामी सत्यानन्द जी के प्रवचन स्थानीय, दैनिक व साप्ताहिक पेपरों में छपने लगे।

शहर वालों के विशेष अनुरोध पर एक सप्ताह के लिए शंकर-भवन में रहने गये। शहर से बी.एन.सी. मिल कुछ दूरी पर ही थी, वाहन की जरूरत

पड़ती थी। सभी नहीं आ सकते थे। 5 बजे सुबह से शंकर-भवन में लोगों का आना शुरू होता तो 10 बजे तक भीड़ लगी रहती। बच्चे तो वहाँ दिनभर रहते थे। स्वामी सत्यानन्द जी बच्चों के मसीहा बन गये थे। बच्चों को जीवन में पहली बार एक संत के इतना निकट आने का, कुछ सुनने-समझने का सुयोग मिला था। बच्चे कहते, 'स्वामीजी, आप चाँदी की कुर्सी में क्यों नहीं बैठते?' शंकर-भवन वालों के बच्चे कहते, 'स्वामीजी, आप बादाम का हलुआ क्यों नहीं खाते? एक स्वामीजी आये थे, वे एक किलो बादाम का हलुआ खा जाते थे, प्रसाद भी नहीं देते थे। खूब सा मेवा व फल भी खाते थे, आप भी बोलो न बादाम हलुआ बनवाने। आप तो थोड़ा-सा खाते हैं, फिर तो हम लोगों को खूब सा प्रसाद मिलेगा, मजा आ जायेगा।'

बच्चे दिनभर अपने कला-कौशल, खेल-तमाशा, नाच-गाना दिखाते, नाटक करते। भजन खूब सीख गये थे। लोग आश्चर्य से कहते, 'ये सब बच्चे श्री कृष्ण के बाल गोपाल हैं या श्री राम की वानर सेना या शिव जी के गण (भूत-प्रेत) हैं। और आप क्या हो, हमारी समझ में कुछ आता ही नहीं ...।' स्वामी सत्यानन्द जी हँसकर कहते, 'हम तो सिर्फ संन्यासी हैं और ये बच्चे भविष्य के राम, कृष्ण, शिव हैं और हैं राष्ट्र के कर्णधार ...।'

जो एक बार भी स्वामी सत्यानन्द जी से मिल लेता या सत्संग में आता, वह इन्हें भूल ही नहीं पाता। इनसे मिलने वाले यही कहते, 'इतनी कम उम्र में इतने सुन्दर-सुन्दर गुणों का समावेश कैसे हो गया! सहृदयता, त्याग, उदारता, सत्य, प्रेम, स्नेह, बाल-सुलभ भोलापन, विनम्रता, गंभीरता और दूरदर्शिता इनकी रग-रग में भरी हैं। इनके आदर्श अनुकरणीय हैं।'

श्री जगमोहन मोतीवाला के बुलाने पर 24 जून को बुरहानपुर गये, वहाँ से इंदौर गये, 30 जून को वापस आये। 2–3 दिन रहकर संत-सम्मेलन में बनारस चले गये। 26 जुलाई को आयेंगे कह कर गये थे। मीटिंग करके तय हुआ कि हम लोगों के सौभाग्य से ही 26 जुलाई को आ रहे हैं। हम सब स्टेशन जायेंगे, उनको शंकर-भवन लायेंगे। भजन-कीर्तन, पूजा-प्रसाद, भोजन-सत्संग के बाद सत्यव्रत जी अपने साथ ले जायेंगे।

रेलवे के बड़े बाबू स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य थे, स्वामी सत्यानन्द जी के आने से बहुत प्रसन्न थे। 26 जुलाई को एक बजे दोपहर में सब स्टेशन गये। बच्चों की लम्बी कतार व बड़ों का अम्बार देखा तो उसने प्लेटफार्म का टिकट ही बंद कर दिया। कहा– 'बच्चों, स्वामी सत्यानन्द जी की जय कहकर

चले जाना।' स्वामी सत्यानन्द जी शंकर-भवन आये। हॉल में भजन-कीर्तन चल रहा था। उन्होंने कुछ आराम किया, फिर स्नान करके आ गये। स्वामीजी बैठे, फिर तो बच्चों का ताण्डव नृत्य चला, अगड़ बम् का नृत्य, फैन्सी ड्रेस ... बच्चे अपने प्रिय स्वामी को अपने कला-कौशल दिखा रहे थे। फिर लड़कियों का रेलगाड़ी का रूपक चला, स्वामीजी भी साथ दे रहे थे, मानो कह रहे हों–'रहने दो अपना ज्ञान, अपना दर्शन, अपनी आध्यात्मिकता। चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन। मुझे तो पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है। रहने दो अज्ञानी, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान, नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वता, मुझे इन पक्षियों के कूल-कुंजन के साथ गा लेने दो, मुझे रोको मत।'

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा ।
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा ॥

वहाँ पर बच्चे-फूल-बैलून ही दिखते थे। पूजा-प्रसाद, हँसी-खुशी, चारों तरफ बिखर रही थी। 5 बजे सबका भोजन हुआ, फिर प्रवचन के बाद 8.30 बजे श्री स्वामीजी को लेकर सब मिल वाले वापस आ गये।

स्वामी सत्यानन्द जी 3 दिन रहे। उन्होंने कहा, 'मैं तो घूमता रहूँगा, तुम्हारा घर ही मेरा हेड ऑफिस है। मेरी चिट्ठियाँ यहाँ आएँगी। तुम लोग जवाब देना व प्रोग्राम भी बनाना। जहाँ भी जाऊँगा, पता दूँगा, कुछ पूछना हो या प्रोग्राम की सूचना देनी हो तो मुझे लिखना। तुम दोनों मेरे रथ के चक्के हो। तुम दोनों में क्षमता है, इसलिए जिम्मेदारी सौंपी है।' सब बातें समझाकर स्वामी सत्यम् 30 जुलाई को चातुर्मास के लिए बनारस चले गये।

सत्यव्रत जी व बसन्ती को लगा, स्वामीजी हमारे अपने ही हैं, प्रारब्धवश देश के एक कोने से दूसरे कोने में पहुँचे थे, प्रभु की दया से फिर मिल गये हैं। सत्यव्रत जी में सत्यम् के व्रत की विशेषता बता कर दो शरीर एक आत्मा हो गये हैं। और बसन्ती ने 1953 अप्रैल में प्रथम दर्शन में उन्हें आदिगुरु शंकराचार्य व संत ज्ञानेश्वर के रूप में देखा था। 7 जून 1956 में नन्दग्राम आये, स्टेशन में उन्होंने कहा था, 'माता जी आप ...।' और दरवाजे पर कार से उतर कर, चरणों में फूल चढ़ाकर प्रणाम किया तो हँस कर कहा था, 'लो हम आप के घर आ गये ...।' और बसन्ती को लगा, यही हैं मेरे शंकराचार्य। जैसे उन्होंने कहा था, 'माँ मैंने तुम्हारे अंतिम समय में आने को कहा था, लो

मैं आ गया।’ बसन्ती को इन्हीं का इंतजार था, उसने स्वामी सत्यानन्द जी को अपना इष्टदेव मानकर अपने को धन्य माना।

गंगोत्री यात्रा

स्वामी सत्यानन्द जी नवम्बर में नन्दग्राम आये, तीन दिन रहे। उनका प्रोग्राम शक्ति, अमरावती, रींवा, बिहार में बना था। उन्होंने कहा, ‘मई में गंगोत्री, यमुनोत्री जायेंगे।’ सत्यव्रत जी ने कहा, ‘हम भी जाना चाहेंगे।’ स्वामीजी ने कहा, ‘जरूर चलिये। पर हिमालय की यात्रा करनी है तो रोज 2–4 मील तक घूमना शुरू करो, तभी जा सकोगे। गंगोत्री-यमुनोत्री के लिए 250–300 मील पैदल चलना होगा। 10–15 मील रोज चलना पड़ेगा। हिमालय यात्रा में सभी को जाना चाहिए, जो बद्री-केदार, गंगोत्री, यमुनोत्री नहीं गया, उसका काश्मीर जाना व्यर्थ है। शिवांजलि भी जाना चाहती है, उससे पत्र-व्यवहार करके छुट्टी लेनी होगी, और ऋषिकेश जाने पर गुरुजी से मंत्र दीक्षा भी लेनी है। वहाँ पत्र लिख कर तय कर लेना। और कोई बात हो तो पत्र से पूछ लेना। हम मई में दिल्ली में मिलेंगे।’

स्वामी सत्यानन्द जी किसी से पैर नहीं छुवाते थे, और कोई भेंट देते तो नहीं लेते। अगर कोई कुछ रख ही देता, तो कुछ मँगवा कर बच्चों में बाँट देते थे। कुछ रखते नहीं, लेते नहीं। कहते, ‘भोजन देते हैं, टिकट देते हैं, मुझे और कुछ नहीं चाहिए। सत्यव्रत सेक्रेटरी हैं, माँ बसन्ती कोषाध्यक्ष हैं, फिर मुझे क्या सोचना है।’

शक्ति में गजानन शर्मा ने 3 दिन का प्रोग्राम बनाया, अमरावती में स्कूल-कॉलेज व कई प्रोग्राम विष्णु भगवान ने बनाए। कृष्ण चन्द्र सेन्दरे के अनुरोध पर जबलपुर गये। उधर से ही नर्मदा के किनारे कुछ ऐतिहासिक गुफायें देखीं, कई जगह घूमे-देखे। उधर से ही रायपुर (रींवा) गये, देहातों में गये। सभी जगहों से पत्र व प्रवचनों की प्रति आती रही। स्वामी सत्यानन्द जी के साधनात्मक व उपदेशात्मक पत्र आते रहे। मार्च में भागलपुर गये, वहाँ शिव भवन में रहते, सत्संग करते। आरा-छपरा गये, मई में मुंगेर गये। मुंगेर में कर्णचौरा उन्हें अच्छा लगता, रोज घूमने जाते, वहाँ कुछ देर बैठते।

यात्रा के बारे में आदेश-निर्देश प्राप्त होता रहता था। स्वामी सत्यानन्द जी का पत्र मिला, ‘हम 17 मई को दिल्ली पहुँचेंगे, 19 को स्टेशन में मिलेंगे।

21 को ऋषिकेश पहुँचना है, आश्रम में पत्र दे दो, 21 को पहुँचने की बात व 23 को मंत्र दीक्षा आप लोगों को लेनी है, वह भी लिख देना।' आदेशानुसार सब काम चलने लगा। यात्रा की पूरी तैयारी करके सत्यव्रत जी व बसंती 19 मई को दिल्ली पहुँचे, स्वामी सत्यानन्द जी स्टेशन में मिले, उस दिन हनुमान प्रसाद जी के यहाँ रहे, शिवांजलि भी वहीं आ गई, 20 तारीख को हम सब शिवांजलि के घर गये, दिन में मिलना-जुलना व तैयारियाँ हुईं, 21 की सुबह बस से रवाना हुए। स्वामी सत्यानन्द जी का प्रोग्राम 2 दिन का सहारनपुर में था, वे रास्ते में उतर गये। उन्होंने कहा, 23 तारीख को दोपहर तक वहाँ पहुँचेंगे। सत्यव्रत जी, बसन्ती व शिवांजलि शाम को हरिद्वार, फिर ऋषिकेश पहुँचे। पत्र पहले लिखने से कमरा व भोजन मिला। सत्संग करके आराम किया। 22 तारीख को हम लोग बाजार से सामान, माला, प्रसाद लाये। उधर की बहुत-सी अध्यापिकायें गर्मी की छुट्टियों में 1–2 माह के लिए आश्रम आती थीं। शिवांजलि भी हर वर्ष आती थी, उसके साथ हमारी भी सबसे मित्रता हो गई थी, हम सब सभी स्वामियों से मिले, खूब घूमे, सत्संग किया, काम भी किया, बातें भी कीं, जानकारी भी बहुत हुई।

सत्यव्रत-बसन्ती, घर-परिवार-समाज व पूरे शहर में विशेष कार्यकर्त्ता थे ही। उनके घर में गीता-रामायण, भागवत, पूजा-पाठ भी होता रहता था। पर गुरु बनाने के मामले में कुछ विद्रोही ही थे। 1953 में ऋषिकेश गये, तब से स्वामी शिवानन्द जी को गुरु मानने लगे थे। स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा गुरु मंत्र लेना है, तो सत्यव्रत जी ने पत्र भी लिख दिया था। 22 तारीख को बाजार से सामान वगैरह भी ले आये, पर बसन्ती को चुप देखकर सत्यव्रत जी ने अपना ही नाम लिखाया था। वैसे स्वामी सत्यम् ने समझाया भी था कि दोनों एक साथ मंत्र लेंगे।

गुरुवार 23 तारीख की सुबह गुरुदेव की कुटिया में सब बैठे थे, गुरुदेव के सामने सत्यव्रत जी के साथ बसन्ती भी बैठी थी। शिवांजलि भी चाहती थी कि दोनों मंत्र लें। उसने कह ही दिया, स्वामीजी बसन्ती को भी मंत्र दीजिए। गुरुदेव ने बसन्ती की तरफ देखा, उसी समय बसन्ती ने भी सिर उठाकर देखा... उसे लगा कि सामने स्वामी शिवानन्द जी नहीं, स्वामी सत्यानन्द जी बैठे हैं, वह देखती ही रही। स्वामीजी भी देखते रहे, फिर हँसने लगे, फिर कहा, 'समय आने पर इन्हें भी गुरु मिलेगा जी, इनका गुरु इनके घर आयेगा और ये अपने गुरु के साथ खूब काम करेंगे।' फिर हमने देखा कि अब तो

स्वामी शिवानन्द जी सामने बैठे हैं, उनके चरणों में झुक गयी, कुछ निर्णय लेने की क्षमता नहीं रही। सत्यव्रत जी बाद में नाराज भी हुए।

भोजन के बाद सत्यव्रत जी बस स्टैण्ड गये, स्वामी सत्यम् आने वाले थे। स्वामी सत्यम् आश्रम आये, सभी गुरुभाई बड़े उल्लास से मिले। सभी प्रेम व स्नेह से मिल रहे थे। प्रेस वाले तो इन पर न्योछावर हो रहे थे। और जब गुरुजी के पास गये, चरणों में झुके तो लगा कि गुरुजी स्नेह के आवेग में इन्हें अपने में छुपा लेंगे। दर्शनीय था गुरु-शिष्य का मिलन। अद्भुत छटा-सी फैल रही थी, जैसे गुरु की छाया ही गुरु के सामने सशरीर खड़ी हो। जैसे पूर्णिमा के चाँद का प्रतिबिम्ब गंगा जी की लहरों में पड़कर स्वर्ण आभा बिखेर रहा हो।

रात के सत्संग में गुरुजी के आदेश से स्वामी सत्यम् का प्रवचन हुआ। प्रवचन के बाद उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव ने हँसकर उनकी जेब में थपकी देकर कहा, 'लगता है सत्यम् की जेब भारी है।' 'संन्यासी की जेब खाली है स्वामीजी, सत्यम् तो आपसे ही झोली भरवा कर यात्रा करेगा', कहकर हँसने लगे। गुरुदेव भी खूब हँसे, फिर कहा, कीर्तन करो जी सत्यानन्द महाराज की गंगोत्री यात्रा के उपलक्ष्य में, और कीर्तन के बाद जय हो, जय हो, स्वामी सत्यानन्द जी की और उनके सहयात्रियों की जय हो, माँ गंगोत्री की जय हो, कहते हुए चले गये। सब विभोर हो देखते ही रह गये और बहुमूल्य रत्नों से जेब ही क्या, पूरी झोली भर गई।

24 मई की सुबह 4 बजे प्रस्थान करना था। आरा से डॉ. चटर्जी, बम्बई से माता कृष्णानन्द व त्रिवेणी पोद्दार भी आ चुके थे। सात सहयात्री जाने वाले थे। यात्रा के ताने-बाने में सभी उलझे थे, पर शिवांजलि व बसंती तो बातों में भी उलझी थीं। वे दोनों 2 बजे रात से ही गंगा किनारे जाकर बैठ गईं। शिवांजलि हमेशा छुट्टियों में आती थीं, अनुवाद भी करती थीं, उसके उन्हीं अनुभवों में दोनों बहनें डूबती-उतराती रहीं।

स्वामी सत्यम् भी सब आश्रम वासियों से मिले। सत्संग के बाद कुछ यात्रा के बारे में बातें हुईं। बसन्ती से कहा, 'आपको मंत्र लेना चाहिए। देखिए, गुरु तो स्वामीजी ही हैं, जब भी हो वही गुरु होंगे।' और बाहर चले गये। कल सुबह जाना है, रात में ही सबसे मिलना है। आश्रम के हर क्षेत्र में, हर कोने में गये, पूर्व परिचित रास्ते, पेड़-पौधों से मिलते, बढ़ते गये। जंगल, पेड़, पहाड़, माँ गंगा व उनकी भँवर (उल्टी धार) की तरफ, जहाँ आधी रात को तैरते थे। गंगा जी के किनारे की वह बड़ी चट्टान, जहाँ आधी रात को ध्यान

करने बैठते थे और गुरुजी को इन्हें खोजना पड़ता था। सबसे मिलते हुए कुटीर की तरफ गंगा किनारे आये, जहाँ दोनों बहनें संत-गंगा में सराबोर थीं। ये भी शामिल हो गये। ये तीनों सत्संग में विभोर थे, समय का भी पता नहीं ...।

सत्यव्रत जी ने आकर कहा, 'स्वामीजी, 4 बज गये हैं, तांगे वाले भी आ गये।' स्वामीजी ने कहा, आप लोग यात्रा के पहले गंगा माँ से आशीर्वाद ले लो और वे कुटिया की तरफ बढ़े। उसी समय 'ॐ' ध्वनि सुनाई दी और 5 मिनट बाद गुरुदेव कुटिया से बाहर आये, वे इसी समय स्नान करने आते थे। स्वामी सत्यम् ने प्रणाम किया, हम लोगों ने भी जाकर प्रणाम किया, गुरुदेव ने मंगल आशीष दिया–प्रभु आपको आशीष दें। माँ गंगा की जय हो, गंगोत्री यात्रियों की जय हो, स्वामी सत्यानन्द महाराज की जय हो, जय हो ...ॐ नमो नारायणम्।

इस तरह हमारी यात्रा शुरू हुई। आश्रम मुनि की रेती में है। जो शहर से 2 मील दूर है। सब 4.30 बजे रवाना होकर ऋषिकेश पहुँचे। 7 बजे बस रवाना हुई, कई जगह रुकते, 78 मील पहाड़ी रास्ता तय करके शाम को धरासू पहुँचे। यहाँ से पैदल यात्रा शुरू होगी। गंगोत्री के लिए 80 मील जाना, 80 मील आना। फिर यहीं से यमुनोत्री का रास्ता है, आने-जाने का 140 मील। दोनों मिलाकर 300 मील का दुर्गम मार्ग तय करना है। प्रभु शक्ति देंगे, पथ-प्रदर्शक ले जायेंगे।

25 मई को सुबह 3.30 बजे पद-यात्रा शुरू हुई। हमारे साथ 2 कुली थे। काँवर में सामान व बिस्तर रखे थे। एक कन्डीवाला था। माता कृष्णानन्द के लिए कन्डी थी। वे ज्यादा चल नहीं सकती थीं। छः लोगों ने पैदल चलना शुरू किया। हमारे थैले में कैमरा, दवाई, सुई-धागे, सिन्दूर, लौंग-इलायची, बस इतना ही सामान रखा था। हम लोग जगह-जगह चाय पीते, भोजन करते, आराम करते, फिर चलते। किसी तरह 6 बजे शाम को उत्तरकाशी पहुँचे। 18 मील चलने पर पैर बेकाबू हो रहे थे। पर मन में उमंग लहरा रही थी। पहले दिन ही हम 18 मील चले थे, खुश भी हो रहे थे। 4 बजे तक स्वामी सत्यम् वहाँ पहुँच गये थे, बहादुर लोग भी पहुँच गये। कमरा लेकर, साफ करवा कर, बिस्तर खुलवाकर बिछवा दिया था। स्वामी सत्यम् के गुरुभाई स्वामी शारदानन्द, रामप्रेम और अभेदानन्द साधना के लिए उत्तरकाशी आये थे, कुटिया बना कर रहते थे। उन लोगों को पता चला। वे तीनों मिलने आये थे। सत्संग चल रहा था।

हम लोग पहुँचे, स्वामी सत्यम् के आदेशानुसार आराम किया, चाय पी, पैरों में मालिश की, फिर वारुणी गंगा में स्नान करके आये, फिर भोजन करने

गये। स्वामी सत्यम् के गुरु भाइयों को भी रोक लिया था। भोजन के बाद कमरे में आकर सत्संग चला। धर्मशाला के सभी यात्री वहाँ आ गये थे। 9 बजे तक सत्संग चला, फिर उन स्वामी लोगों को थोड़ी दूर तक छोड़ने गये। 2 दिन वहाँ रहने व आराम करने, दर्शनीय स्थानों में घूमने का प्रोग्राम बना था।

दूसरे दिन गंगा जी से स्नान करके आये, फिर स्वामी सत्यम् के गुरु भाइयों के आने पर सत्संग चला, खूब भजन-कीर्तन हुआ। स्वामी रामप्रेम कवि भी थे, उनका भजन 'गंगा किनारे मेरा डेरा' बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने खूब कविता सुनायी। स्वामी शारदानन्द आश्रम में स्टूडियो में थे। सब मिले तो गुरु आश्रम की बातें होती रहीं। भोजन के बाद उनके आश्रम गये, दर्शनीय स्थानों में घूमे, ऐतिहासिक मंदिर देखे, गंगा किनारे घूमते रहे। तीसरे दिन भी पहाड़, पर्वत, मंदिर घूमते बाजार गये। गंगोत्री जल के लिए बरतन लेना था। ताँबे की गंगा झारी ली, एक लोटा लिया, रामेश्वरम् का जल अलग से रहेगा। जब भी जाना होगा, ले जायेंगे। स्वामी सत्यम् ने कहा, ताँबे का एक छोटा लोटा ले लो, उसमें स्वामी शिवानन्द जी के लिए जल लायेंगे। कैसे सुन्दर भाव हैं, इनका जीवन गुरुमय है। ऐसे गुरु और शिष्य के दर्शन भाग्यवालों को ही मिलते हैं। कल हम आगे बढ़ेंगे, यही बातें होती रहीं।

सुबह 3 बजे रवाना होते, 10–11 बजे तक जहाँ धर्मशाला हो वहाँ पहुँच कर स्वामी सत्यम् कमरा ले लेते, बहादुर (कुली) लोगों से कमरा साफ करवा कर सब ठीक से रखवा कर आराम करते। हम सब पहुँचते, थोड़ा आराम करके दुकान जाते, सामान खरीदते, बरतन भी दुकान वाला ही देता। दुकान वाले से कहते तो उनका नौकर भोजन बना देता। हम सब गंगा जी में स्नान करके घूमते आते व भोजन कमरे में ले आते थे। अगर कहीं होटल होता तो वहीं भोजन करते। पहले दिन बसन्ती ने कहा था–हम भोजन बना लेंगे, तो स्वामी सत्यम् ने कहा, तब तो आपको घर में रहना था। अरे, आये हो तो यात्रा का पूरा आनन्द लो, अनुभव होगा, देखो, सुनो, घूमो, सब यात्रियों से मिलो, किसी की मदद करो, सेवा करो, दवाई दो, उन्हें कुछ सिखाओ, और देखो कितना आनन्द आता है, नई बातों की जानकारी भी मिलेगी।

हम लोग 7 थे और 3 बहादुर (कुली) थे। भोजन के बाद वे बरतन साफ कर देते थे, बसन्ती दुकान में दे आती थी। कुछ आराम करके फिर आगे बढ़ते। स्वामी सत्यम् सब बातें समझाते कि कहाँ पर चाय मिलेगी, कहाँ पर दो रास्ते हैं, हमको किधर जाना होगा, कहाँ पर पहाड़ से पत्थर गिरते हैं,

सतर्क रहना होगा। सब समझाकर वे आगे बढ़ जाते, क्योंकि जल्दी पहुँचने से कमरे मिलते, बहादुर लोग भी जल्दी चलते थे, हम लोग शाम तक पहुँचते। 12–14–16 मील चलने पर थक जाते थे, किसी तरह ठिकाने पर पहुँचते, फिर वही क्रम चलता, आराम, स्नान, भोजन, सत्संग, आराम ...। एक दिन 12–15 मील चलते, दूसरे दिन आराम करते, पैरों की सेवा करते, गंगा किनारे घूमते, पहाड़-गुफा, झरना देखते, आनन्द लेते। फिर सुबह 3 बजे यात्रा शुरू होती। यात्रियों को दवाई देते, पहाड़ियों को सिन्दूर, सुई, डोरा देते, आनन्द से आगे बढ़ते। उन लोगों के शब्द बड़े अच्छे लगते, कहते–माई सुई-डोरा देई ... बिन्दी देई ...।

इस तरह महान् संत के सान्निध्य में, हँसते, खेलते, बच्चों सा प्रश्न करते, उत्सुकता से पूछते, पहाड़-पर्वत, नदी-झरने, गर्म पानी का कुंड और ग्लेशियर (बर्फ का पहाड़) पार किये। पगोडे (जापानी मंदिर) देखे। स्वामी सत्यम् हमें अन्दर ले गये। मूर्तियाँ तो वही हैं, पर पूजा की विधि व ध्यान में बैठने का तरीका जापानियों जैसा ही है। स्वामी सत्यम् हमें बताने लगे कि ये लोग कैसे ध्यान करते हैं, इनकी मंत्र और भगवान पर आस्था भी अटूट होती है। अंधेरा होते देखकर मैंने मोमबत्ती जलानी चाही। स्वामी सत्यम् कहने लगे, 'माता जी, अपनी आत्मा का दीप जलाओ न, जो अमिट रहेगा। यह जीवन भी तो दीपक जैसे ही क्षणभंगुर है, मोमबत्ती में कहीं अंधकार का नाश होगा। इसे तो हवा का झोंका खत्म कर देगा। फिर अंधकार ज्यादा भयानक हो जायेगा। आत्मा के प्रकाश को मिटाने की ताकत किसी में नहीं है। आत्मा और आत्मा का प्रकाश अमर है।'

फिर स्वामी सत्यम् हमें तिब्बतियों के खेमे में ले गये। स्वामी सत्यम् ने उनकी भाषा में बातें कीं, वे लोग बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने चाय पिलाई, देखने में अजीब दिख रही थी, स्वाद भी अजीब लगा, पर पाँच मिनट बाद स्फूर्ति सी आ गई। और इस तरह हम लोग यात्रा का आनन्द उठाते हुए 80 मील चल कर 10 बजे माँ गंगोत्री के आँगन में पहुँचे। जैसे माँ की उँगली पकड़कर बच्चा पूछते चलता है, यह क्या है, वह क्या है, इसी तरह हम भी स्वामी सत्यम् के सहारे गंगोत्री पहुँच ही गये। उस पवित्र भूमि में पहुँचकर हमें विशेष अनुभूति हुई। सर्दी इतनी कि गिलास का पानी जम जाय।

धर्मशाला में सामान रख कर गंगा के दर्शन को गये, जल तो छूने पर लगता था जैसे दिसम्बर-जनवरी माह में बर्फ हाथ में रख ली हो। हाथ, पैर

और मुँह ही किसी तरह धो पाए। स्वामी सत्यम् ही वहाँ पर नहाये ...। होटल में भोजन करके आराम किया। 3 बजे गंगा किनारे बहुत दूर तक गये, ध्यान में बैठे, वापस आकर भोजन करके, गंगा माँ के मंदिर गये। भजन-कीर्तन हुआ, स्वामी सत्यम् माता की महिमा बताते रहे, काफी देर तक सत्संग चला, सभी यात्री बैठे रह गये। जब बाहर आये तो बसन्ती का जूता गायब था। वह परेशान हो गई, कहा, मैंने तो यहीं पर रखा था, कोई ले गया, मेरा जूता ले ...।

स्वामी सत्यम् ने कहा, शान्त रहो, जूता जाना तो अच्छी बात है। सोचो कि जूता माँ के दरवाजे से कोई ले गया तो किसी जरूरतमंद ने ही लिया होगा। 80 मील पैदल यात्रा करके तीर्थलाभ लेने वाला जूते की चोरी करेगा, तो मतलब है कि उसके पास जूता नहीं है, पैरों में तकलीफ हुई होगी, पहनकर उसके पैरों को आराम मिलेगा, सोच कर खुश होना चाहिए। तुम्हारे पास तो वैसा ही जूता और है, धर्मशाला तक चलकर अनुभव भी करो, और कल आकर माँ से प्रार्थना करना कि वर्ष में 2–4 बार जूते की चोरी जरूर हो, और तुम्हें अनजाने पुण्य मिलते रहें।

ऐसा लगा कि आकाशवाणी सुन रही हूँ। कमरे में आकर भजन-प्रवचन सुनते रहे। हम अपने विचारों में खोये रहे। बलिहारी है इन शब्दों की, इसके बाद हर वर्ष 3–4 बार मेरी व सत्यव्रत जी की चप्पल या जूता सम्मेलन व सत्संग में ही खो जाता था। फिर तो हमने भी नियम बना लिया कि कभी स्वामी लोगों के लिए, कभी और किसी के लिए जूता जरूर लेती थी।

साथ वाले यात्री श्रम क्लान्ति से परेशान, दूसरे दिन ही स्नान-पूजा करके जल भरा कर दान-दक्षिणा देकर, माँ गंगोत्री की जय-जय करते लौट गये। पर हमें तो 4 दिन रहना है, जंगल-पहाड़ घूमना है, मुश्किल से माँ की गोद मिली है, आनन्द तो लेना ही है। श्री स्वामीजी के साथ आने का सौभाग्य जो पाया है।

स्वामी स्वानन्द स्वामी सत्यम् के गुरुभाई हैं। गंगोत्री (गौरी कुण्ड) में ही आश्रम बना कर रहते हैं। रोज उनसे सत्संग होता। पेड़, पहाड़, गुफा, चट्टान देखते, गंगा जी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक चले जाते। फल-फूल तो वहाँ थे नहीं, पल्ली पार जाते तो सिर्फ भोज पत्र के बड़े-बड़े पेड़ ही दिखते। दूसरे दिन चाकू लेकर गये तो बहुत-सा छाल (भोज पत्र) निकाल कर लाये। घूमते-घूमते थक जाते तो सीधे होटल पहुँच जाते। वहाँ एक अवधूत हैं स्वामी रामानन्द, दूसरे हैं स्वामी कृष्णाश्रम, उनके साथ भगवती (उनकी शिष्या)

रहती है। ये दोनों स्वामी हमेशा वहीं रहते हैं। इनसे बहुत सत्संग हुआ, कृष्णाश्रम जी मौन रहते हैं, वे इशारे से कुछ कहते हैं, उसे भगवती समझाकर बताती थीं। जाड़े के मौसम में सब नीचे आ जाते हैं। पण्डे भी चल मूर्ति को लेकर नीचे आ जाते हैं व दुकान, होटल वाले भी बंद करके आ जाते हैं। सिर्फ दोनों अवधूत व भगवती वहीं रहते हैं। जाड़े में सब तरफ बर्फ जम जाती है, तब ये लोग बाहर भी नहीं जा सकते, ध्यान-समाधि में रहते हैं।

हमें गंगोत्री में छोड़कर स्वामी सत्यम् 'गौमुख' जाने लगे। रास्ता भयानक है कहकर हम लोगों को गंगोत्री में ही रहने को कहा। पर हम लोगों ने भी साथ जाने का निश्चय कर लिया, उनका पीछा छोड़ा ही नहीं, आखिर उन्हें अपना विचार बदलना पड़ा। शाम को हम सब गंगा किनारे बहुत आगे गये, हम सब को थोड़ी-थोड़ी दूर में बैठने कह व जप-ध्यान का आदेश दे वे आगे बढ़ते ही गये, मेरी इच्छा उनके पीछे जाने की हो रही थी, पर उन्होंने एकदम मना किया, और आगे बढ़ गये। अंधेरा होते देख हम सब वापस आ गये। नौकर को खिचड़ी का सामान देकर, सत्यव्रत जी के साथ टॉर्च लेकर स्वामी सत्यम् को देखने जा रही थी। काफी दूर से ज्योति सी आती दिखी। सत्यव्रत जी ने कहा, 'हमें चुपचाप वापस होना चाहिए, सामने स्वामीजी आ रहे हैं, इस पवित्र भूमि की देवशक्ति उनके साथ है', और हम वापस आ गये। जब स्वामीजी आये उनके चेहरे में विशेष चमक, आँखें लाल, हम लोग कुछ कहते तो बोलते नहीं हँस देते, लगा कुछ तेज सा बिखर गया। मैंने भोजन के लिये अनुरोध किया तो 2–4 ग्रास खाकर चुपचाप सो गये। हम लोग काफी देर बैठे रहे। सोने के पहले उन्हें प्रणाम करने पर हम लोगों को विचित्र अनुभव हुआ। उन्हें 6–7 कम्बल ओढ़ाये, फिर भी उनके पैर बर्फ जैसे और उन्हें छूने पर हमारे शरीर में एक लहर (करेन्ट) सी उठती थी।

सब सो गये, मुझे नींद नहीं आ रही थी। ठण्ढ के कारण ध्यान में बैठा भी नहीं गया। सोकर योगनिद्रा करती रही, ऐसा अनुभव सा हुआ कि हम सब को गंगा जी के किनारे अलग-अलग बैठा कर स्वामी सत्यम् आगे बढ़ते जा रहे हैं, चारों तरफ बर्फ है, माँ गंगा के किनारे-किनारे स्वामी सत्यम् चले जा रहे हैं। अब वे खड़े हो गये, शायद कुछ कह रहे हों या प्रार्थना कर रहे हों। गंगा जी से एक ज्योति सी निकली, स्वामी सत्यम् ने उन्हें प्रणाम किया। ज्योति सामने ही बर्फ की शिला पर फैल गई, स्वामी सत्यम् उसी चट्टान पर ध्यान करने बैठ गये, प्रकाश किरण उन पर बिखरी रही। ज्योति आलोप हो

गई, बर्फ गिरनी शुरू हो गयी, स्वामी सत्यम् उसी चट्टान पर सो गये। बर्फ के गोले उन पर गिरते रहे और वे बर्फ से ढक गये, हम लोग उन्हें उठा रहे हैं। उन्होंने कहा–मेरा कहा मानोगे, मेरा साथ दोगे तो मुझे उठाना और मेरा स्वप्न टूट गया।

गंगोत्री में लगता, आनन्द सब तरफ फैला है। वहाँ की देव-शक्तियों ने स्वामी सत्यम् को दर्शन दिया, कुछ विशेष कार्य का आदेश भी दिया। माँ गंगा उन्हें साक्षात् दर्शन देकर उनके शरीर में एक दिन रहीं भी, जिसका अनुभव सभी ने किया।

गंगोत्री में एक दिन गंगाजी में स्नान करने लगे तो सत्यव्रत जी बोले, 'स्वामीजी, इनको (धर्मशक्ति को) कुछ दे दीजिए।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'इनकी तकदीर में तो नहीं है, पर मेरी तकदीर में है। दे दूँगा, मगर मुझे वापस करना होगा। संकल्प करो कि तुम उसे मुझे दोगे, अपने पास नहीं रखना।' हमने कहा, 'हाँ, दे देंगे वापस।' और हमने संकल्प कर लिया। श्री स्वामीजी ने गंगा जल हाथ में लेकर संकल्प करके हमारे ऊपर छिड़कते हुए कहा, 'मैं दे रहा हूँ, तुम लोग वापस करोगे।' हमने कहा, 'आपकी जैसी इच्छा।'

सुबह स्वेटर, शॉल, कम्बल लपेटकर, अँगीठी जला कर बैठे हुए हम स्वामी सत्यम् से सत्संग करते, धूप जब तेज होती, तब सब लोग बाहर जाते। स्वामी सत्यम् ने कहा–मैं इस संसार को चिरकाल से प्रेम करता आया हूँ, इसी से मैंने इसके लीला-विग्रह को देखा है, उसका रुदन मेरा आँसू तथा उसका उल्लास मेरा हास्य रहा है। मैंने परात्पर और विलक्षण सत्ता से कभी मोह नहीं किया है, न करूँगा ही। पर गंगोत्री की इस यात्रा ने मेरे चिर प्रेम के सपने तोड़ से दिये हैं। इसके लीला विग्रह के अन्तराल में विद्रोह का स्वर छिड़ा है। अब शरीर मात्र यहाँ है, लगता है जैसे पर्वतों, बीहड़ पंथों, नदियों और सोपान-वत क्षेत्रों में मैं अकेला चलता जा रहा हूँ, हाथ में लाठी है, साथ में कोई नहीं है, निर्जनता प्रिय बन रही है। हिम संकुलित अनादि हिमालय में मेरे लिए मार्ग-ही-मार्ग है।

गंगा के प्रलाप का घनघोर रव जीवन के कर्ण कटु स्वरों को सिर नहीं उठाने दे रहा है। उत्तुंग शिखरों की ऊँचाई और विशालता मानव अहंकार को अपने चरणों पर नचा रही है। क्या यही गंगा और हिमालय का संदेश है? *'आमि यंत्र माँ तुमि यंत्री, जेमुन चाली तेमुनी चली'* यह स्वर निरंतर चल रहा है।

धूप निकलने पर घूमने जाते, धूप तेज होने पर दोपहर में गंगा जी जाते, पानी के अन्दर जाने की हिम्मत नहीं थी, किसी तरह 2–4 लोटा पानी अपने ऊपर डाल लेते, धूप लग कर ठीक होते तो कपड़े बदलते। हाँ, स्वामी सत्यम् रोज डुबकी लगाकर नहाते थे, हम तो किसी तरह कपड़े निचोड़ कर धर्मशाला में आकर फैलाते और पहुँच जाते होटल के चूल्हे के सामने।

तीसरे दिन दोपहर में अचानक बदली आई, बारिश हुई और बर्फ पड़नी शुरू हुई। लगता चारों तरफ रुई उड़ रही हो। पेड़, पहाड़, जमीन, सब बर्फमय हो गये। वहाँ के लोग कहने लगे, माँ प्रकृति तो स्वामी को अपना रूप दिखा रही है, जून महीने में इस तरह बर्फ 15 वर्ष से नहीं गिरी थी। अगर 4 घण्टे इसी तरह बर्फ गिरती रही तो, सब तरफ बर्फ जमेगी ही, गंगाजी का जल भी बर्फ बन कर जम जायेगा। फिर छेनी-हथौड़े से बर्फ को तोड़कर, बरतन में रखकर गरम करके पानी बना कर पीना पड़ेगा। प्रभु की महिमा अपरम्पार है।

शाम तक बर्फ गिरनी बंद हो गयी, पर सर्दी सुरसा जैसे मुँह खोले थी। हम सब 3-3 कम्बलों में लिपटे, अँगीठी के चारों तरफ बैठे थे, स्वामी सत्यम् के प्रवचन रूपी टॉनिक से अपनी रक्षा कर रहे थे, अगर स्वामी सत्यम् जरा देर चुप हो जाते तो हम लोग सर्दी से काँपने लगते। स्वामी सत्यम् ने कहा– 'प्रतिवर्ष हजारों यात्री इस पवित्र भूमि की यात्रा करते हैं। घर से भक्ति का अम्बार लेकर चलते हैं, मार्ग की कठिनाई से त्रस्त हो, माँ गंगा के दरवाजे पर आकर, भक्त और भगवान को अलग-अलग दो ध्रुव मान कर, अल्प मूल्य के उपहार चढ़ाना ही तीर्थ यात्रा की इतिश्री मानते हैं। तब संतों-ऋषियों के युगों-युगों के श्रम पर पानी फिर जाता है। तीर्थ यात्रा की तपस्या भी वृथा गई, जो भक्त और भगवान की दूरी को एक कर रही है। अब तो बद्री-केदार जाना सहज हो रहा है, हाँ, गंगोत्री-यमुनोत्री में अभी श्रम व आनन्द है, पर 20–25 साल में सब सुविधा होकर आनन्द तिरोहित हो जायेगा। मानव चाँद-सूरज तक पहुँचेगा, पर मानवता को भूलता ही जायेगा।

संसार की तमाम नदियों में अलकनन्दा ओत-प्रोत है। काबा, काशी, मस्जिद, गिरजा, सभी में इसकी गरिमा है। बाइबिल हो या कुरान, अवेस्ता हो या पुराण, सभी में हिमालय के गीतों की मालायें हैं। सन्त हो या फकीर, पादरी हो या मौलवी, सभी की आत्मा में बद्रीकाश्रम की ही पुण्य प्रतिच्छवि है। इसी का संदेश सुनाने मुहम्मद आये, इशु आये, इसी के गौरव को समझाने कबीर, नानक, नामदेव, प्रभृति सन्त आये।

मानव के खून में श्वेत रक्त कणिकायें, लाल रक्त कणिकायें नहीं, बल्कि श्वेत निर्मलता है। हिमालय की हरीतिमा है। इनके स्नेही अंक की नीलिमा है, इसमें गगन की और जीवन की गति है अलकनन्दा के धारों की।'

भैरो घाटी में भोजन के बाद स्वामी सत्यम् का आदेश हुआ कि आराम करो जल्दी सो जाओ, पर हम लोग कुछ लकड़ी ले आये, उसे जलाकर भजन करने लगे। स्वामी सत्यम् हँसने लगे कि हम जानते हैं आप लोग क्यों इतनी सेवा कर रहे हैं, लगता है केदारनाथ की यात्रा करनी है।

हमने कहा, स्वामीजी हम लोग बद्री-केदार तो नहीं जा रहे हैं, आप हमें यहीं से साक्षात्कार करा दीजिये।

बद्री-केदार यात्रा विवरण

स्वामी सत्यम् ने हमें अपनी ब्रदी-केदार यात्रा का अनुभव बताना शुरू किया। उन्होंने कहा, हम पहले बद्रीनाथ, केदारनाथ दो-दो बार जा चुके हैं।

बद्रीनाथ से 3 मील दूर उत्तर में माना के समीप पाराशर, व्यास, जैमिनी ऋषि सरस्वती के किनारे रहते थे। वेद-व्यास ने चारों वेदों का सम्पादन यहीं किया था। बादरायण सूत्र यहीं लिखे गये थे। पाणिनी ने व्याकरण यहीं लिखा और कश्यप मुनि सम्प्रदाय सर्वप्रथम यहीं पर स्थापित हुआ था। उत्तर काल में रामानुज और माधवाचार्य यहीं रहे और ग्रंथों का पारायण किया। जहाँ केदार के पीछे की सनातन हिम श्रेणियाँ अगम्य हैं, वहीं बद्रीनाथ की पृष्ठभूमि सभ्यताओं के आक्रमण से निष्क्रमण हो रही है। मार्ग सुलभ होने से, बहिर्देशीय जातियों का सैनिक तथा सांस्कृतिक प्रवेश इसी मार्ग से हुआ।

भगवान बादरायण की विजय गाथा का स्मारक ही यह बदरीकाश्रम है। संस्कृत के मूल स्तोत्र, हमारे धर्म ग्रंथ रचने वाले क्रान्ति द्रष्टा श्री बादरी ही इस पुरी के प्रथम ऐतिहासिक गौरव थे। अलकनन्दा के किनारे तम, तृण विहीन उच्च और निर्मल शिखरों की संस्कृति के भावों, काव्यों, कथानकों, वेदों का पारायण हुआ। छलकती हुई इस देव-पूज्या के पुण्य रव की प्रेरणा पाकर शान्त-रसप्लावित सामवेद की रचना हुई। इस पुनीत भूमि ने पुण्यात्मा संतों के मानस को पवित्रता से ही सींचा। यहाँ न क्लब थे, न वरांगना थी, न सिगरेट थे, न सुरा थी, और न ही विलासिता के देव थे। तभी तो यह आज तक अनवरत गति से ऐतिहासिक आक्रमणों, काल की चपेटों, ऋतु-संधानों के बावजूद भी कोटि-कोटि कण्टक आत्माओं को पवित्रता के मंत्र

में दीक्षित करती आ रही है। यहाँ हमारी वेदकाल, ब्राह्मण काल, उपनिषद् काल, भागवत काल तथा अतीत के गौरवमय युगों की सभ्यता बिखरी पड़ी है। ये नर-नारायण पर्वत जो हैं, अपने भारत की दीन-हीन दशा देखकर योग्य अधिकारी का पंथ निहारते पथरा गये हैं।

बद्रीकाश्रम 10480 फुट की ऊँचाई पर है। भूगर्भ विस्फोट परम्परा में उत्तर-कालिक होने के कारण इसकी भूमि की आग अन्य अंचलों की तरह ठण्ढी नहीं हुई है। उन पर हिम शोभा भी नहीं विराजती, सन्त हृदय की तरह कण्टकहीन वृक्ष हैं। जैसे इस पुरी ने भी संन्यास ले लिया है। ज्योतिर्मय, ख्याति प्राप्त होने पर भी आध्यात्मिक तत्त्वों से शून्य है। यहाँ अलकनन्दा नहीं है, न हिमालय सुलभ सौम्य सभ्यता ही है। शरदकाल में यहीं बदरी नारायण की पूजा होती है। यहाँ से एक रास्ता दाहिने तरफ से भविष्य बदरी की ओर जाता है। वह मंदिर अशोकोत्तर कालीन है, किन्तु सातवीं शताब्दी का निर्माण है, क्या किसी अतीत में इन उपत्यकाओं ने इस देवालय के प्रांगण से त्रिशरण और पंचशील के जागृति मंत्र के गीत सुने होंगे? और इस अलकनन्दा के किनारे आर्यों के दिग्चारी पथ पर चीवर-पात्रधारी निःस्पृह श्रमण कभी त्रिपिटिक की महाबुद्ध वाणी का उच्चारण कर चुके होंगे। यह विश्व विजयी आर्यों की जन्मभूमि है।

शताब्दियों से अज्ञान के अंधकार, भावनाओं की संकीर्णता और जीवन की व्यथाओं के निराकरण के लिए, कोटि-कोटि भारतीय इस पार्थिव देवता तक गये हैं। भक्त और भगवान के पवित्र स्नेह की अलकनन्दा में स्नान करवाने के लिए ही यह चिर-सुन्दर, देव-पुरी हमारा आह्वान् करती आई है। क्या कोई इसके स्पर्श से अपने जीवन को पुण्य तीर्थ बनाने इसके आंगन में गया?

इस पार्थिव नारायण के देवालय की भीड़ का अनुमान लगाना कठिन है, भीड़ तो लगी ही रहती है, पर इसका असली देवालय निर्जन है। कौन उस घर में जाकर नारायण के स्नेह, प्रेम, आशीष को प्राप्त करेगा? और कौन बताएगा हमें उस अपार्थिव नारायण का पता? मंदिर में पूजा-भेंट की निधि तो बेशुमार आती है, पर धन्य रे मानव, तू कितना कृपण है, अपने प्रियतम के प्रति प्रेम की डींग तो हाँकी, पर तूने उसे नकली नाशवान धातु के उपहार ही दिये, और इस संसार को तूने एकमात्र शरीर, बहुमूल्य आत्मा दी। आश्चर्य है, नारायण ने तुझे उत्तम योनि दी, और तू इतना मंद मति कि उन्हें अपनी आत्मा के बदले

बाजारू वस्तु दे डाली, तो भी भक्त बना बैठा है। इतना कहते भाव विह्वल हो उठे ... फिर कहा ... अच्छा तो आगे सुनिये।

यह मंदाकिनी है, जो परिवर्तनशील नाम-रूप के पीछे अपरिवर्तित चेतना की धारा के समान बहती रहती है। यह अमृतमयी दुग्धधारा है। इसको देखते ही नेत्रों को विश्राम, कर्णों को संगीत, शरीर को शीतलता, हृदय को उल्लास और आत्मा को पवित्रता का वरदान मिलता है। यह अप्रतिहत चंचला अपने यौवन की उमंग में घमण्डी पर्वतों की छाती पर दरार बनाती आ रही है। जैसे मन की मन्दाकिनी साधुता के घमण्ड को चूर कर जाती है।

मुझे जंगल, पहाड़, सरिता, चन्द्रमा और चलने से प्रेम है। ये मुझे जीवन के सत्य प्रतीत होते हैं। जिसने जीवन में सच्चाई से इस आनन्द और खूबसूरती का मजा नहीं उठाया, वह ईश्वर सृष्टि के माथे का कलंक है। जो केदार नहीं गया, वह काश्मीर का आनन्द कैसे अनुभव करेगा। इसी रास्ते से पाँचों पाण्डव, द्रौपदी व कुत्ते के साथ गये थे ...।

यह मार्ग सनातन है। सबको इस पथ पर चलना होगा। इस जीवन रूपी रात को एक सराय में बितायेंगे, फिर दूसरी सराय खोजेंगे, थोड़ा विश्राम करेंगे, खायेंगे, पीयेंगे, फिर उसे छोड़ कर जाना होगा। जो यात्री इस उतार-चढ़ाव के भय से इसी में टिके रहना चाहेंगे, उन्हें अवधि व्यतीत हो जाने पर निरादर के साथ निकाल दिया जावेगा। हे यात्री, श्रम सीकर, अंग क्लांति, गरम सूरज, ठण्ढी हवा, भूख और प्यास के बावजूद भी चले चलो, तेरा केदार महापंथ अब करीब है। इसका चप्पा-चप्पा कर्म, कविता और प्रेम के गीत गाता है। यह सड़क जो केदार से मिलने जा रही है, मालूम होता है, चिर-वियोगिनी की तरह अपने इष्ट से मिलने दौड़ रही है। वहाँ तो मुझे भी लगा था कि मैं भी किसी से मिलने जा रहा हूँ।

गौरी कुण्ड समुद्र की सतह से 6000 फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ गरम पानी का कुण्ड है। आगे 7 मील की चढ़ाई है। चन्द्रमा की शान्त छटा और चिर वियोगिनी पर्वत-राशियों के चिर-द्रष्टा नेत्र मन्दाकिनी का चिर-किल्लोल प्रेम राग और पथ पर तरु-पल्लवों की खिसकती छाया हमारे मन को अपनी ओर खींचते थे, परन्तु सबसे अधिक आकर्षण था 12750 फुट की ऊँचाई पर रहने वाले 'किसी' का, जो अन्य सुन्दरताओं के खिंचाव को भी कम कर देता था। जबर्दस्त चढ़ाई, सब बढ़ते जा रहे थे, मीलों के पत्थरों से भी साथी का पता पूछ रहे थे, उत्तर भी मिला, संकेत भी मिला, फिर आगे बढ़े, ठण्ढी हवा

चलने लगी, हृदय का पम्प श्रम का अनुभव करता जा रहा था। पेड़ मस्ती से हँसने लगे थे। केदार का श्वेत हिमांचल मानो मिलने के लिए निकट आने लगा था। सब गधों की तरह कम्बल लादे, अन्धों की तरह लाठी टेकते, लंगड़ों की तरह खिसकते से 'जय केदार नाथ' का उच्चारण करते बढ़ रहे थे। 10500 फुट गंगोत्री की ऊँचाई पर पहुँच गये। तीन ओर के शिखर गंगोत्री की तरह खड़े नहीं, ढलुआ हैं। अत: बेशुमार हिम राशि तीनों ओर सोई पड़ी है और शीत गंगोत्री से बहुत अधिक है।

केदारनाथ सामने है, 12750 फुट ऊँचा। तीनों ओर इसके हिम मंडित पर्वतों के ढलुआ मैदान, चारों ओर खुली हरीतिमा, संकुलित मैदान, न वृक्ष, न पौधे, एक संन्यासी के सिर की तरह सफाचट। साहस का प्रतीक है यह, मानवता के चिर पोषित आलस्य को चुनौती है केदारनाथ का आह्वान्। कोटि-कोटि अहंकार रूपी पशुओं की बलि दी जा चुकी है इसके प्रांगण में। इसके रूप को किसने देखा है? इसका पता कौन जानता है? *'कइरुथा वेद मंत्र स:'* क्या वह यहाँ है? इस पत्थर के मंदिर के अंदर कौन देवता छिपा है? इस पत्थर को कौन तोड़ेगा? पशु-स्वभाव-सुलभ क्रूरता के पत्थर को तोड़कर जो इस मंदिर में प्रवेश करेगा, उसे ही वह दिखेगा। यह लिंग खुरदुरा है। पुरातत्त्व की आलोचक भावनायें कहती हैं कि यह किसी समय किसी की मूर्ति रही होगी, जो किसी कारणवश छेनी के चमत्कारों से बदलकर, वर्तमान लिंग रूप में आ गई होगी। मंदिर की आयु अशोकोत्तर कालीन प्रतीत होती है। इसके दाहिनी ओर दीवाल के पत्थर पर दो शीश खुदे हैं, जिनके कान लम्बे हैं। छाती के भाग को लगता है मांज दिया गया है।

दोपहर से बारिश शुरू हुई, बर्फ गिरने लगी, हवा चलने लगी। पण्डे ने हमें और रजाई-कम्बल दे दिए, एक मोटा कालीन और दरी भी दी, तो भी ठण्ढी–ओह! मैं शाम को पाँच बजे ऊपर चढ़ने लगा, साथ के स्वामीजी नहीं जा सके, श्वास का कोई चारा नहीं था। करीब 500 फुट तक और गया। पर्वत ढलुआ था, पैर रखने को पत्थर भी नहीं मिल पाता था, थूक गिराये नहीं गिरती थी। जूते जमने लगे, हृदय मानो शिथिल होने लगा, ऑक्सीजन कम होती जा रही थी। वहाँ से मन्दाकिनी का गर्भ-गृह देखा, स्वर्गारोहण का रोमांचक पथ देखा, ऐसा लगा उछल कर आकाश छू लिया जाए। इतिहासों के साक्षी अनेक हिम शिखरों के दर्शन किये। नयनों को अमृत मिला। अन्तर सरोवर से किसी अतीत की स्मृति जागी। जीवन में पहली बार अकारण रोना आ गया। आँखें

डबडबाईं, बहने लगीं, हिचकियाँ आईं। इतने विशाल सौन्दर्य, शान्ति, सिद्धि के देश! आज तू क्या हो गया है! कितना नीचे गिर गया है, तूने मंदाकिनी का अमृत पीकर समाज में जहर उगला है, तूने साहस के सनातन शंख को तूती की आवाज समझ लिया है।

भारत वह क्षेत्र है जहाँ से भागवत सभ्यता का उदय हुआ, मंदाकिनी की धारों, पर्वतों के उतारों, उबड़-खाबड़ पगडंडियों के सहारे से वह उतरी, भारत, अरब, ग्रीस तथा पूरे विश्व में व्याप गई। इसी ने ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर को जगाया, पर आज वह भय से परिपूर्ण गृहस्थों की भावनाओं का नाजायज फायदा उठाने का बहाना बन गया है। केदार तूने ही तो हिरण्य-गर्भ रूप में वेदों का उच्चारण किया। पर आज तेरे उत्तराधिकारी कहाने वाले, पाँच आना, दस आना, बारह आना, जो श्रद्धा हो, दे दो भाई–आदि का उच्चारण करते हैं ... कहते-कहते स्वामी सत्यम् भाव विभोर हो उठे–उनका गला भरभराने लगा ...।

वापसी यात्रा

हमने चौथे दिन जल भराया, गंगा माँ की पूजा की, प्रार्थना की और भारी मन से गंगोत्री से विदा हुए। जैसे गये थे जगह-जगह रुकते, आराम करते, हँसते-खेलते, सत्संग-प्रवचन का आनन्दानुभव प्राप्त करते, नदी-झरने में स्नान करते, वैसे ही वापसी यात्रा शुरू हुई। ग्लेशियर पार किये, काफी छोटा हो गया था, जगह-जगह से पानी जैसे बह रहा था, इसी समय उसमें खतरा भी रहता है। खैर, हम सकुशल गंगा दशहरा के दिन उत्तरकाशी पहुँचे। गढ़वाली लोग उस दिन गंगा अवतरण का पर्व मनाते हैं, गंगा माँ की पूजा करते व जल ले जाते हैं। गढ़वाली महिलाओं को नये कपड़े, जेवर में देख कर, उनका प्रफुल्लित चेहरा देखकर बहुत अच्छा लगा। उनका यह कहना, 'माई सुई दे डोरा दे बिन्दी दे माई ...' बहुत अच्छा लगता। वे लोग दूर-दूर से उत्तरकाशी आयीं थीं पूजा करने।

भटवाड़ी से ही यात्रा का आनन्द शुरू हुआ था। वापसी में हम लोग वहाँ दो दिन रुके। वहाँ की प्राकृतिक छटा नयनाभिराम थी। शाम को हम लोग झरने के पास बैठे प्राकृतिक शोभा देखते थे। मैंने कहा, 'स्वामीजी, जीवन यात्रा का अध्याय बीत जायेगा, हम फिर से संसार-सागर की आशा-निराशा में उलझ जायेंगे। कितना अच्छा होता हम लोग यात्रा ही करते रहते।' स्वामीजी

ने कहा, 'जीवन के पुराने पन्ने फाड़ दो, आध्यात्मिक जीवन शुरू हो गया है। गंगोत्री में तुम्हारा पुनर्जन्म हो चुका है। यह योगमय जीवन है। माँ गंगा का, देव-शक्ति का आदेश मुझे प्राप्त हो चुका है, तुम्हें 'कुछ' दूँगा। यह तो अभी भी हो सकता है, पर तुम्हें आत्म शक्ति के मार्ग पर कुछ तैयारी करनी है। अपने मानसिक धरातल से तमाम अशान्ति और तन्द्रा, ईर्ष्या और असन्तोष, भूत और भविष्य के पचड़ों को हटा दो, शारीरिक धरातल पर गृहस्थ कर्म करो। बौद्धिक स्तर में जीवन के कर्मों को सोचो, पर उससे आगे प्रपंच के संस्कारों का प्रवेश नहीं होने दो। मुरली जब कन्हैया के पास गई तो उसमें से मधुर स्वर निकलेंगे ही। इसी भाँति इष्ट की सेवा में समर्पित जीवन, शक्ति, ज्योति और ज्ञान की गंगोत्री बन जाता है। तुम साधिका हो, तुममें शक्ति है। हठधर्मी, व्यथा, भार, घुटन बीते इतिहास के पन्ने हैं। नये इतिहास का नाम है आत्मदर्शन, इष्ट चिन्तन, प्रसन्नता, आनन्द, मस्ती, ऐसा ही कुछ।

तुम जो चाहोगी हो जायेगा। अत: अमंगल अनिष्ट चिन्तन कभी न करना, न अपना, न दूसरों का, भूलकर भी नहीं। 'मेरा देवता सब कुछ करेगा', अच्छा करेगा, मंगलमय करेगा, मेरे हित की करेगा, यह भाव मन में आ जाये तो जीवन की व्यथा हट जाये। निराशाओं से घबराना नहीं, मजबूत बनना सीखो। भूतकाल की निराशाओं के पन्ने अज्ञान की खाई में फेंक दो। दुनिया का जीवन आशा-निराशा का पिंजरा है, और आध्यात्मिक जीवन, आनन्दमय खेल का मैदान है। हमें चोट लगती है, जीत होती है, हार होती है, तो भी हम हँसते हैं। जीवन की अन्तर्निहित वेदनायें, माया-मोह, काम-क्रोध जल्दी मिटने चाहिए। तुम्हें स्वयं समझना है। वासनाओं के जीर्ण पत्र जल्दी झड़ो ताकि नई कोपलें, नए फूल खिलें, नये बसन्त का अभियान हो।'

उत्तरकाशी में हम बिड़ला धर्मशाला में ठहरे थे, स्वामी सत्यम् के गुरु भाई स्वामी शारदानन्द, अभेदानन्द, रामप्रेमानन्द मिलने आये, खूब सत्संग चला। शिवानन्दाश्रम की बातें होने लगीं। दूसरे दिन सुबह से भजन-सत्संग, भोजन, जंगल, गुफा, मंदिर, दर्शनीय स्थान, दो दिन व्यस्त प्रोग्राम रहा। उन लोगों ने खूब घुमाया, कई पुराने मंदिर व गुफायें दिखायीं। रोज 'गंगा किनारे मेरा डेरा' भजन स्वामी रामप्रेम ने सुनाया। स्वामी सत्यम् ने 'दुलहन जाकी राधा रानी, दुल्हौ नन्द कुमार' भजन सुनाया, यहीं से शुरू किया था सुनाना, रोज सुनाते थे। अंधेरे का शुभागमन होने पर मैंने मोमबत्ती जलानी चाही, तो स्वामी सत्यम् ने कहा, मोमबत्ती जलाने की जरूरत नहीं है, मन का दीपक जलाओ,

मन तो जगमगाता दीया है, उस पर माया-मोह-अज्ञान का आवरण पड़ा है, उसे हटा दो, जगमगा उठेगा। हम उनकी बातें सुनते रहे। अनुभव करते रहे कि ज्योति की असंख्य रश्मियाँ हमारे चारों तरफ फैलती जा रही हैं। स्वामी सत्यम् कह रहे थे, अंधेरा और उजाला, यह संसार की देहरी है, इसके अन्दर प्रवेश करने से साढ़े तीन तरफ दीवारें दृष्टि-पथ का अवरोध करती हैं, कुछ दिन के बाद दम घुटने लगता है। तब फिर मुक्ति के प्रशस्त खेतों में हवाखोरी की इच्छा होती है, और साधु-संत की जरूरत महसूस होती है। चारों ओर की अस्त-व्यस्त मानस-किरणों को केन्द्रित कर सुस्थिर चित्त से ध्यान का आनन्द प्राप्त करो।

अब तो पूजा-पाठ का दर्जा पीछे रह गया, आप लोग अगली कक्षा में हो। अब परा भक्ति का कोर्स लेना है। मन को बाहरी देव में नहीं, सूक्ष्म रूपमय, सूक्ष्म नाममय, जपमय तत्त्वों में लय कर दो। नाम को रूप में मिला दो, रूप को अपने अन्दर ले लो। रूप वृत्ति जब अपने में मिल जाती है, तब संग चित्तता और ज्ञान का अवतरण होता है। याने मन को जप में लीन कर दो, धारणा में लीन कर दो। जप को इष्ट चिन्तन में लीन कर दो। इष्ट को अपने अंदर प्रत्यक्ष करो। यहाँ पर अपना पुरुषार्थ पूरा हो जाता है। अंधेरे और उजाले का भेद मिट जाता है। गाड़ी स्वत: चलने लगती है।

स्वामी सत्यम् ध्यान में थे, पर लगता था वे बोल रहे हैं, हम सुन रहे हैं, फिर हम भी ध्यान में मग्न हो गये।

ऋषिकेश में वापसी

सुबह 3 बजे से हमारी पद-यात्रा की आखिरी मंजिल शुरू हुई, स्वामी सत्यम् आगे जा चुके थे, हमें उत्तरकाशी से धरासू पहुँचने तक काफी परेशानी का सामना करना पड़ा। धरासू के पहले दोपहर से ही पानी गिरा, ओले पड़े, थक भी गये थे, कपड़े गीले होने से चलने में भी परेशानी हो रही थी। पर किसी तरह बढ़े जा रहे थे। स्वामी सत्यम् पहले ही पहुँच गये थे। छ: बजते देख हमें देखने आ रहे थे। हम लोग किसी तरह पैर घसीट रहे थे, उन्हें देख खुशी से दौड़कर प्रणाम किया और कहा, आज तो हम लोग आँधी-तूफान से बच कर वापस आ गये; हमारी पैदल यात्रा पूरी हो गई।

स्वामी सत्यम् ने कहा, आप लोगों को बहुत तकलीफ हुई, आप लोग 160 मील पैदल यात्रा करके, भयानक दुर्गम मार्ग पार करके, माँ गंगोत्री के दर्शन

करके आ रहे हैं, इसी उपलक्ष्य में बादलों ने जल बरसा कर अभिषेक किया है। सत्युग, त्रेतायुग में देवता फूल बरसाते थे, अब कलियुग में ओले-पत्थर बरसाये हैं कि आप लोगों की यात्रा सफल हुई। यह तो यात्रा की शुरुआत है, जीवन में दुनिया के रंग-मंच पर बहुत यात्रा करनी है। चलो स्नान, भोजन, सत्संग, आराम, आज अंतिम दिन है, कल 75 मील बस से यात्रा करके ऋषिकेश पहुँचेंगे।

सत्यव्रत जी ने कहा, हम तो यात्रा के लिये निकल ही पड़े हैं, जैसे, 'बिन लाठी का निकला अंधा' 'और अब तो साथ तुम्हारे ही हैं ठुकरा दो या साथ रखो'। हम तो आप को छोड़ने वाले हैं नहीं। स्वामी सत्यम् ने कहा, 'हम लोग सहयात्री हैं जी। हम आप लोगों की प्रगति के लिये सहयोग देते रहेंगे, आप लोगों का पथ प्रदर्शन करेंगे, चलना तो आप लोगों को है।' मैंने कहा, 'स्वामीजी, हमने इस यात्रा पर चल कर कितनी बहादुरी की है, क्या इनाम नहीं देंगे? सत्यव्रत जी ने तो अपना अधिकार बड़े स्वामीजी से ले लिया है, क्या मुझे आप से अपना अधिकार नहीं मिलेगा?'

स्वामी सत्यम् ने कहा, ऐसा समझो कि बड़े स्वामीजी से आप को भी मंत्र मिला है। आप लोगों को मैं अवश्य ही 'कुछ' दूँगा, पर क्या यह तो समय आने पर ही पता चलेगा। ज्योति, शक्ति और ज्ञान के सम्पादन के लिए साधना शुरू कीजिये, मुझे माँ गंगा का आदेश मिल चुका है, मैं एक ऐसे वट वृक्ष का निर्माण करूँगा, जिसकी छाया में संसार के भूले-भटके, दीन-दुःखी असहाय लोग शान्ति व सहारा पा सकें। साधना करनी है आप लोगों को भी और मुझे भी, समझ गये न? चलिये आप लोगों को गरम पकौड़ी खिलायेंगे, उसके बाद गंगा स्नान करने पर सब थकान छूमन्तर हो जायेगी।

धरासू से सुबह बस से रवाना होकर शाम को ऋषिकेश पहुँचे। तय हुआ रात हो रही है, इधर ही गंगा घाट के दर्शन करके, भोजन करके चलेंगे, 9 बजे तक पहुँचेंगे। आश्रम पहुँचे, सबसे मिले, कमरे लिए, फिर कुछ स्वामी लोगों के साथ गंगा किनारे बहुत देर तक बातें करते रहे। सुबह स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन को गये। स्वामी सत्यम् के आदेशानुसार बसन्ती ने उन्हें जल का पात्र दिया, उन्होंने प्रफुल्लित होकर कहा, जल हाथ में दो जी, हम आचमन करेंगे। बसन्ती ने काँपते हाथों से उनकी अंजली में जल ढाल दिया, परमगुरु महाराज ने प्रसन्नता से जल को माथे से लगाकर पान किया, फिर कहा–सबको जल दो जी, माँ गंगा की जय हो, प्रभु आप सबको आशीष दें!

उन्होंने अपने पास बैठा कर कॉफी-दोशा का प्रसाद खिलाया, यात्रा की बातें पूछीं, फिर हिमालय व कैलास मानसरोवर की बातें बतलायीं। सत्संग के बाद, विश्वनाथ मंदिर में जल चढ़ाया, पूजा की। वहाँ 2 दिन रहे। स्वामी शिवानन्द जी का सत्संग सुनते, फिर भोजन करके ऋषिकेश के सभी दर्शनीय स्थान घूमते, सभी आश्रमों और संस्थाओं में गये। गंगा किनारे बैठते, फिर गीता भवन आकर, स्टीमर से आश्रम आते। सत्संग के बाद गंगा किनारे घण्टों बैठते। स्वामी सत्यम् कहते, अब हम ननिहाल से माँ के घर आ गये। गंगोत्री नानी थी, हम सब नाती-पोते थे, नानी की गोद में खूब शरारत करते। यहाँ की गंगा माँ कर्तव्यपरायण माँ है, शान्त व गंभीर, समय पर दुलार व ताड़ना देने वाली ...।

पूर्णिमा के दिन हरिद्वार पहुँचे, शाम को हर-की-पौड़ी में गये, स्नान किया। वहाँ कई जगह गुलाब फूलों का ढेर लगा था, दर्शनार्थी फूल-दीपक (कागज के दीपक में एक फूलबत्ती घी में भींगी) लेकर चढ़ाते, पानी की लहरों में बहते फूल व जलते दीपक बड़े नयनाभिराम लगते। स्वामी सत्यम् ने कहा–इन फूलों की सिर्फ यही चाह है, माँ की गोद में अबोध शिशु-सी क्रीड़ा करते रहें। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता साकार हो उठी है–

मानो माँ गंगा कह रहीं हैं,
ये मेरी गोद की शोभा,
सुख सुहाग की लाली।

माता कृष्णानन्द व त्रिवेणी चली गईं, हम लोग वहाँ एक हफ्ते रहे। सुबह से कभी मनसा देवी, कभी चण्डी देवी, कभी कनखल जाते, जितने दर्शनीय स्थान हैं, सब देखे, दिनभर घूमने के बाद, शाम को हर-की-पौड़ी पहुँचते, वहाँ घण्टों बैठते, आरती देखते, सत्संग करते। खूब आनन्द उठाया, फिर डॉ. चटर्जी भी चले गये। बचे हम चार, स्वामी सत्यम्, शिवांजलि, सत्यव्रत जी और बसन्ती। ये लोग दिल्ली गये, वहाँ दो-तीन दिन रह कर चारों मथुरा पहुँचे।

मथुरा-वृंदावन की यात्रा

जून माह की गर्मी, हम लोग परेशान हो रहे थे, पर मथुरा में आनन्द की खोज में भटकते रहे। शाम को जमुना जी पहुँचे। वहाँ लोग नावों में सैर कर रहे थे।

एक बूढ़ा नाविक पुरानी नौका लिये बैठा था, उसके पास कोई नहीं जा रहा था। स्वामी सत्यम् ने कहा, चलो हम लोग बूढ़े की नाव में सैर करेंगे। वहाँ के लोगों ने मना किया, बसन्ती ने भी विरोध किया, स्वामी सत्यम् ने कहा, 'संसार सागर की नाव तो इससे भी पुरानी है, कई जगह से टूटी भी है, उसकी तो चिन्ता नहीं है, जमुना मैया की गोद में घूमने नयी नौका चाहते हैं।'

सत्यव्रत जी ने कहा, हमें नाव से क्या मतलब, *'बूढहि सकल समाज, चढई जो प्रथमहि मोह वश'*, हम तो आपके साथ हैं, 'सौंप दिया है जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।'

नाविक बहुत खुश होकर हमें घुमा रहा था, भजन भी सुनाया। रात होते देखकर सब लौटने लगे। स्वामी सत्यम् ने कहा, हम लोग 9 बजे तक घूमेंगे, 3–4 मील तक चलो। मल्लाह खुश था, सामने जो भी मकान दिखता, कंस के महल का खंडहर दिखा, सब का इतिहास बताता रहा। रात का समय, नीले जल पर अकेली नाव, चारों तरफ पानी ... 9 बजे वापस हुए।

वृन्दावन गये, दिनभर घूम कर सब जगहें देखीं। मथुरा के सभी ऐतिहासिक स्थल घूमे, कृष्ण जन्म भूमि, कारागार नया व पुराना देखे, एक इंच भूमि भी नहीं छोड़ी, इतना देखा, पर संतोष नहीं हुआ, विश्राम घाट में बैठकर तर्क करते, पत्थर जैसे बड़े-बड़े कछुवे, उनके कारण नहाने में डर लगता था। सब तरफ जाकर, घूम कर मन में अजीब तर्क चलने लगता।

भगवान कृष्ण की मथुरा नगरी, दिन-रात गीता-भागवत में पढ़-सुनकर जो छवि मन में अंकित थी, वह स्वप्न ही निकला, भगवान कृष्ण के जन्म से ही लीला धाम नगरी, जहाँ बात-व्यवहार में स्नेह व खुशी के फूल झरते थे, इतनी गर्मी क्यों? इससे तो मथुरा नगरी झुलस रही है, इतनी कष्टदायक क्यों है?

स्वामी सत्यम् ने कहा–यह गर्मी गोपियों की आह, दुर्वासा के शाप, नाग सर्पों की फुफकार से है। सारा जगत् ही तो मथुरा है। झुलसती हुई मथुरा, कंस के अत्याचार, अभिमान, दुर्वासा के क्रोध, मंगल विग्रह ईश्वर के विरह और भौतिकवादी पण्डों के टर्र-टर्र ने इसके स्वभाव को तप्त कर रखा है; जिससे इस पर पैर रखते ही जीवन को दु:ख-सुख की लू लग ही जाती है।

संसार की सब गलियाँ, मथुरा की ही गलियाँ हैं। मानव धरणी के मार्ग बड़े संकीर्ण और ऋजु-कुटिल है, जन-जन के मन में भी यही गलियाँ हैं। हमारी दृष्टि एकांगी है, इसमें स्नेह, प्रेम के झरोखे हैं जरूर, पर इस दृष्टि-पथ पर

हम किसी को आने देना नहीं चाहते, तो फिर चिर-स्नेह के झरोखे, कृष्ण की प्रतीक्षा में खुले-खुले खाली रहते और इनमें से होकर वासना और दु:ख की लू प्रकट होने लगती है।

'मथुरा' आध्यात्मिक जीवन का अर्थ-विषद् छोटा-सा सूत्र है। यह क्रूरता, क्रोध, दमन, स्वार्थ-परता, विलाप-विरह का मंत्र है। दुलहिन राधा के लिए इस मथुरा में जगह नहीं है। अपनी मथुरा की गली को चौड़ा बनाओ, दृष्टि-पथ का विस्तार करो। अब देखो, राधा-कृष्ण की झाँकी दिखने लगेगी। इसीलिए कृष्ण ने मथुरा को छोड़ा था, और द्वारिका बसाई थी। शायद द्वारिका द्वारों वाली नगरी होगी। उसमें सब को आने का हुकुम होगा। अच्छे-बुरे, शराबी, कबाबी, सभी द्वारिका के साधक के दृष्टि-पथ में स्थान पाते होंगे।

द्वारिका में संकीर्णता और स्वार्थ, एक देशीयता और अनाधिकारी का प्रश्न ही नहीं उठता होगा; तब तो हमें द्वारिका ले चलो, हमें द्वारिका बनाओ, हममें द्वारिका बसाओ ताकि तुम सभी रूपों में, सभी द्वारों से आओ, कोई स्वार्थ या मोह, छल या प्रपंच तुम्हें न रोकें। हमारे मन-प्रदेश को इतना विशाल और निरापद बनाओ कि 'सभी यादव' उसमें समा जाएँ, मेरे नेत्रों को बदलो कि हम गलतियों, त्रुटियों और समाज सम्मत पापों को पवित्र रूप में ही देखें। मुझे मेरे मित्रों की गलतियों को समझने योग्य साधना शक्ति दो।

मुझमें वह गुण भरो जो अशोक वृक्ष में है। जिसके नीचे सभी आचरणों के व्यक्ति समान छाया पाते हैं। मुझे चाँद की किरण बनाओ कि मैं सभी जड़-चेतन समुदाय पर समान भाव से छिटक पड़ूँ। मुझे मथुरा से द्वारिका ले चलो। यह कहते-कहते स्वामी सत्यम् ध्यानस्थ हो गये ...।

हम चारों आगरा गये। दिन में खूब घूमे, रात को ताजमहल गये। पहले सब तरफ देखे, घूमे, फिर दो घण्टे आँख बंद करके बैठे रहे। हम लोगों का मन चंचल तो था ही, कई बार इच्छा होती कि देखें इधर-उधर, एक-दो बार धीरे-से देखा भी, पर डर भी लगा। घड़ी ने बारह बजाये, स्वामी सत्यम् ने हरि ॐ कहा–हम तीनों प्रणाम कर उन्हें देखते रहे। स्वामी सत्यम् ने कहा–बात अनुभूति की थी, ताज प्रेम का प्रतीक है। गंगोत्री में पूर्णिमा की रात्रि में लग रहा था, चन्द्रमा शिखरों के अंचल से निकलकर प्रकृति के अभिसार भवन में उतरा हो। हिम-धवल पर्वत सजे थे। वन प्रान्तों की विजनता से योग–मिलन,

प्रकाश और आनन्द की अनहद वीणा-सी बज रही थी। गंगा मौन थी, मानो मिलन-संगीत में खो गई है। दुल्हा बना चन्द्रमा, दुलहिन बनी थी निखिल प्रकृति। गगन के तारे, पर्वतों की निधि, महापन्थ के यात्री, अरण्यों के चारक और क्षितिजांचल बने थे बराती। वह था शिव-पार्वती परिणय, राधा-कृष्ण का प्रेम, जीव-ब्रह्म का मिलन। अनन्त जगत् में शिव-पार्वती तो तन्मय हो गये थे।

तुलसीदास जी के शब्दों में, *'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी'*–अनुभूति हमें भी हुई। पर चंद्रमा, हिम राशि, सरिता के चढ़ाई के पथ और चलने से प्रेम है। यही मुझे जीवन के सत्य प्रतीत होते हैं। जिसने जीवन में प्राकृतिक सचाई और खूबसूरती का आनन्द नहीं उठाया, वह ईश्वर सृष्टि के माथे का कलंक है।

प्रोग्राम बना था, आगरा से स्वामी सत्यम् व शिवांजलि दिल्ली जायेंगे, वहाँ से स्वामी सत्यम् अमरनाथ जायेंगे। आगरा से सत्यव्रत और बसन्ती नन्दग्राम जायेंगे। अब यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। हमारा साठ दिन का यात्रा का सत्संग रहा, नदी, पहाड़, जंगल, गुफा, संत-महात्मा, सत्संग-प्रवचन देखे-सुने-समझे, जीवन को सरल-सुन्दर ढंग से जीने की कला सीखी। एक सन्त के सान्निध्य में चलना, घूमना, सोना, जागना, हँसना, खेलना, सब कुछ उनके हाथों में सौंप कर निश्चिन्त हो गये थे। इन दिनों की स्मृति स्वर्ण रेखा सी अमिट है। हिमालय की गोद में, गंगा माँ के किनारे-किनारे माँ की जय-जयकार करते, संसार के रंग-मंच पर हुई परेशानियों से मुक्त हो, नई आशा ले, संसार रूपी नाट्य-शाला में अपना अभिनय पूरा करने के लिए हम आगे बढ़ने को तैयार हो गये। मन विद्रोह सा कर रहा था ...।

स्वामी सत्यम् ने कहा, जाने के समय बच्चों को हँसी-खुशी से जाना चाहिए। अच्छे बच्चे माँ की ममता समझते हैं। दो महीना साथ रहना बहुत है, जो पाया है उसे संभाल कर रखना व जन-जीवन में वितरण करते रहना। अब संसार रूपी गाड़ी में यात्रा करनी है। सावधानी से रहना, कर्त्तव्य के प्रति सजग रहना, संघर्षमय जीवन ही सफलता की सीढ़ी है। प्रभु का आशीष, हमारी शुभकामना हमेशा तुम्हारे साथ है। और सत्यव्रत-बसन्ती के सिर पर हाथ रख कर मंगल कामना दी। वे आगे नहीं बोल सके, हम तो बोलने की स्थिति में थे ही नहीं। गाड़ी छूटने पर लगने लगा कि हमारे प्राण तो उन महा-मानव के चरणों में रह गये, शरीर ही यात्रा कर रहा है।

पिछड़े गाँवों में सेवा-कार्य

स्वामी सत्यम् अगस्त में अमरनाथ गये, उधर से ही रींवा गये, भारत-सेवक-समाज वालों के अनुरोध पर कि बहुत-से गाँव एकदम पिछड़े हैं, उन्हें कुछ सिखाएँ, समझाएँ, इन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था। रायपुर (रींवा) कलचुरियन में रहे, फिर उन लोगों के साथ देहातों में जाते, रोजाना कई मील का चक्कर लगाने लगे। बरसात-पानी में कीचड़ में पैदल जाना पड़ता, उन लोगों को शरीर और स्वास्थ्य के बारे में समझाते, जड़ी-बूटियों की सरल दवाई बताते, गीता-रामायण की बातें बताते-समझाते। इस तरह उन लोगों में बहुत जागृति आई, नया जीवन मिला। दो माह में साठ गाँवों में गये, एकदम पिछड़ा देहात था, काम करने का उत्साह बहुत था।

स्वामी सत्यम् के सेवा-सुधार-कार्यों से लोगों में बहुत जागृति तो आई, पर पानी-बरसात में गीले कपड़ों में रहे, अगर भींग जाते, तो दिनभर उसी तरह अपना काम करते रहते, इनको सर्दी-खाँसी ने पकड़ा, कुछ हरारत भी रहने लगी, पर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। जब तकलीफ बहुत बढ़ गई तब अक्टूबर में दिल्ली चले गये। अपनी आयुर्वेद की दवाई बनाकर लेने लगे। लोगों से मिलना व प्रोग्राम भी करते, आराम करते ही नहीं, खाँसी कम ही नहीं हो रही थी। हनुमान प्रसाद माथुर व शिवांजलि को लगता कि इन्हें आराम की आवश्यकता है। और उन लोगों ने तय किया कि इन्हें सत्यव्रत जी ही संभाल सकते हैं। उन लोगों ने स्वामी सत्यम् को नन्दग्राम भेज दिया और सत्यव्रत जी को फोन करके सब बातें बता-समझा दीं। सत्यव्रत जी ने कहा, 'आप लोग निश्चिन्त रहिये, सब ठीक हो जायेगा। दिन में एकदम मौन, अगले हफ्ते से सिर्फ शाम को सत्संग होगा।'

नन्दग्राम में प्रवास

स्वामी सत्यम् विश्राम के लिए नन्दग्राम आ गये। सत्यव्रत जी ने कुछ विशेष लोगों को ही बताया था। उन्होंने तीन दिन एकदम आराम ही किया। कोई प्रोग्राम नहीं हुआ, बस हम लोग ही बातें करते थे। फूल की सुगंध, सूर्य की रोशनी को कौन छुपा सकता है, लोगों का आना शुरू हुआ, फिर भीड़ होने लगी, सत्यव्रत जी व बसन्ती बहुत सतर्क रहते।

शाम का सत्संग और सुबह का घूमना शुरू हुआ, फिर योग-कक्षा होने लगी। बच्चे दिनभर आते ही रहते। दोपहर 2 से 4 बजे तक महिलाओं के साथ

सत्संग चलता। शाम 6.30 से भजन शुरू होता तो 9 बजे तक चलता, एक घण्टा प्रवचन होता।

रत्ना और मनोज हमेशा स्वामी सत्यम् के साथ रहते। इन लोगों का प्रयत्न होता, स्वामी सत्यम् कम-से-कम बोलें। ये दोनों हाई स्कूल में थे। क्रीट नाम का एक लड़का 6–7 वर्ष का और 3-3 वर्ष की दो लड़कियाँ–हर्षा और ज्योति, बहुत ध्यान रखती थीं। बसन्ती रसोई में रहती या कहीं भी, एक-एक मिनट का संदेश बच्चियाँ देती रहतीं। अपने घर जाना ही नहीं चाहतीं, स्वामीजी को क्या चाहिए, उनको क्या करना है, यह उनको मालूम था। कई बार स्वामीजी कहते, 'इतनी छोटी बच्ची मेरा इतना ध्यान रखती है, स्नेह करती है। कहीं मेरी दीदी का पुनर्जन्म न हुआ हो। कई बार सोचता हूँ, माँ का पुनर्जन्म हो गया है इन्हीं दोनों में।' ये लोग चाहते कि स्वामीजी कम बोलें, आराम मिले उन्हें। सब बच्चों से कहानी, पहेली, खेल, गाने, करवाते रहते। इस तरह स्वामी सत्यम् को आराम भी मिलता। वे खुश भी रहते, बच्चों के साथ बच्चे बने रहते थे।

स्वामी सत्यम् के पास लोग अपनी समस्याएँ, परेशानियाँ लेकर आते और खुश होकर जाते थे। लोगों की समस्यायें, जैसे, भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहू, पति-पत्नी का तनाव दूर होने लगा, झगड़ा शांत होने लगा। स्वामी सत्यम् सबके प्रिय व पूज्य बन गये थे। मिल के ऑफिसर से क्लर्क तक, ऑफिस जाते समय और घर वापस आते समय दो-दो मिनट के लिए स्वामी सत्यम् के पास जरूर आते थे। महिलायें भी सुबह सब काम छोड़कर प्रणाम करने जरूर आतीं। बच्चों के तो अपने ही थे, छोटे बच्चे रोते आते, उनकी गोदी में छुप कर कहते, 'माँ मारती है।' 'क्यों मारती है?' 'हमको नहा कर जाना, नाश्ता करके जाना, थोड़ी देर से जाना, कहती है।' बड़े बच्चे सहपाठी की या शिक्षक की शिकायत करते। पति-पत्नी भी एक-दूसरे की शिकायत करते, स्वामी सत्यम् दोनों को सामने बैठा कर समझाते, फिर हँस कर कहते, इसी डर से तो हमने शादी नहीं की है जी।

स्वामी सत्यम् के पास बच्चे आते, कहते–भूगोल, इतिहास समझा दीजिए। वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए दोनों पक्ष के बच्चे एक साथ आते, अपने विषय का पूछते, लिखते और उनको सुना कर आशीष लेकर जाते। पूरे शहर के अपने हो गये थे। तीन माह रहे, मिल में 10–12 बंगले वाले तो उनको एक मिनट भी नहीं छोड़ना चाहते, शाम को सब अपना भोजन उठा लाते, फिर

सब मिलकर खाते, सुबह किसी के यहाँ सबका भोजन होता। सभी मकानों में बगीचे, फूल-पौधे थे, काफी जगह थी। किसी के आंगन-बाड़ी में रविवार को सब मिलकर बनाते, सब का काम चलता, स्वामी सत्यम् का सत्संग चलता, खूब आनन्द आता, 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' साकार हो गया था।

क्लब की पार्टी भी स्वामी सत्यम् को नहीं छोड़ती, बच्चों और महिलाओं को भी बुलाया जाता, वहाँ भी सत्संग चलता था। *'मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जाने कोउ।'* समय पंख लगा कर उड़ रहा था, किसी को पता ही नहीं चलता। जगह-जगह सत्संग होने लगा, स्कूल-कॉलेज, पास के देहातों में भी प्रोग्राम बनने लगा। भिलाई में प्रोग्राम हुआ, दुर्ग, रायपुर, भिलाई, नागपुर से ग्रुप में लोग आते, एक-दो दिन रहते भी, वे लोग अपने शहर में प्रोग्राम भी बनाने लगे।

1958 मई में अमरकंटक में एक हफ्ते का शिविर लगाने की बात हुई, फिर उधर से ही रींवा होते ऋषिकेश-बद्री-केदार जाने की बात तय हो गई। रींवा जिले के गाँवों में काफी जागृति आई थी। वहाँ अम्बर चरखा लगाने की योजना बनी। वे लोग स्वामी सत्यम् से उद्घाटन कराना चाहते थे, उनके अनुरोध पर 27 फरवरी को स्वामी सत्यम् रींवा गये, 4 महीना रहे। नन्दग्राम की स्थिति तो गोकुल की बातें कह रही थी–जब कृष्ण मथुरा गये, मनुष्य-जानवर तो क्या, पेड़-पत्तों के भी आँसू बहे थे, वही दृश्य नन्दग्राम का था।

अमरकण्टक की यात्रा

मई 1958 में सत्यव्रत, बसन्ती, मनोज व फरहद के स्वामी नारायणानन्द अमरकण्टक के लिए रवाना हुए। स्वामी सत्यम् रींवा में थे। वे पेन्डरारोड स्टेशन पर मिले, वहाँ से एक घण्टे का रास्ता है अमरकण्टक, बस से गये। कुछ लोग बाद में आने वाले थे। धर्मशाला में ठहरे थे, सुबह नर्मदा जी के कुण्ड में स्नान, ध्यान, भजन-कीर्तन, प्रवचन चलता, दोपहर में जंगल, पहाड़, गुफा, सोनभद्रा (कपिल धारा), भृगु कमण्डल व पुराने अवशेष देखते-घूमते। माई की महिमा व बगिया में रोज घूमते, पुराना इतिहास सुनते-देखते। नर्मदा कुण्ड में शाम को स्नान के बाद घण्टों बैठते, भोजन के बाद धर्मशाला में सत्संग होता, बहुत लोग आते। जंगल, पहाड़, गुफाएँ देखीं, वैसे तो बहुत अच्छा लगता, पर हिमालय जैसा आनन्द नहीं मिला। नर्मदा कुण्ड में व माई की मठिया में बहुत शान्ति मिलती। इसी तरह एक हफ्ता बीत

गया, तय हुआ आज खूब घूमेंगे, कल सुबह रींवा जाना है। शाम को समाचार मिला महासमुन्द से किरण (भांजी) की शादी तय हो गई है, दो दिन बाद तैयारी शुरू होनी है, तुरन्त आओ।

सत्संग के बाद प्रोग्राम बनाने बैठे। स्वामी सत्यम् ने कहा, आप लोगों को जाना है। बसन्ती ने कहा, कल सुबह यहाँ से बिलासपुर तक साथ रहेगा, वहाँ से मैं मनोज को लेकर रायपुर व नन्दग्राम जाऊँगी, तैयारी पूरी है, एक दिन घर में रहकर दूसरे दिन 12 बजे रवाना होकर रायपुर, फिर शाम तक महासमुन्द जाऊँगी, वहाँ का पूरा काम कर लूँगी, कोई कुछ नहीं कहेगा। स्वामीजी आप के साथ सत्यव्रत जी बद्री-केदार जरूर जायेंगे, उनको ले जाइये। काफी मनुहार के बाद मान गये। मिल में भी दो जगह शादी थी, हमने सबके लिए भोज-पत्र में स्वामीजी का आशीर्वाद लिख कर दिया।

दूसरे दिन बिलासपुर में बसन्ती ने रायपुर की ट्रेन पकड़ी, और सब शहडोल होकर रींवा जा रहे थे। ये लोग दो बजे नन्दग्राम पहुँचे, सबसे मिलकर दूसरे दिन 12 बजे रवाना होकर, 2 बजे बसन्ती और मनोज रायपुर पहुँचे तो प्लेटफॉर्म में सत्यव्रत जी को देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने बतलाया कि शहडोल में रात को अचानक स्वामी सत्यम् ने कहा–आपको महासमुन्द जाना है, आपके बहनोई नहीं हैं, आप नहीं जाओगे तो आपकी बहन दुःखी होगी, रोयेगी, अभी नहीं ले जाऊँगा, खूब काम करना है और सत्यव्रत जी को भेजकर स्वामी सत्यम् ने रींवा की गाड़ी पकड़ी। ऐसे हैं स्वामी सत्यम् व उनके विचार-व्यवहार।

स्वामी सत्यम्, स्वामी नारायणानन्द के साथ ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारनाथ गये, वहाँ से विशेष अनुभूति लेकर आये, देव शक्तियों का विशेष आशीष भी मिला। ऋषिकेश से गुरुदेव का आशीष लेकर श्री रामेश्वरम् गये, उधर से जुलाई में आकर नन्दग्राम में एक हफ्ता रहे। स्वामी नारायणानन्द के गाँव फरहद में चातुर्मास का प्रोग्राम बना। नन्दग्राम से 5 किलोमीटर दूर नागपुर रोड में छोटा-सा गाँव 'फरहद' है। वहाँ स्वामी सत्यम् चातुर्मास में रहने गये। हर शनिवार को शाम को स्वामी सत्यम् आते, सोमवार को सुबह वापस जाते थे। दो दिन का सत्संग होता था, वहाँ बैलगाड़ी थी, तो कभी स्वामी सत्यम् बैलगाड़ी में आते, कभी सत्यव्रत जी जाकर ले आते और सोमवार को सुबह पहुँचा आते थे। मिल वाले और शहर वाले उनके पास हमेशा जाते ही रहते थे।

बसन्ती की दीक्षा

गंगोत्री में माँ के दर्शन के बाद गुरु मंत्र लेने की इच्छा होने लगी, पर मैं चुप ही रही। अमरकण्टक में नर्मदाकुण्ड के पास बैठने पर इच्छा प्रबल होने लगी। कहने पर स्वामी सत्यम् ने कहा, 'गुरु तो एक हैं, स्वामी शिवानन्द जी, ऋषिकेश जा ही रहे हैं, पहले मंत्र दीक्षा, फिर बद्री-केदार।' बसन्ती कहती, 'गुरु जी से आशीर्वाद मिल चुका है, मंत्र घर पर ही मिलने का।' विधि का विधान, हमारा जाना रुक गया। अमरकण्टक से ही वापस आना पड़ा था।

साधना नियमित चलने लगी, हम क्लास लेते, सबको सिखाते, बताते, ध्यान में बैठते तो गुरु मंत्र के लिए बेचैनी होती। मंत्र के बारे में जब भी बात होती, स्वामी सत्यम् कहते, 'गुरु तो स्वामी शिवानन्दजी हैं, फिर से ऋषिकेश जाना पड़ेगा। देखो जी, हम गुरु तो बनेंगे नहीं, न ही आश्रम बनायेंगे। बारह वर्ष तक घूमते रहेंगे, सोचते हैं, बाद में गंगोत्री में ही रहेंगे।' बसन्ती देवी-देवता मनाती रहती।

स्वामी सत्यम् को हिमालय की देव शक्तियों का आशीष-आदेश मिला ही था। गुरुदेव का आशीष मिलता था ही। चातुर्मास में साधना भी बहुत-बहुत करते थे, उन्हें कुछ प्रेरणा मिली होगी शायद। 24 अगस्त को आये, दो दिन का सत्संग हुआ। सोमवार 26 तारीख की सुबह जाते समय उन्होंने कहा–हम गुरुवार 29 तारीख को सुबह 5 बजे आयेंगे, विशेष तैयारी करना, प्रसाद भी जोरदार बना लेना। सब देख रहे थे उन्हें और वे हँस रहे थे। बसन्ती ने पूछा, 'लेकिन 29 तारीख को क्या है जो इतना करना है?' उन्होंने हँस कर कहा, 'तुम्हारा पुनर्जन्म होगा, सबको बुलाना होगा।' बसन्ती ने कहा, 'आप आयेंगे तब जैसा कहेंगे, तुरन्त सब हो जायेगा, हम तैयारी करके रखेंगे।'

29 अगस्त 1958, चौदस पूर्णिमा की सुबह आये। खूब तैयारियाँ हुईं, सबको बुलाया गया, सभी परिचित व सत्संगी तुरन्त आ गये। भजन-कीर्तन चला, हवन के साथ मंत्र दीक्षा, 15 मिनट तक 'ॐ श्री रामचन्द्राय नमः' की ध्वनि गूँजती रही। 'मंत्र सभी ने साथ में कहा था'–इस तरह सबके सामने मंत्र देने, बोलने व सबको भी बुलवाने पर सबने आश्चर्य व खुशी व्यक्त की।

श्रीमती रमा दांडेकर ने कहा, 'स्वामीजी खूब शंख, घड़ी-घण्टा बजाकर मंत्र कान में बोला जाता है, जिसे दूसरे तो क्या, मंत्र लेने वाला भी नहीं समझता, जीवन में पहली बार कुछ सुनने-समझने का सौभाग्य मिला है। सभी की तरफ से

एक बात कहना चाहती हूँ। बसन्ती दीदी के साथ ही मुझे व जिन बहन-बेटियों ने गुरु नहीं बनाये हों, उन्हें आपका आशीर्वाद व माला मिलेगी क्या?'

स्वामी सत्यम् ने कहा, 'मानव मन तो भला व बुरा सब ग्रहण करता है, समय पर मन के अन्दर उसकी झलक भी दिखती है। अगर सत्संग या प्रभु नाम की झाँकी दिखेगी तो मन कुछ देर ब्रह्मानन्द में लीन होगा। कभी गुरु-मंत्र की बात होगी, तो आज की मंत्र दीक्षा याद आ ही जायेगी। आप लोग चाहते हैं तो जिन्होंने गुरु मंत्र ग्रहण किया है, उनका नाम लिखकर सत्यव्रत जी को दे देंगे। हमें भी पता हो जायेगा। और माला सत्यव्रत जी ऋषिकेश से मंगवा देंगे, फिर हम उन लोगों को दे देंगे।'

कृष्ण शंकर देव ने कहा, 'यही अधिकार हम लोग भी चाहते हैं, हम लोग भी नाम दे सकते हैं क्या? हम सबके गुरु तो हैं ही आप, पर श्रेय तो सत्यव्रत भाई व बसन्ती दीदी को है। नन्दग्राम व ऋषिकेश की दूरी को मिलाने वाले पुल तो यही दोनों हैं। स्वामीजी, मीना दवे कहती है–स्वामीजी तो स्वामीजी हैं, (प्रिय हैं) और सत्यव्रत काका तो बड़े स्वामी हैं, उनसे थोड़ा डरना पड़ता है।'

स्वामी सत्यम् ने कहा, मीना ठीक ही कहती है, मैं तो सिर्फ स्वामीजी हूँ, कार्यकर्त्ता हूँ। पर सत्यव्रत जी सच में बड़े स्वामीजी हैं, दिन-रात प्रोग्राम बनाते रहते हैं। कभी गुस्से में कहता हूँ, जंगल में चला जाऊँगा, पर उनकी पकड़ इतनी मजबूत है कि तोड़ ही नहीं पाता, तो सोचता हूँ, यही मेरा कार्य-क्षेत्र है, यही मेरा सारनाथ है। बसन्ती जी तो उनसे भी एक कदम आगे हो गई। हम गुरु बनना ही नहीं चाहते थे, और बने तो एक शिष्या की जगह अनेक प्राप्त हो गये। प्रभु की महिमा ...।

आज से आप लोगों की बसन्ती दीदी, 'माँ धर्मशक्ति' हो गई, आप सब उसे आशीर्वाद दें कि यह नाम और मिशन का काम सार्थक हो, मेरा योग का रथ, 'सत्य व धर्म' के सहारे चलेगा, आगे बढ़ता जाएगा। प्रभु व गुरुदेव सबको आशीष दें।

दो दिन खूब सत्संग चला, 30 तारीख को राखी होने से सभी को उत्साह व खुशी थी। सब कहते, अब तो दीदी का घर नहीं कहेंगे, अब सत्यधाम कहेंगे। सब के अनुरोध पर स्वामी सत्यम् ने कहा, 7 सितम्बर को कृष्णाष्टमी है, 8 को शिवानन्द जयन्ती। हम 6 की शाम को आयेंगे, 9 की सुबह चले जायेंगे। स्वामीजी के स्वागत-सत्संग का उत्साह तो रहता ही था, पर दो पर्व पड़ रहे हैं। सब खुश थे, बच्चों ने ड्रामा की तैयारी की, लड़कियों ने रास-गरबा की तैयारी की।

5 तारीख को 2 बजे नारायणानन्द जी आये, कहा, 'कल शाम को स्वामीजी नहीं आयेंगे।' हमने पूछा, 'क्यों नहीं आयेंगे? क्या बोले हैं?' तो कहा, शायद नाराज हैं, उन्होंने कहा है एक महीना तक नहीं आयेंगे। और वे नवागाँव चले गये। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, क्या बात हो गई, फिर ध्यान के चित्र के सामने बैठकर पूछा, 'स्वामीजी क्या आप नाराज हैं? ऐसी तो कोई बात नहीं हुई। आप तो आने कह कर गये थे। नाराजगी क्यों? आप न आयें, यह तो ठीक है, पर ... आप गुरु ही नहीं, पिता भी हैं, आपने ही सिखाया है, 'कौन सा सुख शान्ति का आगार तुमसे माँगते हैं, तुम पिता हो इसलिए हम अधिकार तुमसे माँगते हैं।'

पड़ोस वाली भी आ गई, सभी परेशान। तय हुआ, पत्र लिखकर पूछा जाये, कहीं बूढ़े स्वामी तो गड़बड़ नहीं कर रहे हैं। शाम को चपरासी जाएगा पत्र लेकर तो पता चलेगा ही। मिल का काम 3 शिफ्ट में चलता है, पहला सुबह 6.30 से दोपहर 3 बजे तक, दूसरा 2.30 से रात 10 बजे तक, तीसरा 10.30 से सुबह 5 बजे तक, 10–12 किलोमीटर दूर से भी मजदूर साइकिल में आते थे। फरहद से भी 30–40 कामगार आते थे।

जयलाल के हाथ स्वामी सत्यम् ने पत्र भेजा, वह 3.30 में आया पत्र लेकर। वह मिल चला गया, गुरुदेव का पत्र ...

'धर्मशक्ति, उस दिन यहाँ आकर सोचा कि एक महीना एक ही जगह रहेंगे, कहीं नहीं जायेंगे। तुम्हें यह बात कही ही नहीं, आने का प्रोग्राम बना कर आया हूँ। बाबा जी जा रहे थे तो उनसे कहा था, समझा कर बता देना मेरी बात। मुझे कुछ ऐसा आभास हो रहा है कि उन्होंने स्वभाववश कुछ गड़बड़ तो नहीं कर दी, फिर तुम लोग परेशान हो जाओगे। वैसे भी मैं विक्षिप्त संकल्प हूँ, बनाता हूँ, तोड़ता हूँ ...।

मैं तो सभी जगह हूँ। शरीर एक देशीय है, पर मैं सर्वव्यापक हूँ, यह बात एकदम सत्य है। शरीर के मोह के ऊपर आत्मा का दर्शन होता है। शरीर से जो मोह किया जाता है, वह साधारण मोह का ही एक रूप है और जब तक शरीर पर दृष्टि अटकी रहेगी, तब तक इस शरीर के कीमती तत्त्व के दर्शन नहीं हो सकेंगे।

मेरे शरीर के अलावा मुझमें और कुछ है, जिसकी कृपा से मैं हूँ, और सब मुझे देखते हैं, वह चैतन्य पुरुष है, उसे हर जगह कभी भी देख सकते हो, ध्यान में, तल्लीनता में, विचारों की गहराई में। वह प्रत्यक्ष देह धारण कर

सामने आ सकता है। इसे ही चिन्मय-विग्रह कहते हैं। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि लोक-परम्परा में बँधे शरीरों से दृष्टि हटाकर जन्म-मृत्यु रहित चिर पवित्र व चैतन्य का साक्षात्कार करें, तब तो मैं अष्टमी ही नहीं, रोज आ सकता हूँ। यही नहीं, सदा साथ रह सकता हूँ। अभ्यास करना चाहिए। जानना एक चीज है, करना दूसरी चीज। अभ्यास करने से ही कल्याण होता है, जानने से नहीं। रास्ता तो मालूम है, फिर देरी क्यों, चलना चाहिए। मेरा सत्संग एक बार कर लेने से फिर आत्म संग होना चाहिए। आत्मा-आत्मा से अलग नहीं है, शरीर से मोह नहीं करना। अगर हमें बुलाना ही चाहोगे तो सत्यव्रत जी को 6 तारीख शाम को भेजना। हम सूर्यास्त के बाद आयेंगे, दूसरे दिन सूर्योदय के पहले वापस हो जायेंगे। भोजन व सत्संग की विशेष तैयारी रखना, अच्छा।'

6 तारीख शाम को सत्यव्रत जी फरहद गये, हम सब रास्ता देखते रहे। स्वामी सत्यम् आये 6 बजे, जैसे भगवान आये हों। सभी लोग आ गये थे, पूजा-भजन-कीर्तन-प्रसाद हुआ, फिर सभी बंगलों में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए गये, कहीं भजन-कीर्तन-प्रसाद, तो कहीं प्रवचन-प्रसाद, तो कहीं गप-शप प्रसाद। पूरी रात घूम-घूम कर सत्संग किया, सभी लोग उनके साथ ही रहे। 4 बजे आकर स्नान किया, तब तक धर्मशक्ति ने गरम पकौड़े और चाय बनायी, सबने खाया-पीया, फिर सब कुछ दूर तक साथ गये, सत्यव्रत जी पहुँचा कर आ गये।

नन्दग्राम में दिव्य जीवन संघ की शाखा की स्थापना

'दिव्य जीवन संघ' ऋषिकेश की एक संस्था की स्थापना नन्दग्राम में हो, यह योजना कुछ दिनों से बन रही थी। ऋषिकेश से आदेश प्राप्त हो गया, सम्बद्धता का कागज, कुछ साहित्य व आशीर्वाद पत्र भी अगले माह मिलने का आश्वासन मिला। 8 सितम्बर शाम को सत्संग करके यह प्रस्ताव भी तय हो गया कि एक मकान लेकर, उसमें साप्ताहिक भजन-कीर्तन-सत्संग करेंगे, छोटी-सी लाइब्रेरी रखेंगे। कोई संत-महात्मा आयेंगे तो उनका प्रोग्राम भी रखेंगे।

अक्टूबर में सब तैयारी पूरी हो गई, ऋषिकेश से 'दिव्य जीवन संघ' की रजिस्ट्रेशन प्रति, स्वामी शिवानन्द जी का आशीर्वाद पत्र, उद्घाटन के समय के लिए और कुछ साहित्य व बहुत से फार्म वगैरह भी प्राप्त हो गये।

स्वामी सत्यम् के आदेशानुसार 3 दिन के सम्मेलन की तैयारियाँ शुरू हुईं, पम्पलेट फार्म छपे, बँटे, प्रोग्राम छपा, नवम्बर में 3 दिन का प्रोग्राम शुरू हुआ। स्वामी सत्यम् ने 'दिव्य जीवन संघ' ऋषिकेश के बारे में जानकारी देकर, उसकी शाखा स्थापित करने की घोषणा की। श्री के.एल. शुक्ला के अध्यक्षीय भाषण के बाद स्वामी शिवानन्द जी का आशीर्वाद पत्र पढ़ा गया। स्वामी सत्यानन्द जी का आशीर्वचन मिला। हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, क्रिश्चियन, बौद्ध, सभी अपने-अपने धर्म पर बोले। रामकृष्ण मिशन रायपुर के स्वामी आत्मानन्द जी का प्रवचन हुआ। सुबह आसन कक्षा से शुरू होकर दिन में चार सत्र होते। तीनों दिन सभी धर्मों के लोगों व स्वामी सत्यम् का प्रवचन हर सत्र में होता था। दुर्ग, भिलाई, रायपुर, गोंदिया से भी लोग आये थे।

महिला योग मण्डल की भी स्थापना हुई। सम्मेलन के बाद संस्था की कमिटी बनी। आसन कक्षा और हर शनिवार को सत्संग शुरू हुआ। सबकी राय से संस्था के कार्यक्रम, स्वामी सत्यम् के प्रवचन व प्रोग्राम की एक 10–12 पेज की पत्रिका ऋषिकेश से आदेश लेकर 'दिव्य जीवन संदेश' के नाम से निकालना शुरू की। इसके बाद स्वामी सत्यम् बम्बई गये।

दिसम्बर में स्वामी सत्यम् बुरहानपुर व इंदौर गये। वहाँ से खामगाँव होते नन्दग्राम आये। वहाँ का काम देखा, सत्संग करके महासमुन्द गये। वहाँ तीन दिन का प्रोग्राम करके रायगढ़ गये, उधर से ही दिल्ली गये।

उनकी इच्छा पुस्तक छपाने की होने लगी। उन्होंने लिखा, इंग्लिश के पन्नों की फाइल बनाओ, टाइप करके रखो, हम उधर आयेंगे, सब देखकर बतायेंगे।

सत्यव्रत जी का काम बहुत बढ़ गया था। संस्था, सत्संग, लाइब्रेरी, पत्रोत्तर देना, प्रोग्राम बनाना, प्रवचनों की फाइल, पत्रों की फाइल, उनका ऑफिस का काम तो था ही, सब काम अच्छे से चल रहे थे, बद्री-केदार जाने की भी बात थी, यात्रा की तैयारी भी चल रही थी।

विशेष साधना-शिविर

स्वामी सत्यम् जनवरी में रायपुर-रींवा गये, कुछ दिन बाद कतरास गढ़ गये, छपरा गये। प्रोग्राम के बाद फिर रींवा-रायपुर गये। वहाँ दो माह रहना था। पत्र मिला, 'मई में कहीं एकदम देहात में शिविर का प्रोग्राम बनाओ, बहुत साधना करनी है। आप दोनों को व हमें भी विशेष साधना करनी है। बद्री-केदार 1960

में जरूर चलेंगे। सेठ राधा किशन जी का गाँव में बगीचा अच्छा है, एकान्त भी है, हाँ कह देना।'

होली के समय हमने स्वामी सत्यम् को माला, रंग-गुलाल भेजा। उनका पत्र मिला, 'माला-गुलाल मिला, स्वीकार किया, पर हमारी होली अभी आयी नहीं है। जिस दिन हमारी साधना पूरी होगी, उसी दिन हम पर पक्का रंग लगेगा। सूरत की होली में सुमिरण की अबीर लेकर, सत्यव्रत-बसन्त को श्याम के रंग में रगेंगे। भक्ति के रंग में तर, साधना के रंग में सराबोर, स्मरण रूपी भंग के नशे में मस्त, उनके सुमिरण में धुत्त, शरीर रंगने वाली होली अब तक खेले हो, अब मन को रंग कर देखो, कैसा आनन्द आता है।'

साधना कैम्प के लिए भगवती बाबू का गाँव पसन्द आया, उनकी मालगुजारी पुरानी थी, वहीं रहते भी थे। सत्यव्रत जी कई बार जा भी चुके थे, एकदम जंगल में था, 4 मील तक ही असुविधा होती थी, गर्मी में बैलगाड़ी जाती, बरसात में पैदल व साईकिल से ही जा सकते थे। उन्होंने कई बार स्वामी सत्यम् से भी चलने को कहा था। वहाँ जाने पर हम लोगों को सुविधा भी थी, बहुत बड़ा मकान, पूरा सामान, नौकर भी थे, सभी सुविधाएँ थीं। स्वामी सत्यम् के साथ सिर्फ सात लोग होंगे। विश्वप्रेम व उसके मामा हरसिंघानी आयेंगे, सत्यव्रत जी व उनकी बहन अन्नपूर्णा, बसन्ती व उसकी छोटी बहन रत्ना व सहेली भारती। ज्यादा भीड़ भी नहीं करनी है, वैसे कुछ लोग शनिवार-रविवार को सत्संग के लिए आयेंगे।

अप्रैल में स्वामी सत्यम् नन्दग्राम आये। मई में हम लोग गाँव गये। करीब 30 मील बस से गये बाँधा बाजार तक, वहाँ दो गाड़ियाँ आईं थीं, उनमें 4 मील का जंगल पार करके 'पठान ढोड़गी' पहुँचे। पूरा मकान देखा। भोजन करके सबकी व्यवस्था हुई, फिर जंगल की तरफ घूमने गये, नदी-पहाड़, बहुत अच्छा लगा, हिमालय की याद आई, शहर की भीड़-भाड़ से आने पर वहाँ बड़ी शान्ति मिली, रात को गाँव वालों की रामायण हुई, भजन-कीर्तन हुआ।

दूसरे दिन सुबह से प्रोग्राम शुरू हुआ। आसन, प्राणायाम, भजन-कीर्तन फिर जप-ध्यान, फिर प्रश्नोत्तर। भोजन के बाद आराम। दो बजे स्वामी शिवानन्द जी की 'साधना' पुस्तक पढ़ना व सत्संग, फिर घूमने जाना। भोजन के बाद 6 बजे से भागवत-गीता-रामायण पर प्रवचन। पूरे गाँव के लोग जमा

होते, श्रद्धा से सुनते, कुछ प्रश्न भी करते थे। वे लोग आश्चर्य करते कि स्वामी सत्यम् को इतनी बातें कैसे मालूम हो गईं। फिर वे सब स्वामी सत्यम् को पिता जी कहने लगे। वे लोग दूसरे गाँव से अपने रिश्तेदारों व परिचितों को बुलाते, कहते, सौ साल के महात्मा आये हैं, भगवान उनको दर्शन देकर सब बात बताते हैं। सब कोई आकर दर्शन करो, उद्धार हो जाएगा।

सबकी साधना अलग-अलग चलने लगी। मैं आसन तो पूरे करती, शीर्षासन भी करती थी। स्वामी सत्यम् ने देखा, 5 मिनट तक करने का आदेश दिया, फिर पुरश्चरण करने को कहा, 150 माला रोज। समय नोट करके दिया। इतनी देर जप, आराम, जप। आशीर्वाद का चंदन-टीका लगाकर माला देकर बैठने का आदेश दिया, रात 10 बजे तक पूरा हो गया। दो दिन बराबर जप हुआ। तीसरे दिन से ध्यान के चित्र से ज्योति निकलती, बढ़ती जाती, फिर गर्मी होती, बैठ नहीं सकती। चौथे दिन ज्योति तेज हुई। गर्मी, बेचैनी और घबराकर रोना आता, आकर स्वामीजी से कहती। एक घण्टा आराम करके फिर बैठने का प्रयत्न करती, उस दिन एक माला भी नहीं हो सकी। उन्होंने कहा, अकेले नहीं, सब के साथ बैठकर जप करो। उसमें भी आँख बंद की और विचित्र अनुभव शुरू होने लगते। स्वामी सत्यम् ने कहा, अनुष्ठान छोड़ दो, लिखित जप करो और पढ़ो। उसमें भी गंगा-यमुना दोनों आँखों से बहने लगती। उन्होंने कहा, सब बंद करो, कुछ नहीं करना है।

विश्वप्रेम को खूब जोर से बुखार हो आया, शहर की लड़की देहात में एकदम घबरा गई। स्वामी सत्यम् कहते–लाओ अपना बुखार हमें दे दो और सब हँसते। कुछ होमियोपैथी दवाई भी उसे दी, रात को उसका बुखार एकदम ठीक हो गया और सुबह स्वामी सत्यम् को तेज बुखार था। न आँख खोलते, न चाय-पानी लेते। सत्यव्रत जी ने किसी तरह 2-4 चम्मच चाय पिलाया, तो उल्टी हो गई, होमियोपैथी दवाई मुँह में डाली तो भी उल्टी हो गई। सत्यव्रत जी पैर दबाने लगे। स्वामी सत्यम् कभी पैर नहीं छूने देते थे, पर आज कुछ बोल भी नहीं रहे थे।

अन्नपूर्णा व मुझको लगा, गाँव वालों की बुरी नजर लगी है। हम लोगों ने तय किया मिर्ची डालने का। पर डरते थे कि सत्यव्रत जी नाराज होंगे। अन्नपूर्णा नमक-राई और मिर्ची लेकर आई, मैंने सत्यव्रत जी को बाहर बुलाया। और अन्नपूर्णा ने जल्दी से उनके ऊपर से नजर उतार कर गाँव वालों का नाम लेकर चूल्हे में डाल दी। आश्चर्य कि उसके बाद स्वामी सत्यम् ने कुछ बातें कीं। हम

दोनों अपने इस काम से खुश हो गईं, और हर 30 मिनट में अपना जादू करती रहीं। फिर उन्होंने पानी लिया, चाय पी, दवाई भी खाई, बातें करते रहे। हम लोगों ने 3 बजते तक सात बार मिर्ची डाली। स्वामी सत्यम् ने शाम को कहा, हम बाहर जायेंगे, आप लोग बातें करो, हम सुनेंगे। हम सब बहुत खुश हो गये, खूब बातें, चुटकुले, कहानियाँ चलीं और स्वामी सत्यम् भी भाग लेते रहे। दूसरे दिन से फिर नियमित प्रोग्राम चलने लगा।

चार दिन मिलना-जुलना, जप-ध्यान, भजन-कीर्तन, रामायण-भागवत नियमित चला। इस प्रकार पंद्रह दिन पूरे हो गये और सब नन्दग्राम आ गये। दूसरे दिन विश्वप्रेम व मामा सिंघानी बम्बई चले गये। उस समय मैट्रिक की परीक्षायें चल रहीं थी। एक-दो पेपर बचे थे। मंजू बाबरिया को बुखार आया, उसकी माँ आकर रोने लगी, पेपर नहीं देगी, आखिरी पेपर है, कैसे होगा। स्वामी सत्यम् ने कहा, चिन्ता नहीं करना, सब ठीक हो जायेगा, उसे रिक्शे में यहाँ ले आओ। वह लड़की आई, उसे तेज बुखार था। स्वामी सत्यम् ने कहा, तुम्हें बुखार है, उसे हमें दे दो, और तुम कॉफी पीओ, ठीक हो जाओगी। पेपर अच्छा बनाना, कहकर उसके सिर पर हाथ फिराया, उसे भाई के साथ स्कूल भेज दिया। दोपहर तक स्वामी सत्यम् को तेज बुखार हो गया।

हमारे मन में कुछ विचार उठने लगा। समय देख कर हमने सत्यव्रत जी से कहा, स्वामीजी ने विश्वप्रेम से यही कहा था, वह अच्छी हो गयी, इन्हें वहाँ भी ऐसा ही हुआ था, आज भी वही शब्द कहे और वैसा ही बुखार हुआ। हमने वहाँ मिर्ची डाली थी सात बार, सब कुछ बता दिया। सत्यव्रत जी ने कहा, तुमने बहुत गलत किया, उन्हें समझ नहीं रही हो क्या? स्वामीजी तो रात तक अच्छे होने लगेंगे, सुबह एकदम ठीक हो जायेंगे। कल अपनी बेवकूफी बताकर उनसे माफी माँगनी होगी तुमको।

दूसरे दिन शाम को सब बैठे थे, मैंने सब बातें बता दीं कि आपके बुखार को नजर लगी समझ कर हम लोगों ने राई-नमक उतार कर चूल्हे में सबका नाम लेकर डाला था। वे सुनकर नाराज हुए, फिर हँसे भी, फिर कहने लगे, उसी समय हमको क्यों नहीं बताया, हम भी देखते, नजर कैसे लगती है। हम भी सबका भूत भगाते...। बात पुरानी हो गई, पर स्वामी सत्यम् इस बात की चर्चा हमेशा करते हैं। कहते हैं, यह बात भी होती तो है, एक बार हमको भी नजर लगी थी, तो धर्मशक्ति ने मिर्ची डाली, नजर उतारी, तब हम ठीक हुए।

एक हफ्ते बाद वे माउन्ट आबू चले गये, वहाँ उन्हें गर्मी से राहत मिली। स्वामी सत्यम् अलमोड़ा (कैलाश-मानसरोवर के पास ही) के हैं, फिर रहे ऋषिकेश में। अब सब तरफ घूमने से उन्हें गर्मी से परेशानी होती है। मध्य प्रदेश की गर्मी, फिर हमारे मिल में कारखाने की गर्मी बहुत होती है। इसीलिए वे कभी गंगोत्री, कभी बद्री-केदार का प्रोग्राम बनाते हैं।

बाँधा बाजार में चातुर्मास

स्वामी सत्यम् बाँधा बाजार में चातुर्मास करेंगे, यह बात तय हो गयी थी। वे जुलाई में नन्दग्राम आये, एक हफ्ते रह कर, सब काम देखा, पत्रों की फाइल देखकर कुछ आदेश-निर्देश दिए। सब काम बताए-समझाए। गुरु पूर्णिमा से चार दिन पहले सेठ राधाकिशन आये, उनके साथ स्वामी सत्यम् और सत्यव्रत जी गये। सत्यव्रत जी दूसरे दिन वापस आ गये।

गुरु पूर्णिमा की सुबह सत्यव्रत जी और धर्मशक्ति बाँधा बाजार गये। देहाती सड़क, नदी नाले, 29–30 मील में दो घण्टे लग गये। ये दोनों बगीचे में गये, गाँव से बगीचा करीब एक किलोमीटर दूर था। बगीचे के बीच में दो कमरे, दोनों तरफ बरामदा, आँगन में कुँआ। कमरे की दीवारें बेल से ढकी थीं, ऋषि-मुनियों की कुटिया जैसे लग रहा था। सामने दरवाजे के पास, माली व चौकीदार रहते थे। स्वामी सत्यम् ने एकादशी के दिन से ही विशेष साधना का संकल्प लिया था। चार माह कहीं नहीं गये, दिनभर मौन रहते, शाम को 6 बजे सेठ जी व अन्य लोग आते, तो हरि ॐ कहते, बातें करते, सत्संग-प्रवचन होता। 8.30 बजे सब चले जाते, और इनका मौन शुरू हो जाता। दो माह तक एक बार फल वगैरह लेंगे, दो माह एक बार भोजन लेंगे, यह नियम चलने लगा था।

सत्यव्रतजी और धर्मशक्ति 9 बजे पहुँचे, जरा देर बातें करते रहे, फिर पूजा करने की बात हुई। स्वामी सत्यम् ने कहा, चलो पीछे पहाड़ पर, हनुमानजी का मंदिर है, वहीं बैठेंगे। ज्यादा ऊँचा तो नहीं, 40–45 सीढ़ियाँ होंगी, बड़े से पहाड़ जैसे पत्थर के ऊपर मंदिर व सामने चौरस जगह है, बगल में जरा दूर पर तालाब भी है। ऊपर जाकर स्वामी सत्यम् मंदिर की सीढ़ी पर बैठ गये, हम लोगों ने पूजा की, स्वामी सत्यम् आँखें बंद किए बैठे थे। हम दोनों भी सामने बैठ कर, आँखें बंद कर ध्यान करने लगे। धर्मशक्ति को विशेष अनुभव हुआ, फिर लगा कि स्वामी सत्यम् से तेज रोशनी आकर धर्मशक्ति

पर फैल गयी, गर्मी से पसीने-पसीने हो गई, हाथों से दोनों आँखों को ढक लिया, स्वामीजी हँस पड़े।

सत्यव्रत जी ने कहा, प्रसाद दो, भूख लगी है। उसने देखा स्वामी सत्यम् के हँसते ही ज्योति गायब। प्रसाद खाया, बातें करते रहे। तीन बजे जाना था, पाँच बजे तक पहुँचेंगे, सब बच्चे इन्तजार करते होंगे स्वामीजी के प्रसाद का। आने के समय स्वामी सत्यम् ने पूछा–आसन बराबर करते हो न? ठीक है, शीर्षासन भी करते रहना है।

स्वामी सत्यम् की साधना नियमित चलती रही। सत्यव्रत जी हर शनिवार को पत्र-फाइल वगैरह लेकर जाते, रविवार को रहते, सोमवार को सुबह आ जाते।

रोज चार बजे सेठ जी स्वयं चाय, फल, मेवा लेकर आते, प्रसाद बाँट देते, कुछ खा लेते, इसी तरह दो माह बीत गये। फिर शाम को भोजन लेते एक बार, मौन व साधना पूरी चली। नवम्बर में दिव्य-जीवन-संघ का वार्षिकोत्सव होता है, उनसे पूछकर पूरी तैयारी कर ली। हमेशा स्वामी सत्यम् पूछते, 'धर्मशक्ति क्यों नहीं आई?' सत्यव्रत जी कहते, मैंने कहा तो था आने...। मैं आना तो चाहती, पर संकोचवश नहीं आती थी, पर आसन पूरे करती व सभी काम करती रहती।

नवम्बर में स्वामी सत्यम् आये, पूरा प्रोग्राम सालभर पहले जैसा हुआ था, वैसा ही हुआ। बहुत लोग आये। सभी धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म पर प्रवचन दिए। पूरा प्रोग्राम शहर के टाउन हॉल में होता था। अन्नपूर्णा भी आई थी, उसने सब कुछ समझा और मेरी स्थिति स्वामीजी को बतायी, स्वामीजी फिर खूब हँसे ...।

मुझसे पूछा–आसन, शीर्षासन करते हो? ठीक है, अब सिर्फ पवन मुक्तासन करना, सुखपूर्वक प्राणायाम, सुबह-शाम घूमना है, सद्-साहित्य पढ़ना है, और सोचना है कौशल्या के राम, यशोदा के कृष्ण के ही बारे में, नियम से रहना है। अन्नपूर्णा से कहा, 'जनवरी से तुमको यहीं रहना होगा, धर्मशक्ति के साथ, और वे बम्बई चले गये।'

माँ गंगा और गुरुदेव का आशीष प्राप्त कर स्वामी सत्यम् आये। प्रबल-आत्मविश्वास से अपनी शिष्या को आशीर्वाद देकर, अपने मिशन का कार्य-वहन करने व आगे बढ़ाने हेतु अभूतपूर्व शिष्य के आवाहन हेतु साधना की। देव शक्ति व महान् गुरु का आशीष फलीभूत हुआ ...।

स्वामी निरंजन का जन्म

14 फरवरी 1960 की प्रभात बेला में प्रियदर्शी शिशु धर्मशक्ति की गोद में आया। उस समय स्वामी सत्यम् बम्बई में थे, उन्होंने विश्वप्रेम से कहा, 'मुझे जिसका इंतजार था वह आ गया। आज टेलीग्राम मिलेगा।' 20 मार्च को स्वामी सत्यम् नन्दग्राम आये। बच्चे को गोद में लेकर आशीर्वाद दिया और कहा, ईश्वर की रोशनी का यह अवतरण है। अन्धकारमय कोनों तक में प्रकाश भरने के लिए, ईश्वर के प्रकाश का अवतरण हुआ है। यह विशुद्ध लगन का ही स्वरूप है, यह केवल नैसर्गिक लगन है। यथार्थतः वह पुत्र होकर नहीं आया है, उसे एक निश्चित कार्य की पूर्ति के लिए आना पड़ा है। उसके प्रति हम केवल कर्त्तव्य के ऋणी हैं। वह कोई भी अज्ञानी, 'बच्चों सा ज्ञान रहित' लगाव पसन्द नहीं करेगा। हमें उसे बड़े कार्य के लिए प्रस्तुत करना है–हाँ, वह कार्य जो अनेक आत्माओं से सम्बन्धित है।

वह आवश्यक सामग्री के साथ ही आया है। वह प्रकाश बन कर आया है। उसे राम-नाम के जल से सींचते रहना। वह अनमोल फूल है, अपने श्री-सौरभ से विश्व को भर देगा। धर्मशक्ति तुमने नाम पूछा था न, तो यह 'निरंजन' है। तुम्हारा यह महामंत्र है–

मंत्र सत्यम्, पूजा सत्यम्, सत्यम् देवो निरंजनम् ।
गुरोर्वाक्यम् सदा सत्यम्, सत्यमेवं परम पदम् ॥

पुस्तकों का प्रकाशन

स्वामी सत्यम् कुछ दिन नन्दग्राम में रहकर भिलाई, रायपुर, बिलासपुर और रायगढ़ गये। वहाँ से बम्बई गये, आखिरी जून में नीमगाँव गये, चातुर्मास वहीं किया, दो माह वहाँ रहे। सितम्बर में नन्दग्राम आये, पुस्तक छपाने की पूरी तैयारी थी, उन्होंने फाइल देखी, मैटर ठीक से जमाया, अक्टूबर 1960 में तीन पुस्तकें इलाहाबाद के देश सेवा प्रेस में छपीं। एक अँग्रेजी में 'लैसन ऑन योगा–पार्ट I', (विश्वप्रेम व सत्यव्रत को पत्र) 260 पेज की। वह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई, जो पढ़ता उसे लगता कि यह पत्र उसके लिए ही है। दो पुस्तकें हिन्दी में 'कुरुक्षेत्र की लड़ाई' व 'योग आसन' 50–60 पेज की छपी थीं।

स्वामी सत्यम् के शिष्यों की संख्या बढ़ती ही गई। जैसे 'हम तो अकेले ही चले थे, पर कारवाँ बढ़ता ही गया।' सभी जगह उनके प्रोग्राम होने लगे।

इस्पात-नगरी भिलाई में हमेशा 2-3-4 दिन का प्रोग्राम होता ही रहता। दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर में भी हमेशा प्रोग्राम होता था। सभी लोग चाहते थे कि स्वामी सत्यम् यहाँ आश्रम बनायें, पर वे टालते जाते थे। सत्यव्रत जी भी चाहते थे, स्वामी सत्यम् यहीं रहें। उन्होंने शहर से बाहर नागपुर रोड में जगह भी ले ली थी, पर स्वामी सत्यम् ने कहा, आश्रम बनाने की हमारी इच्छा तो है नहीं, आपको पहले पुस्तक छपवानी है।

स्वामी सत्यम् के लिए परिचित-अपरिचित का प्रश्न था ही नहीं, सारा विश्व ही इनका कार्यक्षेत्र था। गुरुजी का यही आदेश व आशीर्वाद भी था। इस संसार रूपी मरुभूमि में सुख रूपी मृग-तृष्णा के पीछे भटकते हुए प्राणियों के पथ-प्रदर्शन हेतु ही नगर-नगर और डगर-डगर भटकने का इनका संकल्प है। संसार में यही सेवा-धर्म लेकर भूले पथिकों का मार्गदर्शन करा रहे हैं।

विश्व जितना ही विशाल है, मानव उसमें उतना ही लघु है। स्वामी सत्यम् बिलासपुर से आगे जाते हुए रायगढ़ गये। 1956 या 1958 की बात है। वहाँ कोई परिचित नहीं था, पर इन्हें तो किसी के हृदय के कपाट की साँकल खोलने के लिए ऐश्वर्य की सीढ़ी की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। रायगढ़ बड़े व्यापारियों व पूँजीपतियों का गढ़ है। स्वामी सत्यम् के पास सिर्फ एक झोला ही था। ये दोपहर तक घूमते रहे, लोग देखते, पर किसी ने बात तक नहीं की। इन्होंने सोचा सब व्यस्त हैं। हमें ही बात करनी होगी, सोचकर एक बहुत बड़ी दुकान के सामने खड़े होकर हरि ॐ कहा। सेठ जी ने आगे जाओ, कहते हुए कुछ कठोर शब्द भी कहे, ये हरि ॐ कहते हुए आगे बढ़ गये। भूख-प्यास सता रही थी, मन में अजपा चलता रहा। सड़क से कुछ हट कर चर्च है, वहाँ से बूढ़े पादरी ने देखा, एक सुकुमार-सा दिव्य कान्ति युक्त युवा संन्यासी। उसने पास आकर पूछा, क्या बात है महात्मा जी, चाय पिओगे? इन्होंने कहा, हाँ पीऊँगा। पास ही छोटा-सा होटल था। पादरी साहब ने वहाँ से चाय-बिस्कुट दिलवाया ...।

शक्ति, बिलासपुर से स्वामी सत्यानन्द की ख्याति सुन कर, पेपर में पढ़कर रायगढ़ वालों ने पत्र भेजकर बुलाने का अनुरोध किया। स्वामी सत्यम् ने कहा, वहाँ जाना तो है, आप तारीख लिख दें। प्रोग्राम बना। सत्यव्रत जी ने कहा, वहाँ अकेले नहीं जाने दूँगा, साथ में अवश्य जाऊँगा। वहाँ वालों पर भरोसा नहीं है। साथ में गए, 3 दिन का प्रोग्राम हुआ, बाद में वहाँ वाले बड़े

भक्त बन गए, आश्रम बनाने का अनुरोध करने लगे। स्वामी सत्यम् ने इन्कार कर दिया। पर उन लोगों ने बना ही डाला। संयोग कि उसी चर्च व होटल से दस कदम आगे है आश्रम।

शास्त्रार्थ में विजय

नन्दग्राम में भी इसी तरह की एक अभूतपूर्व घटना घटी। घटना है 1958 अक्टूबर की। उस समय स्वामी सत्यम् 'फरहद' में चातुर्मास कर रहे थे, 20-21 सितम्बर को शंकर-भवन-बाल-समाज वालों ने गणेश उत्सव के समय पर, स्वामी सत्यम् से मिल कर, अनुमति लेकर एक दिन प्रवचन प्रोग्राम रखा था। जब स्वामी सत्यम् को लेने आये तो इन्होंने कह दिया, हम नहीं जायेंगे, बेकार शो व कम्पीटिशन हमको जमता नहीं, कुछ बोल जायेंगे, इससे नहीं जाना अच्छा है। और वे नहीं गये।

नवरात्रि में दुर्गा उत्सव पर फिर बाल-समाज वालों ने अनुरोध किया, तो स्वामी सत्यम् ने प्रवचन की अनुमति दे दी, तारीख तय करके उन लोगों ने प्रचार भी बहुत किया। स्वामी सत्यम् गये, पूरे शहर का 'शो' देखते हुए शंकर-भवन पहुँचे। सब तरफ से दर्शन करके लोग शंकर-भवन के सामने जमा होने लगे, 9 बजे प्रवचन शुरू हुआ। वहाँ पर बीस-बाइस हजार लोग जमा थे। स्वामीजी का प्रवचन बड़ी तन्मयता से सुन रहे थे।

बोलते-बोलते मूड में आ गये–आज तो दुनिया दिखावटी-बनावटी शो के पीछे भाग रही है और अपने साथ देवी-देवता को भी दौड़ाते हैं। ... ये दुर्गा देवी माँ तो आप लोगों की हैं, आप लोग सजावट व शो के लिए 10-12 हजार रोज खर्च करते व खुश होते हैं, पर माँ को यह पसन्द नहीं है, उसके लिए तो सभी सन्तान बराबर है। माँ चाहती है सब मिल कर रहें, बाँट कर खायें। आप लोग शो, कम्पीटिशन व नाम के लिए इतना पैसा बरबाद करते हैं और सजीव दुर्गा आज अवहेलना व अपमान पाती है। मेरी दुर्गा माँ फटे-चिथड़ों में घूमती है, मेहनत-मजदूरी करती है, कण्डे बीनती है और समाज से ठुकराई जाती है। माँ कहती है, मुझे सजावट व दिखावट की आवश्यकता नहीं है, इन सबके लिए कुछ करो ...। सभी प्रभावित हो रहे थे, पर कुछ स्वार्थी तत्त्वों व अभिमानी पंडितों को अच्छा नहीं लगा, उन्होंने विरोध किया, कुछ नवयुवकों से बहस भी हो गई, पुराण-पंथियों ने शास्त्रार्थ का चैलेन्ज किया, स्वामी सत्यम् ने कहा, ठीक है कल बात करेंगे।

दूसरे दिन प्रचार व तैयारियाँ भी बहुत हुईं। ऊँचा स्टेज बना, चारों तरफ माईक लगा, दूर-दूर के लोग भी सुन सकें, 30–35 हजार लोग जमा हो गये। 9 बजे प्रोग्राम शुरू हुआ। पण्डितों ने तर्क शुरू किया–वेद में ऐसा लिखा है। स्वामी सत्यम् कहते, हाँ यह लिखा है, पर यह भी तो लिखा है–और संस्कृत के शब्दों में इतनी सरलता से समझाते कि लोग आश्चर्यचकित हो उठते। उपनिषद् में ऐसा लिखा है, पुराणों में ऐसा कहा है, भागवत में, गीता में, रामायण में ये लिखा है, ऐसा कहा है। वेद, पुराण, उपनिषद्, भागवत, गीता, रामायण पर पूर्ण अधिकार से बोलते व समझाते। अकाट्य तर्क व संस्कृत के नये-नये अध्याय पर अध्याय खोलते देख, तर्कशास्त्री घबरा गये। इसी तरह डेढ़ घण्टा चला, उसके बाद उन्होंने घुटने टेक दिए। उन्होंने ऐलान कर दिया, स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी के चरणों में प्रणाम सहित हम अपनी पराजय स्वीकार करते हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, बड़े-बड़े दिग्गजों के सामने तो हम बच्चे हैं, हम तो डर रहे थे, पर यहाँ तो 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया।' जैसी प्रभु की इच्छा हो, आप सब पूज्य जनों के चरणों में हमारा प्रणाम स्वीकार हो। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था, बच्चे व बड़े भी खुशी में उछल रहे थे। स्वामी सत्यम् ने अगड़ बम भजन शुरू कर दिया, इतना जोरदार ताण्डव नृत्य शुरू किया था लड़कों ने, भाव-विभोर हो सभी उछलने लगे और 15 मिनट तक लोग देखते ही रह गये, कोई हिला तक नहीं।

स्वामी सत्यानन्द बच्चों में बच्चे हैं, बूढ़ों में बूढ़े हैं, अपठ व गाँव के गरीबों में जनसेवी हैं, एकदम सामान्य हैं और विद्वानों में निष्णात-विचारवान हैं। भक्तों में भावुक भजनिक हैं तो साधकों में उत्कृष्ट योगाचार्य हैं। अभावग्रस्त व्यक्तियों के बीच एक उत्तम देश कालज्ञ, पथ-प्रदर्शक हैं। स्वत: अनामी रहकर, दूसरों को मान देना वे अच्छी तरह जानते हैं। उनकी विद्वत्ता गंभीर है, परन्तु विद्वत्ता से ज्यादा उनकी सेवा-परायणता है, जो अथक है। समय की आवश्यकताओं को देखते-पहचानते हुए उन्होंने अपनी चर्या ऐसी बना ली है कि हृदय जीतने की कला में वे आप ही आप सुदक्ष हो गये हैं। उनके लिए बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। वे सबमें एक ही आत्मा को देखते हैं। उनके पास भेदभाव नहीं है, जैसे माँ का स्नेह पुत्र-पुत्री पर बराबर रहता है, वैसे ही स्वामी सत्यानन्द भी विश्वमय हैं।

नवम्बर में स्वामी सत्यम् गोंदिया गये, वहाँ 5 दिन का प्रोग्राम था। उधर से ही नागपुर, अमरावती, 2-2 दिन प्रोग्राम करते बम्बई गये, वहाँ हर जगह में कुछ दिन रह कर प्रवचन-प्रोग्राम करते थे। वहाँ दो माह रहे, वहाँ के लोगों ने प्रवचनों का संग्रह करके पुस्तक छपाने की बात की थी।

स्वामी सत्यम् नन्दग्राम आये, उन्होंने कुछ दिन रह कर फाइल-पत्र देखे और कहा, 'अब तो पुस्तकें छपती ही रहेंगी, आपको अपना प्रेस रखना चाहिए। इलाहाबाद में पुस्तक छपाने में आपको कितनी परेशानी हुई, अपना प्रेस जरूरी है।' सत्यव्रत जी ने कहा, 'आपकी इच्छा है तो वह भी हो जाएगा।'

बिहार में परिव्राजन

स्वामी सत्यम् जनवरी 1961 में बिहार आए। छपरा में प्रोग्राम था, वहाँ एक माह रहे, इधर-उधर भी प्रोग्राम हुआ। वहाँ से मुंगेर आये...। पहले मुंगेर आते तो एक भक्त के घर लालदरवाजे में ठहरते थे। अब श्री रायबहादुर केदारनाथ गोयनका के आनन्द भवन में रहने लगे।

आनन्द भवन बहुत ही सुन्दर आनन्ददायक भवन है। इसे मीर कासिम ने बनवाया था, ऐतिहासिक जगह है। बहुत बड़ी जगह में निर्मित यह आनन्द भवन विशेष कलाकृति से पूर्ण है। चारों ओर लता-वृक्ष, बाग-बगीचे, फल-फूलों के पौधे दर्शनीय हैं, प्राकृतिक छटा बिखरी पड़ी है, पर एक विशेष जगह है आकर्षण की ... इस भवन के पीछे तरफ हरियाली छाई है, पेड़ों, फूलों, फव्वारों के मध्य एक चौरस छज्जा है, उसमें बेंच कुर्सियाँ बनी हैं, वहीं से नीचे गंगा जी बह रही हैं, भवन की दीवार से टकराती हुई। पाट भी बहुत चौड़ा है, ऊपर नीला आकाश, नीचे सब तरफ जल ही जल दिखाई पड़ता है, घण्टों बैठे देखते रहने पर भी लगता है, देखते ही रहें।

जन कलरव से अलग यह प्राकृतिक दृश्य स्वामी सत्यानन्द जी को बहुत प्रिय है। वहीं पर इन्होंने 'सिद्ध प्रार्थना' भजन पुस्तिका तैयार की थी, जो इलाहाबाद में छपी। स्वामी सत्यानन्द जी जब भी बिहार आते, गोयनका जी का स्नेह, प्रेम, आनन्द भवन का प्राकृतिक दृश्य इन्हें अपनी ओर जरूर खींचता। आकर कुछ दिन रहते। अब एक आकर्षण और बढ़ गया, 'कर्ण चौरा', सुबह-दोपहर-शाम कभी भी जाते वहाँ पर, और कुछ अनुभव भी होता।

जब तक मुंगेर में रहते, कर्ण चौरा बराबर जाते, उस ऐतिहासिक चबूतरे पर बैठते, कभी वहीं पर ध्यान करते, कभी वहीं पर सो जाते। कभी उन्हें

कुछ दिखता भी, आश्चर्य होता, पर समय पर पहुँच ही जाते थे। गोयनका जी चाहते थे, स्वामी सत्यानन्द जी मुंगेर में ही रहें। हमेशा कहते, आप यहीं रहिये, यहाँ गंगा जी भी हैं, आपका आदेश हो तो आश्रम बन जायेगा। स्वामी सत्यानन्द जी कहते, हमें आश्रम नहीं बनाना है, जब भी यहाँ आऊँगा, आनन्द भवन में कुछ दिन रहूँगा ही।

भागलपुर में शिव-भवन में रहते, श्रीमती अध्यावती सहाय उनके गुरु आश्रम से परिचित थी ही, वहाँ बड़े व बच्चे सभी बहुत मानते थे। वहाँ सभी ने मंत्र लिया, श्रीमती सुशीला सहाय ने मंत्र लिया, साधना भी बहुत की। डॉ.बी.एल. प्रसाद व श्रीमती हेमलता प्रसाद भी उनके नजदीकी हैं, प्रिय हैं, भक्त हैं। हर तरफ से मदद करते।

छपरा में श्री कैलासपति नारायण जी के पास रहते थे। वे भी बड़े भक्त हैं, उन्होंने स्वामी सत्यानन्द जी के प्रवचनों की पुस्तक भी छपवाई है। मुंगेर से भागलपुर, छपरा, कतरासगढ़, सीतामढ़ी, पटना और भी जगह जाते, सत्संग प्रोग्राम करते, फिर मुंगेर कुछ दिन रहते।

अभिमानी ठाकुर का हृदय-परिवर्तन

स्वामी सत्यानन्द जी के भक्त-शिष्य सभी जगह हैं, इनका व्यवहार भी ऐसा है कि जो एक बार मिलता, सत्संग कर लेता, वह कभी भूल नहीं सकता है। कैसा भी नास्तिक हो या कट्टर विरोधी हो, इनसे मिलकर, सत्संग करके, वह इनका प्रिय भक्त बन जाता है।

इसी संदर्भ में एक सच्ची घटना ...

रींवा में एक छोटा-सा गाँव है रायपुर, वहाँ के ठाकुर रविनन्दन सिंह से पूरा गाँव डरता था। उसका छोटा भाई मेजर था नरेंद्र सिंह, दिल्ली की तरफ रहता था। हमेशा दिल्ली से ऋषिकेश आता था, स्वामी सत्यम् को बहुत मानता था। साधना भी बहुत करता था। पत्र लिखता, साधना के बारे में पूछता रहता था। उसका विशेष अनुरोध था, आप रींवा जाते हैं तो मेरे गाँव भी जाइएगा। बहुत पिछड़ा गाँव है, आपके जाने से गाँव में व मेरे घर में जरूर परिवर्तन होगा।

1959 की बात है, स्वामी सत्यानन्द जी रींवा गये तो रायपुर भी गये। जब गाँव में गये तो सब ने कहा, महात्मा जी आप वापस जाइये, ठाकुर तो साधु-संतों की झोली भी छीन लेता है। इन्होंने कहा, हमें ठाकुर रविनन्दन सिंह के

घर जाना है, पता बताइये। गाँव वाले पैर पड़ने लगे कि वह अपमान करेगा। गाय वाले साधु बाबा उनके घर चले गये तो उसने गाय छीन कर उनको मार कर भगा दिया, हमेशा बन्दूक रखता है, महाराज जी आप न जायें। उसके डर से भिखारी तक नहीं आते। स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'तब तो हमें जाना ही है, उनको देखना है।' और उसके दरवाजे पर पहुँच ही गये।

ठाकुर ने स्वामी सत्यानन्द जी से रूखा व्यवहार किया, फिर कहा, 'छोट्टे ने भेजा है, तो एक दिन रहिये।' इनको तो रहना ही था। रविनन्दन सिंह का दोस्त था धर्मदास मिश्रा, रिटायर्ड एस.पी., दोनों दोस्तों ने सत्संग लाभ लिया। दूसरे दिन आने लगे तो कहा, 'महाराज जी, एक-दो दिन रह जाइये।' स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'मेरे गुरुदेव का आदेश है, सबसे सत्संग करने का, तो हम मंदिर में ठहरेंगे, गरीबों को कुछ बतायेंगे।' ठाकुर ने कहा–आप यहीं रहें, हम गाँव वालों को बुलायेंगे। बुलाने पर डरते हुए कुछ लोग आए, फिर तो आज-कल करते महीना बीत गया, और धीरे-धीरे गाँव वाले सत्संग में रोज आने लगे।

ठाकुर भंग-भवानी का बहुत भक्त था, दिन-रात छनती थी। पर्दा इतना कि औरतों को सूरज भी नहीं देख सकते थे और औरतें भी रिवाल्वर रखतीं, बच्चे भी रखते थे, स्कूल जाते तो रिवाल्वर लेकर जाते, लड़कियाँ स्कूल जाती ही नहीं। रईसी इतनी कि बरसात के बाद फफूँद लगने के डर से 'सोना, चाँदी, रुपये' को धूप में सुखाया जाता था, सुखाने के पहले तौला जाता, रखते समय फिर तौलते, नौकर लोग एक-दो पाव कम बताते तो ठीक, पूरा बताते तो कहता, ठीक से धूप नहीं लगी होगी, फिर कल सुखाना पड़ेगा।

होशियारी इतनी कि अगर 10 मील दूर किसी गाँव में जाना है, खूब तैयारी होती, भंग छनती, ठाकुर हाथी पर, साथ में बहुत लोग जाते, पता चलता 12 मील आ गये, तो दो मील आगे वहीं टेन्ट लग जाता, भोजन बनता, भंग छनती और खा-पीकर घर आ जाते। फिर तैयारियाँ होतीं, धूमधाम से चलते, पर सतर्कता से बार-बार पूछते हुए ठिकाने पर ही जाते, ऐसे विचित्र थे।

स्वामी सत्यानन्द जी के सत्संग के बाद बहुत परिवर्तन हुआ, औरतें भी सत्संग में शामिल होने लगीं, लड़कियाँ स्कूल जाने लगीं, गाँव वाले सत्संग में बुलाये जाने लगे। किसी गरीब की कुछ मदद भी होने लगी। जब स्वामी सत्यानन्द जी आने लगे तो ठाकुर ने 500 रुपये दिये। स्वामीजी ने कहा, 'यह तो हम लेते नहीं, हम संन्यासी हैं, हमारी बातों को सुनें, समझें और सब मिल

कर रहें। आप लोग हमें भोजन-कपड़ा तो देते ही हैं, टिकट भी देंगे, साधु को रुपये की क्या आवश्यकता?'

ठाकुर ने इनके सामने रिवाल्वर तान कर कहा, 'महाराज जी, इसी के बल पर साधु तो क्या, भिखारी तक को लूटा है, इसी के बल पर आपको दूँगा ही, जीवन में पहली बार किसी को दे रहा हूँ, नहीं लोगे तो शूट कर दूँगा।' स्वामीजी हँस रहे थे, ठाकुर की आँखों से गंगा-यमुना बह रही थी।

स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'अच्छा जी, हमने लिया, आप इसे सत्यव्रत जी के पास भेज दें। मेरा सभी काम व खर्चा वही लोग करते हैं, मेरी पुस्तकें भी छपवायी हैं, वहाँ रहने से मेरे काम ही आयेगा।' ऐसे भक्त-शिष्य थे ठाकुर रविनन्दन सिंह और धर्मदास मिश्रा। जिसे देखकर गाँव के लोग काँपने लगते थे, वही सबके अपने भी हो गये। धर्मदास मिश्रा मुंगेर आया, 1965 जनवरी में संन्यास भी लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की स्थापना

14 फरवरी 1961 को निरंजन जी एक साल के हुए, फोटो ली, खूब अच्छी आई। एक प्रति स्वामी सत्यानन्द जी के पास भेजी। दो माह बाद 'योग निद्रा और प्राणायाम विज्ञान' पुस्तक का पार्सल मिला, उसमें वही चित्र छपा है, शीर्षक है ...

'महान् सेवक का अवतरण, जिसके हाथों भारतीय-संस्कृति का उत्थान व योग विद्या का प्रचार होने वाला है।'

1961 में स्वामी सत्यम् का प्रोग्राम बिहार प्रान्त में बहुत हुआ। प्रोग्राम के बाद वे मुंगेर, आनन्द भवन में रहकर पुस्तकों का काम करते। 'लेसन ऑन योग' का अनुवाद हो रहा था, 'योग साधना भाग-1'

योग साधना भाग-2 के लिए पत्रों का संग्रह तैयार हो रहा था। बम्बई, अमरावती, नन्दग्राम, भिलाई, बिलासपुर, रायगढ़, कलकत्ता, सभी जगह प्रोग्राम हो रहा था। बम्बई वालों ने अँग्रेजी प्रवचनों का संग्रह कर 4 पुस्तकें छापने की तैयारी कर ली थी।

जनवरी 1962 में स्वामी सत्यम् नन्दग्राम आये, उनको एक संस्था निर्माण की प्रेरणा मिल रही थी। सत्यव्रत जी से सलाह करके निर्णय लिया। 9 जनवरी को सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्रा, राजस्व मंत्री के.एल. शुक्ला तथा गणमान्य लोगों की मीटिंग बुलाई गई। स्वामी सत्यम् ने

'इन्टरनेशनल योग फेलोशिप' संस्था के निर्माण की योजना समझायी। तय हुआ इसके लिए नियमानुसार कागज तैयार किया जाए और उसका काम शुरू हो गया।

15 जनवरी को मीटिंग हुई, स्वामी सत्यम् ने कहा, 'नागपुर में शिविर लगना है, उसके बाद हम बम्बई जायेंगे, वहाँ पुस्तकें छप रही हैं। 'सत्यम् स्पीक्स', 'वर्ड्स ऑफ सत्यम्', 'प्रैक्टिस ऑफ त्राटक', 'योग चूड़ामणि उपनिषद्', 'योगशक्ति स्पीक्स', 'स्टेप्स टू योगा', 'योगा इनिसिएशन पेपर्स', 'पवन मुक्तासन', आठ पुस्तकें हैं अंग्रेजी में। और भागलपुर, छपरा तथा मुंगेर में योग साधना भाग-1 एवं 2, अमरसंगीत, सूर्यनमस्कार, योगासन मुद्रा बंध की पुस्तकें हिन्दी में छपेंगी। सभी पुस्तकें छपकर नन्दग्राम आयेंगी। 'पब्लिकेशन सोसाइटी नन्दग्राम' होगा।' तय हुआ, सत्यानन्द पब्लिकेशन सोसाइटी नन्दग्राम के सेक्रेटरी सत्यव्रत जी होंगे, इसका रजिस्ट्रेशन कराना होगा।

संस्था अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के विषय में मीटिंग 25 फरवरी को हुई, कमेटी मेम्बरों का चुनाव हुआ। सब कागज तैयार करने होंगे, फिर आगे इस तरह काम लिया जायेगा। सब बातें समझा कर स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'सत्यव्रत जी को प्रिन्टिंग प्रेस की भी तैयारी करनी होगी। इतनी पुस्तकें छप रही हैं, भविष्य में जाने कितनी छपेंगी। हमारे मिशन की नींव तो पुस्तकें ही हैं। हमारे मन में योग पत्रिका के भी विचार आ रहे हैं। सत्यव्रत और धर्मशक्ति को सब काम संभालना होगा।'

उन्होंने आगे कहा, 'जिन्दगी गुलाब है। उसे पाने के लिए काँटों से उलझना होगा। जिन्दगी सर्प की मणि है, उसे लेने के लिए विषधर से लड़कर पाना होगा। जिन्दगी चन्दन है, अत: सुवास के लिए वृक्ष को विषधर से सतर्क होकर ही काटना होगा। यही लक्ष्य लेकर इन लोगों को भी आगे बढ़ना है। युग की माँग है कि लौकिक में पारलौकिक अनुभूति का मार्ग संन्यासी से अधिक गृहस्थ दे सकता है।'

सब काम समझा कर, प्रेस के बारे में कहाँ-कहाँ पत्र लिखना होगा, बता कर स्वामी सत्यम् मुंगेर गये। 24 से 30 मार्च तक वे सीतामढ़ी में रहे, फिर नन्दग्राम आये। 'इन्टर नेशनल योग फेलोशिप' का रजिस्ट्रेशन हो चुका था। उन्होंने कागज देखे, सब काम बताया, समझाया। उत्साह का वातावरण बनाकर, वे नागपुर गये। वहाँ से बम्बई गये। अप्रैल पूरा बम्बई में रहे, मई में नन्दग्राम आये।





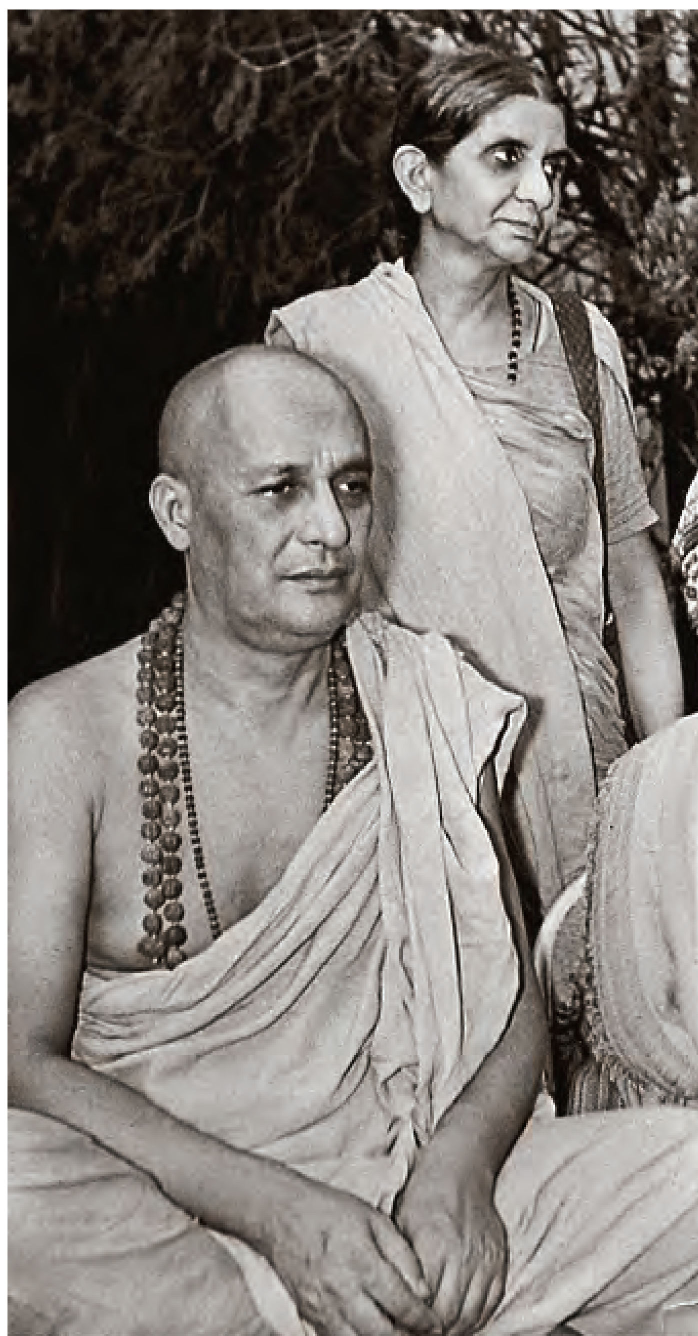












स्वामी शिवानन्द जी को 'इन्टर नेशनल योग फेलोशिप' के बारे में पत्र व पूरा समाचार लिख कर आशीष माँगा। आशीर्वाद पत्र मिला–

दिव्य आत्मन्
प्रणाम!

मैं आप लोगों की संस्था 'इन्टर नेशनल योग फेलोशिप' के लिए अपना हार्दिक सन्देश भेजता हूँ। महाप्रभु आपके महान् कार्य को सफल बनायें। तदर्थ मैं विश्वनाथ प्रभु का प्रसाद भी साथ में भेज रहा हूँ।

आत्म-शान्ति भारतीय संस्कृति का विस्तार है। यह आत्म-शान्ति, ईश्वरीय गुण और आत्मा का धर्म है। पवित्र हृदय में यह शान्ति उतरती है। शान्ति कहो या ईश्वर, आत्मा कहो या मोक्ष, बात एक ही है। ध्यान, भक्ति, जप और प्रार्थना से यह शान्ति प्राप्त होती है।

शान्ति, धन के संचय या विषयों में असंभव है। तृष्णा और विषयेच्छा का त्यागी ही आत्म-शान्ति को प्राप्त करता है।

मानव समाज की तह में घुसी घृणा, लोभ, मोह, स्वार्थपरता और ईर्ष्या को हटाकर आप आत्म-शान्ति का सन्देश सुनाइये। आत्म-शान्ति से ही विश्व-शान्ति की समस्या हल हो सकती है। वही मानवता की सच्ची सेवा है, उसे आत्म-नीरवता का संगीत सुनाना। भगवान आपके महान् कार्य में मदद करें।

दिव्य जीवन संघ — *श्रद्धा, प्रेम व ॐ*
शिवानन्द नगर (ऋषिकेश) — *स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

महान् गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर, मिशन का काम चलने लगा, सबको उत्साह भी बहुत मिला।

आनन्द भवन, मुंगेर में चातुर्मास

स्वामी सत्यम् चातुर्मास के लिए मुंगेर आए। वे जब भी मुंगेर आते, आनन्द भवन में रहते थे। आनन्द भवन बहुत बड़ी इमारत है, पास ही छोटी इमारत थी, सर्व सुविधा युक्त। चातुर्मास में वहीं रहना तय हुआ। शान्त वातावरण पसंद तो था, पर जंगल जैसी इमारत में रात को चौकीदार भी नहीं रहता था, यानि रात 11 बजे तक चौकीदार लोग ताला बंद करके चाबी स्वामी सत्यम् को दे देते और चले जाते थे। सुबह 5 बजे आकर काम करते थे। स्वामी सत्यम्

कठिन साधना करने के कारण अन्न नहीं लेते थे, सिर्फ एक बार फल ही लेते थे। उन्होंने हठ योग की कठिन व अद्‌भुत साधना शुरू की। रात को एकदम शान्त वातावरण, चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पेड़, बीच में जहाज जैसा आनन्द भवन, बगल में छोटी कोठी। प्रकृति भी शान्त रहती, गंगा जी की हरहराती आवाज ही सुनाई देती थी। इस शान्त वातावरण में स्वामी सत्यम् बड़े मनोयोग से अपनी साधना करते रहते, कभी-कभी पूरी रात मंत्र-जप साधना चलती।

एक रात स्वामी सत्यम् को साज-संगीत के साथ नृत्य की आवाज सुनाई दी। इन्होंने सोचा, नौकर लोग तो चले जाते हैं, शायद आज किसी लड़की को ले आये हों। अत: ये वस्तुस्थिति को जानने उनके कमरे तक गये, ताले बंद थे। फिर भी बंद कमरे से सुन्दर बसन्त बहार राग सुनाई पड़ रहा था। इन्होंने सोचा, यह इमारत मीरकासिम की थी, शायद किसी राजा-महाराजा या किसी व्यक्ति ने किसी नाचने वाली लड़की का खून कर दिया हो, यह उसी लड़की की आत्मा हो। सोचते रहे, पर प्रत्यक्ष व सजीव लग रहा था और ये एकाग्रता से उसे सुनते रहे। सुर, लय और धुन बहुत अच्छी लग रही थी, उसे मनोयोग से सुनते रहे ...।

जब तक उस इमारत में रहे, इस धुन को कई बार सुना और स्वामी सत्यम् की साधना निर्विघ्न पूरी हो गई। बाद में स्वामी सत्यम् बड़ी इमारत (आनन्द भवन) में आ गये। दिन में बहुत लोग रहते, 8–10 माली, चौकीदार, वगैरह रहते। घूमने वाले आते, गोयनका जी व उनका परिवार भी आता रहता, पर रात को वहाँ कोई नहीं रहता, उधर कोई आता भी नहीं था। उस समय मुंगेर इतना घना भी नहीं था। पास ही पोस्टमार्टम घर है, इससे भी लोग डरते। रात को भूत बंगला कह कर, उस रास्ते भी लोग नहीं आते थे। स्वामी सत्यम् को वह जगह बहुत अच्छी लगती। इमारत का पिछला भाग, जो गंगा जी के पास है, जहाँ दिन में भी लोग जाने से डरते। स्वामी सत्यम् वहीं बैठना पसंद करते थे। दीन-दुनिया से अलग प्रकृति की गोद इन्हें प्रिय थी।

आनन्द भवन में भी रात को आश्चर्यजनक घटनायें होने लगीं। अक्सर दूसरे कमरे से सिक्के गिनने की आवाजें आतीं। ये जानते थे कि वहाँ कोई नहीं है, क्योंकि दरवाजा बंद करके ताला लगाया है, चाबी इनके पास है। और भी कई तरह के अनुभव हुए। रात में साधना-अनुष्ठान करते रहते, लगता कि कमरे में पक्षी उड़ रहे हैं। पर स्वामी सत्यम् उस पर कभी नहीं सोचते, क्योंकि आनन्द भवन में कई बार रह चुके थे और ये विचित्र अनुभव साधना करने पर

ही होते। वह सब चाहे भूत-प्रेत रहे हों या साधना की सिद्धि, पर स्वामी सत्यम् निर्लिप्त भाव से अपनी साधना करते रहे।

स्वामी सत्यम् कहते हैं, "मेरा पूर्व जीवन कुछ अंशों तक बुद्धिजीवी रहा है। तर्क-वितर्क, अध्ययन की भावना छोटी उम्र से थी ही, गुरु आश्रम में कर्म योग, अध्ययन, साधना, दर्शन की सभी पुस्तकें पढ़ी थीं। सांख्य दर्शन बहुत प्रिय है। दुनिया के सभी धर्म-कर्म-दर्शन, कुछ नहीं बचा होगा पढ़ने को।

मेरे गुरु भाई स्वामी चिदानन्द जी, जिनकी मैं बहुत इज्जत करता हूँ, जब भी मिलते तो सबसे पहले कहते, तुम्हारे साथ कोई बहस नहीं, तुम्हीं ठीक हो। यही बात स्वामी वेंकटेशानन्द भी कहते। आज भी अपने गुरु भाइयों के लिए मैं एक तार्किक हौआ हूँ। इसलिए डर या भय का भी मुझ पर असर नहीं होता। हर बात अपने ही ढंग से सोचता हूँ।"

सच भी है, महान् विभूतियाँ तो ऐसी ही होती हैं।

बी.एन.सी. मिल्स कई माह से बंद थी। निकट भविष्य में चालू होने की उम्मीद भी नहीं थी। मालिक कलकत्ते में रहते थे, बेटे व दामाद मैनेजर थे। अन्य रिश्तेदार भी पदाधिकारी थे, नहीं चला सके तो बंद कर दी। ऑफिसर लोग तो ऑफिस जाते थे, पर पाँच हजार मजदूर बेकार हो गये थे, संघर्ष चल रहा था, नेता लोग गरीबों को भड़का रहे थे।

राजगीर में साधना-शिविर

अक्टूबर 1962 में भागलपुर वालों के सहयोग से राजगीर में 15 दिनों का शिविर लगा। भागलपुर, छपरा, बम्बई के भक्त लोग आये थे। नन्दग्राम से सत्यव्रत और धर्मशक्ति पौने दो वर्ष के स्वामी निरंजन को लेकर आये थे। राजगीर ऐतिहासिक, धार्मिक और प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण दर्शनीय स्थल है। यह भगवान बुद्ध का क्षेत्र था, गृधकूट पर्वत पर कुछ समय तक भगवान बुद्ध ने प्रवास दिया था। यहाँ बौद्धकालीन विहार व गुफायें हैं। झरने, पहाड़ियाँ, तप्तकुण्ड दर्शकों के मन को मोह लेते हैं। जरासंध की राजधानी थी, भगवान कृष्ण अर्जुन और भीम के साथ यहाँ आये थे।

साधना, सत्संग, प्रवचन, गर्म कुण्ड का स्नान, दर्शनीय स्थानों में घूमना। स्वामी सत्यम् ऐतिहासिक बातें बताते-समझाते। शाम को सत्संग होता–

"वे भाग्यशाली हैं, जिनका हृदय गुरु के प्रति भाव से भरा है, क्योंकि मनोयोग में भाव ही विद्युत-शक्ति है। यदि भाव वाले साधक अपनी आतुरता

का उपयोग नहीं करते तो वे मौका चूकते हैं। इस संसार में प्रथम, प्रेम मिलता नहीं और यदि है तो उसमें कामादि की प्रधानता है। प्रेम का अन्त मोह या वैर में होता है। अत: गुरु के प्रति प्रेम होता ही नहीं, होता है तो साधारण आदर के रूप में, अनुराग के रूप में नहीं, और यदि अनुराग हुआ भी तो धीरे-धीरे विकृत होता जाता है। पर जहाँ गुरु और शिष्य परस्पर अभिन्न, विकारों से अलिप्त हैं, वहाँ सारी सिद्धियाँ जागती हैं। गहरा और गजब का प्रेम हो, पर आदर्श हो और शुद्ध हो। यही बिजली की ताकत है, जो ब्रॉडकास्टर और रिसीवर को चलाती है। यदि तुममें इतना ऊँचा भाव है, इतनी समीपता है, तो ध्यान के माइल-स्टोन से आगे बढ़ो। मेरे प्रत्येक संदेश को सुनना। अन्तर भाषा में मानस पर लिख कर शून्य गति में पत्र भेजना और पाना। समझो और करो। ध्यान, ध्यान, स्मृति में डूबते जाओ। सदा-सर्वदा एक ही प्रवाह में बहते जाओ। क्या हुआ, क्या होगा, यह सोचना ही व्यर्थ है। सब उनका दिया है। दाता एक है, किसी को दिया, किसी को नहीं, क्यों दिया, क्यों नहीं दिया, यह दोनों सोचना पागलपन है।

प्रभावों से ऊपर उठो, यही श्रेष्ठ साधना है। अनासक्ति का अभ्यास करो, अशान्ति मन की कल्पना है। दु:ख तो मान्यता है, मस्त रहो, यही संन्यास है। हर बात पर मन लगाना सांसारिकता है। प्रसन्नता और विषाद से साधना कुंठित होती है। जीवन जैसे चल रहा है चलने दो, मस्त रहो। तुम्हें कुछ नहीं करना है, ऊपर वाला करेगा, तुम मशीन की तरह रहो।

मुझे अपने मिशन के कार्यों से ही मतलब है। दोस्तों की मुझे जरूरत नहीं, अकर्मण्य छँटनी में जायेंगे। मेरा काम सत्यव्रत और धर्मशक्ति के आधार पर चलेगा। मुझे तुम दोनों में पूर्णता प्रतीत होती है। बाकी सब उपयोगी हैं, योग्य हैं, पर अपने हों सो बात नहीं है। यदि हम बुरे भी हो जायें तो तुम दोनों हमें नहीं छोड़ोगे, जबकि सब मुकर जायेंगे, चले जायेंगे।

प्रगति ठीक चल रही है, साधना बराबर करते रहना, अज्ञान का बादल हटेगा, ध्यान का प्रकाश जागेगा। एक रूप, एक नाम का विस्मरण कभी न हो। मन की तरंगें थम जाएँ, बवन्डर डूबते जायें। जहाँ तरंगें आत्म-स्वरूप में लीन हुईं कि ...।

नारी की प्रगति धीरे-धीरे होती है, पर होती है और मजबूत होती है। स्त्रियाँ इस मार्ग पर आयीं कहाँ, कौन उन्हें रास्ता दिखलाए। कई लोगों ने रास्ता दिखाया, पर वे खुद भूल पड़े। यह तो गजब का संयोग है कि तुम

दोनों समानान्तर चल रहे हो मेरे पीछे। यह अभूतपूर्व संस्कार है। धर्मशक्ति तुम्हारी तपस्या व शुभ संस्कारों के वरदान स्वरूप जो 'रत्न' प्राप्त हुआ है, इसके उज्ज्वल भविष्य के लिए भी अपने को त्याग-तपस्या-साधना में लीन कर दो। 'नाम-रूप' द्वारा 'तरंगों' को लीन करते चलो, धीरे-धीरे एक-एक करके। कभी बदरी, कभी बिजली, कभी तारे, कभी चाँदनी, कभी गगन की सैर, समझ गये न?

फिर कभी वीणा, तार, सितार, धम्-धम्, छपाक्, भ्रामरी और कभी अनहद ध्वनि, कीर्तन। जब साधना में आनन्द आता है तब प्रायः सभी उस आनन्द में खो जाते हैं। यानि बहिर्मुख हो जाते हैं, पर विघ्न भी है। नाम-रूप की स्मृति के सामने, आनन्द, दुःख, सुख के अनुभवों को सिर कभी न उठाने दो। मन की खैर-खबर रखने से परेशानी, चिन्ता, उलझन, अशान्ति अधिक और अपने इष्ट का विस्मरण भी उतने ही प्रतिशत होता है। यदि प्रेम गजब की अनुभूति है तो मन की कूद हिरण की नाई अपनी-अपनी सीमा में होती है। अभ्यास करना भी एक चीज है, उन्नति हो रही है, और होगी ही।

स्त्री का मन सचमुच पारा है। वह अमृत है, पर स्वार्थ में अंधी होकर विष भी हो सकती है। मगर उसका मन सध गया तो एक आश्चर्य की सृष्टि की जा सकती है। पर क्या स्त्री और पुरुष, अध्यात्म की स्थिति में भी अलग-अलग विशेषताएँ लेकर रहते हैं? यह तो साधारण बात में ठीक है, अध्यात्म जगत् में नहीं। एक गुण, एक द्रव्य, एक शक्ति, दोनों को ही साधना की अग्नि में गलना, नाम-रूप के साँचे में ढलना पड़ता है। जो विभिन्नता देखने में आती है, वह भौतिक नहीं, परम्परा से मिली शिक्षा-दीक्षा और समाज के संस्कारों का परिणाम है। साधना बदली कि सब पुराने पत्ते झड़े, बसन्त आया। अविश्वास गया, आत्म-विश्वास आया। असल में नारी के मन पर परम्परा के दोष थोपे गये हैं, उसी साँचे में उसे ढालने पर मजबूर किया गया है। उन्हें क्षुद्र होने वाली विभीषिकाओं से ढाला गया है, न कि उनमें कोई भौतिक क्षुद्रता है। सबका स्वभाव आत्मस्वरूप, सत्-चित्-आनन्द है। दिखलाई पड़ने वाले संस्कार आवरण मात्र हैं।"

सत्संग के बाद सब चले गये, पर हम सभी साधना करने वाले बैठे ही रहे। स्वामी सत्यम् ने कहना शुरू किया, "अध्यात्म-भाव गहरा होने पर स्मृति सतत् प्रवाहित होने लगती है। जब स्वप्न हो तो जानना कि चेतना पर स्पर्श हो चुका है। ध्यान में प्रगति हो तो जानना कि स्मृति पर अंकन हो चुका है।

जब सत्यत: प्रतीत हो तो जानना कि स्मृति चेतन हो चुकी है। प्रेरणा की धारा बह रही है, उसे पहले से अधिक चौड़ा मार्ग मिलना चाहिए। सब संकल्पों को मूर्त्त रूप दो, एकदम बदलना होगा। नये बसन्त के नए पात, नये फूल, नई डाल, पिछले साल के जीर्ण-शीर्ण पत्तों को झकझोर कर गिरा दो। 'नया साल नया फूल देगा।'

अब संकल्पों में कमजोरी न लाना, श्रद्धा को मजबूत बनाना, संशय की रात जा रही है, विश्वास का सूरज तेजी से चमके, ताकि 'तुम' लोगों को राह बता सको। विचारों का मुख एक ही ओर होना चाहिए। विचारों की प्रत्येक गतिविधि के मूल में विचार, 'रूप सिद्धि', 'चिन्मय विग्रह'।

एकान्त साधना। जप, माला, चित्र, पुरश्चरण, मौन, अल्पभाषण, एकान्त सेवन, आसन, स्वाध्याय, मंत्र लेखन, ध्यान। नींद में भी ईश चिन्तन, स्वप्न में भी जप-ध्यान। पन्द्रह दिन सब कुछ भूलकर परमानन्द में रहो।

अपना उद्‌देश्य सामने रखकर काम करना है। जप-ध्यान, श्रद्धा-विश्वास द्वारा चुपचाप एक शक्ति को प्रकट करना है। अपने इष्ट को साकार व चैतन्य करना है; कम-से-कम एक-आध मिनट के लिए इन्द्रियों के दरवाजे बंद करने हैं, तब कहीं अन्दर के द्वार खुलेंगे। यह ध्यान की अवस्था है। इसके लिए 'मन का मौन' पालन करना होगा। यह सतत् सुमिरण तथा नाम जप से ही हो सकता है।

भय को सर्वथा हटा देना चाहिए, न सच का भय, न झूठ का, न पाप का, न पुण्य का, न विधि का, न निषेध का, न देव का, न दानव का। हृदय में छिपाई गई बातों से भय उपजता है, दूसरे को मालूम न हो, ऐसे कामों से भय उपजता है। निन्दा सुनने से, पक्षपात से भी भय उपजता है। ईश्वर पर विश्वास खोने से असली भय उपजता है, तभी उसके रूप-रूपान्तर पैदा होते हैं। जब तक भय है, अमांगल्य है, तभी तक अंधकार है। भय दूर कर ध्यान करना होगा। श्वास-प्रश्वास में जप और विचार धीरे-धीरे बंद, उद्विग्नता पर विजय, ध्यान-ध्यान, अन्दर जाओ, तब और अंदर का रास्ता मिलेगा। सब दरवाजे बंद करो, हवा से खुलेंगे, फिर डटकर बंद करना, हवा थमने पर वे नहीं खुलेंगे। नाम जप रुक गया तो गाड़ी ठप्प।

मन चरने जाता है　　चिन्ता काँटे चुभाती है　　फूल मन को मोहते हैं।
कौआ कान खाता है　　कोयल बेहोश करती है　　तोता याद दिलाता है
गरमी गरम होती है　　जाड़ा दाँत तोड़ देता है　　मन को एक विचार में साधो
कुत्ते को भौंकने दो　　अपने को निर्लिप्त 'निरंजन' रखो　　यह होवे वह होवे से दूर रहो।

चिन्ता किसे नहीं, दु:ख किसे नहीं। नदी बहती है, बहना उसका स्वभाव है। जीवन चलता है, चलना उसका स्वभाव है। हमें एक ही चिन्ता करनी चाहिए कि कैसे 'चिन्मय विग्रह' के दर्शन हों। नित्य निरंतर उसी की चिन्ता रहे। यह नहीं कि मंत्र ले लिया, मुक्ति हो गई। अरे भाई, मुक्त तो हम थे ही, पाप हमने किए ही कब? पाप-पुण्य कोई चीज है? खून करने वाला दुनिया में ही सजा पाता है। हमने मुक्ति के लिए मंत्र थोड़े ही लिया है। हमने ईश्वर-साक्षात्कार के लिए मंत्र लिया है। हमें उनसे प्रेम है, इसलिए साधना शुरू की है। पाप-पुण्य, मुक्ति-बंधन का पचड़ा ही हटा दो।

लौकिक प्रेम गिराता है। बिछोह, टीस, मिलन की खुशी, लौकिक प्रेम के लक्षण हैं। सच्चा प्रेम गंभीर होता है। उसमें चिर-शान्ति, अनन्त आनन्द रहता है। मेरा देवता कहीं गया नहीं, कहीं से आएगा नहीं, वह मेरे रोम-रोम में रमा है। यह भाव रहना चाहिए। तभी गुरु-शिष्य बंधन और पतन से बच सकते हैं। तभी शिष्य ज्ञान का अनुभव पा सकता है। अपनी आत्मा को उठाओ, जगाओ और आकाश की दूरी को चीर कर, ध्यान में गुरु में तल्लीन कर दो। खाली नाम रटने से उद्धार नहीं होगा। दिन-रात यह ध्यान-योग चलना चाहिए। दुनिया तो आशाओं-निराशाओं का पिंजरा है और आध्यात्मिक जीवन एक आनन्दमय खेल का मैदान है। हमें चोट लगती है, जीत होती है, हार होती है, तो भी हम हँसते हैं, खिलखिलाते हैं। हरि ॐ।"

इस तरह रोज सत्संग होता, बहुत लोग आते, प्रश्न भी करते, अपनी परेशानी व तकलीफ भी बताते-पूछते। स्वामी सत्यम् की साधारण बातें भी प्रवचन ही होतीं। सब नालन्दा भी गये थे। इन्टरनेशनल योगा फेलोशिप की मीटिंग भी हुई, कार्यों की रूप-रेखा बनी, उन्होंने काम शुरू करने को कहा और कैसे क्या करना है, सब समझाया।

योग विद्या प्रिंटिंग प्रेस का श्री गणेश

स्वामी सत्यम् ने नन्दग्राम में प्रेस मशीन का काम जल्दी पूरा करने का आदेश देते हुए कहा, 'मशीन आने में, लगाने में, फिर काम शुरू होने में 4–5 महीने भी लग सकते हैं। हमने जनवरी 1963 से योग पत्रिका हिन्दी-अँग्रेजी में निकालने का निश्चय किया है। आपको बहुत काम करना है, पुस्तकें तो आपके पास आनी शुरू हो ही गयी हैं, पुस्तकें छपती जायेंगी, आपके पास

स्टॉक होता जाएगा। आगे जो पुस्तकें छपेंगी, वे अपनी प्रेस में छपेंगी।' मशीनों के बारे में सब समझाया। हमने पत्र व कैटलॉग, जो प्रेस के बारे में मँगवाये थे, उन्हें दिखाये।

शाम के सत्संग में बाहर से भी बहुत लोग आते थे। कोई कुछ पूछता, उसको समझाते भी थे। एक रोज भक्त की भावना, शरणागत का यथार्थ भाव समझाते हुए उन्होंने कहा–यथार्थ भक्त सुख-दु:ख, दोनों को ईश्वर का मांगलिक संकेत समझकर ग्रहण करता है। कामायणी की श्रद्धा का मनु को यही संदेश है।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल ।
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत जाना इसको भूल ॥

फिर उन्होंने एक छोटा-सा दृष्टान्त बताया। श्रीराम-लक्ष्मण, सीता जी की खोज करते हुए पंपा सरोवर के तट पर पहुँचे। बाण को रेत में गड़ा कर जल में स्नानार्थ उतरे। स्नान के उपरान्त उन्होंने बाण को रेत से खींचा, तो बाण का नुकीला हिस्सा रक्त रंजित था। उन्हें विदित हुआ कि एक मेंढक को बाण चुभ गया था। उन्होंने सखेद मेंढक से कहा–'तुम्हें चिल्लाना तो था।' मेंढक ने बुझे स्वर में कहा, 'विपत्ति आने पर अपनी रक्षा के लिए मैं राम-राम चिल्लाया करता था, पर जब रक्षक ही मारणहार बन गये, तो किसे पुकारता और क्यों पुकारता, यह भी मेरे प्रभु का कृपा-प्रसाद है।' भक्त की भावना कितनी उच्च है।

इस तरह हम सब एक हफ्ते तक सत्संग-सागर में डूबते-उतराते रहे। फिर नवीन उत्साह लेकर, अपने-अपने कार्यक्षेत्र में चले गये।

स्वामी सत्यम् भागलपुर, छपरा होते हुए मुंगेर पहुँचे। उनका काम बढ़ने लगा, फैलने लगा। योग-धर्म के प्रचार हेतु सहयोग तो मिलता ही था, योग प्रचारार्थ अद्भुत योगदान भी प्राप्त हुआ। श्री प्रेमनीति बाबू ने उनके पवन मुक्तासन की रंगीन फिल्म 500 फुट की बना कर दी व फिल्म बाइन्डर दिये। श्री देवनीति बाबू से योग आसन की 12000 फुट रंगीन फिल्म का डुप्लीकेट मिला।

16 मिलीमीटर का एक प्रोजेक्टर, तीन टेप रिकॉर्डर, टेप, ट्रांसफार्मर, रिस्टवाच श्री गोयनका जी व अन्य भक्तों की ओर से मिली। सामान तो स्वामी सत्यम् को बहुत मिले, मिल भी रहे हैं, व मिलेंगे भी, पर स्वामी सत्यम् के

मानस-पटल पर उन सामानों की अमिट छाप है, जो उन्हें प्रारम्भ में मिले। अभी भी उन सामानों के बारे में भाव-विभोर होकर बताते हैं, कहते हैं–ये चीजें उस समय बहुमूल्य थीं, इनके सहारे ही तो मेरा योग प्रचार का काम बढ़ा व सुलभ हुआ। मुझे मदद देकर योग में सहयोग तो इन्हीं लोगों ने दिया। और इस तरह बिहार में योग का काम बढ़ने लगा।

स्वामी सत्यम् जहाँ भी जाते, टेपरिकॉर्डर से भजन-प्रवचन सुनाते। हमेशा बड़े-बड़े संत-महात्माओं से मिलते ही थे, उनके प्रवचन व आशीर्वाद सुनाते और पवन मुक्तासन व योग आसनों की फिल्म भी दिखाते थे। पुस्तकें भी छप चुकी थीं। 60 से 300 पेज तक की 15 पुस्तकें छपकर नन्दग्राम पहुँच चुकी थीं। पुस्तकों को बाँटते रहते थे।

सन् 1962 स्वामी सत्यम् के लिए अद्भुत संदेशा लेकर आया और उन्हें व उनकी विचारधारा के प्रवाह को नया मोड़ मिला। विधि का विधान समझना मुश्किल है, मानव तो समझ नहीं पाता है, पर मानव देहधारी भी नहीं समझ पाते हैं, ऊपर बैठे भाग्य-नियन्ता अपना चक्र चलाते रहते हैं।

जनवरी 1963 में स्वामी सत्यम् का पत्र मिला, लिखा था, 'हिन्दी में 'योग विद्या', अँग्रेजी में 'योगा' नाम से जनवरी अंक छपाना शुरू किया है। दो-तीन माह इसी तरह दूसरी प्रेस में छपेगा, तुम्हारी प्रेस काम करने लगेगी, तो ये सब कुछ नन्दग्राम पहुँच जाएगा। तुम्हारी प्रेस का नाम होगा, 'योग विद्या प्रेस', इसी नाम से रजिस्ट्रेशन कराना।' समय पर दोनों पत्रिकाएँ निकलीं, सभी परिचित व शिष्य भक्तों को मिलीं, सबने तहे दिल से स्वीकारा व सहयोग दिया।

सत्यव्रत जी ने शहर के मध्य में मकान लेकर 'सत्यानन्द पब्लिकेशन सोसाइटी' और 'योग विद्या प्रिंटिंग प्रेस' का बोर्ड लगा कर प्रेस का सामान जुटाना शुरू किया। मिल बंद होने से ऑफिस में कुछ जिम्मेदारी बढ़ ही गई थी, और प्रेस व मशीनों के बारे में कुछ अनुभव भी नहीं था। सत्यव्रत जी ने इस काम की जिम्मेदारी धर्मशक्ति के भाई जय नारायण पर डाली, उसने नागपुर में 4 वर्ष तक सुरुची प्रेस चलायी थी। उसने अमृतसर व इलाहाबाद जाकर सबकुछ देखा। फिर स्वामी सत्यम् के आदेशानुसार दो प्रिंटिंग मशीन, छोटी व बड़ी, उसके साथ की सभी मशीनें व सामान, कटिंग मशीन कलकत्ते से व टाइप इलाहाबाद एवं पुणे से आया। इस तरह सभी सामान आने के बाद नागपुर से मैकेनिक आये, मशीनें फिट हुईं। शुरू में असुविधा भी बहुत हुई। हर जरूरत के सामान के लिए नागपुर-रायपुर दौड़ना पड़ता था। प्रिंटिंग

मशीन के पार्ट्स को ठीक कराने कलकत्ता जाना पड़ता था, नन्दग्राम में अच्छे मैकेनिक भी नहीं थे। 1963 में वहाँ दो ही प्रेस थीं, योग विद्या प्रिंटिंग प्रेस तीसरी थी, और 1983 तक वहाँ 32 प्रेस चल चुकी थीं। और हर तरह की सुविधा भी थी, जैसे, मैकेनिक या सामान तुरन्त मिल जाता था।

स्वामी सत्यम् के आशीर्वाद से सब कुछ ठीक हो गया। मशीनें काम करने लगीं, तब छपरा से फाइल, रजिस्टर, फार्म, रसीद बुक, पत्रिका सम्बन्धी पूरी फाइल, मई अंक का पूरा मैटर जमा कर, लिखकर, साथ ही ग्राहकों का पता भी आया। और महान् संत का आशीष प्राप्त कर 'योग विद्या प्रिंटिंग प्रेस' ने योग विद्या व योगा के मई अंक से प्रकाशन शुरू किया।

स्वामी सत्यम् ने कहा–हम बहुत खुश हैं कि हमारा प्रेस हो गया है। हमारे मिशन की नींव पुस्तकें ही हैं। हमने निश्चय किया है कि देश के चारों कोनों में आधुनिक साज-सज्जा से युक्त चार प्रेसों की स्थापना की जाएगी, जहाँ से विभिन्न भाषाओं में समुचित प्रचार-प्रसार हो सके। अब चूँकि 'योग विद्या प्रिंटिंग प्रेस' नन्दग्राम में हो चुकी है, वहाँ हमारा 'अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल' का केन्द्रीय कार्यालय भी है, काम भी शुरू हो गया है, हमारी दोनों पत्रिकायें भी वहाँ से निकलने लगी हैं। कुछ पुस्तकें भी तैयार हो रही हैं, जो वहीं से छपेंगी, भविष्य में सभी कार्य नन्दग्राम से ही होंगे।

1963 जनवरी-फरवरी में स्वामी सत्यम् छपरा में रहे। मार्च में नन्दग्राम आये, 15 मार्च को नागपुर गये, वहाँ प्रोग्राम करके बम्बई गये। अप्रैल में नन्दग्राम आये, मशीन का निरीक्षण किया व प्रेस, पत्रिका, पते वगैरह के बारे में समझा कर छपरा गये। वहाँ पूरे सामान सहित दोनों पत्रिकायें भेजीं, फिर मुंगेर चले गये। वहाँ कुछ दिन रहना था उनको।

रायगढ़ वालों का विशेष अनुरोध था, वहाँ आश्रम बने और स्वामी सत्यम् वहीं रहें। पर स्वामी सत्यम् कहते, हमें आश्रम बनाना ही नहीं है। 1968 तक घुम्मकड़ी करते रहेंगे, बारह वर्ष पूरे होने पर हिमालय चले जायेंगे। फिर भी उन लोगों ने आश्रम कह कर एक जगह बना ही ली। वैसे जमीन तो सत्यव्रत जी भी ले चुके थे, पर स्वामी सत्यम् के आदेश से प्रेस में, पुस्तकों और पत्रिकाओं की छपाई में ही व्यस्त रहे, आश्रम या मकान बनाना है, यह भी भूल गये।

श्री गोयनका जी के विशेष अनुरोध पर आनन्द भवन में चातुर्मास करना तय हो गया। लोगों के अनुरोध पर सुबह 5 से 6 आसन कक्षा, शाम को 5.30

से 7 तक सत्संग शुरू हुआ। 4 जुलाई को गुरु पूर्णिमा से स्वामी सत्यम् की हठ योग की साधना शुरू हुई। पर *'मेरे मन कछु और है, कर्त्ता के कुछ और'*। होनी प्रबल है, वह नाना रूप बनाकर सामने आती है।

स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि

14 जुलाई 1963 को सुबह 3 बजे स्वामी सत्यम् को अनुभवों के परे, जो अनुभव हुआ, वह उन्हीं के शब्दों में–

"दिनाँक 14 जुलाई 1963 को मैंने आंतरिक जागृति प्राप्त की। मैं नहीं कह सकता कि उस समय मेरी चेतना का कौन-सा आयाम था। (यहाँ मैं दर्शन शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ) मैं सो रहा था, सोते समय अचानक मेरी चेतना शारीरिक और मानसिक अनुभवों के परे चली गई। मैंने अपने को ऋषिकेश में गंगा तट पर पाया। मैंने देखा, एक छोटी मोटर बोट गंगा में स्वर्ग आश्रम की ओर जा रही थी। उसमें से शंख, तुरही और घंटों की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। उसमें स्वामी शिवानन्द जी कुर्सी पर बैठे स्वर्ग आश्रम की ओर देख रहे थे, फिर उन्होंने कुछ क्षणों के लिए घूमकर मेरी ओर देखा, इसी समय मोटर-बोट के गति-पालक पहिये से पानी छिटक कर मेरे ऊपर आ पड़ा और अचानक वह दृश्य समाप्त हो गया।

तत्पश्चात् मैं उठ गया, और कुछ देर तक असमंजस में रहा कि मैं ऋषिकेश में हूँ या मुंगेर में। पहले सोचा कि मैं ऋषिकेश में हूँ, स्वामी शिवानन्द जी को देख रहा था और शायद बाद में मुंगेर का सपना देखने लगा। इस चेतना का अनुभव मेरे लिए असहनीय हो गया। धीरे-धीरे मैंने अपने ऊपर नियंत्रण प्राप्त किया, तब मैं यह समझ सका कि मैं ऋषिकेश में नहीं, मुंगेर में हूँ। वही देख रहा था, वही सोच रहा था।

यह आन्तरिक अनुभव बहुत स्पष्ट था, यह स्वप्न नहीं था। ऐसा लगने लगा कि मैं स्वामी शिवानन्द जी से मिलने इस पृथ्वी को छोड़कर चन्द्र लोक गया था। यह अनुभव अत्यन्त स्पष्ट और अस्पृश्य था, जिसे मैंने पूर्ण जागरूकता की स्थिति में प्राप्त किया था। वास्तव में यह एक शाश्वत अनुभव था।"

स्वामी सत्यानन्द जी ने गोयनका जी से कहा, 'हम ऋषिकेश जा रहे हैं। गुरु जी नहीं हैं।' और वे स्टेशन गये। ऋषिकेश पहुँचे, वहाँ अखण्ड-कीर्तन चल रहा था। उनका विशाल शिष्य भक्त परिवार जमा हुआ था।

16 जुलाई 1963 को समाधि मंदिर के गर्भ गृह में उन्हें समाधि दी गई। समाधि मंदिर का निर्माण पहले ही हो चुका था। स्वामी शिवानन्द जी को पता था कि उनका पार्थिव शरीर कब तक इस संसार में रहेगा। उन्होंने शिवरात्रि के समय कहा था, 'जिसे संन्यास लेना है, अभी ले लो, अगले वर्ष की शिवरात्रि में क्या भरोसा कौन रहेगा।' जून में कहा था, 'यह मेरा आखिरी सत्संग-प्रवचन है।' दूसरे दिन से ही वे बीमार हुए थे। वे हँसते-हँसते कहते थे, बताओ हमारे साथ कौन चलेगा, किसी के हाँ कहने पर कहते, वह नहीं दूसरा कोई चलेगा। डॉक्टरों के अनुसार वे बीमार थे, पर कुछ पूछने पर वे पूर्ण चैतन्यता से जवाब देते थे। दो दिन से उन्होंने कुछ भी नहीं लिया था, 13 तारीख की शाम को गंगा जल मँगा कर पौन गिलास पी गए, बहुत खुश थे। उनके चेहरे पर विशेष उल्लास व प्रफुल्लता देख कर आभास-सा हुआ, शिष्यों ने कुछ आदेश चाहा। उन्होंने हँसकर लिख दिया, Forget and Remember – Sivanand. अर्थात् शिवानन्द कहते हैं कि संसार को भूलो और ईश्वर को याद करो।

स्वामी शिवानन्द जी का पार्थिव शरीर चला गया, पर उनकी कीर्ति शेष है। गया क्या, सभी कुछ तो रह गया। स्वामी शिवानन्द जी युग से विलग होकर युग-युग में व्याप्त हो गये। वे जिस योग के लिए अवतरित हुए थे, उस योग को मानव-संस्कृति का रूप देने हेतु उनके प्रिय शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर 'इन्टर नेशनल योग फेलोशिप' की स्थापना कर चुके थे।

परिव्राजक जीवन का अन्त

गुरुदेव का विशेष आशीष प्राप्त कर स्वामी सत्यानन्द जी मुंगेर आ गये। आदेश पर निरन्तर चिन्तन चलता रहा। फिर आदेश हुआ, 'तुम्हारा परिव्राजक जीवन समाप्त हो चुका है, अब आश्रम बनाकर योग को जन-जीवन में वितरित करना है, तुम्हें बहुत काम करना है।'

और स्वामी सत्यानन्द जी ने निर्णय ले लिया। उन्होंने गोयनका जी से कहा, अब मुझे यहीं रहना है, एक आश्रम बनवा दीजिए। गोयनका जी बड़े खुश हुए, वे तो चाहते ही थे, वैसे भी उस समय आनन्द भवन ने ही आश्रम का रूप ले लिया था। स्वामी सत्यानन्द जी के भक्त शिष्य आते, रहते। पूरी व्यवस्था गोयनका जी प्रसन्नता से करते।

स्वामी सत्यानन्द जी ने रूप-रेखा बतायी, एक बड़ा हॉल, एक कमरा हमारे लिए, रसोई, स्टोर, तीन कमरे आने वालों के लिए, हवन कुण्ड, आँगन, लॉन रहेगा। नक्शे बने और गोयनका धर्मशाला की बगल में आश्रम का काम शुरू हुआ।

अक्टूबर में स्वामी सत्यानन्द जी नन्दग्राम आये। उन्होंने कहा, 'कई जगह से प्रोग्राम, शिविर व सत्संग के लिए पत्र मिला है। अभी हम सभी जगह जायेंगे, दिसम्बर 1963 में हमारा परिव्राजक काल पूरा हो जाएगा। जनवरी 1964 से हम मुंगेर में रहेंगे। बसन्त पंचमी को गुरुजी के नाम पर 'अखण्ड दीप' जलायेंगे, और नियम लेकर एक जगह रहेंगे। पैड, सूची पत्र, रसीद बुक, वगैरह क्या कैसे छपना है, यह सब तय हो गया।'

बलिहारी है समय की, परिव्राजक के रूप में एक महान् संत के दर्शन सबको घर बैठे ही हो जाते थे। योग की दुर्लभ और अमूल्य दीक्षायें एक योग-निष्ठ साधु हमारे द्वार पर ही दे जाया करते थे, परन्तु अब यह सुविधा सुलभ नहीं होगी।

किन्तु स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा अब इससे भी महान् कार्य का आयोजन और पूर्ति होने जा रही है। 1964 जनवरी से उनका परिव्राजक रूप समाप्त होगा, अब वे परमहंस पद में प्रतिष्ठित होंगे। 1964 से स्वामी सत्यानन्द जी भ्रमण न कर मुंगेर में ही रहेंगे। हर समय अन्तर्मुख रहकर जीवों का आध्यात्मिक विकास कराना ही उनका कार्य रहेगा। साधु की शक्ति तो तभी ज्यादा कार्यकारी होती है जब वह अन्तर्मुख अवस्था में रहता है। मौन में शब्दों से अधिक शक्ति होती है। साधना और आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती हुई, मुंगेर से ही उनकी आध्यात्मिक ज्योति फैलती रहेगी। भक्त, शिष्य, साधक, स्वामी सत्यानन्द जी से आश्रम, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में जाकर मिलेंगे।

सभी जगह प्रोग्राम बना। स्वामी सत्यानन्द जी बम्बई, पुणे, अमरावती, खामगाँव, नीमगाँव होते हुए 'एलोरा एलिफेंटा' गये। वहाँ इनको गुरुदेव व देवशक्तियों का विशेष आदेश व आशीर्वाद मिला, परमहंस स्थिति उपदेश-आदेश मिला। उन्होंने उसी समय से नियम लेकर कुर्ते, घड़ी और जूते का त्याग कर दिया। फिर वे नागपुर, गोंदिया, डोंगरगढ़ होते हुए नन्दग्राम आये। यहाँ 5 दिन रहे। सुबह से शाम तक लोगों की भीड़ लगी रहती। सर्दी के मौसम में स्वामी सत्यानन्द जी को सिर्फ धोती ओढ़े देख बूढ़ी माताएँ तड़प उठती

थीं। उनके दर्शनार्थ पूरे शहर व गाँव-गाँव से लोग आते थे। स्वामी सत्यानन्द जी जहाँ गये थे, जहाँ कभी नहीं गये थे, सभी जगहों से लोग आते। मंत्र लेने की इच्छा प्रकट करते, कहते—गुरु महाराज, हम गरीब हैं, साधन-सुविधा से हीन हैं। कहते रो पड़ते।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में ...

अनेक वर्ष पूर्व एकाकी तरुण तपस्वी के रूप में स्वामी सत्यानन्द जी नन्दग्राम पधारे थे। स्वामी सत्यानन्द जी के जन्मजात शुभ संस्कारों को प्रगति का आशीर्वाद मिला दिव्य जीवन संघ के संस्थापक स्वनाम धन्य शिवानन्द जी से, जिन्हें उन्होंने गुरु-रूप में वरण किया। जब वे परिव्राजक होकर चल निकले, तब नन्दग्राम का सौभाग्य है कि आत्म-निर्भरता के मार्ग में यह उनका प्रारंभिक क्षेत्र बना। इस क्षेत्र में उन्होंने न केवल एकान्त साधना के स्थलों का सदुपयोग किया, अपितु जन-सेवा के भी भिन्न मार्ग अपनाये। एकाकी रहते हुए भी उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का स्वप्न देखा। और द्रष्टा ही बन कर नहीं रह गये, अपितु अपने स्वप्न को कार्यक्षेत्र में भी सुचारु रूप से उतार दिया। कोई भी वातावरण किसी भी सत्कार्य के बीजों से शून्य नहीं रहा करता।

चाहे कोई स्वामी सत्यानन्द जी का शिष्य बने या न बने, वह उनके सान्निध्य का बराबर लाभ उठा सकता है। टेढ़े-मेढ़े कैसे भी प्रश्न पूछे जाएँ, वे नाराज नहीं होते, और सब प्रकार की शंकाओं का समाधान सुहृद सम्मित वाणी में देने को तत्पर रहते हैं। तन और मन को स्वस्थ रखने के लिए अनेक उपाय उन्हें विदित हैं। उनके अनुभव-सागर के जो भी बिन्दु मिल जायें, वे सब बड़े मूल्यवान् होते हैं।

उन्होंने एक बार कहा था, 'एक इष्ट रखो, चाहे वह प्रभु का कोई रूप हो, या कोरा श्यामल बिन्दु ही क्यों न हो। वह चेतना के स्तर पर विद्यमान रहे, और उससे हमारा जीवित सम्पर्क बना रहे। जब उससे ध्यान हटने लगे, तब जप बन्द कर देना चाहिए।' दूसरे अवसर पर कहा, 'आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान आदि हृदय में नई जीवनी शक्ति, नई ताजगी भरने के लिए किये जाते हैं। यदि किसी प्रक्रिया से प्रसन्नता के बदले थकान बढ़ती हुई जान पड़े तो समझ लेना चाहिए कि उस प्रक्रिया में कहीं कोई गड़बड़ी है, और न सुधर पाये तो उसे छोड़ ही देना चाहिए।'

अन्य अवसर पर उन्होंने कहा, 'वही व्यक्ति गुरु बनने योग्य है जिसके सत्संग में शान्ति का अनुभव हुआ करे, और जो समस्याओं को सुलझाने

में सक्षम हो। अपनी श्रद्धा से व्यक्ति आगे बढ़ता है, न कि गुरु के गुणों-अवगुणों की छान-बीन करने से। गुरुमुखी दीक्षा का अपना खास महत्त्व रहता है। उनके शब्द, मंत्र, रूप हमारे अवचेतन मन के कुसंस्कारों का नाश कर देते हैं। अतएव गुरु बनाना वांछनीय है, परन्तु गुरु उसे ही बनाया जाए जो हमारी श्रद्धा और विश्वास को प्रभावित कर सके। यह स्मरण रखना चाहिए कि दीक्षा व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, शिष्य की श्रद्धा तथा लगन ही उसके विकास में आवश्यक तत्त्व हैं।'

इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक अवसर पर कहा था, 'कोई गुरुमुख हो गया, इसका यह अर्थ नहीं कि वह गुरु का क्रीतदास हो गया, या वह गुरु को कभी छोड़ ही नहीं सकता। वह चाहे तो गुरु की आज्ञा से अन्य पथ-प्रदर्शक के पास जा सकता है। और वह चाहे तो गुरु की कंठी माला उसे वापस सौंप कर, उससे सदैव के लिए अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता है।' उनका यह कथन एकदम व्यावहारिकता पूर्ण था। वे एक बार यह भी कह गये थे, 'यदि गृहस्थ संन्यासी हो सकता है, तो संन्यासी गृहस्थ क्यों नहीं हो सकता?'

इस तरह पाँच दिन कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला और स्वामी सत्यानन्द जी के जाने का समय आ गया। सबको अभय देकर, मुंगेर आश्रम में आने का निमंत्रण देकर, सबका आदर-स्नेह, शुभकामना लेकर, हजारों-हजार लोगों से विदा लेकर उन्होंने दुर्ग के लिए प्रस्थान किया। सत्यव्रत जी साथ में गये। मैं नहीं जा सकी, घर में मेहमान बहुत थे और गाँव-गाँव से आये भक्तों का अनुरोध था कि दीदी हमें गुरुजी की बातें बतायेंगी, समझायेंगी और स्वामी सत्यानन्द जी का आदेश था कि योग साधना भाग-1 से पढ़कर उन्हें बताना-समझाना है।

मैं पहले स्वामी सत्यानन्द जी के साथ गाँवों में जा चुकी थी और मैंने इन महिलाओं को आसन-प्राणायाम सिखाया था, कुछ दवाइयाँ वगैरह भी बतायीं थीं। गाँव की सभी महिलाएँ मुझे दीदी कहती हैं। कुछ परेशानी होने पर पूछने, सलाह लेने जरूर आती हैं। बाजार आने पर 5–10 मिनट के लिए मिलने भी आती हैं। 'गुरु की कृपा तो सब पर ऐसी बरसी थी, मानो माता थाली परसकर बैठी हो।' गुरु जी का यही आदेश था, जो पाये हो उसे जन-जन में बाँटते रहना।

दुर्ग, भिलाई, रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़, सभी जगह 1 या 2 दिन का प्रोग्राम हुआ। रायगढ़ से सत्यव्रत जी वापस आ गये। स्वामी सत्यानन्द जी

कलकत्ता गये, वहाँ से छपरा, भागलपुर, फिर मुंगेर गये। आश्रम का काम करीब-करीब पूरा हो रहा था और गोयनका जी उद्घाटन एवं अतिथि सत्कार की तैयारी में व्यस्त थे, वे बहुत खुश थे।

दिसम्बर की योग विद्या में स्वामी सत्यानन्द जी का शुभसंदेश छपा–

"19 जनवरी 1964 को वसन्त पंचमी के शुभ दिन 'परमहंस' की दीक्षा लेने के शुभ अवसर पर मैं अपने उन समस्त शिष्यों, स्नेहियों तथा सहयोगियों को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने मेरे परिव्राजक जीवन में मुझे आध्यात्मिक तथा यौगिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में तन-मन-धन से सहयोग दिया है।

नये जीवन में प्रवेश के बाद यद्यपि अब मैं स्थान-स्थान का भ्रमण नहीं कर सकूँगा, परन्तु साधकगण पत्र-व्यवहार के जरिये हमेशा मुझसे पथ-प्रदर्शन एवं सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। यह स्कूल (आश्रम) मुंगेर में स्थापित हो रहा है। पन्द्रह दिवसीय संक्षिप्त प्रशिक्षण द्वारा योग के सम्पूर्ण अंगों की शिक्षा यहाँ दी जाएगी। इस स्कूल के प्रमुख आचार्य के रूप में आप मेरा व्यक्तिगत निर्देशन प्राप्त कर सकेंगे।

इसी दिन से श्रद्धेय गुरुदेव, समाधि-लीन, स्वामी शिवानन्द सरस्वती की पुण्य स्मृति में एक अखण्ड-दीप प्रज्वलित किया जायेगा, जो कि अनन्त काल तक जलता रहेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सब सारे संसार में योग के प्राचीन ज्ञान का एक नये वैज्ञानिक ढंग से प्रचार एवं प्रसार करने में आगे भी मुझे पूर्ण सहयोग देते रहेंगे।

अन्त में मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप सब योगमय जीवन बिताते हुए सुख, शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त करें।"

अप्रैल 1956 में परम गुरु स्वामी शिवानन्द जी ने इन्हें आशीर्वाद देकर कहा था, 'सत्यम् जाओ, दिग्विजय करो' और आज्ञा-पालक शिष्य योग का शंख बजाकर गुरु ज्ञान गंगा प्रवाहित करते हुए, 'चक्रवर्ती सम्राट्' जैसे दिग्विजयी हो, 'परमहंस संन्यासी' बनकर मुंगेर आश्रम में गुरु-ज्योति जलाने जा रहे हैं।

श्री केशव दत्त पाण्डे के 1954 के उद्गार–

क्या इस विश्व में निवास करने वाले प्राणियों पर आज तक किसी ने पूर्ण विजय प्राप्त की है? नहीं, फिर भी इस विश्व को आज तक बाहुल्य या शास्त्र द्वारा तो किसी ने परास्त नहीं किया। लेकिन समय-समय पर कुछ ऐसे महान् व्यक्ति अवश्य अवतरित हुए हैं, जिन्होंने विश्व के प्राणी मात्र पर 'पूर्णरूपेण' अमर विजय पायी है। उन्होंने केवल उसी युग में अवतरित

मानवों पर विजय नहीं पायी, अपितु कालान्तर में प्रादुर्भूत होने वाले मनुष्यों पर भी अवतरित भगवान बुद्ध, भगवान शंकराचार्य की भाँति अपने समय से लेकर आज तक के प्राणियों के हृदय पर अमिट छाप अंकित की और करते आ रहे हैं।

क्या उन्होंने अपनी प्रेम-विजय अस्त्रों-शस्त्रों या सेना द्वारा प्राप्त की थी? क्या उन्होंने देश व विदेशों से युद्ध किया था? नहीं, कदापि नहीं। अपने सुखों को त्याग कर जिस प्रकार उन्होंने स्वयं लौकिक भलाई करने का बीड़ा उठाया, उसी प्रकार उन्होंने दूसरों को भी इस मार्ग पर चलने को कहा। उनके उपदेश केवल उपदेश नहीं थे, बल्कि वे स्वयं उस पर चलकर अनुभव प्राप्त करते थे, फिर उन्हीं अनुभवों को उपदेशों का रूप ग्रहण करवाते थे। बस, यही उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, जिसके द्वारा वे मानव-हृदय पर चिरकाल तक विजयी बने रहेंगे। इस तपस्वी को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि विधाता ने इन्हें विश्व के किसी महान् कार्य के लिए ही भेजा है।

इस तपस्वी ने जीवन-प्रभात के प्रथम प्रहर में ही उच्च कोटि के गुरु की खोज कर अपना समस्त जीवन उनके चरणों में न्योछावर किया। गुरुजी से इन्होंने सच्चे जीवन की शिक्षा पायी। इस बालक ने लक्ष्य की पूर्ति के लिए घोर अध्ययन किया। सरस्वती की प्राप्ति के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, परोपकार, सेवा, दया और प्रेम का जीवन अपना कर आत्म-साक्षात्कार किया। यही नहीं, बाल्यावस्था से ही संस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी के विद्वान् बने, गुरु आश्रम आने पर तो सभी भाषाओं के ज्ञाता बने।

ईश्वर की कृपा और गुरु के आशीर्वाद से सरस्वती ने इन्हें पवित्र वाणी दी, चन्द्र ने शीतलता दी और दिवाकर ने ज्ञान का प्रकाश दिया। आपके प्रफुल्लित मुँह को देख, आपकी ओर प्रत्येक का आकृष्ट हो जाना एक प्राकृतिक बात हो गई है। आपकी वाणी में इतनी मिठास है कि उससे कानों की प्यास बुझती ही नहीं।

आपने संसार के प्राणियों को अनेक पुस्तकें, विविध साहित्यों का दान दिया है। आप जितने अच्छे लेखक हैं, उतने ही अच्छे कवि और वक्ता भी हैं।

सामाजिक तथा लौकिक हितों की उन्नति के साथ-साथ आपको अपना निश्चय पूर्णतया याद है। आध्यात्मिक मार्ग के प्रत्येक मोड़ पर आपने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिए आप आध्यात्मिक मार्ग पर ज्ञान, सत्य, शान्ति, परोपकार, आदि के साथ एक तेजस्वी पथ-प्रदर्शक की भाँति सुशोभित हैं,

और जिनके हृदय में जीव को ब्रह्म से मिला देने की आकांक्षा हिलोरें ले रही है। आप कर्मयोगी हैं–

अपने जीवन प्रभात के बालक धर्मेन्द्र
वर्तमान के स्वामी सत्यानन्द सरस्वती,
और भविष्य के एक परमहंस संन्यासी।

भक्त वत्सल भगवान आपके प्रण की प्रतिष्ठा बढ़ायें तथा युग-युगान्तर तक जीवों के कल्याण हेतु आपको अपने कर्तव्य पर दृढ़तापूर्वक अमर रखें। भगवान से हमारी यही प्रार्थना है।

चतुर्थ खण्ड

आश्रम संचालन व
दिग्विजय की झाँकियाँ



श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ऐसे साधु व योगी हैं, जिन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर वनान्त में समाधि नहीं लगायी। अपनी योग-शक्ति का जन-कल्याणार्थ व्यापक प्रयोग करने वाले ये साधु अपने ढंग से अनोखे और विरले हैं। इसी विशेषता के कारण ये भारत के हजारों-हजार भक्तों व शिष्यों के सरताज हैं।

हे अध्यात्म संग्राम के विजयी महारथी! तुम्हारी विजय यात्रा मंगलमय हो, आदिदेव प्रभु व माँ गंगा आपको आशीष दें।

सत्यं भक्तं सदा शान्तं तत्त्वज्ञं चैव योगिनम् ।
शिवानन्दं च तच्छिष्यं सत्यानन्दं नमाम्यहम् ॥

चतुर्थ खण्ड

'मुंगेर' मुद्‌गल ऋषि की तपोभूमि है। जहाँ उत्तर वाहिनी गंगा है, जो शहर के तीनों ओर मणी-मेखला सी घूम गई है। बिहार के सीतामढ़ी में जगत् जननी माँ सीता बनकर प्रकट हुई थी। प्रभु राम 'बक्सर' में ताड़का वध कर विश्वामित्र ऋषि का यज्ञ पूर्ण होने पर, गौतम ऋषि के आश्रम होते हुए, कष्टहरणी घाट पर विश्राम करके जनकपुर गये थे। मुंगेर ऐतिहासिक भूमि है।

इसी बिहार की पवित्र भूमि में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है। जहाँ राजरानी भगवती सीता माँ ने लव-कुश को जन्म दिया था और इक्ष्वाकु वंशी, सूर्य वंशी रघुकुल भूषण राम के अनुरूप शिक्षा देकर इस योग्य बनाया कि लंका विजयी वानर सेना व विश्व विजयी अवध की सेना का गर्व दूर कर सकें। इसी भूमि पर रामायण पुराण की रचना हुई, जो आज के युग के लिए महा-पुराण है।

भगवान कृष्ण, भीम-अर्जुन को लेकर जरासंध की राजधानी राजगीर आये थे। बिहार की पवित्र माटी में भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। वे हजारों भिक्षुओं के साथ बिहार में भ्रमण कर चुके हैं। इसी पावन भूमि में भगवान महावीर आये। बिहार की यह भूमि भाग्यवान् है।

भगवान शंकर 'बैद्यनाथधाम' के रूप में यहीं विराजमान हैं। मंदराचल पर्वत भी, जो भगवान कच्छप की पीठ पर स्थित होकर समुद्र मंथन के समय दैत्य व देवताओं की मथानी बने थे। इसी पर्वत पर प्रभु वामन ने तपस्या की थी। देखा जाये तो बिहार का कण-कण प्रभु का लीला क्षेत्र है।

सहरसा जिले में महिषी ग्राम है। आज तो वह सामान्य ग्राम है, एक समय था जब वह कर्मकाण्ड से मण्डित, प्रकाण्ड पण्डित श्री मण्डन मिश्र का ग्राम था। जगद् गुरु शंकराचार्य केरल से इसी ग्राम में श्री मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने आये थे। आचार्य मण्डन तो श्री शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य

बनकर दक्षिण चले गये। उनके गृह का खण्डहर व उनकी कुलदेवी उग्रतारा देवी का मंदिर अभी भी है।

मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्थापना

भक्त और भगवान की इसी भूमि 'मुंगेर' में कर्ण जैसे दानवीर राजा आये और अब हैं एक गृहस्थ संत, दीवान बहादुर केदारनाथ गोयनका, बींसवीं सदी के। इन्हीं भागीरथ के श्रद्धा, स्नेह की डोर से बँध कर, इनके गृह नगर में इनके गृह 'आनन्द भवन' में योगर्षि सत्यानन्द जी ने साधना की। इसी मुंगेर की पवित्र भूमि में साधना करते समय गुरु के दर्शन, आशीष व आदेश प्राप्त करके वे दिव्य ज्योति के समान चमकने लगे। उनकी रोशनी से दुनिया चमक उठी। श्री गोयनका जी के मंदिर, अस्पताल, धर्मशाला, कई स्कूल, कॉलेज सब कुछ तो थे, आश्रम की कमी थी, वह भी पूरी हो गयी। उन्होंने 1964 जनवरी में आश्रम बना योग के बंधन में स्वामी सत्यम् को बाँध ही लिया।

स्वामीजी के भक्तों, शिष्यों, परिचितों को निमंत्रण मिला, '19 जनवरी 1964 को बसन्त पंचमी, सरस्वती पूजा के शुभ मुहूर्त्त में आश्रम का उद्घाटन एवं अखण्ड ज्योति प्रज्वलित करेंगे। आप सब पधार कर दिव्य आत्मा का आशीष ग्रहण करें।'

उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा, सभी प्रांतों से भक्त-शिष्य पधारे। सरस्वती पूजा के शुभ मुहूर्त्त में भजन, कीर्तन, मंत्र-पाठ के साथ उस पुण्य परम्परा के प्रेरणा-स्वरूप तथा योग की प्रकाशवान क्षमता के प्रतीक रूप में स्वामी सत्यानन्द जी ने अनन्त अखण्ड ज्योति को प्रज्वलित किया।

शिवानन्द ज्योति प्रज्वलित करते समय वीतराग संन्यासी के नयनों से एक बूँद जल छलक पड़ा, मानो गुरु के चरण पखारने शंकर जी की जटा से एक बूँद गंगा जल गिरा हो। गुरु का आलोक शिष्य पर फैल गया, और शिष्य की योग-गंगा सभी दिशाओं में फैलने लगी।

स्वामी सत्यानन्द जी ने 'गुरुजी के आदेशानुसार' परमहंस पद ग्रहण करके 'बिहार योग विद्यालय' में अखण्ड-द्वीप प्रज्वलित करके आचार्य पद में प्रतिष्ठित होने पर 'नियम लिया' कि वे 3 वर्ष तक आश्रम से बाहर नहीं जायेंगे। कहीं भी शिविर, कैम्प या योग-सम्मेलन होने पर वे अपने संन्यासी शिष्यों को भेजा करेंगे। अपने बनाये नियम का सख्ती से पालन करेंगे।

सत्यानन्द योग रिसर्च लाइब्रेरी का भी उद्घाटन किया। उन्होंने कहा, मैं आश्रम में रहकर 15-15 दिन के सत्रों में, योग कक्षाएँ लूँगा और सत्संग करूँगा। समय-समय पर सम्मेलन भी करूँगा। वसन्त पंचमी, गुरु पूर्णिमा, शिवानन्द जन्मोत्सव तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अवसरों पर विशेष सत्संग का आयोजन होता रहेगा। उनके भक्त-शिष्य जब इच्छा हो, आते रहेंगे।

परिव्राजक जीवन का परित्याग कर, परमहंस पद 'अवस्था' ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य है योग का प्रचार-प्रसार, जिससे श्री स्वामीजी, महासमाधि में लीन गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की परम्परा को कायम रख सकें।

'हंस' जीवन की एक अवस्था है, जिसमें 'जीवात्मा हंस', मानसरोवर को छोड़कर कहीं नहीं जाता है, मनुष्य के विकास की यह एक अवस्था है, जिसका प्रतीकात्मक आचरण नियमों से परिलक्षित होता है।

यह सच है कि स्वामी शिवानन्द जी सशरीर नहीं हैं, यह भी सच है कि महापुरुष मरते नहीं हैं। उनका पार्थिव शरीर अवश्य चला गया है, पर उनकी आत्मा का यथार्थ स्वरूप दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गया है। जो तेज स्वामी शिवानन्द जी के रूप में केन्द्रित था, वह आज लाखों के हृदय में प्रकाशित हो रहा है।

हम लोगों के लिए यह अत्यधिक गर्व का विषय है कि हमारे गुरुदेव स्वयं एक महान् योगी हैं, और पुनरपि हम लोगों को और ज्यादा गौरव इस बात का है कि हमारे गुरुदेव के गुरुदेव भी विश्व प्रसिद्ध महान् आध्यात्मिक विभूति हैं।

परम गुरु महान् संत तो थे ही, परन्तु हम उनके प्रति और भी ज्यादा आभारी हैं कि वे जगत् के कल्याण के लिए, 'मार्ग-दर्शन' के लिए स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जैसी विभूति का निर्माण कर गये हैं, तैयार कर गये हैं। धन्य हैं ये गुरु और शिष्य, इनके चरणों में हमारा नमन।

बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द आश्रम में 15 दिवसीय कोर्स शुरू हुआ। श्री स्वामीजी स्वयं क्लास लेते थे। सुबह आसन-प्राणायाम, फिर दलिया का मीठा पेय, फिर उपनिषद्-गीता पाठ, 10 बजे भोजन। एक बजे से लिखित जप, नाद योग, योग निद्रा, एक घण्टा कुछ कर्म योग, पाँच बजे भोजन। फिर भजन-कीर्तन-सत्संग-प्रवचन। आठ बजे विश्राम। चौथे दिन शंख प्रक्षालन। तेरहवें दिन मौनव्रत, प्रोग्राम नियमित होता, चुप-चुप पूरा प्रोग्राम करते रहते, चार बजे स्वामीजी हरि ॐ कहते, सब लोग हरि ॐ कहते, मौन पूरा होता, लॉन में बैठकर दलिया पीते, फिर भोजन, भजन-प्रवचन होता। इस तरह मौन व उपवास होता। चौदहवें दिन सुबह से नियमित प्रोग्राम, दो बजे तक करते,

दो बजे से रामायण पाठ होता, तीन-चार बजे से शहर वाले आते, साथ में रामायण पढ़ते, पाँच बजे आरती, प्रसाद, फिर भोजन। उस दिन शाम को गोयनका जी के लक्ष्मी भवन से कुछ विशेष भोजन आता था। और पन्द्रहवें दिन लोगों की विदाई हो जाती थी।

धीरे-धीरे लोगों की संख्या बढ़ने लगी, उन्हें बगल में ही गोयनका धर्मशाला में ठहराने लगे। अजपाजप की साधना, जप-योग, आसन-प्राणायाम, मूल-बंध, समाधि-विद्या, स्वर योग की पुस्तकें हिन्दी और अँग्रेजी में छपीं। 'वैराग्य विहार'–भर्तृहरि शतक का भावानुवाद भी छपी। इस पुस्तक को श्री स्वामीजी ने अपनी जमींदारी 'भिकियासेन' में 1938 में, यानी 15 वर्ष की अवस्था में लिखा था। यह सब पुस्तकें छपीं।

चैत्र नवरात्रि में 'सच्ची बात' के सम्पादक श्री डी. एन. गुप्ता का लेख योग विद्या में छपा–

मुंगेर की मिट्टी और संन्यासी का तप

आज की धार्मिकता अपने गौरव को छोड़ हल्की हो गयी है। माँ दुर्गा अथवा माँ काली की जय हम जिस महत्ता को लेकर करते थे, अब वह नहीं रही, हमारी धार्मिकता लाउड स्पीकर की कर्ण-कटु आवाज में सिमटने लगी है।

पर रामनवमी का त्योहार मुंगेर के लिए उसी प्राचीन गौरव की गरिमा को लेकर आश्रम में होते देखा। करीब ढाई सौ व्यक्तियों को, जिनमें अधिक संख्या में बड़े घरों की शिक्षित महिलाएँ थीं, राम नवमी के दिन बिहार योग विद्यालय में जागरण, रामायण पाठ के समावर्तन समारोह पर श्री स्वामीजी के साथ रामधुन गाते देखा गया, वातावरण शान्त व सौम्य था।

एक लड़की आगे बढ़ी, अपने व्यक्तित्व को स्वयं में समाहित किये। उसने भजन गाया, सुमधुर मंद स्वर में तुलसीदासजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, स्वर धीरे-धीरे मन्द होता गया, फिर अपनी सौम्य आकृति से वह अपने स्थान पर लौट आयी, वहाँ किसी ने ताली नहीं बजायी, शान्त व पवित्र वातावरण था, फिर श्री स्वामीजी का प्रवचन हुआ और उसके बाद प्रसाद वितरण।

आज से कुछ महीने पहले, इस स्थान की अवस्था क्या थी? कोई भी व्यक्ति इस स्थान में आने-जाने में हिचकता था, और आज अलाउद्दीन के चिराग जैसे, यह स्थान एक छोटे आश्रम में परिवर्तित हो गया। एक मंदिर

के रूप में, जहाँ कोई मूर्ति नहीं, केवल शान्ति से एक दीया, जो जला, सदा जलता रहेगा। योगियों के योगी स्वामी शिवानन्द जी के स्मृति स्वरूप इस मंदिर में कोई मूर्ति नहीं, कोई आडम्बर नहीं, कोई शृंगार नहीं, सिर्फ ऋषिकेश के संत शिवानन्द जी की मंद मुस्कान को छोड़कर।

यह सुन्दर भवन और युवक संन्यासी, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को योग के पुनरुत्थान के लिए अर्पण किया, श्री केदारनाथ जी गोयनका के दान-स्वरूप है। ठीक उसी तरह, जिस तरह शिवालय, धर्मशाला और चण्डिका स्थान, आदि मुंगेर की जनता के लिए गोयनका परिवार के दान-स्वरूप हैं।

इस परिवार ने जनता और समाज को सब कुछ दिया है। सदा से उपेक्षित वह स्थान जो कुछ अधूरा-सा लगता था, अकस्मात् आश्रम बनने के बाद जीवित हो उठा, मानो शिवालय की पवित्रता और सौन्दर्य को द्विगुणित करने के लिए ही साकार रूप पाया हो।

आज हर व्यक्ति अपने मन की अशान्ति और शरीर का कष्ट लेकर वहाँ जाता है, और उस वातावरण से प्रभावित होकर एक अपूर्व शान्ति पाता है। हर आने वाले के लिए आश्रम की दुनिया ही दूसरी है, शान्त व पवित्र।

ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओं की रक्षा होनी चाहिए, जिससे कि अतीत का गौरवमय इतिहास प्रत्यक्ष बना रहे। इससे हम न केवल अपनी ऐतिहासिकता की रक्षा करेंगे, बल्कि नगर का सौन्दर्य भी बढ़ जाएगा, और यह स्थान भी दर्शनीय हो जायेगा। हो सकता है आज के इस आधुनिक योग स्कूल और इसके ठीक सामने का प्राचीन ऐतिहासिक खण्डहर-स्थल, कल विदेशियों के लिए आकर्षण का केन्द्र हो जाए, और तभी मुंगेर की मिट्‌टी की पवित्रता लौटाई जा सकेगी।

श्री डी.एन.गुप्ता, दादा जी का स्वप्न पूरा हो गया। उन्होंने स्वप्न संजोया 1964 में, पूरा हुआ 1978 में।

स्वामी सत्यानन्द जी का पावन सान्निध्य किस प्रकार लोगों के जीवन को प्रभावित और रूपान्तरित कर रहा है, उसका एक उदाहरण कुमारी रत्ना द्वारा योगविद्या में लिखे इस लेख में मिलता है–

टच्-स्टोन

कई वर्ष पूर्व की घटना है। श्री स्वामीजी का आगमन मेरे यहाँ हुआ था। सन्ध्या समय उनके प्रवचन का कार्यक्रम था। घर वालों के विरोध करने पर भी मैं

अपनी हठवादिता की साकार मूर्ति रत्ना, सिनेमा हॉल में पहुँच ही गई। खेल समाप्त होने पर दस बजे घर पहुँची तो सन्न हो गई। श्री स्वामीजी उस समय तक सोये नहीं थे और आरामकुर्सी डालकर बाहर ही बैठे हुए थे। मेरे पाँवों में मानो पत्थर ही बन्ध गए। न अन्दर ही जा सकती थी और न बाहर ही खड़े रहने का साहस मिल रहा था। रंगे हाथों जो पकड़ी गई थी। दबे पाँव अन्दर प्रवेश कर ही रही थी कि श्री स्वामीजी ने पुकारा, 'रतन् यहाँ आओ। कहाँ गई थी?'

अवाक् मुख से अकस्मात् सत्य छूट पड़ा, 'जी, पिक्चर।'

'कौन-सी?'

मैंने उत्तर दिया, 'हम पंछी एक डाल के।'

श्री स्वामीजी ने बैठने का संकेत किया। मैं समझ गई कि अब तो मेरे ऊपर मखमली (जूता) बरसने वाली है। मजबूरी बैठना पड़ा।

वे बोले, 'अरे, पंछी तो सभी एक डाल के हैं, पर सभी अलग-अलग शाखा पर बैठे हैं। हमारी शाखा में मीठे फल लगे हैं। कोई बाधा नहीं। बड़ा सरल रास्ता है और रास्ते में फूल बिछे हैं। न हमें ऑफिस जाने की चिन्ता है और न दाल-रोटी की। और तुम्हारी शाखा में जो फल लगे हैं, वे कैसे हैं जानती हो? ऊपर से सुनहले, मोहक! पर भीतर से बड़े कड़ुए! तुम्हारी शाखा में तो सिर्फ काँटे ही काँटे हैं।'

मेरी इच्छा लेक्चर पीने की कतई नहीं थी। मन में हल्की-सी क्रोध की लहर भी उठी, 'बड़े सनकी हैं, कल तो कहते थे कि संन्यास-पथ पर चलना नंगी तलवार पर चलना है और आज एकदम उल्टी ही हाँक रहे हैं।' पर प्रकट में कुछ बोली नहीं। कुछ देर इधर-उधर की गप्प चली। मैंने भी मन से गप्प में भाग लिया। थोड़ी देर में उन्होंने कहा–

'अच्छा, बोलो तो रत्ना, यदि तुम्हें बहुत दुर्गन्ध वाली जगह पर ले जाया जाय और कोई ऐसा इन्जेक्शन दे दिया जाय कि तुम्हें दुर्गन्ध का पता न चले तो क्या होगा?'

मैं उनके अज्ञान पर मुस्करा कर बोली, 'अरे, आप नहीं जानते! प्रत्यक्ष में तो जरूर कुछ नहीं होगा, पर बाद में उस दुर्गन्ध का असर अवश्य रंग दिखाएगा।'

वे गंभीर होकर बोले–'रतन, तुम आगे साइकोलॉजी में पढ़ोगी कि मन तीन हैं–चेतन, अवचेतन, अचेतन। मन हमेशा पहले बुरी बातों को ग्रहण

करता है। हमें यह पता नहीं चलता कि वे चीजें कब अचेतन मन में इकट्ठी हो गयी, क्योंकि हमें चेतना का इन्जेक्शन लगा हुआ है।

मैं यह नहीं कहता कि तुम सिनेमा बिल्कुल मत देखो। देखो, किन्तु उसकी मात्रा कम कर दो। एक डॉक्टर ने एक शराबी को सलाह दी–तुम रोज शराब पियो, लेकिन पहले दिन केवल एक प्याला पीकर शराब की बोतल को खाली जगह में पानी भर कर रख लो। दूसरे दिन पुन: उसी बोतल से एक प्याला पीकर सादा जल भर दो। तीसरे दिन भी ऐसा ही करो। रोगी ने इसी प्रकार किया। और एक दिन ऐसा भी आया जब कि बोतल में शराब बिल्कुल न रही, केवल पानी ही पानी रहा–और, शराबी को शराब से चिढ़ हो गई। इसी प्रकार एक दिन तुम्हारी भी आदत हो जाएगी कि सिनेमा देखने का मन भी नहीं करेगा। चलने को तो टट्टू भी चलता है, पर सौ योजन चल कर भी वह टट्टू ही बना रहेगा। पर इन्सान ही तो ऐसा है जो सौ योजन चलने पर या तो शैतान हो जाता है या फिर भगवान। वह मौत भी क्या कि समुन्दर की एक लहर धीरे से उठी और तट को छूकर पुन: समुद्र में उसी तरह विलीन हो गई मानो कुछ हुआ ही न हो।

क्या तुम नहीं चाहती कि जीवन के उस पार जाने के बाद भी दुनिया तुम्हारी याद में फूल चढ़ाए और मजार पर मेला लगे और तुम्हारा नाम इतिहास के पन्नों में खुद जाए! दुनिया के बाजार में अच्छाई-बुराई दोनों बिकती हैं। तुम जो चाहे खरीदो। लेकिन जान लो, इन्सान जब अपने हाथों दर्द का सौदा करता है, तो उसे आँसू खारे नहीं मीठे लगते हैं। काँटों से उलझ कर ही तो फूल तोड़ा जाता है और जब फूल कुचल जाता है तभी इत्र भी बनता है। मन को वह फूल बनाओ, जो कि मायावी रूप और रंग को कुचल कर इत्र बन जाये। छोटी-सी जिन्दगी है, लेकिन चाहो तो बड़ा नाम कमा सकते हो। आदमी जन्म से ही गाँधी और बुद्ध बनकर पैदा नहीं होता।

श्री स्वामीजी जब चुप हुए तो मेरी तन्द्रा टूटी। श्री स्वामीजी की वाणी में क्या जादू है कि सुनने वाले के अन्तस्तल को छू कर ही रहता है। सीधे-सादे सरल शब्द इतने प्रभावोत्पादक होते हैं कि जीवन की धारा ही बदल जाती है। 'टच स्टोन्' के बारे में सुना तो बहुत था, पर देखने को यह एक ही मिला। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया, वह ऐसा बदला कि बदल ही गया। क्या देखा था कभी आपने ऐसे टच्-स्टोन को जो मन की पूरी-की-पूरी चिन्तन पद्धति को ही बदल डाले! *पारस परस कुधातु सुहाई।*

श्री स्वामीजी के ये शब्द मेरी स्मृति-मंजूषा में सुरक्षित हैं। जीवन में जब भी प्रकाश की कमी पाती हूँ, तब इन मणियों से प्रकाश और प्रेरणा लेती हूँ, ये शब्द ही मेरी प्रेरणा हैं।

मुंगेर आश्रम में संचालित कार्यक्रम

आश्रम में 14 जुलाई को ब्रह्मलीन शिवानन्द जी का निर्वाण दिवस मनाया गया। भजन-कीर्तन, दरिद्रनारायण भोजन और 108 नारायणों को कम्बल दिया गया। शाम के सत्संग में श्री स्वामीजी ने गुरुदेव के बारे में अपने अनुभव बतलाये।

गुरु पूर्णिमा को सुबह हवन-पूजा के बाद बम्बई की पारसी महिला ने हवन कुण्ड में 'अखण्ड अग्नि' प्रज्वलित की, याने उसकी अग्नि बुझने नहीं पायेगी, आम की लकड़ी उसमें हमेशा डालते रहेंगे।

8 सितम्बर को स्वामी शिवानन्द जी की 77 वीं जन्म तिथि मनायी गयी। कार्यक्रम की अध्यक्षता भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने की। उन्होंने कहा–शान्ति और शक्ति के लिए योग का संदेश व योग के व्यावहारिक पक्ष को अपनाने का संदेश देकर स्वामीजी अपने गुरु जी को सहयोग दक्षिणा दे रहे हैं। बिहार योग विद्यालय को गर्व है कि यहाँ सर्व देशीय और सर्व धर्मीय व्यक्ति एक साथ रहकर योगाभ्यास करते हैं। बिहार के श्रम-भ्रमण-मंत्री, धार्मिक संस्थाओं के मंत्री, जन कल्याण मंत्री, शिक्षा मंत्री, विधान सभा के उपवक्ता, प्रोफेसर और राष्ट्रपति के व्यक्तिगत डॉक्टर, डॉ. दुखन राम, सभी आये थे। इन लोगों ने आश्रम का निरीक्षण किया व संतोष भी व्यक्त किया। बिहार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री चंद्रशेखर 'खान' के संगीत से समापन हुआ।

पंचवटी (श्री स्वामीजी का कमरा) के बगल में योग निद्रा विहार का निर्माण कार्य शुरू हुआ।

नन्दग्राम के प्रसिद्ध अधिवक्ता, समाजसेवी, साधक, भक्त राधेश्याम जी अग्रवाल, 1956 से श्री स्वामीजी के भक्त हैं, वे पहले साधना के लिए कई जगह जा चुके हैं। श्री स्वामीजी से मिलने के बाद उन्हें गति मिल गई। मुंगेर आश्रम बनने पर वे आये, कोर्स किया, दीक्षान्त समारोह के अवसर पर साधकों की ओर से उन्हें धन्यवाद ज्ञापन के लिए कहा गया। उन्होंने कहा, धन्यवाद तो एक रस्म-रिवाज है, जो सभा व समारोह में होता है, यह योग

विद्यालय तो एक ऐसा स्थान है, जहाँ पर प्रत्येक गतिविधि में जीवन का दर्शन समाया रहता है। मन तथा बुद्धि के एकीकृत मिलन से हृदय बन जाता है, अतएव मैं अपने और साधकों की ओर से योग विद्यालय और परमहंस सत्यानन्द जी को हृदय समर्पित करते हुए कुछ कहना चाहता हूँ–

"मैं कुछ आश्रमों में रहा, कुछ को देखा, कुछ का पता लगाया, कुछ संतोष हुआ, कहीं कुछ खुराक मिली, पर मन नहीं भरा। प्रत्येक बार समस्या रहती कि आखिर घर जाकर क्या साधना की जाए? विचार उठते, हिमालय भी जायें तो साधना कैसे? अगर किसी संत से पूछें तो सही मान अपनाया जाये या नहीं ...।

आज मैं प्रसन्न हूँ कि इस योग विद्यालय में 15 दिन रहकर और श्रद्धेय स्वामीजी के मार्गदर्शन में जो अभ्यास हो सका है, भविष्य का जो भी प्रकाश मिल सका है, उससे मेरे सब प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल गया है। योग-अभ्यास में सबसे कठिन बात है–सही मार्ग का मिलना। एक बार ठीक रास्ता पकड़ लेने पर साधक देर-सबेर अपने लक्ष्य तक पहुँचता ही है। यह व्यक्ति की साधना-शक्ति और क्षमता पर निर्भर है कि वह कितना मार्ग कितने समय में पार करेगा।

यथार्थ में मुंगेर के साधकों का तो यह परम सौभाग्य है कि योग की तपोभूमि हिमालय, इस योग विद्यालय के रूप में यहाँ उतर आया है। संयोगवश जिस हिमालय से गंगा का जन्म हुआ, वह इस मुंगेर को अपनी गोद में बैठा सका है, याने मुंगेर के सब तरफ गंगा माँ घूम गई हैं। आप मुंगेर वासी यह समझें कि इस योग विद्यालय की अपनी कुछ विशेषतायें हैं, जिसके कारण इसका भविष्य उज्ज्वल है।

1. इस योग विद्यालय की गतिविधियाँ इस प्रकार आयोजित की गई हैं कि एक साधारण साधक के मन में भी योग विद्या के प्रति उत्सुकता और अनुराग उदय होता है। जबकि अन्य ऐसे आश्रमों में योग विद्या में पारंगत साधकों को भी ठीक-ठीक प्रकाश नहीं मिल पाता। यह कहना उपयुक्त होगा कि यह विद्यालय, मिट्टी के साधक के रूप में घड़े तैयार करके, उन्हें पकाकर समाज के उपयोग के लायक बनाने में संलग्न है।
2. इस विद्यालय का संक्षिप्त रुचिपूर्ण पाठ्यक्रम है, भारत में और शायद विश्व में यह पहली संस्था है, जहाँ योगविद्या की कक्षायें एक पाठशाला के रूप में होती हैं। यह एक ऐसा विद्यालय है जहाँ सीखने व समझने का

काम एक साथ होता है। यह स्कूल योग-विद्या के क्षेत्र में लाइब्रेरी और लेबोरेटरी के सम्मिलित अभ्यास की एक अपूर्व संस्था है।

3. इस संस्था में सब प्रकार के साधकों को आश्रय मिलता है, जैसे भगवान आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी, सभी भक्तों को आश्रय देते हैं। इस योग-शाला में आसन-प्राणायाम द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य; प्रत्याहार, धारणा द्वारा मानसिक स्वास्थ्य और चिदाकाश आदि उच्च क्रियाओं के अभ्यास द्वारा आत्मानुभूति का भरपूर अवसर मिलता है। यह संस्था 'योग विद्या' का एक सुन्दर शाश्वत झरना है, साधक अपनी पात्रता के अनुसार मनचाहा जल ले सकता है।
4. साधकों की बारीकी से देखभाल 'परख' किसी भी आश्रम में ऐसे नहीं होती कि साधकों की व्यक्तिगत देखभाल की जाय, बल्कि होता यह है कि साधकगण स्वामीजी से मिलने लालायित रहते हैं और महात्मा जी को समय नहीं मिलता। जबकि इस विद्यालय में स्वयं श्री स्वामीजी मिलने हेतु तत्पर रहते हैं, हर बात पूछते व समस्या की उचित व्यवस्था बताते हैं।
5. कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक योग का अभ्यास और उनका ज्ञान। पन्द्रह दिन के अंदर ही पर्याप्त जानकारी हो जाती है। साधक उसे आगे बेखटके चालू रख सकता है। इतना गंभीर विषय है यह कि आश्रमों में महीनों और वर्षों रहने पर भी कुछ खास पल्ले नहीं पड़ता और यहाँ पन्द्रह दिन में ही बहुत कुछ मालूम हो जाता है। यही इस विद्यालय का साधकों को वरदान है।
6. महिलाओं और बच्चों की विशेष कक्षायें। ऐसे बहुत कम आश्रम होंगे जहाँ महिला समाज को समान प्रोत्साहन और अभ्यास मिले। छोटे-छोटे बालकों में इस विषय की ओर अभिरुचि उत्पन्न करने और उनमें समुचित संस्कार डालने में यह संस्था अत्यधिक सफल हुई है।

अन्त में यह कहना भी उचित होगा कि इतने कम खर्च में योग का अभ्यास कहीं भी नहीं मिल सकता। आश्रम में पन्द्रह दिन रहने वाले साधकों से केवल 21 रुपये लिये जाते हैं। जिसमें निवास, भोजन आदि सब का समावेश हो जाता है। अतएव अपनी ओर से, सब साधकों की ओर से, योग विद्यालय के कार्य-कर्त्ताओं एवं संचालकों का हृदय से आभार मानता हूँ, पूज्यवर श्री स्वामीजी को नमन करता हूँ।"

आश्रम व्यवस्था की कितनी सुन्दर झाँकी है, प्रभावशाली व्याख्या है।

इस तरह आश्रम का काम सुचारु रूप से चलने लगा, आने वालों की संख्या बढ़ती गयी। काम भी बढ़ा, नाम भी बढ़ा, सब का उत्साह भी बढ़ा।

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, 1964

श्री स्वामीजी ने निश्चय किया, 1 से 7 नवम्बर तक योग-सम्मेलन करेंगे। उनके सहयोगी, शिष्यों, भक्तों ने प्रसन्नता से स्वीकारा।

श्री केदारनाथ गोयनका जी का सहयोग तो था ही, श्री स्वामीजी के सेक्रेटरी थे श्री कृष्ण कुमार गोयनका। वे श्री स्वामीजी का पूरा काम करते थे। योजनाएँ बनीं, तैयारियाँ हुईं, पम्पलेट छपे, कार्ड छपे, 'योग विद्या', 'योगा' के माध्यम से सबको सूचना दी गई, समय पर सबको कार्ड भेजे गये।

राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद और पण्डित जवाहर लाल नेहरू का शुभकामना संदेश मिला। जगद्‌गुरु महाराजों का आशीर्वाद मिला। ऋषिकेश से स्वामी चिदानन्द जी आये। श्री स्वामीजी के सहयोगी, भक्त, शिष्य तथा हजारों की तादाद में अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के सदस्यगण आये।

श्री सत्येन्द्र नारायण सिन्हा (विधान सभा के अध्यक्ष), श्री आनन्द मोहन सहाय (भारत सरकार के भूतपूर्व सेक्रेटरी), डॉ. दुखन राम (एम.एल.ए.), श्री के.पी.सिह (प्रिंसिपल), श्री एन. के. सिन्हा, श्री आई. एन. ठाकुर, श्री विनोदानन्द झा, रायपुर विवेकानन्द आश्रम के स्वामी आत्मानन्द जी और नन्दग्राम से डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र आये।

1 से 7 नवम्बर 1964 तक वृहत् योग सम्मेलन हुआ, इसका उद्‌घाटन बिहार के राज्यपाल श्री अनन्त शयनम् आयंगर ने किया। भोजन, आवास एवं सम्मेलन स्थल, पूरी व्यवस्था गोयनका धर्मशाला में हुई थी। रोज 4 सत्र होते थे, सभी सत्रों में श्री स्वामीजी उपस्थित रहते थे। दूर-दूर से आये साधकगण व अनुसंधान-कर्त्ता योग के गूढ़ विषयों पर विवेचन करते, प्रवचन देते। सभी सन्त-महात्माओं एवं महापुरुषों का प्रवचन हुआ। स्वामी चिदानन्द जी का प्रवचन और दोनों गुरु भाइयों की गुरु आश्रम की बातें व अनुभव सुनकर सब भाव-विभोर हो उठते।

स्वयं-सेवकों, कार्यकर्त्ताओं का काम बहुत ही अच्छा था। श्री स्वामीजी ने उन्हें बहुत अच्छी ट्रेनिंग दी थी। इस तरह सात दिन का सम्मेलन अतिशय सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुआ। स्मृति ग्रंथ 'मेकेनिक्स ऑफ मेडिटेशन' का विमोचन हुआ। पुस्तकें तो छपती जा रही थीं व छपती रहेंगी, पर इस पुस्तक

को लोगों ने बहुत पसन्द किया। इसका हिन्दी अनुवाद भी हुआ, और वह पुस्तक भी कई बार छप चुकी है।

सम्मेलन के बाद योग विद्यालय के साहित्य और 'योग विद्या' एवं 'योगा' पत्रिकाओं की समीक्षा दिल्ली, पंजाब, मद्रास, यू.पी. के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित हुई। उससे लोगों में समुचित जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा तीव्र हुई। सभी जगहों से श्री स्वामीजी को पत्र मिलने लगे। श्री स्वामीजी तो कहीं जाते नहीं थे, उन्होंने स्वामी योग शक्ति को चंडीगढ़, दिल्ली और बम्बई भेजा। उन्होंने गुरुदेव के संदेश, प्रवचन के साथ ही साहित्य भी वितरित किया व आश्रम के योग-साधना से सम्बन्धित चलचित्र भी दिखाये। समाचार पत्रों में यह सब पढ़कर या जिन्होंने सुना व फिल्म देखी, सभी जगहों से प्रोग्राम व शिविर की तैयारी की सूचना मिलने लगी, लोग मुंगेर भी आने लगे।

1965 की गतिविधियाँ

1965 जनवरी में बसन्त पंचमी का उत्सव स्थापना दिवस की प्रथम वर्षगाँठ के रूप में मनाया गया, 3 दिन का विशेष सत्संग हुआ।

10 मार्च को महर्षि मेंही जी का आश्रम में आगमन हुआ। उस दिन विशेष सत्संग का आयोजन हुआ। वर्ष 1965 के चतुर्थ सत्र का समापन व शिक्षार्थियों को प्रमाण पत्र दिया गया, आसनों का चल-चित्र भी दिखाया गया।

श्री स्वामीजी का आशीष व योग संदेश लेकर स्वामी योग शक्ति 12 मई को पुनः यात्रा पर गई। टाटानगर, रायगढ़, बिलासपुर, रायपुर, भिलाई, नन्दग्राम, गोंदिया, बालाघाट, बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, ये सब तो पुराने शिष्यों व श्री स्वामीजी के गढ़ ही थे। सभी जगह प्रोग्राम बनते थे, पर श्री स्वामीजी तो तीन वर्ष तक कहीं नहीं जायेंगे। सभी जगह अपने संन्यासी शिष्यों को भेजने लगे। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान व विदेशों से भी योग सीखने के इच्छुक आने लगे। उत्सुकतावश भी लोग आते थे।

14 जुलाई 1965 को स्वामी शिवानन्द जी का 'निर्वाण दिवस' मनाया गया। आश्रम में नारायण भोजन हुआ, 108 नारायणों को कुर्ता दिया गया। बाकी लोगों को भोजन व कुछ पैसे। श्री स्वामीजी स्वयं परोस रहे थे, गोयनका जी भी सपरिवार मदद कर रहे थे, और सभी भक्त लोग भी मदद कर रहे थे, फिर रामायण पाठ हुआ, कीर्तन, प्रसाद व रात को ईसामसीह की फिल्म दिखायी गयी।

17 जुलाई को गुरु पूर्णिमा उत्सव मनाया गया। हवन, पूजा, प्रसाद, जगह-जगह से लोग आये थे। शाम को सत्संग में शहर के लोगों का आना हुआ, भजन-कीर्तन, प्रवचन हुआ।

26 जुलाई को सुबह हवन और सत्संग हुआ। फिर मीटिंग हुई, तय हुआ कि 1 से 7 नवम्बर 1965 तक दूसरा योग सम्मेलन होगा, उसकी रूप-रेखा बनी, सन्त-महात्माओं को पत्र लिखने का काम शुरू हुआ। सम्मेलन की तैयारियाँ शुरू हुईं।

8 सितम्बर, शिवानन्द जन्मोत्सव के दिन विशेष सत्संग, भजन, रामायण-पाठ हुआ।

15 सितम्बर 1965 को सन्त विनोबा भावे मुंगेर पधारे। प्रात: 9 बजे श्री स्वामीजी ने आश्रम में उनका स्वागत किया। दोनों में महत्त्वपूर्ण परिचर्चायें हुईं। भोजन के बाद, आश्रम कक्ष में सर्वोदयी कार्यकर्त्ताओं की बैठक हुई। विनोबा जी व उनके सहयोगी श्री स्वामीजी के सत्संग से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने द्वितीय योग सम्मेलन में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। भोजन के बाद शाम 6 बजे श्री विनोबा जी ने अपने साथियों सहित अन्यत्र के लिए प्रस्थान किया।

अक्टूबर में विजय लक्ष्मी पण्डित बिहार आईं, तो वह आश्रम भी आईं थीं। सब देखकर, श्री स्वामीजी से बात कर बहुत प्रभावित हुईं। सत्संग के बाद जब वे भाषण देने लगीं, तो 3 घण्टे तक बोलती ही रहीं। फिर बहुत खुश होकर गईं। इसी तरह आश्रम में प्रोग्राम होते रहे, सम्मेलन की तैयारी भी होती रही।

दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, 1965

1 से 7 नवम्बर 1965–सात दिवसीय सम्मेलन शुरू हुआ। इस अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन में, देश-विदेश से 1500 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजनदेव तीर्थ महाराज ने उद्घाटन किया, बिहार के राज्यपाल श्री अनन्त शयनम् अयंगार ने समावर्तन किया और राजस्थान के राज्यपाल डॉ. सम्पूर्णानन्द ने स्मृति ग्रंथ का विमोचन किया।

इस अवसर पर ऋषिकेश से स्वामी चिदानन्द; रामकृष्ण मिशन कलकत्ता के स्वामी रंगनाथानन्द; प्रोफेसर त्रिपुरारी चक्रवर्ती; स्वामी आत्मानन्द, रायपुर; महर्षि मेंही दास जी, भागलपुर; योगी राज श्री नित्य चैतन्य, दिल्ली;

श्री मधुसूदनाचार्य, राजगृह; श्रीकान्त ठाकुर, सम्पादक आर्यावर्त, पटना; मदर मेरी (सेन्ट टॉमस), रोम; डॉ. ब्रूस राबर्टसन, कनाडा; श्रीमती शकुन्तला गोस्वामी, वृन्दावन; विरागी जी, वाराणसी; स्वामी साधनानन्द, आसाम; योगी राज मनुवर्य, अहमदाबाद; श्री जनार्दन स्वामी, नागपुर; यौगिक संघ कलकत्ता के श्री राम कुमार; श्री प्रकाश चन्द्र सूर; श्रीमती सुमित्रा देवी (सूचना मंत्री बिहार); श्री शिव शंकर, राज्य मंत्री बिहार; श्री विनोदानन्द झा (भूतपूर्व मुख्य मंत्री); श्री बालेश्वर राम (पर्यटन मंत्री बिहार); डॉ. दु:खनराम, पटना और भी कई लोग आये थे।

एक अभूतपूर्व घटना हुई। अमेरिका द्वारा संचालित 'नोट्रेडेम संस्था, जमालपुर' की सिस्टर्स ने अपने कठोर नियमों को तोड़कर इस सम्मेलन में पूरे 7 दिन भाग लिया। हर रोज चार सत्र होते थे और श्री स्वामीजी का प्रवचन हर सत्र में होता था। सभी संत-महात्माओं व पूज्य अतिथियों के प्रवचन हुए, विषय था 'मानवता के हित साधन में योग की संभावनायें'। सभी ने इस विषय पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये। स्मृति ग्रंथ 'डायनामिक्स ऑफ योगा' का विमोचन हुआ। इस तरह द्वितीय योग सम्मेलन ऐतिहासिक तरीके से सम्पन्न हुआ। भक्त नवीन उत्साह लेकर वापस हुए।

1966 की गतिविधियाँ

1966 जनवरी 28–29–30 तारीख को गोंदिया में प्रथम अन्तर-प्रांतीय-योग-सम्मेलन हुआ। नागपुर, अमरावती, खामगाँव, नन्दग्राम, भिलाई, रायपुर, बिलासपुर के सभी साधक-भक्त आये थे। संचालन स्वामी योगशक्ति ने किया। मण्डला के बाबा, 153 वर्षीय वयोवृद्ध सन्त श्री सीताराम दासव जी भी आये थे। बाबा सीताराम जी के आशीर्वचन के बाद श्री विरागी जी ने स्मृति ग्रंथ का विमोचन किया। नागपुर के जनार्दन स्वामी, मुंगेर से स्वामी प्रार्थनानन्द व कुछ भक्त लोग आये थे। इनके प्रवचन हुए। श्रीमती शकुन्तला गोस्वामी का रामायण पर प्रवचन रोज होता। कुमारी रत्ना श्रीवास्तव ने लड़कियों की प्रतिनिधि के रूप में भाषण दिया। रींवा-रायपुर के श्री धर्मदास मिश्रा ने संन्यास लिया। 3 दिन का प्रोग्राम सफलता से सम्पन्न हुआ।

7 फरवरी 1966, बिहार योग विद्यालय के द्वितीय स्थापना दिवस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में 'दिव्य जीवन संघ' ऋषिकेश के अध्यक्ष स्वामी चिदानन्द पधारे। उनका प्रवचन हुआ। और भी कई लोग आये थे, उनके

प्रवचन हुए, फिर श्री स्वामीजी ने गीता पर प्रवचन दिया। कर्म योग की महत्ता समझायी, अन्त में उन्होंने साधकों से कहा कि वे योग विद्यालय व स्वामी सत्यानन्द के प्रचारक न बनें। योग आन्दोलन में भाग लें, योग-सन्देश का प्रचार जरूर करें।

2 जुलाई 1966, 'गुरु पूर्णिमा' महोत्सव बिहार योग विद्यालय में मनाया गया। इस अवसर पर श्री स्वामीजी ने कहा, यह दिन किसी एक खास गुरु का जन्मदिन नहीं, बल्कि सभी 'ब्रह्मज्ञ' ब्रह्म गुरुओं के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है।

दोपहर को मीटिंग में 1 से 7 नवम्बर तक होने वाले तृतीय योग-सम्मेलन की रूप-रेखा बतायी। सबको अलग-अलग काम बताया। और बताया इस सम्मेलन को आशीष देने चार सौ वर्षीय रणछोड़ जी, पुराने ज्ञानी क्रिया-योगी महात्मा हैं, मुंगेर आ रहे हैं। वे परम्परा से बाबा जी के नाम से जाने जाते हैं, जगह-जगह नेत्र यज्ञ करवाते हैं, उनका नेत्र यज्ञ व भण्डारा बहुत प्रसिद्ध है।

मैत्रीय बुद्ध विश्वविद्यालय नार्वे के संस्थापक अस्सी वर्षीय श्री इनारबीयर, हवाई जहाज से तृतीय योग सम्मेलन के अवसर पर मुंगेर पधारेंगे। वे सम्मेलन में विदेशी प्रतिनिधियों का नेतृत्व करेंगे।

इसी दिन शाम को मुंगेर आश्रम में श्री स्वामीजी के निर्देशन में गीता का सुनियोजित अध्ययन शुरू किया गया, जो 30 अक्टूबर तक चला।

8 सितम्बर को शिवानन्द जन्मोत्सव के अवसर पर सत्संग प्रवचन विशेष हुआ। 14 जुलाई को शिवानन्द निर्वाण दिवस के अवसर पर नारायण भोजन व सत्संग-प्रवचन हुआ था।

तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, 1966

1 से 7 नवम्बर 1966 तक होने वाले तृतीय अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन की विशेष तैयारियाँ होने लगीं। लोगों का आना शुरू हुआ। क्रियायोगी बाबा; बुद्धयोगी श्री इनार बियर, नार्वे; स्वामी चिदानन्द, माता सेवानन्द, स्वामी करुणानन्द, ऋषिकेश; श्री बिरागी जी, श्री गोलवलकर, श्री सी.एम.भट्ट, बम्बई; योगाचार्य मेजर के.एम. कामथ, बम्बई; श्री आर. सी. गुप्ता, शिमला; स्वामी शिवानन्द, आसाम; डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, नन्दग्राम; श्री एम.डी. जाफेट, बम्बई; त्रिपुरारी चक्रवर्ती, कलकत्ता; योगाचार्य के.बी. सहस्त्रबुद्धे, रायगढ़; परमहंस रामहृदय दास, वाराणसी; श्री मनुवर्य, अहमदाबाद;

परिव्राजक साधनानन्द, जस्टिस एम.एल.अभयंकर, बम्बई; श्री जे. मिश्रा, दरभंगा; श्री बी.पी.सिन्हा, श्री जगत नारायण लाल, पटना; श्री विलियम्स हूवरिंजर, अमेरिका; 13 वर्षीय बालिका कुमारी सरोज बाला; योगाचार्य बैद्युक पासैक, पोलैण्ड; श्री टी.एन.भारदे, बम्बई; योगाचार्य श्रीमती स्यू. होम्स, मेक्सिको; योगाचार्य डॉ. आर. पोल्डरमैन, हालैण्ड; डॉ शर्मा, रायगढ़; स्वामी पूर्णानन्द, केरल; वेदान्ताचार्य श्रीमती सी.के.स. हॉलैण्ड; शान्ति कुमार भट्ट, बम्बई; स्वामी नित्य चैतन्य यती, दिल्ली; स्वामी शरणानन्द, वृन्दावन; योगाचार्य कुमारी रोमा ब्लेयर, सिडनी; श्रीमती यूकीको फ्यूजिता, जापान; स्वामी आत्मानन्द, रायपुर; योगी पुरुष हिमालय, योग कॉलेज रिसर्च सेंटर, केरल; कुमारी प्रभा अत्रे, ऑल इण्डिया रेडियो, बम्बई; यौगिक संघ कलकत्ता, आसन प्रदर्शन; केरल योगासन संयम, केरल।

देश-विदेश के करीब दो हजार प्रतिनिधि आये थे। अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के कार्यकर्त्ता व सदस्यगण और श्री स्वामीजी के भक्त शिष्य दूर-दूर से आये थे। ख्याति बढ़ रही थी, भक्त भी बढ़ रहे थे। गोयनका धर्मशाला में विशाल पण्डाल बना, भोजन-व्यवस्था भी वहीं थी, सैकड़ों स्वयंसेवक काम कर रहे थे। परिचित भक्त भी हाथ बँटा रहे थे, पर सबके मन में एक प्रश्न चिह्न उमड़ रहा था, सबके मन में हलचल मची थी, बात थी भी कुछ ऐसी ही। स्वामी सत्यानन्द ने तृतीय अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन के बाद योग विद्यालय में ही समाधिस्थ होने की बात कही थी। इसी से उनके भक्तों, शिष्यों के मन में कुछ बेचैनी थी।

1966 के लिए सोविनियर छपी थी, 'साइन्स ऑफ योगा'। बम्बई के मि. पई भी आये थे। वे 1964 व 1965 के सम्मेलनों में भी आये थे। उन्होंने उद्घाटन से समापन तक की सात दिनों की फिल्म बनायी। समय-समय पर वही फिल्म दिखायी जाती है।

1 नवम्बर को प्रात: श्री स्वामीजी ने उद्घाटन के बाद यह उद्घोषणा की, 'गंगा की तरह योग को हिमालय से इस धरती पर आना होगा'। स्वामी चिदानन्द के उद्गार थे, 'मानव जीवन एक अमूल्य अवसर'। स्वामी शिवानन्द जी की दक्षिण अमेरिका निवासिनी शिष्या सेवानन्द ने योग के अपने अनुभव बताये।

स्वामी शिवानन्द जी के एक ऑस्ट्रेलियन शिष्य, कुरुक्षेत्र वासी, त्यागी-तपस्वी, मात्र कौपीन धारी योगी, श्री करुणानन्द ने अद्भुत आसन-प्राणायाम का प्रदर्शन किया। उनके करताल (खंजड़ी) के स्वर-लय के साथ भजन 'ब्रह्म

मुरारी सुरार्चित लिंगम्' और भाव-विभोर कीर्तन ने सबको विमुग्ध कर दिया। लोगों के अनुरोध पर रोज उनका कीर्तन हुआ।

सात दिनों तक श्री स्वामीजी का प्रवचन हर सत्र में होता था। सभी सन्त-महात्माओं ने ज्ञान गंगा बहायी, योग पर अपने अनुभव व विचार प्रकट किये। हर वर्षानुसार 6 नवम्बर को श्री स्वामीजी का नागरिक अभिनन्दन किया गया। सभी संस्था वालों, देश-विदेश से आये योग मित्र मण्डल के संचालकों और भक्त-शिष्यों ने उनका अभिनन्दन किया।

इसके बाद श्री स्वामीजी ने अपनी शिष्या, स्वामी आत्मानन्द को आचार्य पद का भार सौंपा, देश-विदेश से आये दो हजार प्रतिनिधियों तथा कई हजार श्रोताओं के समक्ष आचार्य पद का अभिषेक कर अपनी चादर ओढ़ायी। सबके मन में जिज्ञासा थी, अब आगे क्या होगा।

श्रीमती इंदिरा गाँधी व सभी वरिष्ठ नेताओं की शुभकामनाएँ मिलीं। हजारों-हजार सहयोगी भक्त शिष्यों की शुभकामनाएँ व समर्पण का संकेत मिला। अब प्रतीक्षा थी गुरुदेव के आशीर्वाद आदेश की, भविष्य के संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रार्थना कर रहे थे, आदेश माँगते रहे।

और महान् गुरु का आशीष शिष्य पर बरस पड़ा ... गुरु जी का आशीष मिला, कुछ विशेष आदेश भी मिला–समाधि नहीं, तुम्हें बहुत काम करना है, देश व विदेश में योग-गंगा को बहाना है। तुम इस योग-गंगा के भागीरथ हो, इसे हिमालय की बर्फानी कंदराओं से नीचे उतार कर संघर्षरत जन समुदाय को सौंपना है। मेरा काम, मेरा आदेश, मेरा आशीर्वाद ... तुम्हें हमेशा मिलता रहेगा।

अन्तिम दिन का प्रोग्राम सानन्द सम्पन्न हुआ। और साधक-भक्त अपने योग्यतानुसार, पात्रतानुसार गंगा जल लेकर, गुरुदेव से विदा लेकर प्रसन्न मन से अपने-अपने गृह नगर को आ गये।

श्री स्वामीजी का नाम और योग का काम बहुमुखी धारा के समान बढ़ने लगा। नवम्बर 1963 में श्रीमती विजिया प्रेमनीति का लेख योग विद्या में छपा, वे श्री स्वामीजी के निकट सहयोगियों में से हैं। उस समय आश्रम बन रहा था, लेखिका के विचार कितने उपयुक्त हैं–

एक संन्यासी का स्वप्न

यदि स्वप्नों पर रिसर्च आप करें तो पायेंगे कि अधिकतर बड़ी-बड़ी कृतियों को करने का आदेश शुद्धमना महान् आत्माओं को स्वप्नों के द्वारा मिलता है।

हमारे गुरुदेव का स्वप्न है कि वे भारत की प्राचीन योग-विद्या को अतीत की समाधि से निकाल कर, आधुनिक सभ्यता से उसका गठबन्धन कराकर ही दम लेंगे।

श्री स्वामीजी पूर्ण योगी हैं। उन्होंने योग का अभ्यास करके जीवन के मूलभूत नियमों की परीक्षा की और ऋषियों के बताये हुए विज्ञान को सत्य पाया। उन्हीं यौगिक नियमों को आधार बनाकर वे आगामी सभ्यता व संस्कृति की नींव तैयार कर रहे हैं। महापुरुष ही समाज की रूप-रेखा व ढाँचा तैयार करता है। साधारण व्यक्ति तो केवल बने बनाये समाज के अन्दर ही रहना जानता है। समय-समय पर संसार में असाधारण व्यक्ति आते हैं, जो तकलीफ उठाकर, अपमान, उपेक्षा सहकर भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। और वे एक अमिट रेखा बना देते हैं।

हमारे गुरुजी ने भी आज ऐसे ही काम का बीड़ा उठाया है, जिसके महत्त्व को आज भले ही कोई न समझे, परन्तु हमारी आगे की पीढ़ी यह समझेगी कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य को बनाने में श्री स्वामीजी के विविध सर्वांगीण प्रयासों का क्या हाथ रहा है। प्राचीन विद्याओं को पुन: प्रकाश में ले आने में कितना बड़ा योगदान रहा है। योग के खोये हुए गौरव को किस प्रकार फिर से नये युग में उसके मूल्यों की पूर्ण रक्षा करते हुए पुन: स्थापित किया है। योग को विज्ञान के साथ तौलकर दिखा दिया है कि यह सतयुगीय नहीं, बल्कि कलियुगीय है। आधुनिक समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी विद्या है। यह लोहा, कोयला, तांबा, भाप, बिजली और ऐटम के युग में भी आज उतनी ही उपयोगी है, जितनी प्राचीन ऋषियों के युग में थी। श्री स्वामीजी ने आज पढ़े-लिखे लोगों को यह चुनौती दी है कि योग पर अधिकार के साथ बोलने के पहले आओ, कुछ अभ्यास करो।

श्री स्वामीजी को भी भविष्य के इन कार्यक्रमों की झलक दिखायी दी थी। उन्हें बराबर भविष्य की झाँकियाँ एवं भविष्य के दृश्य एवं नये अपरिचित व्यक्तियों के चेहरे स्वप्न, ध्यान और ट्रांस में दिखा करते थे। ध्यान की अवस्था में वाणियाँ सुनायी पड़ती थीं। कई साधकों, शिष्यों एवं सहयोगियों के बारे में उन्हें पहले से मालूम था कि ये उनके काम में बहुत मदद पहुँचाएँगे। आज भी श्री स्वामीजी जानते हैं कि उन्हें किस-किस क्षेत्र से किस प्रकार आगामी कार्य करना व उसकी नींव तैयार करनी है। विज्ञान के साथ साम्य रखते हुए योग-संस्कृति की रक्षा और उपयोग का

सुलभ तरीका सर्व-साधारण को कैसे प्राप्त होगा, श्री स्वामीजी सब जानते हैं। चर्चा भी करते हैं। श्री सत्यव्रत, बसन्ती, श्रीमती अध्यावती सहाय, देवीदत्त जोशी तथा अनेक व्यक्ति हैं जो स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को आज से नहीं, उनके गुरु आश्रम से ही जानते हैं। कई व्यक्ति हैं जिन्होंने दीक्षा तो ली है स्वामी शिवानन्द जी से, पर अपना वास्तविक साधना गुरु मानते हैं स्वामी सत्यानन्द को ही। दिल्ली, मुम्बई तथा अन्य स्थानों में श्री स्वामीजी के पूर्वाश्रम के साथी मिलते हैं, जो शिष्य बनकर उनसे साधना सीखने आते हैं।

श्री स्वामीजी का स्वप्न है कि मनुष्य मात्र योग को उसी प्रकार अपना ले, जिस प्रकार कोट, पैंट, पायजामा और टाई को स्थान दिया है। पब्लिक नाम की जो जनता है, उसमें स्वयं सोच-विचार की शक्ति नहीं होती, वह प्रभावित होती है या की जाती है। अस्तु समाज सुधारकों की व समाज निर्माताओं की जवाबदेही बढ़ जाती है। इसीलिए यह काम संन्यासी और सन्त अपने ऊपर लेते हैं। चूँकि उनका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता, इसीलिए सफल भी होते हैं।

मैंने देखा है कि श्री स्वामीजी अपने पास आने वाले सभी दुःखी, आर्त्त, युवक, वृद्ध, आबाल, नर-नारी सभी को वही रास्ता बताते हैं जो उनके लिये सर्वोत्तम होता है। मनुष्य कितना दुःखी है, और उसे सच्चे ज्ञान की कितनी जरूरत है, इसका पता इन समृद्ध बड़े ऑफिसरों को नहीं हो सकता, जो ऊँची तनख्वाहों से सम्मोहित हो जाते हैं। आज का मनुष्य अपनी भविष्य की सुरक्षा की बात पहले सोच लेता है, तभी वह किसी कल्याण-कर्म में प्रवृत्त होता है। परन्तु संन्यासी, क्या वह भी ऐसा सोचेगा? नहीं। वह अपने निश्चय पर अटल रहता है। बाधाओं से नहीं डिगता है।

और लौह संकल्प लेकर चल रहे हैं श्री स्वामीजी, योग-संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए कटिबद्ध हैं। पुस्तकों, पत्रिकाओं, टेप रिकॉर्डर, फिल्म प्रोजेक्टर, सभी कैम्पसों, सभी जगहों से वे एक ही राग अलाप रहे हैं—योग की धुन, संन्यासी की मस्ती है और योग का तेज। श्री स्वामीजी आज एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक इन्स्टीट्यूशन स्वयं ही हैं। यह आन्दोलन की हवा है, जो इन्टर नेशनल योग फेलोशिप मूवमेंट की पत्रिका पढ़कर सबको लग रही है। मेरा अनुरोध है कि योग को सब अपनायें। श्री स्वामीजी जनवरी 1964 से मुंगेर में एक योग विद्यालय की स्थापना कर रहे हैं। यह प्रयास निःसंदेह भारत

के इतिहास में पहला होगा। यह भी सुनने में आया है कि एक योग रिसर्च इन्स्टीटयूट की भी स्थापना होगी, जहाँ आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से यौगिक अभ्यासों के शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभावों को भी नापा और रिकार्ड किया जायेगा। बिहार में इस प्रकार की संस्था अब तक नहीं है। बिहार ही क्या, भारत में ही नहीं है। यदि सरकार भी इन प्रयासों को प्रोत्साहित करे, तो बिहार में एक अपूर्व चीज होगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

यह लेख है तो 1962 का, पर भविष्य का संकेत कितना स्पष्ट है, जो आज एकदम खरा उतरा है। जैसे स्वप्न सच्चा हो गया है।

1967 की गतिविधियाँ

13 से 15 जनवरी 1967 तक रायगढ़ में 3 दिन का योग शिविर हुआ। जिसका उद्घाटन व संचालन श्री स्वामीजी ने किया। श्री स्वामीजी ने 3 वर्ष तक कहीं नहीं जाने का नियम लिया था। तीन वर्ष पूरे होने पर नवम्बर 1966 में सम्मेलन के अवसर पर, कहीं भी नहीं आने-जाने की कठोर साधना से अपने को मुक्त किया और 12 जनवरी 1967 को रायगढ़ पहुँचे।

3 दिन के सम्मेलन में जगह-जगह से संत-महात्मा और साधक-भक्त आये थे। सबके प्रवचन हुए। श्री स्वामीजी का प्रवचन हर सत्र में होता था। रोज रात को शकुन्तला देवी का प्रवचन होता था 'रामायण' पर।

रायगढ़ वालों ने एक आश्रम बनाया था, और चाहते थे कि श्री स्वामीजी उसका संचालन करें, पर श्री स्वामीजी टालते जा रहे थे। पहली बात तो वे आश्रम के पक्ष में थे ही नहीं, अब कहते एक ही आश्रम काफी है।

नवम्बर 1956 में श्री स्वामीजी रायगढ़ पहली बार आये थे, तब किसी ने बात भी नहीं की थी, बड़े सेठ जी ने कुछ कटु शब्द भी कहे थे और आज वही नगर सेठ आश्रम देने का अनुरोध कर रहे हैं। 'सच है नयनों का वही विशेख, वह भी देखा यह भी देख'। विशेष अनुरोध पर तय हुआ कि 23 मई को आश्रम का उद्घाटन श्री स्वामीजी करेंगे। दीपक प्रज्वलित करने के भी विशेष अनुरोध पर यह तय हुआ कि श्री स्वामीजी मुंगेर से दीपक लेकर 23 मई को आयेंगे, तीन दिन का विशेष सम्मेलन होगा।

16 मार्च 1967 को आदि शारदा पीठ शृंगेरी मठ के जगत्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ मुंगेर पधारे। दो दिन रहे। उनका स्वागत दक्षिण की परम्परा के अनुसार किया गया। उन्होंने ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द सरस्वती के स्मृति

स्वरूप 'अखण्ड ज्योति' का दर्शन किया। सभी शंकराचार्यों के साथ पूजा की मूर्तियाँ व चंद्र मौलेश्वर (नीलम का शिवलिंग) रहता है। 17 मार्च की सुबह परम्परानुसार उनकी पूजा हुई, 'दुग्ध अभिषेक'। सवा मन दूध से विधि-विधान से पूजा-अभिषेक किया गया। विश्व विख्यात गौरवशालीन पूजा के दर्शन के लिए विद्यालय प्रांगण में हजारों की संख्या में गणमान्य व्यक्ति पधारे थे। फिर उनका प्रवचन आशीर्वाद हुआ। उन्होंने स्वामी शिवानन्द की बातें बतायीं व स्वामी सत्यानन्द की योग की महान् कार्यक्षमता की तारीफ की। उन्होंने कहा, जगत् गुरु वैदिक परम्परा के अखण्ड स्रोत हैं। आदि शंकराचार्य ने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए देश की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की।

1. पूर्व में गोवर्धन पीठ जगन्नाथ पुरी में है।
2. पश्चिम में द्वारिका पीठ है।
3. उत्तर में जोशी मठ बद्रिकाश्रम में अवस्थित है।
4. दक्षिण में शृंगेरी पीठ 'मैसूर' में है।

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर की गुरु-परम्परा शृंगेरी मठ से ही सम्बद्ध है।

मई में रायगढ़ वालों ने रेलगाड़ी के दो डिब्बे आरक्षित करवाये, मुंगेर से रायगढ़ के लिए। श्री स्वामीजी के साथ 80–85 भक्त-शिष्य मुंगेर, भागलपुर, छपरा के थे। मुंगेर के दीपक से दीपक जलाकर छोटे से मंदिर नुमा शो केस में रखकर भक्तों के साथ श्री स्वामीजी रवाना हुए। रास्ते में कलकत्ता, खड़गपुर, टाटा से भी भक्त लोग साथ हो लिए। दीपक को हाथों-हाथ रखते हुए आये।

23 मई को दोपहर में ट्रेन रायगढ़ पहुँची। कई सौ लोग स्वागत के लिए स्टेशन आये थे। बैन्ड बाजे के साथ जुलूस की पूरी तैयारी थी। इसीलिए स्टेशन में ही कुछ आराम व चाय-पानी का इन्तजाम भी हुआ था। गाड़ी आयी, श्री स्वामीजी दीपक लिये हुए उतरे। प्रणाम, फूल-माला, भजन-कीर्तन, चाय-पानी चला। 30–40 मिनट बाद बैंड बाजा, कीर्तन-भजन, जय-जयकार करते हुए जुलूस हनुमान धर्मशाला पहुँचा। वहीं ठहरने व भोजन का इन्तजाम था। वहाँ पहुँच कर स्नान, भोजन व आराम किया। बाहर से भी बहुत लोग आये थे। विशेष आयोजन हुआ था।

4 बजे शाम को कार व बस से सब आश्रम पहुँचे। दीपक की स्थापना हुई। भजन-कीर्तन, प्रवचन हुए। 24 एवं 25 को सुबह से शाम तक प्रोग्राम, सत्संग-प्रवचन होता रहा। स्वामी साधनानन्द को दीपक की जिम्मेदारी सौंप

कर, आश्रम व प्रशिक्षण की सब बातें समझा कर, कार्यकारी समिति गठित कर, सब व्यवस्था करके श्री स्वामीजी अपने शिष्य-भक्तों के साथ मुंगेर आये। और इस तरह मध्य प्रदेश में आश्रम शुरू हो गया। विधि की कैसी माया, यह योग विद्यालय उसी चर्च व होटल के पास है जहाँ भूखे-प्यासे पहुँचने पर चर्च के पादरी ने श्री स्वामीजी को चाय-नाश्ता कराया था, उस जगह से कुछ ही आगे योग विद्यालय बना।

प्रथम योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र

देश-विदेश से निरन्तर योग शिक्षकों की माँग बढ़ती ही जा रही थी। जुलाई माह से विदेश के कुछ प्रांतों से सरकार के भेजे हुए शिक्षक योग प्रशिक्षण के लिए आने वाले थे। श्री स्वामीजी ने तय किया कि अन्तर्राष्ट्रीय योगाचार्य प्रशिक्षण केन्द्र मुंगेर में होगा। यह कोर्स 9 माह का होगा, इसलिए 15 दिवसीय प्रशिक्षण सत्र जून माह में मुंगेर से रायगढ़, मध्य प्रदेश में स्थानान्तरित कर दिया गया।

नौ महीने का लगातार और व्यापक व वृहत् प्रशिक्षण का कार्यक्रम तैयार किया गया। योग के अनुसंधानिक सूत्रों को प्रशिक्षित करने के लिए। 1 जुलाई 1967 से 31 मार्च 1968 तक के इस विशेष सत्र में पहले से योग की जानकारी प्राप्त किये लोगों को और भी सूक्ष्म एवं विशेष अध्ययन कराया जाएगा।

जून 1967 से ही नौ मास के प्रशिक्षण के लिए भारत व विदेश से प्रशिक्षार्थी स्त्री-पुरुषों का आना शुरू हो गया। इनमें से कुछ को विदेशी सरकारों की ओर से छात्रवृत्ति भी मिली। प्रॉस्पेक्टस के द्वारा उन्हें ज्ञात है कि प्रत्येक विद्यार्थी को कितना कठिन और कष्टकारक जीवन बिताना पड़ेगा। 'कायेन-मनसा-वाचा' ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। वे आश्रम के बाहर के लोगों से किसी तरह का सम्पर्क नहीं रख सकेंगे।

नौ महीने तक इस विद्यालय का सम्पर्क बाहर से बिल्कुल नहीं रहेगा। योगाश्रम की दीवार के बाहर झाँक तक नहीं सकेंगे। इस अवधि में श्री स्वामीजी अपने शिक्षार्थी शिष्यों के साथ साधना में व्यस्त रहेंगे। शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के बाद ये लोग संन्यास-मार्ग के सच्चे पथिक होंगे और भारतीय संस्कृति के संदेश-वाहक भी होंगे।

यहाँ से जब ये लोग अपने देश लौटेंगे, तब प्राचीन भारतीय परम्परा और संस्कृति के संदेश-वाहक दूत के रूप में काम करेंगे।

गोंदिया में चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन

21 जुलाई, गुरु पूर्णिमा के पूर्व 18 से 20 तारीख तक 3 दिन का सम्मेलन हुआ व 21 को गुरु पूजा महोत्सव मनाया गया, बहुत लोग आये। भजन, कीर्तन, सत्संग-प्रवचन चलता रहा। गोंदिया के भक्त भी आये थे। वहाँ भी आश्रम बन चुका था। वहाँ वालों की विशेष इच्छा थी कि अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, तीन वर्ष तक मुंगेर में हुआ, अब श्री स्वामीजी चतुर्थ योग सम्मेलन 1 से 7 नवम्बर तक गोंदिया में करने की अनुमति दें। मीटिंग और सलाह करके श्री स्वामीजी ने आशीर्वाद सहित सहमति दी। पता वाला रजिस्टर दिया, सम्मेलन के बारे में बहुत बातें बतायीं, समझायीं। सभी संत-महात्माओं को पत्र लिखना है, बुलाना है, कैसे लिखना है, सब समझाया। द्वारिका पीठ के शंकराचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द उद्घाटन करेंगे। एक-डेढ़ माह पहले मुंगेर से दो स्वामी आयेंगे, तब तक सत्यव्रत जी आकर मदद करते रहेंगे। 1 से 7 नवम्बर तो हमारे लिए राष्ट्रीय दिन है, 29 अक्टूबर को हम भी सबको लेकर पहुँचेंगे। आदेश, निर्देश, आशीर्वाद लेकर भक्तगण गोंदिया गये और फॉर्म, पम्पलेट छपाना शुरू किया, सब जगह पत्र लिखने शुरू किये।

मुंगेर आश्रम बनने के बाद सत्यव्रत जी की व्यस्तता और बढ़ गई थी। जब 1962 अप्रैल-मई में मिल बंद हुई थी, पाँच हजार कामगार बेकार हो गये थे। जब झगड़ा हुआ, केस चला, पर मिल नहीं खुली, तो मिल को सरकार ने ले लिया और पन्द्रह महीने बंद रहने के बाद मंदसौर के राजा राम गुप्ता कन्ट्रोलर बन कर आये, सब कुछ देखा, समझा, सब ऑफिसरों को बुलाया, सलाह की। पन्द्रह माह बंद रहकर मशीनों की हालत खराब हो गयी थी, नयी मशीनों का आर्डर दिया गया, बाईलर में कोयला पड़ा, पुरानी मशीनों की सफाई होने लगी और मिल चलने लगी।

सत्यव्रत जी अपनी प्रेस, पत्रिका, पुस्तकों में व्यस्त थे। उन्होंने सोचा था नौकरी नहीं करेंगे, प्रेस का काम है, मुंगेर में आश्रम है, श्री स्वामीजी कहीं जाते नहीं है, हमेशा मुंगेर जाना पड़ता है, श्री स्वामीजी का सब काम करना ही है, यही सोच कर राजा राम गुप्ता के बुलाने पर भी नहीं गये। उसने 2-3 बार चपरासी भेजा, फोन किया, पर सत्यव्रत जी टाल गये। एक दिन राजाराम गुप्ता घर (प्रेस) में आ गया, कहने लगा, मैं एकदम नया हूँ, अनुभव भी नहीं है, आपको मेरी मदद के लिए मिल में आना ही पड़ेगा। मैंने

पूरी जानकारी ले ली है, एक हफ्ते के काम से अनुभव भी हो गया, आपके फाइल, रजिस्टर देखे, लोगों से सुना भी, आपको ले जाने के लिए ही आया हूँ। आप के सहारे के बिना मिल नहीं चला सकूँगा। आप मिल भी संभालो, प्रेस भी संभालो और गुरुजी का काम भी करते रहो। एक बार मिल ठीक से चलने लगे, फिर आप को परेशान नहीं करूँगा। दो-चार वर्ष मुझे साथ देना ही पड़ेगा। आप मुंगेर या कहीं भी जाते रहना। अब तो बैठ गया हूँ, साथ चलोगे तभी यहाँ से उठूँगा।

सत्यव्रत जी उसके साथ गये। सब काम व्यवस्थित किया, पुराने लोगों से सम्पर्क किया, बाहर के पुराने व्यापारियों से पत्र-व्यवहार हुआ और काम बहुत अच्छा चलने लगा। सत्यव्रत जी क्वार्टर में आ गये, हम प्रेस में रहते थे। प्रेस का काम भी अच्छा चलने लगा, एक लड़का अनिल राय अनुभवी मिल गया, उसने पूरा काम संभाल लिया।

इसी तरह मिल का काम, प्रेस का काम, संस्था का काम, बाहर जाने का काम, सभी समयानुसार चलता रहता था। निरंजन जी को मुंगेर जाने की धुन हमेशा रहती। 1964 में आश्रम बनने के बाद से कभी सत्यव्रत जी के साथ, कभी धर्मशक्ति के साथ, कभी वे तीनों ही मुंगेर जाते, कुछ दिन रहते, इसी तरह क्रम चलता रहा, समय बीतता रहा।

वसन्त पंचमी 1967 में मीटिंग के लिए सत्यव्रत जी मुंगेर गये, उन्होंने आने के बाद कहा, 3 वर्ष काम किया, अब नौकरी छोड़नी है। राजाराम गुप्ता ने बहुत विरोध किया। सत्यव्रत जी ने कहा, मैं तो यहीं रहूँगा, जरूरत पड़ने पर आपका काम करूँगा ही व समय-समय पर आपसे मदद भी लूँगा। पर अब मुझे छोड़ दें। मेरा हिसाब भी कर दें। प्रभु की महान् कृपा हुई, अप्रैल में नौकरी छोड़ी, 15 दिन में हिसाब भी हो गया और मई माह में क्वार्टर छोड़कर शहर में रहने आ गये। गुप्ता जी ने बहुत कहा, क्वार्टर मत छोड़ो, एक-दो वर्ष यहीं रहो। यहाँ पर कई लोग हैं, जिन्होंने आठ-दस वर्ष से नौकरी छोड़ दी है, क्वार्टर नहीं छोड़ रहे हैं, आपको इतनी जल्दी क्यों पड़ी है। किन्तु, अपना सम्बन्ध अच्छा बना रहा, जब भी कहते मुंगेर जा रहा हूँ, तो गुप्ता कहते, स्वामीजी के लिए मसहरी-चादर ले जाओ। बहुत मदद करता था, मानता भी बहुत था। श्री स्वामीजी से मिलने मई में रायगढ़ भी आया था।

गोंदिया सम्मेलन में काम करने सितम्बर में मुंगेर से कृष्णानन्द व प्रार्थनानन्द आये। स्वामीजी के आदेश से अक्टूबर में सत्यव्रत जी गोंदिया

गये, प्रार्थनानन्द को मुंगेर भेज दिया। हर सम्मेलन में लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। इस समय ज्यादा संत-महात्माओं के आने की बात थी।

गोंदिया आश्रम के लिए 25 एकड़ जमीन मिली थी। योजना थी यह आश्रम 'शिवानन्द पब्लिक स्कूल' 'किन्डर गार्टेन' के रूप में चलेगा। खेती, सब्जी, फल, फूल की भी योजना थी। फॉरेस्ट ऑफिसर थे मि. पटवर्द्धन, उनके विशेष प्रयत्न व सबके सहयोग से आश्रम का निर्माण हुआ था। आश्रम शहर से दो किलोमीटर दूर कुड़वा रोड में था। सम्मेलन के लिए शहर के मध्य हाई स्कूल के प्रांगण में पण्डाल बना था। चारों तरफ स्कूल बिल्डिंग में सभी के रहने की व्यवस्था थी।

स्मृति ग्रंथ छपा, 'टेमिंग द कुण्डलिनी'। सत्यव्रत जी तो गोंदिया में थे ही, रायपुर से अन्नपूर्णा आई थी, धर्मशक्ति व निरंजन जी भी आए थे। इन तीनों के 29 तारीख को श्री स्वामीजी के साथ गोंदिया जाने की बात हुई थी।

29 अक्टूबर को मेल से 11 बजे पहुँचने वाले थे स्वामीजी, 3 बोगी रिजर्व थी, उनके साथ 9 माह की ट्रेनिंग वाले 90 शिक्षार्थी थे और मुंगेर के भक्त-शिष्य थे। भागलपुर, छपरा, पटना वाले भी थे। सभी स्टेशनों में गाड़ी 5–10 मिनट की जगह 20–25 मिनट रुकती थी। श्री स्वामीजी 4 वर्ष बाद आ रहे हैं, हर स्टेशन में लोग हजारों की तादाद में आते थे, फल, फूल, चाय, प्रसाद भी इतना होता कि पूरे स्टेशन के लोगों को बँटता था।

हर स्टेशन पर लगता कि स्टेशन के कैण्टीन वाले चाय व बिस्कुट लुटा रहे हैं। गोंदिया आने वाले उसी ट्रेन से आ रहे थे। गाड़ी कोई रोकता नहीं था, स्टेशन अधिकारी स्वयं 20–25 मिनट रोकते थे। इस तरह गाड़ी एक बजे नन्दग्राम पहुँची, 3 घण्टे लेट। भीड़ देखकर श्री स्वामीजी प्लेटफार्म पर आ गये। धर्मशक्ति, निरंजन जी व अन्नपूर्णा को लेकर गाड़ी में चढ़ गई। फूल-माला, चाय-नाश्ता की बाढ़ सी आ गई थी। प्लेटफार्म में इतनी भीड़ कि लोगों का संभालना मुश्किल हो रहा था। तीन मिनट रुकने वाली गाड़ी तीस मिनट रुकी। डेढ़ बजे गाड़ी छूटी तो डोंगरगढ़ रुकी, फिर गोंदिया चार बजे पहुँची। गोंदिया में इतनी भीड़ कि स्वयंसेवक किसी तरह एक घंटे बाद सबको स्टेशन से बाहर ला सके थे।

इस सम्मेलन में अनेक सन्त-महापुरुष आये–द्वारिकापीठ के जगत्गुरु श्री सच्चिदानन्द महाराज; 156 वर्षीय बाबा सीताराम दास, 'मण्डला'; स्वामी चिदानन्द; स्वामी करुणानन्द, ऋषिकेश; स्वामी मनुवर्य, अहमदाबाद;

स्वामी आत्मानन्द, रायपुर; स्वामी शरणानन्द, वृन्दावन; स्वामी पूर्णानन्द, केरल; स्वामी शिवानन्द, आसाम; स्वामी निर्मलानन्द, ऑस्ट्रेलिया; श्री मुरार जी देसाई; श्री बाबा साहब भारदे; बसन्त राव नाईक, मुख्यमंत्री; एन. डी. चौधरी, शिक्षा मंत्री महाराष्ट्र; स्वामी कर्मानन्द 'डेसब्हाई'; डॉ. ताज्जुक पासेक, पोलैंड; डॉ. आर. पोल्डरमन, योग थेरापिस्ट, हॉलैंड; डॉ. एम. डी. जाफेट, श्री ए. इ. विकरामा, सिंधी सीलोन; श्रीमती सुले हडसन, 'अध्यक्ष योग संस्थान अलवुर्कक'; योगिनी, न्यूमेक्सिको; श्री. के.एस.केन्धे,पूना; श्री के. एस जोशी 'सागर'; विद्या माता 'पेरिस'; स्वामी दयानन्द, पेरिस; ऋषिजी महाराज, पेरिस; काका साहेब केलकर, नई दिल्ली; सविता बेन मेहता, पोरबन्दर; श्री अशोक मेहता, नागपुर।

सम्मेलन का मुख्य विषय था, 'शिक्षा के क्षेत्र में योग के समावेश की योजना'। उद्घाटन श्री शंकराचार्य जी ने किया। श्री स्वामीजी पूरे प्रोग्राम में रहते थे। सुबह से शाम तक 4 सत्र होते। भजन-कीर्तन, आसन प्रदर्शन, प्रवचन, शाम 6.30 से श्रीमती शकुन्तला गोस्वामी का राम-कृष्ण पर प्रवचन होता था। रोज बिहार योग विद्यालय का चलचित्र भी दिखाया जाता था।

2 नवम्बर को प्रातः 3 बजे 9 माह के योग शिक्षक प्रशिक्षण वाली 3 महिलाओं की संन्यास दीक्षा थी। श्री स्वामीजी ने सत्यव्रत जी से कहा, 'आपको भी संन्यास लेना है।' सत्यव्रत जी ने कहा, जो देना है सब स्वीकार है, 'सर माथे तेरा वरदान'।

इस प्रकार दिवाली को प्रातः चार लोगों की संन्यास दीक्षा हुई– 1. स्वामी देवात्मानन्द सरस्वती, 2. स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती, 3. स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती और 4. स्वामी विवेकानन्द सरस्वती।

2 नवम्बर को दिन में नियमित प्रोग्राम, सत्संग, प्रवचन होता रहा। शाम को चारों तरफ दीये की रोशनी व फटाके छूटे, आतिशबाजी की बहार आई थी। चारों नये संन्यासियों का नागरिक अभिनन्दन हुआ। श्री शंकराचार्य और श्री स्वामीजी का आशीर्वचन हुआ।

7 दिन के सम्मेलन में सभी वक्ताओं ने शिक्षा के क्षेत्र में योग के समावेश की योजना पर अपने विचार व्यक्त किए। कई सन्त-महात्मा भी आये थे, उनके भी प्रवचन हुए। इस प्रकार सात दिन तक निरन्तर योग गंगा बहती रही। छः नवम्बर को श्री स्वामीजी का नागरिक अभिनन्दन हुआ, सात की

रात को समापन समारोह हुआ। आठ नवम्बर को सभी अपने रास्ते चले गये। श्री स्वामीजी अपने शिष्यों, भक्तों व शिक्षार्थी शिष्यों के साथ मुंगेर के लिए रवाना हुए। स्वामी सत्यव्रत को आदेश हुआ, 'आप नन्दग्राम में रहेंगे, प्रेस-पुस्तक व सभी काम जैसे करते आये हैं, करना है।'

1968 की गतिविधियाँ

1 से 3 जनवरी 1968 तक पटना कॉलेज में तीन दिन का 'योग सम्मेलन' हुआ, इस सम्मेलन का संचालन श्री स्वामीजी ने किया।

गोंदिया आश्रम पूरा हो गया था। उन लोगों ने 12 फरवरी को आश्रम समर्पण करने श्री स्वामीजी को बुलाया था। उधर से ही नागपुर में एक दिन का प्रोग्राम, बम्बई में एक हफ्ते का सम्मेलन, फिर मुजफ्फरपुर में एक हफ्ते का सम्मेलन तय हुआ था। श्री स्वामीजी का पत्र मिला–'धर्मशक्ति को साथ में चलना है। गोंदिया से नागपुर, बम्बई, मुजफ्फरपुर के बाद मुंगेर में कुछ दिन रहेगी।'

श्री स्वामीजी ने निरंजन के लिए अलग से एक पत्र लिखा, 'निरंजन, तुमको अक्षर ज्ञान के लिए भेजा था, अब तो तुमको अक्षर ज्ञान हो गया। तुम पत्र भी लिखते हो। बहुत बढ़िया पत्र रहता है तुम्हारा। सब देख कर खुश होते हैं। अब तुमको निर्णय करना है कहाँ रहोगे।'

और निरंजन ने तुरन्त निर्णय ले लिया, हम लोगों को तो कुछ कहना था नहीं, जैसी श्री स्वामीजी की इच्छा हो। निरंजन ने कहा, 'मुझे जाना है स्वामीजी के पास', स्कूल जाकर मास्टर साहब से कहा–'मैं मुंगेर जा रहा हूँ, मेरा नाम काट दीजिए।'

सभी मास्टर परेशान हो गये, बहुत समझाया, दो माह के बाद जाना, मार्च में परीक्षा है, घर में भी आकर समझाया ...। निरंजन से स्कूल का नाम हो रहा था। पाँच वर्ष की अवस्था में दूसरी कक्षा में पहला नंबर, छः वर्ष में तीसरी कक्षा में पहला नंबर आने वाला, कक्षा का मॉनिटर, हर काम में आगे रहने वाला, मास्टरों को सलाह व सहयोग देने वाला बालक, दो माह बाद चौथी कक्षा से पहला नम्बर लेकर निकले तो स्कूल की ख्याति बढ़ेगी, पर होनी भी तो प्रबल है।

श्री स्वामीजी नौ माह के प्रशिक्षण सत्र के प्रतिभागियों तथा मुंगेर के ही 15-20 भक्तों व शिष्यों के साथ 12 तारीख की शाम को 4 बजे गोंदिया पहुँचे। नन्दग्राम से निरंजन जी व धर्मशक्ति साथ आये थे। सत्यव्रत जी 14 तारीख को

पुस्तक-पत्रिकायें लेकर नागपुर में मिलेंगे, साथ में बम्बई भी चलेंगे। गोंदिया वालों ने सत्संग-सभा की पूरी तैयारी कर ली थी।

गोंदिया पहुँचे, स्नान-भोजन, कुछ आराम के बाद समारोह शुरू हुआ। उस समय 'शिवानन्द कल्चरल एजुकेशन सोसाइटी' के मंत्री श्री महादेव ढोटे ने विद्यालय, 'आश्रम' के पूरे कागजात व चाभियाँ श्री स्वामीजी को सौंपी, और प्रवचन के बाद वहीं पर श्री स्वामीजी ने फाइल, चाभी और उस आश्रम की पूरी जिम्मेदारी स्वामी योगशक्ति को सौंप दी, व 'शिवानन्द पब्लिक स्कूल' की पूरी रूप-रेखा सबको समझाई। उन्होंने कहा, हमें बहुत काम करना है, हम तो एक जगह रह नहीं सकते, हमारे शिष्य रहकर सब काम करेंगे, आप लोग सहयोग देते रहेंगे। आप लोगों के सहयोग से स्कूल, खेती, बागवानी, सब काम अच्छा चलेगा, हम समय-समय पर आते रहेंगे।

फार्म, पर्चे, नियमावली, सब कुछ बता कर, एक इन्चार्ज व चार सहयोगी संन्यासियों को वहाँ का सब काम समझाकर, शहर के ही कार्यकर्त्ता मेम्बरों की मीटिंग कराकर, 13 तारीख की रात की ट्रेन से नागपुर के लिए रवाना हो गये।

14 तारीख की सुबह नागपुर पहुँचे, ठहरने की व्यवस्था शक्ति ऑफसेट में थी। दिन में 3–4 जगह प्रोग्राम व भोजन रहा, प्रोग्राम दिनभर चलता रहा। श्री स्वामीजी ने सभी लोगों को म्यूजियम, कम्पनी गार्डन और अजायबघर देखने भेजा। शाम को भोजन के बाद राम मंदिर के प्रांगण में प्रोग्राम करके स्टेशन गये और बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

15 तारीख की शाम को बम्बई पहुँचे। समुद्र के किनारे, सुन्दर महल में रहने की व्यवस्था थी। सुन्दर महल सात मंजिला भवन है, ऊपर सब तरफ ऑफिस, होटल वगैरह था, निचली मंजिल को लोग प्रोग्राम, सभा, शादी या कुछ अन्य काम के लिए ले लेते थे। वहाँ कई छोटे-बड़े कमरे थे, रसोई, स्टोर, डायनिंग हॉल व बहुत बड़ा आँगन था। और सम्मेलन स्थल का पण्डाल रेस कोर्स के बड़े से मैदान में बना था।

छः दिन के सम्मेलन में बहुत से संत-महात्मा आये। उपराष्ट्रपति श्री वी. वी.गिरी, मुरारजी देसाई तथा कई सत्ताधारी नेतागण भी आये। बम्बई जैसी विशाल औद्योगिक नगरी में, विशाल सम्मेलन, वहाँ जन-समूह तो विशाल समुद्र जैसे उमड़ रहा था। वहाँ के लोगों ने आश्रम की इच्छा व्यक्त की। सोमैया बिल्डिंग ट्रस्ट (घाट कोपर) में जगह भी मिली और 22 फरवरी 1968

को महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री पी.वी. चेरियन द्वारा 'बम्बई योग विद्यालय' का शिलान्यास किया गया। इस अवसर पर श्री मुरारजी देसाई व सविता बेन 'पोरबन्दर' का प्रवचन-भाषण हुआ।

23 फरवरी को श्री स्वामीजी एक दिन के लिए पोरबन्दर गये। वहाँ से आने पर सबको साथ लेकर 24 को रवाना हुए। सत्यव्रत जी वापस नन्दग्राम गये। श्री स्वामीजी 25 की दोपहर को मोकामा पहुँचे। स्टेशन में एक कार और एक बस आई थी। सब लोग 4 बजे मुजफ्फरपुर पहुँचे। वहाँ सती रानी के मंदिर के प्रांगण में ही बहुत बड़ी धर्मशाला है, रहने व भोजन की व्यवस्था वहीं थी।

25 फरवरी की शाम को ही उद्घाटन था। रेस कोर्स मैदान में पण्डाल बना था। तैयारी पूरी हो चुकी थी। शाम को भजन-कीर्तन-प्रवचन हुआ। 26 को प्रात: 4 बजे से नियमित कार्यक्रम चला, 7 दिन का प्रोग्राम बहुत अच्छा रहा। भजन-कीर्तन, सत्संग-प्रवचन, मंत्र दीक्षा, मिलना-जुलना।

3 मार्च की सुबह कार व बस से मुंगेर के लिए रवाना हुए। दोपहर में रास्ते में मिश्राजी के फार्म में भोजन का इन्तजाम था। वहाँ रुके, भोजन व आराम करके एक घण्टे में फिर रवाना हुए तो तीन बजे तक मुंगेर आश्रम आ गये।

9 माह के योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र के प्रतिभागियों की ट्रेनिंग भी पूरी हो गई थी। उन लोगों को कठिन साधना के मध्य गोंदिया सम्मेलन में ले गये थे। वहाँ से आकर फिर उनकी साधना चलती रही। कोर्स पूरा होने पर उन्हें एक माह तक भारत-भ्रमण व सम्मेलन में शामिल होकर विशेष खुशी व अनुभूति हुई। भारत देखने व सत्संग करने का अवसर मिला। देखा, सुना, समझा, सब बड़े प्रसन्न थे, सभी जगह आदर-मान पाकर प्रसन्न होते रहे।

श्री स्वामीजी का प्रथम विदेश यात्रा का प्रोग्राम बना। 27 अप्रैल को प्रस्थान करना है। विदेश यात्रा के पहले गुरु स्थान में जाना है, समाधि-दर्शन, प्रणाम व गुरु जी से आदेश व आशीर्वाद लेना है। उन्होंने ऋषिकेश जाने का निश्चय किया। यह भी तय किया कि 31 मार्च को संध्या के समय योग चेतना का अवतरण दिवस मनायेंगे। एक अप्रैल को ऋषिकेश के लिए प्रस्थान करेंगे। 19-20-21 अप्रैल को विश्व योग सेमिनार करेंगे। उपराष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरी ने आने की स्वीकृति दे दी है। सब प्रोग्राम तय हो गया, तैयारी भी।

31 मार्च को 'योग चेतना का अवतरण दिवस' पर कार्ड बँटे, विशेष सत्संग हुआ। एक अप्रैल को दिल्ली के लिए रवाना हुए, 9 माह के प्रशिक्षण सत्र के सभी शिक्षार्थियों के अलावा मुंगेर के 15-16 भक्त भी गये। श्री

स्वामीजी के साथ निरंजन तो गये ही, धर्मशक्ति भी गई। दो अप्रैल को रामनवमी के दिन दिल्ली पहुँचे।

श्री मनोहर लाल गुप्ता स्टेशन आये। कमला नगर में उनके घर में रहने की व्यवस्था थी। वहाँ तीन दिन रहे। उन्होंने सभी ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थान घुमाये-दिखाये। श्री स्वामीजी त्रिमूर्ति भवन गये, श्रीमती इंदिरा गाँधी से मिले। उन्होंने श्री स्वामीजी से काफी देर बातें कीं। श्री यशवंत राव चौहान के यहाँ भी गये, वे भी श्री स्वामीजी से बहुत देर तक बातें करते रहे। दिल्ली में कई जगह प्रोग्राम भी हुआ।

5 अप्रैल की सुबह रवाना होकर शाम को ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ पहले आने की सूचना भेज दी थी। आश्रम से दो स्वामी बस स्टैण्ड आये थे, बस से सबको मुनि की रेती, 'शिवानन्द आश्रम' ले गये। करीब 75-80 लोग थे, सबकी व्यवस्था आश्रम में ही की गयी। स्वामी सत्यानन्द जी का विशेष स्वागत किया गया। सबको घुमाया, पूरा आश्रम दिखाया, प्रेस, विश्वनाथ मंदिर, समाधि मंदिर, गुरुदेव की कुटिया, अन्नपूर्णा-भवन, अखण्ड कीर्तन हॉल, अस्पताल, पुस्तकालय, सब कुछ दिखाया, बताया, घुमाया। रात को अखण्ड कीर्तन हॉल में भजन, कीर्तन, सत्संग-प्रवचन हुआ।

दूसरे दिन स्वामी सत्यानन्द जी ने सबसे कहा, सब तरफ घूमो, देखो, गीता भवन या कहीं भी जाओ, पर भोजन के समय वापस जरूर आ जाना। विदेशियों को सब कुछ समझा दिया, कहाँ कैसे जाना है, कब जाना है। छः-सात देशी माताएँ और भक्त भी थे, उनसे कहा, धर्मशक्ति कई बार आ चुकी है, उसे सब कुछ मालूम है। उसके साथ घूमना। तय कर लो कब किधर जाना है। सुबह गंगा स्नान, समाधि मंदिर, प्रेस, गीता भवन जाते, दोपहर भोजन के बाद, लक्ष्मण झूला व पूरा ऋषिकेश घूमते। सभी मंदिर देखते, 5 बजे के पहले आश्रम आते, भोजन के बाद सत्संग होता। धर्मशक्ति व निरंजन समाधि मंदिर में गंगा किनारे, स्वामी शिवानन्द जी की कुटिया की तरफ बैठते, तो घण्टों बैठे रहते थे, वहीं पर इन दोनों को उनकी ज्योति के दर्शन भी हुए थे।

श्री स्वामीजी गुरु जी की समाधि, कुटिया, गंगा किनारे व सभी जगह घूमते, सबसे मिलते, जंगल, नदी, पहाड़, सबके पास गये, सबसे मिले। गुरुदेव का आशीष व आदेश मिला। शुभकामना प्राप्त हुई। तीसरे दिन शाम का सत्संग विशेष हुआ। श्री स्वामीजी के प्रवचन हुए। उनके गुरु भाइयों के प्रवचन हुए। पुस्तकों की पेटी व फलों का पिटारा मिला उपहार में। विशेष

प्रसाद बाँटा गया। चौथे दिन सुबह रवाना होकर दिल्ली आये, वहाँ से दूसरे दिन मुंगेर आ गये।

19–20–21 अप्रैल 1968 को मुंगेर में अन्तर्राष्ट्रीय योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र का दीक्षान्त समारोह हुआ। देश-विदेश से आये योग के शिक्षार्थियों को प्रमाण पत्र और पुस्तकें देकर, प्रशिक्षण की पूर्णाहुति की चर्चा करते हुए श्री स्वामीजी ने बताया कि योग-शिशु इस मातृवत् योग विद्यालय के गर्भ में नौ महीने तक पलते रहे और अब उन्हें लोकहित के महायज्ञ में नियोजित करने की बेला आ पहुँची है। इस प्रसव बेला के शुभ अवसर पर उन्होंने कामना की कि योग के लव-कुश भौतिकता के उन्मत्त अश्व की लगाम थामने में समर्थ सिद्ध हों। जगह-जगह से आये संत-महात्माओं के प्रवचन हुए। शिक्षार्थियों ने अपने अनुभव बताये। गुरुदेव का अभिनन्दन किया। भारत के ऋषि-मुनियों व माँ गंगा के प्रति अपने भाव प्रकट किए। गुरुदेव के प्रति बार-बार आभार व्यक्त किया।

अंतिम दिन का अध्यक्षीय भाषण तथा समापन बिहार के मुख्य मंत्री, श्री भोला पासवान ने किया।

22 अप्रैल 1968 को उन सबको आशीर्वाद देकर, विभिन्न देशों में योग-प्रचार के हेतु शिक्षार्थी शिष्यों को विदा किया।

नन्दग्राम से स्वामी सत्यव्रत 17 अप्रैल को आये। सभी जगहों से लोग आये थे। सब काम पूरा हो जाने के बाद, रायगढ़ वालों ने अनुरोध किया कि इस वर्ष 1 से 7 नवम्बर तक होने वाला 'पंचम अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन' रायगढ़ में करने की अनुमति दें तो हम लोग तैयारी शुरू करेंगे। श्री स्वामीजी ने कहा, 'ठीक है, तैयारी शुरू कर दो। शारदापीठ के शंकराचार्य को बुलाना है, सबको पत्र भेजना शुरू कर दो। योग विद्या, योगा में समाचार देना शुरू करो। यहाँ से अगस्त में स्वामी योगेश्वरानन्द आयेंगी, सब काम संभालेंगी। सत्यव्रत जी से सलाह लेते रहना, फार्म, पम्पलेट, पुस्तकें वहीं से छपेंगी। बाद में यहाँ से और स्वामी आयेंगे, हम भी विदेश से आकर 2-3 दिन पहले आ जायेंगे। आशीर्वाद सहित पते की फाइल लेकर वे लोग चले गये।

स्वामी सत्यव्रत का अनुरोध था कि निरंजन को हम लोग साथ में ले जाते हैं। गुरु पूर्णिमा में लेकर आऊँगा तो छोड़ जाऊँगा यहाँ। श्री स्वामीजी का आदेश पाकर 24 तारीख को सब साथ ही कलकत्ता गये। 25 को श्री स्वामीजी हवाई जहाज से बम्बई गये। 26 को बम्बई से फ्लाइट थी

उनकी। 25 को स्वामी सत्यव्रत, निरंजन जी और धर्मशक्ति नन्दग्राम के लिए रवाना हुए।

प्रथम विश्व यात्रा

26 अप्रैल 1968 को विश्व योग आन्दोलन के प्रवर्तक स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने प्रथम विश्व-भ्रमण के निमित्त बम्बई से प्रस्थान किया। 747 बोइंग साढ़े ग्यारह बजे पूर्वाह्न कुआलालम्पुर (मलाया) की ओर चल पड़ा। वायुयान गैरिक रंग में सजा था व उसकी दीवारों पर अजन्ता की कला-कृतियाँ थीं। लगा श्री स्वामीजी बादलों की गोद में सिर रखकर शून्य गगन के शान्त वातावरण और मुक्त वायुमण्डल में विचर रहे हैं।

श्री स्वामीजी कुआलालम्पुर पहुँचे। वहाँ उनके गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी का पूर्वाश्रम है, वहीं वे डॉक्टर थे। रात्रि के नौ बजे श्री स्वामीजी का यान सिंगापुर की धरती पर उतरा। पहले पत्रकारों ने घेरा, फिर उनका नागरिक अभिनन्दन हुआ। 27 अप्रैल को सत्संग हुआ और जगह-जगह व हर संस्था में स्वागत हुआ। यहाँ के लोग स्वामी शिवानन्द जी को अच्छी तरह जानते हैं। उनके प्रति बुद्धिजीवियों में अपार आदर है।

3 मई को श्री स्वामीजी हांगकांग के लिए रवाना हुए। हांगकांग हवाई अड्डे पर पहुँचते ही पत्रकारों ने घेर लिया, अभिवादन के बाद अनेक प्रश्न पूछे। हांगकांग से सिडनी (ऑस्ट्रेलिया), टोकियो, होनोलूलू, फिर सेन फ्रांसिस्को पहुँचे। सिडनी में 7 दिन रहे, वहाँ पर 16 बार टेलिविजन-वार्ता हुई। जगह-जगह प्रोग्राम हुए। जापान, कनाडा, अमेरिका की यात्रा क्रम में श्री स्वामीजी वैन्कूवर, सेन फ्रांसिस्को, लॉस एंजिल्स, शिकागो, टोरन्टो गये।

श्री स्वामीजी दूसरी बार लंदन पहुँचे। अनेक यूरोपीय देशों का भ्रमण करते हुये आये थे। लंदन में 11 दिन रहे। दिन-रात प्रोग्राम होता रहा। एक मिनट भी आराम नहीं, भोजन के समय भी लगता इन्टरव्यू हो रहा है। वहाँ के गिरजाघर में उनके प्रवचन का आयोजन हुआ। भारतीय संन्यासी, भारतीय ड्रेस में गये थे, केवल एक धोती पहने, एक धोती ओढ़े हुए, आश्चर्यजनक घटना हुई, पर उन लोगों को भारतीय परम्परा को मानना पड़ा।

श्री स्वामीजी ने फ्रान्स से गुरु-पूर्णिमा सन्देश भेजा। नार्वे, फिनलैण्ड, हॉलैण्ड, ब्रूसेल्स, एम्सटरडम, ओसलो, कोपेन-हेगेन, हमवर्ग, एम्टगर्ट,

फ्रैंकफर्ट, वॉसेल, जिनेवा, जूरिक, प्रेग, वियाना में प्रोग्राम हुए। पाँच माह तक पश्चिम देशों में भ्रमण करके, योग का शंख बजा कर 17 सितम्बर को भारत वापस आये।

17 सितम्बर को दिल्ली पहुँचे। पोरबंदर, अहमदाबाद, जयपुर, खामगाँव, अमरावती, नागपुर, सभी जगह एक-एक दिन रहे। गोंदिया और नन्दग्राम में तीन-तीन दिन रहे। भिलाई, रायपुर, बिलासपुर, कटक, भुवनेश्वर, कलकत्ता में एक-एक दिन रहे। सभी जगह उनका स्वागत-अभिनन्दन हुआ।

25 अक्टूबर को श्री स्वामीजी मुंगेर पहुँचे। दो दिन मुंगेर में रहकर, निरंजन जी को लेकर 27 अक्टूबर को रवाना होकर 29 की सुबह रायगढ़ पहुँचे। कुछ स्वामी व वहाँ के भक्त, शिष्य 30 को रायगढ़ पहुँचे।

पंचम अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, रायगढ़

रायगढ़ में पंचम अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन के अवसर पर, श्री स्वामीजी की जो हिन्दी पुस्तकें पहले छपीं थी, उन्हीं को रायगढ़ वालों ने दुबारा छपवाया था, वह सब लेकर प्रेस के दो नौकरों के साथ धर्मशक्ति व स्वामी सत्यव्रत भी 29 को रायगढ़ पहुँचे।

जितने संत-महात्मा व नेतागण हर वर्ष आते थे, वे सभी इस समय भी आये थे। द्वारिका के जगद्गुरु अभिनव सच्चिदानन्द आये और श्री स्वामीजी के गुरुभाई न्यूयार्क के स्वामी सच्चिदानन्द जी भी आये थे।

श्री शंकराचार्य जी ने 'पंचम अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन' का उद्घाटन किया। श्री स्वामीजी ने संचालन किया। भजन, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग नियमित चलता रहा। इस सम्मेलन का विषय था, 'शिक्षा और योग'। इस सम्मेलन में संत-महात्माओं के प्रवचन हुए। पचास प्रमुख महात्माओं ने अपने विचार व्यक्त किये। श्रीमती शकुन्तला गोस्वामी का रामायण, भागवत पर सुन्दर, भावपूर्ण प्रवचन हुआ। सातवें दिन न्यूयार्क के स्वामी सच्चिदानन्द जी ने समापन किया। इस तरह सम्मेलन पूर्ण हुआ।

श्री स्वामीजी अपने भक्तों और शिष्यों के साथ 8 नवम्बर को रवाना होकर 9 को कलकत्ता और 10 को मुंगेर पहुँचे। 20 नवम्बर से 3 माह का शिक्षक प्रशिक्षण सत्र शुरू होने वाला था। श्री स्वामीजी के साथ धर्मशक्ति भी 3 महीने के लिए मुंगेर गई।

आश्रम का विस्तार

पहले आश्रम में ज्यादा कमरे नहीं थे। लोग आने लगे, जगह कम पड़ने लगी। 1965 में योग निद्रा विहार बना। 1966 में उसी के बगल में ओझी बना, बड़ा कमरा लाइब्रेरी के लिए। इसके बगल में एक कमरा बना, उसके नीचे एक कमरा बना 'अंडर ग्राउन्ड' साधना के लिए। उसके सामने घास-फूस की एक कुटिया थी, क्रिया योग की दीक्षा उसमें ही देते थे। धर्मशक्ति ने भी 1965 जुलाई में क्रिया योग की दीक्षा वहीं पर ली थी। वह उसे रोज गोबर से लीपती थी, चित्र में देखी ऋषियों की कुटिया सी लगती थी। घास का कमरा, चारों तरफ अंगूर की बेल फैली थी। 1967 में उसी जगह पर दो कमरे का ऑफिस बन गया। नौ महीने का शिक्षक प्रशिक्षण चला, कभी कुछ लोग आ जाते तो धर्मशाला में रहते थे। कभी-कभी सब शिक्षार्थियों को लेकर आनन्द भवन में भी रहते थे।

अब लोगों का आना बढ़ने लगा। विदेश से बहुत लोग योग शिक्षक प्रशिक्षण के लिए आने की इच्छा प्रकट करने लगे, तो गोयनका जी से सलाह लेकर आश्रम के बगल में ही तीन मंजिला बिल्डिंग बनाने का काम जुलाई में शुरू हुआ, और अक्टूबर में बिल्डिंग बनकर तैयार भी हो गयी। इस बिल्डिंग में 150 शिक्षार्थी रह सकेंगे, वैसे तो 200 भी रह सकते है। प्रोग्राम के समय तो 250 लोग भी रह सकेंगे।

जब श्री स्वामीजी विदेश में थे तब लोगों के अनुरोध पर, तीन महीने की ट्रेनिंग 20 नवम्बर से होने की बात तय हो गई। 125 लोगों ने फार्म भी भेज दिया था। कुछ लोग तो रायगढ़ सम्मेलन में आ चुके थे, वे लोग सम्मेलन के बाद, श्री स्वामीजी के साथ ही मुंगेर आ गये।

20 नवम्बर 1968 से शुरू होने वाले सत्र में 125 शिक्षार्थी विदेश से आये, 25–30 भारत से आये। सबके रहने की व्यवस्था नई बिल्डिंग में हुई थी। यह शिक्षण सत्र अँग्रेजी में चला। 20 नवम्बर से शुरू होकर 20 फरवरी तक शिक्षा सत्र चला। तीन महीने के सत्र में उन्हें योग के विभिन्न विषयों का प्रशिक्षण दिया, बताया, समझाया, सिखाया। योग के बारे में पूरी जानकारी देकर, उनकी शंकाओं का समाधान करा कर, 20 फरवरी को विशेष सम्मेलन करके, प्रवचन-सत्संग करके, उन्हें प्रमाण-पत्र दिया गया। ये सब श्री स्वामीजी का अभिनन्दन करके, योग के प्रचार-प्रसार का संकल्प लेकर, फिर से भारत व मुंगेर आने की इच्छा व्यक्त कर, भविष्य में योग

साधना के लिए आने की इच्छा व्यक्त कर अपने-अपने स्थान को गये। एक बार श्री स्वामीजी ने कहा था, "मैं किसी योग या दर्शन पर कतई यकीन नहीं करता, मनुष्य को तो उस 'सत्य' की गवेषणा करनी है जिसके अनन्तर सब असत्य के अस्तित्व में क्षीणता आ जाये।

मैं जो कुछ करता हूँ, गुरुदेव के मन्तव्य की अभिपूर्ति के लिए ही, कुछ अपनी सकाम निष्ठा से नहीं। इसीलिए एक दिन किसी के ऊपर सूर्य की तरह प्रचण्ड किरणें बरसानी पड़ती हैं और दूसरे दिन किसी पर स्निग्ध चन्द्रमा के सदृश पेश आना पड़ता है। और एक दिन किसी के चरण स्पर्श करते हुए यदि मुझे हर्ष है तो दूसरे दिन किसी के अन्दर टेढ़ी ऊँगली डालते हुए भी मैं अपने को निर्दोष समझता हूँ।

निन्दक प्रवृत्ति एक नारी-सुलभ दुर्बलता है, कम-से-कम मैं तो इसे नहीं चाहता।

गुरु-परिचर्या का अर्थ यह नहीं कि वर्षगाँठ के दिनों में उनका उच्छिष्ट भोजन खाकर, बगुला भगत की तरह दिखलाई पड़ें। मन, वचन और काया को उनके निमित्त भेंट कर देना ही सच्ची सेवा है।

गुरुदेव का हृदय प्रेम का आवसव्य है। इसलिए वे दूसरों के हृदय पर आघात नहीं करेंगे। चाहे कोई लाखों गलतियाँ क्यों न करे।"

1969 की गतिविधियाँ

1969 फरवरी में बसन्त पंचमी को बिहार योग विद्यालय का 'स्थापना दिवस' मनाया गया। तीन दिन भजन, कीर्तन, सत्संग, रामायण पाठ हुआ।

1 मार्च 1969 से श्री स्वामीजी ने सात शिष्यों के साथ 'मधु-संचय' के लिए भारत भ्रमण शुरू किया। असंख्य रंग-बिरंगे फूलों से मधु-संचय होता है, उपयोग में आता है–यज्ञ में, भगवान के नैवेद्य में, पंचामृत में, पकवान में, बीमारी में, नेत्र-ज्योति वर्द्धन में, नवजात शिशु के जीवन रक्षण में–मधु के गुण व शक्ति अपरिमित है। मधुमक्खियाँ संत हैं, कोमल व छोटा-सा शरीर उनका, फूलों का रस चूसना और छत्ते में जमा करना, फिर पुनरावृत्ति के लिए उड़ जाना, यह उनकी दिनचर्या ही नहीं, जीवन चर्या है और साधना भी।

थोड़ा अथवा ज्यादा मात्रा में हर फूल में रस होता है, पर पुष्प उसे स्वयं निकाल कर नहीं दे सकता। मधुमक्खियाँ चूस कर लेती हैं और मधु बनाती हैं। मधु से हृदय भरा है, पर संचय विद्या किसे आती है? मधु से जग को उपकृत

करने के लिए जीवन अर्पण की चाह किसे है? कितना दुरूह और विकट कार्य है। यह कार्य वही करेगा जो निष्पाप, निर्भीक, अध्यवसायी, कर्मयोगी और प्रज्ञावान् होगा। इसी उद्‌देश्य से श्री स्वामीजी का भारत भ्रमण शुरू हुआ। दो, तीन, चार दिन का शिविर हर जगह करने की उनके भक्तों-शिष्यों ने योजना बनायी।

श्री स्वामीजी सात शिष्यों के साथ मुंगेर से भागलपुर, पटना, मुजफ्फरपुर, धनबाद, कलकत्ता, खड़गपुर, टाटानगर, रायगढ़, बिलासपुर, सम्बलपुर, रायपुर, गोंदिया, नन्दग्राम, भिलाई, नागपुर, अमरावती, बम्बई, पूना, पोरबन्दर, अहमदाबाद, जयपुर, दिल्ली, भोपाल, सागर, जबलपुर, गोरखपुर प्रोग्राम करते हुए 2 जून को वापस मुंगेर पहुँचे। तीन महीने की यह एक ऐतिहासिक यात्रा थी।

श्री स्वामीजी की मधु-विद्या गूढ़, रहस्यमयी और उच्च कोटि की है। इसके पूर्व भी वे मधु-घट लेकर मधु-यात्रा पर रवाना हुए थे। अप्रैल 1956 से योग-मधु का वितरण तो कर ही रहे हैं। 26 अप्रैल 1968 को वे मधु-घट लेकर रवाना हुए थे। जहाँ उन्होंने विश्वमोहिनी की तरह देव और असुर, आस्तिक और नास्तिक, देशी और विदेशी जनों के बीच योग-मधु का वितरण किया।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो कुछ करके दिखा रहे हैं। उनके व्यक्तित्व के पीछे एक ऐसी सरिता बहती है, जिसमें ज्ञान और कर्म, दोनों नदियों की धारा सम्मिलित है। ब्रह्मसूत्र का ब्रह्मज्ञान और गीता का निष्काम कर्मयोग, दोनों उनके जीवन में आकर संयुक्त हो गये हैं। प्रबुद्धता और कर्म कौशल, दोनों का साथ-साथ रहना अद्वितीय प्रतिभा वालों में ही शक्य है। भारत में दानवीरों और ज्ञान सूरमाओं की कमी कभी नहीं रही है। अनेक उद्‌भट विद्वान्, ऋषि-महर्षि और महान् आत्माओं का यहाँ जन्म हो चुका है। परन्तु एक ही सन्त में सर्वोन्मुखी प्रतिभा कम ही देखी गयी है।

संन्यास की परम्परा में शनैः-शनैः आशातीत परिवर्तन हो रहा है। दुःख से भाग कर संन्यास लेने की परम्परा समाप्त हो रही है। ज्ञान और विवेक का उदय छोटी उम्र में ही देखा जा रहा है, भारत की शक्ति जाग रही है।

जुलाई में गुरु पूर्णिमा संदेश में श्री स्वामीजी ने कहा– 'इतिहास की मार-काट ने हमारे सामने यही नतीजा रखा है कि न तो मंदिर, न मंत्रवत् स्तोत्र-पाठ और न अलौकिक शक्तियाँ ही हमारे जीवन को बदल सकीं, न बचा

ही सकीं। सोमनाथ की हार, हमारे चिर संचित विश्वासों की पराजय है। काशी विश्वनाथ के गिरते हुए कंगूरों ने हमारे अनैतिक विचारों के सामने न जाने कितनी बार खतरे की घण्टी बजाई कि रुको और अपने विश्वासों को अधिक उदार और मजबूत बनाओ। तभी तुम मेरे हृदय के देवता की रक्षा कर सकोगे।

स्वर्ग के रक्षक, मोक्ष के दाता, देवताओं के प्रिय, चमत्कारों के अधिकारी, मंत्रों के धनी हम ही लोगों ने अपने गलत ईश्वर विश्वास के कारण सारे समाज को ऐतिहासिक दुर्घटनाओं का शिकार बनाया, अब तुम्हें स्वयं ही पुरुषार्थ करना होगा। कोई भी अप्राकृतिक ताकत तुम्हारे देश का उद्धार नहीं कर सकती, जब तक तुम अपने समाज के आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन का पुनर्निर्माण नहीं कर लेते। दुनिया आगे बढ़ गई और हम अभी तक सोये पड़े हैं। मानव में माधव को नहीं देख सके ...।

गुरु पूर्णिमा का दिन उठने और उठाने का महान् पर्व है, इस कर्मयुग के प्रभात में हमारी इन्द्रियाँ सजग हों, हमारा दृष्टि-पथ उदार हो और हम जन-जन में अपनी आत्मा, ईश्वर को देख सकें।'

छठा अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, सिडनी

9 से 16 सितम्बर 1969 तक 'अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन' श्रृंखला का छठा सम्मेलन ऑस्ट्रेलिया वालों के विशेष अनुरोध पर सिडनी में हुआ। श्री स्वामीजी ने 5 सितम्बर को मुंगेर से प्रस्थान किया। इस सम्मेलन में अनेक देशों से 680 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का संचालन श्री स्वामीजी ने किया।

सम्मेलन के बाद श्री स्वामीजी न्यूयार्क, अमेरिका, पेरिस (फ्राँस), वियना होते हुए 30 सितम्बर को मुंगेर पहुँचे।

1 से 31 अक्टूबर तक मुंगेर में अविकसित तथा बिगड़े बच्चों का शिविर लगा।

1 से 7 नवम्बर तक मुंगेर में क्रिया योग का शिविर लगा, जिसका संचालन स्वयं श्री स्वामीजी ने किया। अस्सी लोगों ने एक साथ शिक्षा ली।

भारतीयों के विशेष अनुरोध पर साधना का त्रैमासिक सत्र हिन्दी में 20 नवम्बर से शुरू होकर 20 फरवरी तक चला। इस सत्र में 85-90 लोग थे। लोगों का विशेष आग्रह था एक सत्र और चलाया जाये।

1970 की गतिविधियाँ

10 फरवरी 1970 को बसन्त पंचमी उत्सव आश्रम के स्थापना दिवस के रूप में मनाया गया। भजन, कीर्तन, प्रवचन और सत्संग का कार्यक्रम हुआ।

12 फरवरी को स्वामी सत्यव्रत, धर्मशक्ति व कुमारी रत्ना (धर्मशक्ति की छोटी बहन) मुंगेर आये। ये लोग स्वामी निरंजन जी के जन्मदिन, 14 फरवरी के लिए आये थे। एक हफ्ता रहेंगे। 1956 में जब श्री स्वामीजी नन्दग्राम आये थे, तब से रत्ना श्री स्वामीजी की वानर सेना की प्रमुख थी। श्री स्वामीजी उसे राम-रतन कहते थे। शाम को सत्संग में श्री स्वामीजी ने राम-रतन का परिचय देकर 1956–57 की सब बातें बतलायीं तथा उसे कुछ बोलने को कहा। रत्ना ने कहा– 'आयी हूँ तब से उन्हीं दिनों की बातें सोच रही हूँ, अब तो वे सब बातें हमारे जीवन का इतिहास हो गया है।

उस समय श्री स्वामीजी हमारे साथ बच्चे बनकर रहे, हमारे साथ खेले, हमारे पीछे दौड़े। सुबह और शाम तो हमारा ही राज्य रहता। हम श्री स्वामीजी को कहानियों की शृंखला न तोड़ने देते, एक के बाद एक फरमाईश करते, दीदी (धर्मशक्ति) की डाँट की परवाह नहीं करते। श्री स्वामीजी चेहरे से भले ही थके लगते हों, हमारे दुराग्रह को झेलने की इनमें असीम क्षमता थी। नि:संदेह हम इनके प्रति निर्दय थे, श्री स्वामीजी के महत्त्व और महत्त्वाकांक्षाओं से बेखबर थे। आज लग रहा है, ये केवल हमारी क्रीड़ाओं के साझीदार नहीं, ये तो विश्वमय हैं। इनमें युग-प्रवर्तक का विश्वास है। और लोकनायक की हमदर्दी है। इसीलिए ये एक क्रांति का युग पैदा कर रहे हैं। इनकी बाहों में सारा विश्व सिमट कर आ रहा है। हमारी चाहों से बढ़ कर विश्व की चाह है। विश्व को ऐसे ही नायक की आवश्यकता है।

श्री स्वामीजी की दिनभर की व्यस्तता, एक विशालकाय जिम्मेदारी, देश-विदेश से आये मेधावी संन्यासियों की पांत और उनके पथ-प्रदर्शक बने श्री स्वामीजी, जिन्हें पीछे मुड़कर देखने की फुरसत नहीं है, जिनका अतीत हमारे लिए गौरवशाली इतिहास है, जिसमें हमारी आत्मा का संघर्ष छुपा है। बार-बार इच्छा होती है कि पूछूँ, आज तुम विराट् हो, असीम हो, लेकिन क्या कभी उन भूले हुए क्षणों की याद आती है, जब हम नाटक खेलते थे, गति रचा करते थे, जब तुम माँ की तरह कहानियाँ सुनाते थे, पिता की तरह आदेश देते थे। हमारा मचलना, तुम्हारा मनाना। काश उन क्षणों को हम एक बार फिर पा सकते!

मैं अपने आपको समझाती हूँ कि ये असीम तो हैं, पर यहीं कहीं हमारी आत्मा की सीमा में ही हैं। 1956 की 7 जून का वह दिन हमेशा मेरी आँखों के सामने रहता है, क्योंकि वह मेरे जीवन का सुन्दर व मधुर क्षण है। 7 जून की सुबह मन में तर्क-वितर्क करते उत्सुकतावश स्टेशन पहुँचकर देखा–घुँघराले केशों के फ्रेम में जड़ा सा सुदर्शन युवक यूनानी कलाकृति की तरह भव्य, या किसी मठ के जलते हुए दीपक के धुँधले प्रकाश में पिघलते-तपते हुए किसी तिब्बती लामा की तरह अलौकिक रहस्यमय मुस्कान, हमारी ही आत्मा का एक अंग कहीं से भूला-भटका हमसे मिलने के लिए पुन: आ गया है। अपनी सरल हँसी से हम बच्चों को अपनाकर, हमारा मसीहा बन बैठा। हमने उन्हें राम और कृष्ण से कम कभी नहीं समझा, और यह योग का विराट् आयोजन, यह सब मेरे प्रिय व पूज्य संन्यासी का ही कृपा कोर है।

विश्व के हर दु:खी प्राणी के हृदय से उनके नेत्रों का जल करुणा के रूप में शतधारा बह रहा है। उनके तप का, योग का अग्निकुण्ड घर-घर में जल रहा है। उनकी साधना, उनकी आत्मा और पवित्रता की सीपी में स्वाति बूँद सा उनका मानस पुत्र 'निरंजन' मोती बन कर आया है, जो हमारी भी आत्मा का अभिन्न अंग है। वह गुरु के स्वप्नों को साकार करने, उनके चरण चिह्नों पर चलने को तत्पर है।

अन्तर्वृत्तियों के संघर्ष में, इस जीवन रण में 'सत्यम्' कृष्ण की तरह शंख फूँक रहे हैं और लोक चेतना की रंगभूमि में नये आदर्श ढाल रहे हैं। जगत् के व्यथा क्लांत हृदय में उनके गीत, प्रवचन और योग आन्दोलन, चेतना एवं उत्साह का संचार कर रहे हैं।'

सुनने वाले भी भाव-विभोर हो गये। दादा, 'सच्ची बात' के सम्पादक ने विभोर होकर कहा–बेटी, तूने मुझे रुला ही दिया ...।

17 फरवरी से पटना में 3 दिन का शिविर लगा। 19 की रात को मुंगेर आयेंगे। 21 फरवरी को बिलासपुर जायेंगे, वहाँ 3 दिन का प्रोग्राम है, 23 से 25 तक, 26 को वापस आयेंगे। उन्होंने स्वामी सत्यव्रत से कहा, सब साथ ही चलेंगे, तीन आप लोग, मेरे साथ निरंजन भी जायेगा, पाँच टिकट ले आइये।

मुंगेर में योग-आन्दोलन के विस्तार हेतु श्री केदारनाथ गोयनका ने किले के अन्दर एक बड़ा-सा भवन खरीदकर स्वामी सत्यानन्द जी को दान में दिया। 1 जून 1970 को श्री स्वामीजी ने इस भवन का विधिवत् उद्घाटन

करके 'शिवानन्द कुटीर योगाश्रम' (स्काई) नाम दिया। इस नये भवन में 7 व 10 दिन की कक्षायें शुरू हुईं और शिवानन्द योग विद्यालय में 3 माह व कभी 1 माह का कोर्स चलने लगा।

सातवाँ अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, पेरिस

16 से 18 मई 1970 तक 'सातवें अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन' का आयोजन पेरिस में स्वामी देवात्मानन्द ने किया। उद्‌घाटन व संचालन श्री स्वामीजी ने किया। फ्रांस के दूतावास में श्री स्वामीजी ने 'तंत्र के विधि-विधान' विषय पर प्रवचन दिया, लोगों की गलत धारणायें दूर हुईं। उन्होंने स्वर योग, कुण्डलिनी योग, क्रिया योग पर भी प्रवचन दिये। पेरिस तथा आयरलैण्ड में दो नये आश्रमों की स्थापना का निर्णय लेकर भारत आये।

18 जुलाई 1970 को गुरु पूर्णिमा के अवसर पर पूरे भारत व विदेशों से आये हजारों भक्त और शिष्य कीर्तन, मंत्र दीक्षा, गुरु-पूजा में शामिल हुए। संध्या के सत्संग में मुंगेर के इतने लोग आये कि प्रवेश द्वार के बाहर सड़क तक लोग भरे थे, भजन-कीर्तन-प्रवचन-सत्संग हुआ।

श्री स्वामीजी ने अन्तर्राष्ट्रीय योग पुस्तकालय का उद्‌घाटन किया। इसका उपयोग 8 सितम्बर 1970 से 108 संन्यासियों के प्रशिक्षण सत्र में होगा और भविष्य में यह विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय होगा।

18 अगस्त को श्री स्वामीजी ने चतुर्थ विदेश यात्रा के लिए प्रस्थान किया। इस यात्रा में इंगलैण्ड, उत्तरी आयरलैण्ड, डेनमार्क, फ्राँस, बेल्जियम, पश्चिमी जर्मनी, स्वीट्‌जरलैण्ड तथा ऑस्ट्रिया आदि देशों में योग सम्मेलन का संचालन करके, सत्संग-प्रवचन, मंत्र दीक्षा का प्रोग्राम करते हुए श्री स्वामीजी 6 सितम्बर को मुंगेर लौट आये।

8 सितम्बर से 108 संन्यासियों का प्रशिक्षण शुरू होगा।

3 वर्षीय संन्यास सत्र के उम्मीदवार तो बहुत आये थे, उनमें से चुनकर 108 लोगों को रखा, बाकी लोगों को लौटा दिया।

त्रि-वर्षीय संन्यास सत्र

8 सितम्बर 1970 को 'बिहार योग विद्यालय' मुंगेर में ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द सरस्वती के आविर्भाव की पुण्य तिथि के शुभ अवसर पर प्रात: 4 बजे ब्रह्म मुहूर्त्त में 108 संन्यासियों का प्रशिक्षण शुरू हुआ। सम्राट् अशोक के स्वर्ण

युग के पश्चात् भारत के इतिहास में प्रथम बार, बिहार प्रदेश की यह पवित्र धरा संन्यासियों के पुनीत स्वरों से पुनः गुंजायमान और गौरवान्वित हो उठी है।

यह स्वामी शिवानन्द का स्वप्न था–
विश्व को जाग्रत मानव देना।
संन्यास त्याग नहीं, बलिदान की तैयारी है।
बलिदान मृत्यु नहीं, सेवा के लिए समर्पित जीवन है।
गेरु काषाय धारण करने से जीवन नहीं रंगता,
जटा-केश बढ़ाने से संन्यासी नहीं होता।
जो दिन-रात साधना में तत्पर है, उसको केश-विन्यास की सुध कहाँ?
साधना ही लक्ष्य है, तो शरीर की तरफ ध्यान कहाँ?

साधना, स्वाध्याय, सेवा, न नींद, न विश्राम, न वस्त्र, न भोजन, न गप-शप। केवल शास्त्र साधना, वैदिक साहित्य, आगम-निगम इत्यादि का पूर्ण ज्ञान, भाषायें, दार्शनिक पद्धतियाँ, पुराण अध्ययन, शरीर-रचना तथा शरीर-शास्त्र का अध्ययन, इसके अतिरिक्त दृढ़ शारीरिक प्रशिक्षण, विभिन्न योग साधनायें, उच्च स्तर की संगठन पद्धतियाँ, आश्रम संचालन, अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृतियों का ज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा ऐसे ही विषयों का प्रशिक्षण दिया जायेगा। संक्षेप में इन तीन वर्षों के सत्र में, 36 माह की अवधि के प्रशिक्षण में कर्मशक्ति, भक्तिभावना, ज्ञान तथा प्रज्ञा शक्ति के विकास की दृष्टि से इन संन्यासियों को शिक्षण, अनुभव एवं अध्ययन करायेंगे।

यह प्रशिक्षण व्यक्तिगत मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त करने के लिए नहीं है। श्री स्वामीजी की इच्छा हिमालय की गुफाओं तथा कुटीरों की आबादी बढ़ाने की नहीं है। काम से जी चुराने तथा मानव के सुख-दुःख से परे रहने वालों की संख्या बढ़ाने की भी नहीं है। संन्यास मात्र एक साधन है। उद्देश्य है मानव समाज की सेवा के लिए ईमानदार लोगों की एक सात्त्विक-शक्ति का निर्माण करना, जो समाज के आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक होंगे, जो अपने लिए नहीं, मानव समाज के लिए हितकर होंगे। 36 माह तक साधना में तपाकर समाज को जाग्रत मानव देने का श्री स्वामीजी का हठ संकल्प है। श्री स्वामीजी ने यह भी कहा कि 3 वर्ष की साधना के बाद यहाँ रहना जरूरी नहीं है। सब विद्यार्थियों को 36 महीने के बाद अपने घर जाना पड़ेगा। जो संन्यास जीवन

बिताना ही चाहते हैं, वे बाद में भले ही आ सकते हैं, पर कोर्स पूरा करके जाना ही पड़ेगा।

संन्यास प्रशिक्षण के कारण छः माह तक आश्रम में कोई प्रोग्राम नहीं हुआ और न श्री स्वामीजी ही कहीं बाहर गये। कठोर जप, तप, साधना चली, मुंगेर वालों के लिए भी आश्रम बंद था।

108 संन्यासियों की साधना शुरू हुई, त्रेता-द्वापर के गुरुकुल जैसी साधना। श्री स्वामीजी सबको लेकर आनन्द भवन में कुछ दिन रहे। आश्रम में संन्यासियों की कठोर साधना चल रही थी। दिसम्बर में धनबाद से केजरीवाल जी आये, उन्होंने विशेष अनुरोध किया कि सब संन्यासियों को लेकर आप एक माह धनबाद में ही रहें, जैसा कहेंगे व्यवस्था हो जायेगी। बहुत जगह है, कमरे भी बहुत हैं, खेत हैं, बगीचा है, स्वीमिंग पूल है। धनबाद से 4 मील दूर है धनसार, पास ही कोलियरी, केन्टीन व ऑफिस है। श्री स्वामीजी ने कहा, ठीक है आयेंगे। जनवरी में आने का प्रोग्राम बनाया।

1971 की गतिविधियाँ

1 जनवरी 1971 को मुंगेर से 3 स्वामी विदेश जा रहे थे, स्वामी निरंजन के भी आयरलैण्ड जाने की बात थी। टेलीग्राम पाकर स्वामी सत्यव्रत और धर्मशक्ति भी 1 जनवरी को कलकत्ता पहुँचे। स्वामी अमृतानन्द और सच्चिदानन्द 2 तारीख को बेलफास्ट गये। श्री स्वामीजी ने कहा, हम 28 फरवरी को जायेंगे, निरंजन हमारे साथ जायेगा, तुम लोग मुंगेर चलो। 4 जनवरी को सब मुंगेर आ गये। तय हुआ, 8 तारीख को सब धनबाद जायेंगे, दो दिन रह कर स्वामी सत्यव्रत नन्दग्राम जायेंगे, धर्मशक्ति एक हफ्ता वहाँ रहेगी।

श्री स्वामीजी ने मुंगेर के स्वामियों को साधना के पूरे निर्देश लिखा व समझा दिये। पचास स्वामियों को लेकर धनबाद गये। वे वहाँ एक माह साधना करेंगे, गाँव वालों को योग सिखायेंगे। फिर पद-यात्रा करते हुए, भिक्षाटन करते, गाँव वालों को गीता, रामायण व योग सिखाते हुए सम्बलपुर, उड़ीसा पहुँचेंगे। वहाँ 3 अप्रैल से अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन होगा। उसी हेतु जगह-जगह शिविर, कैम्प करेंगे।

8 सितम्बर 1970 से एक घण्टा कीर्तन होता था, कीर्तन से क्या भाव होता है या मन पर क्या असर होता है, श्री स्वामीजी इस पर अनुसंधान कर रहे थे। दो-तीन कीर्तन ऐसे थे, जिन्हें शुरू करते ही सभी स्वामी भाव-विभोर

हो उठते, झूमने लगते थे। कई तो संज्ञा-शून्य भी हो जाते थे। कई बार श्री स्वामीजी भी भाव-विभोर हो गये थे। स्वामी सत्यव्रत 11 जनवरी को नन्दग्राम चले गये। धर्मशक्ति 16 तारीख को गयी। और श्री स्वामीजी भी निरंजन जी को लेकर जनवरी के आखिरी हफ्ते में मुंगेर आ गये। सभी संन्यासी धनबाद में ही अपनी साधना करते रहे, वे लोग 10 फरवरी तक वहाँ रहेंगे।

श्री स्वामीजी मुंगेर आकर, 27 फरवरी को कलकत्ता गये। 1 मार्च को 11 वर्षीय स्वामी निरंजन को लेकर आयरलैण्ड के लिए रवाना हुए। यूरोप के कई देशों में योग शिविर का संचालन करके, बेलफास्ट आश्रम में स्वामी निरंजन को छोड़ कर, श्री स्वामीजी 28 मार्च को मुंगेर आ गये।

आठवाँ अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, सम्बलपुर

सम्बलपुर में आठवें अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन की पूरी तैयारी लायन-क्लब की तरफ से हुई थी। व्रजराज नगर में ओरियन्ट पेपर मिल है, उसका हेड ऑफिस सम्बलपुर में है। ऑफिस के कमरे, व्यापारियों व आने-जाने वालों के लिए कमरे, बड़े-बड़े स्टोर व गैरेज, बहुत बड़ा आँगन, चारों तरफ बहुत जगह थी। सम्मेलन की पूरी व्यवस्था, सबके रहने व भोजन की व्यवस्था और पण्डाल भी वहीं बना था।

2 अप्रैल को श्री स्वामीजी सम्बलपुर पहुँचे। हजारों प्रतिनिधि आये थे, विदेश से भी काफी लोग आये थे। इस आठवें अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन का उद्घाटन उड़ीसा हाईकोर्ट के प्रमुख न्यायाधीश, श्री मिश्रा जी ने दीप जलाकर किया। संचालन श्री स्वामीजी ने किया। चर्चा का मुख्य विषय था, 'योग तथा समाज सुधार'। हमेशा की तरह 4 सत्र होते थे, रोज श्री स्वामीजी, अनेक संत-महात्माओं व स्वामियों के प्रवचन होते, भजन-कीर्तन होता। इस सम्मेलन की विशेषता यह थी कि व्याख्यान धार्मिक नहीं, वैज्ञानिक थे। साथ-ही शास्त्रीय न होकर, व्यावहारिक भी थे। पाँच दिवसीय सम्मेलन का समापन 7 अप्रैल की रात्रि में हुआ। 8 अप्रैल को कोणार्क गये, 10 को वापस आये। वहाँ आश्रम बन रहा था, जो पूरा भी हो गया था, अगले माह उद्घाटन होना था।

12 अप्रैल को दोपहर में व्रजराज नगर गये, ओरियन्ट पेपर मिल और शंख-नदी देखी। विश्राम गृह में ठहरे, भोजन करके शाम को बिरला मंदिर के प्रांगण में सत्संग-प्रवचन हुआ। सत्संग के बाद रायगढ़ के लिए रवाना हुए, वहाँ 2 बजे रात को पहुँचे। वहाँ 4 दिन रहे, सत्संग-प्रवचन हुआ, मीटिंग हुई,

योजनाएँ बनीं। श्री स्वामीजी तो मुंगेर जा रहे थे, स्वामी सत्यव्रत के आग्रह से उन्होंने नन्दग्राम आना स्वीकार किया। स्वामी सत्यव्रत की योजना थी कि श्री स्वामीजी नन्दग्राम में गुरुपूर्णिमा तक रहेंगे, संन्यासियों की ट्रेनिंग वहीं हो, वहाँ वालों से पहले ही बात कर ली थी, उन लोगों का पूर्ण सहयोग था। वहाँ का आश्रम शहर से 4 किलोमीटर दूर है, जी.ई.रोड में छ: एकड़ जमीन मिली है, कुआँ बना, 80 फुट लम्बा, 30 फुट चौड़ा हॉल बना, उसके दोनों तरफ चौड़ा बरामदा, बरामदे के कोने में दोनों तरफ 2-2, यानि 4 कमरे बन चुके थे। स्टोर, रसोई व बड़ा डाइनिंग हॉल बन रहा था।

श्री स्वामीजी का कमरा, सामने एक कमरा और लैट्रिन-बाथरूम का काम चल रहा था। बहुत बड़ा आँगन था, उसमें एक तरफ लकड़ी की रसोई बनवायी थी काम चलाने। चारों कोने में चार कमरे थे, काम चलाने के लिए उनसे से एक श्री स्वामीजी के लिए तैयार कर दिया, एक स्टोर, एक ऑफिस, एक लाइब्रेरी। इस तरह का इन्तजाम करके, अपनी योजना श्री स्वामीजी को बतायी।

श्री स्वामीजी ने कहा, ठीक है नन्दग्राम चलेंगे। वहाँ संन्यासियों का भी अध्ययन, मनन, कर्मयोग होगा, हम गुरु पूर्णिमा तक रहेंगे। पर इधर-उधर जाना होगा तो जायेंगे, फिर वहीं आयेंगे। जब आने की बात हुई तब रायगढ़, बिलासपुर वालों ने 2–4 दिन श्री स्वामीजी को रोकने की इच्छा व्यक्त की। रायगढ़ 4 दिन रहकर, बिलासपुर आये, वहाँ भी 4 दिन रहे, वहाँ प्रोग्राम हुआ, कोरबा में प्रोग्राम हुआ। स्वामी सत्यव्रत 16 तारीख को वापस आकर अपनी तैयारी में लगे। बी.एन.सी. मिल गये, राजा राम गुप्ता से मिले, सलाह की, चादर-दरी के लिए कहा। उसने कहा, जितना चाहिए दोनों चीजें ले जाइये।

20 अप्रैल को धर्मशक्ति के साथ सब संन्यासियों को नन्दग्राम भेज कर, दो स्वामियों को लेकर श्री स्वामीजी सागर गये, 23 को नन्दग्राम आयेंगे।

23 अप्रैल को श्री स्वामीजी नन्दग्राम पहुँचे। वहाँ की जनता ने हृदय से स्वागत किया और तन-मन-धन से सहयोग दिया। एक मई से संन्यासियों का प्रशिक्षण पुन: शुरू हुआ। ये शिक्षार्थी भवन के शेष कार्य के निर्माण में मदद करके कर्मयोग कर रहे थे। वैसे तो लोग दिनभर आते ही रहते थे, पर नित्य-प्रति संध्या 6 से 8 बजे तक सत्संग में पूरे शहर व आस-पास के शहरों, गाँवों से भी योग-प्रेमी आते थे। श्री स्वामीजी सबकी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करते थे।

लोगों की रुचि देखकर आसन-प्रशिक्षण शुरू किया गया। 29 अप्रैल 1971 को योग विद्यालय में शंकराचार्य जयन्ती मनायी गयी। नन्दग्राम व बाहर से भी बहुत लोग आये। नौ-दस लोगों ने उनकी जीवनी पर प्रकाश डाला। श्री स्वामीजी ने कहा, जगद् गुरु शंकराचार्य ने विविध वाद-विवादों से परे होकर संन्यासियों को संगठित कर एक निरापद संगठन की स्थापना की। वे एक कुशल संगठक के रूप में समाज में आये और विक्षुब्ध एवं बिखरे हुए जनमानस को एकता प्रदान की। श्री स्वामीजी ने उनके वेदान्त-दर्शन की भी व्याख्या की और उनके आश्रमों के बारे में बताया।

नागपुर से 40 मील दूर सुरेवाणी ग्राम में श्री स्वामीजी ने देवी की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की, शिक्षार्थी संन्यासियों ने अखण्ड कीर्तन किया।

23 मई को श्री स्वामीजी सम्बलपुर गये, उत्कल योग विद्यालय का उद्घाटन करके अखण्ड दीप प्रज्वलित किया। वहाँ पाँच स्वामियों को आश्रम-संचालन के लिए रखकर श्री स्वामीजी मुंगेर आ गये।

30 मई को श्री स्वामीजी बेलफास्ट गये, वहाँ योग शिविर का संचालन किया। यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों की यात्रा करके 25-26 जून को नन्दग्राम पहुँचे। संन्यासियों की ट्रेनिंग बराबर चल रही थी।

स्वप्न साकार हुआ

श्री स्वामीजी के नन्दग्राम प्रवास से धर्मशक्ति बहुत खुश थी, प्रेस में काम बताकर आश्रम जाती, वहाँ स्टोर संभालती, रसोई में मदद करती। दिनभर लोग आते, उनसे मिलती, बातें करती। श्री स्वामीजी बाहर जाते तो जैसा बताकर जाते वह सब करती। स्वामी सत्यव्रत बिल्डिंग के काम से बाहर जाते तो पोस्ट ऑफिस भी जाती, और उधर का सब काम करके सत्संग के बाद ही वापस लौटती। उसका स्वप्न पूरा हो रहा था।

उसे हमेशा स्वप्न में एक प्रियदर्शी सन्त के दर्शन होते, कुछ संकेत भी मिलते, तो सोचती, छोटी उम्र से ही गीता-रामायण, संतों की जीवनी पढ़ती हूँ, इसी से ऐसे स्वप्न आते हैं। अंतत: 2 अप्रैल 1953 की शाम को ऋषिकेश पहुँची, स्वामी शिवानन्द जी के पास खड़े एक तरुण संन्यासी को देखते ही लगा, 'मेरे स्वप्न-लोक का शंकराचार्य यही तो है।'

7 जून 1956 को श्री स्वामीजी का नन्दग्राम में शुभ आगमन हुआ। उन्होंने कहा, 'माता जी, हम आ गये ...।' लगा, 'यही तो हैं आदि गुरु शंकर ...।'

जीवन की बहुत बड़ी कमी पूरी हो गयी, जीवन की दिशा ही बदल गयी। हमने उनसे बहुत कुछ सीखा, समझा व पाया। अभिलाषा बढ़ती ही गयी। उनके साथ यात्राएँ कीं, शिविर लगाये, कैम्प किये, पर स्वप्न अभी स्वप्न ही रहा।

मुंगेर का आश्रम, अखण्ड दीप, योग सम्मेलन, शिविर, कैम्प, देश-विदेश में आश्रम, देश-विदेश के साधकों का अम्बार, 9 माह और 3 माह के योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र। फिर 3 वर्ष का संन्यास सत्र, जिसमें देश-विदेश के 108 साधकों ने अपने को एक महान् यज्ञ के निमित्त होम दिया। इस यज्ञ के होता–बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी, सभी हैं। अब वे बालक-बालिका, युवक-युवती न होकर, केवल मानव शरीर में पवित्र आत्मायें हैं। दुनिया ने साधु-संन्यासियों के बारे में जो देखा-सुना था, उससे भिन्न नजारा देख आश्चर्यचकित हो, उनके पीछे चलने का संकल्प लेने लगी।

कौन जानता था 1956 में वामन भगवान-से जिस संन्यासी ने अपने मोहक रूप और प्रिय वाणी से सबको मोह लिया था, बच्चों के साथ खेल कर उनका कन्हैया बन गया था, बड़ों को व्यावहारिक योग, आसन, प्राणायाम, गीता, भागवत, वेद, उपनिषद् की गूढ़ बातें सरल तरीके से समझाने वाला हमारा पूज्य व प्रिय संन्यासी एक दिन देश-विदेश में योग-क्रान्ति मचा देगा। पर वे तो लौह संकल्प लेकर संन्यासी बने हैं, और गुरु स्वामी शिवानन्द जी से 'दिग्विजयी' होने का जो आशीर्वाद उन्होंने प्राप्त किया है, वह एक वट-वृक्ष-सा फैल रहा है। श्री स्वामीजी योग संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए कटिबद्ध हैं। प्राचीन विद्याओं को पुनः प्रकाश में लाने में कितना बड़ा योगदान है। योग के खोये हुए गौरव को फिर से नये युग में, उसके महत्त्व की रक्षा करते हुए, पुनः स्थापित कर रहे हैं।

श्री स्वामीजी अपने पास आने वाले सभी दु:खी, आर्त्त, युवक, वृद्ध, बीमार और कमजोर को वही रास्ता बताते हैं, जो उनके लिए सर्वोत्तम होता है। मनुष्य कितना दु:खी है और उसे सच्चे ज्ञान की कितनी जरूरत है, यह वे देखते ही पहचान लेते हैं। उनमें संन्यासी की मस्ती, तप का तेज, योग की धुन है। यह उनके योग-आन्दोलन की हवा है, जो मुंगेर से शुरू होकर देश-विदेश में तो फैल ही रही है, पर नन्दग्राम में बहुमुखी धारा में बह रही है।

मेरा स्वप्न साकार हुआ, योग आन्दोलन के प्रणेता, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का 23 अप्रैल 1971 को मध्याह्न बेला में प्रचण्ड सूर्य किरणों के साथ प्रवेश हुआ। लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। धर्मशक्ति ने भी उनका स्वागत उन्हीं के द्वार पर किया। पूज्य गुरुदेव का प्रवास यहाँ 4 माह

का है। संन्यासियों की ट्रेनिंग भी चलती रहेगी। उन्हें जब भी बाहर जाना है, जायेंगे, वापस यहीं आयेंगे। गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर योग विद्यालय का विधिवत् उद्घाटन करके पवित्र अखण्ड ज्योति प्रज्वलित करेंगे।

2500 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने अपने हजारों शिष्यों को वैशाली में जो शिक्षा दी थी, वही सौभाग्य नन्दग्राम को आज प्राप्त हो रहा है। इतिहास के पन्ने हमारे सामने पलट कर आ गये हैं। दरवाजे पर माँ गंगा लहरा रही है। और धर्मशक्ति का स्वप्न पूरा हो गया।

सौ-सौ अंधियारी रातों में, तेरा ध्यान कहीं सुन्दर है।
मंदिर, मस्जिद, गिरजा में, मन के भगवान कहीं सुन्दर हैं ॥

नन्दग्राम में योग विद्यालय का उद्घाटन

श्री स्वामीजी का जब नन्दग्राम आगमन हुआ तब बिल्डिंग का काम पूरा हो गया था और सभी तरह की तैयारियाँ भी पूरी हो चुकी थीं। गोंदिया, दुर्ग, भिलाई, रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़ से योग मित्र मण्डल वाले आकर काम करने लगे। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मुंगेर, नागपुर, जबलपुर व गाँव-गाँव से हजारों लोग आये, कुछ संत-महात्मा आये, रायपुर आकाशवाणी के केशरी बाजपेई 'बरसाती भैया' पूरे स्टाफ के साथ आये। शिक्षा मंत्री, भोपाल राव पवार आये, अन्य मंत्री और विधायक भी आये।

8 जुलाई 1971, गुरुवार सुबह पाँच बजे से ही योग विद्यालय में कीर्तन शुरू हुआ। हजारों स्थानीय लोग तो आये ही थे, बाहर से लोग आते जा रहे थे। नन्दग्राम की पूरी जनता आश्रम में थी। छः बजे से 'गुरुपाद पूजा' प्रारम्भ हुई, नौ बजे तक चली। मंत्र दीक्षा के लिए सैकड़ों लोग बैठे थे, 9 से 12 बजे तक मंत्र दीक्षा चली, तत्पश्चात् भोजन, फिर प्रोग्राम। 1 से 3 बजे तक प्रेस कान्फ्रेंस हुई और त्रिवर्षीय संन्यास सत्र के प्रतिभागियों एवं विदेश से आये शिष्यों से पत्रकारों ने व्यक्तिगत भेंट-वार्ता की। कीर्तन तो चौबीस घण्टे चलता ही रहा।

श्री स्वामीजी ने अखण्ड ज्योति प्रज्वलित कर योग विद्यालय का उद्घाटन समारोह सम्पन्न किया। इस आध्यात्मिक ज्योति का प्रकाश नन्दग्राम ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ होगा।

संत-मनीषियों, शिक्षा मंत्री, साहित्यकार, एम.एल.ए., एम.पी. और कुछ भक्तों के सत्संग-प्रवचन के बाद श्री स्वामीजी की अपूर्व कृति, 'डायनामिक्स

ऑफ योगा' के अनूदित संस्करण 'क्रियात्मक योग' का वितरण प्रसाद-तुल्य किया गया। तत्पश्चात् जनसमुदाय ने 'जन स्वास्थ्य के लिए योग की उपयोगिता एवं आवश्यकता' को हृदयंगम किया।

जनता को श्री स्वामीजी द्वारा दिया गया संदेश–"वैदिक युग के बाद पुन: इस परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ है। आज क्या गृहस्थ, क्या बालक, क्या वृद्ध, सबमें योग के प्रति रुचि जाग्रत हो रही है। हमारे देश में अनेक कौमों ने शासन किया, फलस्वरूप उन्होंने हममें अपनी संस्कृति, योग-तंत्र के प्रति घृणा की भावना भर दी। हम लोग अपने ही धर्म से घृणा करने लगे। योग के द्वारा विभिन्न आपत्तियों के शिकार होने की दुर्भावनायें भरी गयीं। इसके प्रचारक हमारी संस्कृतियों की आधारशिला 'योग' को उखाड़ फेंकने के लिए कृत संकल्प थे। स्थिति बदली, कुछ वर्ष पूर्व स्वामी कुवल्यानन्द ने मानव शरीर एवं मस्तिष्क का सूक्ष्म ज्ञान कराने वाली मशीनों से योग की प्रतिक्रियाओं का सम्यक् अनुसंधान किया। उनके द्वारा योग-मीमांसा की पत्रिका में इस रिसर्च के निष्कर्ष निकाले गये।

मैंने उसे पढ़ा, मन में बड़ी प्रेरणा पैदा हुई। वैसे मैं प्रारम्भ से वेदान्ती था। 'मैं वह हूँ, वह मैं हूँ' की साधना में संलग्न रहने वाला। पत्रिका में पढ़ने पर मन में विचार आया, 'खोये हुए योग का प्रकाश भारत को दें।' अब लोग इसे समझने लगे हैं, किन्तु अभी भी यह संन्यासियों की अधिकृत सम्पदा मानी जाती है। हम तो कहते हैं, यह गृहस्थ व्यक्तियों के लिए संन्यासियों से अधिक महत्त्व इसलिए रखता है कि उनकी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक अनेक समस्याएँ हैं, उन्हें सदा एक-दूसरे से सम्बन्ध बनाये रखना पड़ता है। अत: योग उनके बहुमुखी जीवन में संतुलन लाने के लिए बड़ा उपयोगी है। जन-सम्पर्क में आने पर मुझे मालूम हुआ कि भारतीय समाज दिग्भ्रमित हो गया है, शास्त्रों ने भी उन्हें गलत रास्ता दिया। सही ढंग से सोचिए। यह योग आपके जीवन की बुनियाद है।

आखिर जीवन का उद्देश्य क्या है? परम शान्ति, परमानन्द, अत्यधिक सुख की प्राप्ति एवं दु:ख की अत्यधिक निवृत्ति, यही न! और इसी अभिलाषा से लोग भोग एवं योग के मार्ग में जाते हैं। किन्तु केवल भोग से रोग तथा केवल योग से कुण्ठा पैदा होती है। अत: दोनों में समन्वय होना चाहिए। योग साधना का अर्थ जीवन को छोड़ना नहीं, अपितु सम्यक् रूप से दृढ़ता के साथ जीवन को पकड़ना है। इसी की प्राप्ति के लिए आश्रमों में कुछ दिनों के लिए

सहवास हो, जो आप की शान्ति को कायम रखेगा। पहले तीर्थों में जाकर संत-संगति में रहकर आसन, प्राणायाम, जप सीखते थे, परन्तु अब वह संभव नहीं है। यह लाभ आपको अब योगाश्रम देगा।

मैं एक ही बात सबसे कह सकता हूँ, रोग का कारण शरीर नहीं, मन है। यदि मन पर नियंत्रण है तो शरीर आजाद छोड़ देने पर भी स्वस्थ रहेगा। सद्विचार एवं दुर्विचार से उसके अनुरूप मस्तिष्क में रस तैयार होता है। मस्तिष्क में विद्युत तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं। ये यदि अपनी जगह काम न करें, तो अनेक मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। अत: सद्विचारों की साधना सीखो, बुरे विचारों की माँग हम कभी नहीं करते। आज हमें बाजार से भी कुसंस्कारों की बौछारें मिल रही हैं। जिस तरह गंदगीपूर्ण वातावरण से शरीर खराब होता है, तद्वत बुरे विचारों का भी निश्चित संक्रमण होता है।

अनिद्रा की तकलीफें अनेक लोगों में समायी हुई हैं, हम नींद की टिकिया खाकर सोते हैं। जड़ को छोड़ कर शाखाओं का इलाज करते हैं। दुर्भावनाओं और दुर्विचारों के कीड़े मस्तिष्क को काट रहे हैं, इन्होंने ही तो संस्कृति का संहार किया है। रक्तबीज की तरह वर्गीय अनुपात में कुसंस्कारों की वृद्धि होती है। शरीर को चेचक, मलेरिया से बचने की सुई लगवाते हो, मन में भी यह सुई लगानी होगी, तुम्हें योग की सुई मिलेगी। योग का यह उद्देश्य जो जितने अंशों में ग्रहण करेगा, तदनुसार गृहस्थी सुन्दर, मन स्वस्थ, विचार नये होंगे। अनेक उपलब्धियाँ हस्तगत होंगी।"

स्वामी नित्यानन्द लंगोट धारण करते थे। वे कहते थे, 'पैसे की क्या चिन्ता, आता है और उसी तरह जाता भी है। आने पर रोक नहीं लगायी, तो जाने पर क्यों लगा सकते हो। जीवन को अनासक्त बनाना होगा।'

उन्होंने ही मुझे आश्रम बनाने की प्रेरणा दी, इसके पूर्व मैं इधर-उधर भटकता रहता था। मैंने कहा, 'पैसा कहाँ से आएगा?' वे बोले, 'इसकी क्या चिन्ता, वह स्वयमेव आता है।' मैंने स्वीकार कर लिया। मुंगेर, रायगढ़, सम्बलपुर में आश्रम खुल चुका है, परन्तु मैं नन्दग्राम को शुरू से ही अपना मुख्यालय व सारनाथ कहता आया हूँ, जिसका कि अभी निर्माण हुआ है। कलयुग में तो सब नियम ही बदल गये हैं, बच्चे का जन्म पहले, फिर बाप का जन्म होता है। नन्दग्राम आश्रम बाप है। मुंगेर आश्रम व अन्य सभी आश्रम बेटे हैं।

अंत में हम आपको संक्षिप्त रास्ता बताते हैं–माला का जप करो, क्रमश: मन को भीतर डुबाओ, शीघ्रता कदापि नहीं। भ्रूमध्य पर इष्टदेव का ध्यान

एकाग्र करो। कालान्तर में चित्त में अनायास निर्णय आयेगा, जो तुम्हें गन्तव्य तक पहुँचाएगा। निरन्तर साधना करो, बीच में खण्डन न हो। नव निर्मित इस विद्यालय के लिए शुभकामना। हरि ॐ।

जनता ने बड़ी शान्ति से सुना। भीड़ इतनी कि हॉल, दोनों तरफ के बरामदे, आँगन और छत में बैठे लोग सुन रहे थे। उन्होंने एक घण्टा बोलने के बाद आशीर्वाद देते हुए शान्ति पाठ कराया। श्रीमती शकुन्तला गोस्वामी का रामायण पर प्रवचन 10 बजे तक चलता रहा। 16 जुलाई से सत्र प्रारम्भ होने का तय हुआ।

स्वामी निरंजन सरस्वती का 'बेलफास्ट' से गुरु पूर्णिमा में शुभ संदेश मिला–"गुरु पूर्णिमा के पावन एवं पवित्र दिवस में नन्दग्राम के नवनिर्मित योग विद्यालय में, जिसकी जड़ बहुत पुरानी है, आप लोगों को महान् गुरु का साक्षात्कार होगा। गुरु-शिष्य महोत्सव, जिसे देवताओं ने भी मनाया, मानव भी मना रहे हैं।

भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, अन्य सभी देवता, श्री शंकराचार्य, स्वामी विश्वानन्द, स्वामी शिवानन्द, सभी के गुरु थे और इन सब की गुरु-भक्ति उच्च कोटि की थी। तुलसीदास जी कहते हैं, *'बन्दऊँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि'*, आगे कहते हैं, *'गुरु बिन ज्ञान नहीं जग माहिं'*–यह संदेश हमें जीवन-पथ का प्रकाश दिखा रहा है। उपनिषद् कहते हैं, *'दुर्लभा सहजावस्था सद्‌गुरुकरुणां विना।'* तात्पर्य यह है कि गुरु-कृपा बिना परमावस्था की प्राप्ति भी असंभव है।

ज्ञानी तथा तत्त्वदर्शी गुरुदेव हमें ज्ञान प्रदान करेंगे, जिसकी गूँज योग वाशिष्ठ के सन्देश हैं–'वास्तविक ज्ञानेच्छुक को गुरु वाक्य आत्मदर्शन के योग्य बनायेंगे। गुरु-वाक्य शिष्य-हृदय में ज्ञान ज्योति प्रज्वलित करेंगे। बिना गुरु के ज्ञानावस्था में पहुँचना बड़ा दुष्कर है। गुरु-कृपा द्वारा परिपूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। गुरु ही मार्ग की बाधाओं का निराकरण करते हैं। गुरु अविद्या के आवरण को हटा देते हैं।'

गुरु के समीप जाने के पहले आप में ये गुण होने चाहिए–गुरु भक्ति, निष्काम कर्म, यम, नियम, अभ्यास, उपासना तथा योग, मानसिक-सत्य व मानसिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास। जीव भावना से स्वतंत्र रहिये, तब गुरु महावाक्यों का उपदेश देगा, गुरु आप को परोक्ष ज्ञान देगा। आपके मार्ग की बाधाओं का, संदेहों का निराकरण करेगा। किन्तु आपको हृदय से

सच्चा अभ्यास तथा परिश्रम करना पड़ेगा। दिव्य दृष्टि द्वारा आपको सत्-चित्त-आनन्द की दशा का अनुभव करना होगा। शास्त्रों में श्रवण, मनन, निदिध्यासन की आज्ञा है। यही युगों का संदेश है। यही गीता और रामायण का संदेश है। यही ऋषि-महात्माओं का संदेश है, जो गुरु-शिष्य परम्परा से चला आ रहा है। ये शब्द भी मेरे नहीं, मेरे गुरु के हैं, मेरे गुरु के भी नहीं, उनके गुरु के हैं, यह संदेश हमारी वंश-परम्परा से चला आ रहा है। जगत् के कल्याण के लिए देव शक्तियों ने कहा–ओ मानव! सबकुछ तेरे में ही है। पर उसे पहचान नहीं रहा है। तुझे एक गुरु की आवश्यकता है। जिनके चरणों में बैठकर तू ज्ञान-ज्योति प्राप्त करके अपने आपको और संसार को प्रकाशित कर सके।

बड़े भाग्य से सद्गुरु का प्रादुर्भाव होता है, और वही सौभाग्य मेरे पूज्य व प्रिय बन्धुओं को, नन्दग्राम निवासियों को प्राप्त हो रहा है। प्रभु व गुरु का आशीष सभी को प्राप्त हो।"

मुंगेर बाढ़ से घिरा था, आश्रम में भी गंगा माँ पधारीं थीं। श्री स्वामीजी 10 तारीख को कार से मुंगेर गये, वे 21 तारीख को वापस आयेंगे।

16 जुलाई को प्रथम सत्र शुरू हुआ। 21 जुलाई को श्री स्वामीजी वापस आये। 26 जुलाई 1971 को सुबह पाँच बजे से भजन-कीर्तन शुरू हुआ, पूरा दिन हँसी-खुशी से गूँजता रहा, शाम को जोर-शोर से सत्संग हुआ। दुर्ग, भिलाई, रायपुर, गोंदिया से लोग आये थे, शहर वाले तो आये ही थे, 10 बजे रात तक सत्संग व प्रवचन चलता रहा।

28 जुलाई को सत्र का समापन हुआ। श्री स्वामीजी ने आशीर्वाद सहित प्रमाण-पत्र व पुस्तकें प्रदान कीं।

एक अगस्त को तिलक जयन्ती समारोह मनाया गया, सत्संग-प्रवचन हुआ। दो अगस्त को संन्यासियों को पद-यात्रा करके देहातों में सत्संग के लिए भेजा गया। दो स्वामी एक गाँव में जायेंगे, भिक्षाटन करेंगे, उन्हें आसन-प्राणायाम सिखायेंगे, दोपहर को उनके साथ कर्म योग करेंगे, शाम को गीता-रामायण, सत्संग करेंगे। दो दिन रह कर दूसरे गाँव में चले जायेंगे।

9 अगस्त 1971 को श्री स्वामीजी सम्बलपुर गये। वहीं 3 दिन का सत्संग रहा, वहाँ की व्यवस्था देख व समझ कर मुंगेर गये।

8 सितम्बर को सभी आश्रमों व संस्थाओं में 'शिवानन्द जयन्ती' मनायी गयी, सत्संग-प्रवचन हुआ।

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक क्रिया योग सत्र चला, जिसका संचालन श्री स्वामीजी ने किया।

नन्दग्राम विद्यालय में हर माह दो सत्र चलते और समय-समय पर सत्संग प्रोग्राम होता रहता था। जुलाई से योगेश्वरानन्द आचार्य पद पर थीं। दिसम्बर 1971 में कुछ विशेष कारण से श्री स्वामीजी ने स्वामी शिवप्रेम को आचार्य पद के लिए भेजा।

30 दिसम्बर को बेलफास्ट से स्वामी आत्मानन्द मुंगेर आयीं थीं। उनके एक दिन नन्दग्राम में रुकने की बात थी, पर फोन में बात हुई कि स्टेशन में मिलो। स्वामी सत्यव्रत 11 बजे स्टेशन गये। स्वामी निरंजन के लिए सामान व पुस्तकें थीं, लेकर गये। बहुत खुश थे।

स्वामी सत्यव्रतानन्द का देहावसान

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने 31 दिसम्बर को सुबह 4 बजे से उठकर अपना नियमित कार्य आरम्भ किया। फिर प्रेस का काम देखा, बताया-समझाया। फिर बाहर गये, कहीं से आर्डर लेना है, बिल लेना है, रसीद देनी है, मिल में कोटेशन देना था ...। यह सब करके पोस्ट ऑफिस गये, वहाँ का काम करके सबसे मिलते, बात करते, 11 बजे प्रेस आये। फाइल लेकर बैठे, सब कामगारों को काम बताया। कहते थे, आज काम बहुत है, पूरा भी तो करना है। मैंने पूछा, 'आज ही क्यों सब काम पूरा करना है?' तो कहा, 'आज वर्ष का अंतिम दिन है न।'

11.30 बजे स्वामी शिवप्रेम आये, कहा, 'दादा जी, आश्रम चलिये। आज आपको श्री स्वामीजी का काम करना है। योगेश्वरानन्द से चाबी लेनी है, सब व्यवस्था भी बदलनी है।' बोले, 'तुम क्यों चिन्ता करते हो, उस काम की जिम्मेदारी मेरी है। चलो पहले भोजन कर लें, फिर चल कर तुम्हारी सब समस्या ठीक कर दूँगा। आज ही तो मुझे सब काम पूरा करना है, आज अंतिम दिन है न। तुम निश्चिन्त रहो, सब काम फटाफट पूरा कर लूँगा।' भोजन के बाद मुझसे कहा, 'लाओ तुम्हारे पास जो फल हैं', संतरे खाये। मैंने कहा, 'मैं भी चल रही हूँ', तो उन्होंने कहा, 'मैं जीप नहीं ले जा रहा हूँ, प्रेस की साइकिल से जाऊँगा, शिवप्रेम भी साइकिल से ही आया है। तुम इन पत्रों का जवाब लिख कर रखना, मैं तो जल्द ही आ रहा हूँ, श्री स्वामीजी को शुभ समाचार भी तो देना है।'

आश्रम में चाबी, फाइल, रजिस्टर लेकर, सबकुछ शिवप्रेम को देकर, काम समझाया, बैंक के लिए आवेदन लिखा, शिवप्रेम का दस्तखत कराकर उसे बताया कि परसों बैंक में जाकर ये काम करना है। मणीबाई शाह नागपुर की थी, अपने पोलियो वाले लड़के गुंजन के साथ रहती थी। वह रोज स्वामी सत्यव्रत को चाय पिलाती थी। कहती, 'दादा जी, मेरे लिए थोड़ी-सी बचा देना', तो कहते, 'पहले ही ले लो, लाओ कटोरी, जूठा नहीं दूँगा।' उस दिन सब काम पूरा करके आने लगे तो मणीबाई ने कहा, 'दादाजी रुकिये, चाय बन गई है, ला रही हूँ', तो सत्यव्रतजी ने कहा, 'देर हो जाएगी, मुझे जल्दी जाना है।' उसने चाय लाकर दी, तो आधी चाय पीकर कहा, 'मणीबाई रोज कहती थी न, तो आज प्रसाद दे रहा हूँ, तुम भी क्या याद करोगी, अच्छा चलते हैं गुंजन, हरिॐ।'

स्वामी सत्यव्रतानन्द ने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाये। दो बजे थे, सड़क सूनी थी, आश्रम से पौन फर्लांग आगे पहुँचे होंगे, पीछे से बस की आवाज सुनकर साइकिल से उतर कर सड़क के किनारे खड़े हो गये। बस का सन्तुलन बिगड़ा, वह तिरछी होकर चली, ड्राइवर संभाले तब तक ठोकर मार कर चली गई ...। साइकिल सहित ऊपर उछले और सड़क व खेत के बीच मैदान था, सड़क से 15-20 फुट दूर गिरे ...। जैसे शान्ति से सोये हों, साइकिल पास में खड़ी रह गई, कहीं पर न चोट, न खरोंच, प्रभु की जैसी इच्छा हो ...।

होनी टलती नहीं। महान् गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किया था, शुभ कर्मों का भी फल था, 'जीवन को जीया और मौत पर विजय पायी।'

सुनकर पूरा शहर तड़प उठा, हजारों लोग जमा हो गये, विधि का विधान जो बना था, होकर रहा। बी.एन.सी. मिल के राजा राम गुप्ता ने श्री स्वामीजी को लाइटनिंग कॉल लगाया। सांसद राम सहाय पाण्डे के प्रयत्न से तुरन्त बात हो गयी। उन्होंने आश्रम में ही समाधि देने का आदेश दिया। नन्दग्राम वासी अपने प्रिय दादा जी, पूज्य संन्यासी को छोड़ना नहीं चाहते थे। हजारों लोग आश्रम में पूरी रात कीर्तन करते रहे। सुबह पेपर में पढ़कर दूसरे गाँवों से भी कई सौ लोग आश्रम आ गये।

1 जनवरी 1972 को 9 बजे आश्रम में ही कई हजार लोगों की उपस्थिति में वेद पाठ, रामधुन करते हुए उन्हें समाधि दी गई। हजारों हजार लोगों की शुभकामना पाकर स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती अमर हो गये। युगों-युगों तक अमर रहेंगे, जीवन तो क्षणभंगुर है, नाम ही रह जाता है।

स्वामी सत्यव्रत जी ने 12.30 बजे कहा था, आकर शुभ समाचार श्री स्वामीजी को देना है, ठीक समय पर श्री स्वामीजी को शुभ समाचार मिल भी गया। किन्तु स्वामी सत्यव्रत की समाधि का समाचार पाकर देश-विदेश के लोग तड़प उठे। कितने ही लोग आये, कितने ही पत्र मिले। कई लोगों ने शंका व्यक्त की, श्री स्वामीजी का काम कैसे चलेगा, अब क्या होगा? सबने अपने ढंग से सोचा, पर 'सच्ची बात' के संपादक श्री देवेन्द्रनाथ गुप्त ने लिखा, 'संन्यासी शोक और दु:ख से परे होता है। उसका सम्बन्ध कर्म से होता है, कर्म फल से नहीं। श्री स्वामीजी का यह दाहिना हाथ नहीं रहने का अन्तर पृथ्वी माता भी नहीं जान सकेगी, समय व काम किसी के लिए कभी नहीं रुकते हैं।'

और उन महान् आत्मा ने 31 दिसम्बर 1971 की सुबह अपनी डायरी में लिखा था, 'आखिरी श्वास तक हाथ से कोई न कोई सेवा-कार्य हो रहा है, भावना की पूर्णिमा चमक रही है, हृदयाकाश में जरा भी आसक्ति नहीं है, बुद्धि सतेज है। इस तरह जिसकी मृत्यु होगी वह परमात्मा में जा मिलेगा। ऐसा परम मंगलमय अंत लाने के लिए रात-दिन सावधान रहकर लड़ते रहना चाहिए। एक क्षण के लिए मन पर अशुभ संस्कार न पड़ने दीजिए, और ऐसा बल मिलता रहे, इसके लिए परमात्मा से सतत् प्रार्थना करते रहनी चाहिए। नाम-स्मरण, तत्त्व स्मरण पुन:-पुन: करते रहना चाहिए, हर श्वास में प्रभु को बसाना चाहिए।'

श्री स्वामीजी 5 जनवरी की शाम को कार से आये। पूरे दिन प्रेस में रहते, सबको समझाते। सबको धीरज बँधाया, कर्तव्य ज्ञान कराया, योग विद्या प्रेस की पूर्ण व्यवस्था देखी। दो स्वामियों को वहाँ रखा। सुबह से रात तक शहर के लोग आते रहते थे। प्रेस व आश्रम का सब काम समझाकर, तीन दिन रह कर कार से मुंगेर गये, पन्द्रह दिन में आयेंगे कहा।

श्री स्वामीजी पन्द्रह दिन बाद मुंगेर से नन्दग्राम आये, सब काम देखा, प्रेस में ही मेम्बरों को बुला कर, मीटिंग करके, सब व्यवस्था करके, तीन दिन रहकर मुंगेर गये।

धर्मशक्ति ने श्री स्वामीजी से कहा, आप 'योग विद्या' 'योगा' ले जाइये, प्रेस भी ले जाइये मुंगेर। मैं कुछ भी नहीं कर सकूँगी। मुझसे यह सब नहीं होगा। श्री स्वामीजी ने कहा–तुम्हें जीना है या नहीं? अगर जीना है तो जिम्मेदारी के काम में अपने को डुबो दो। तुम्हें निरंजन के लिए, उसके कार्यों को देखने

के लिए जीना ही पड़ेगा। सोचो, समझो और अपने को मजबूत बनाओ। धर्मशक्ति, दुनिया ने खोया, मैंने भी खोया है, तुमने तो अपना सर्वस्व खोया है। सत्यव्रत जी जो काम शुरू कर गये हैं, उन सब कामों को नारी नहीं, अवधूत बन कर तुम्हें पूरा करना है। मैं यही चाहता हूँ, यही मेरा आदेश भी है। हम पन्द्रह-बीस दिन में फिर आयेंगे।

13 फरवरी, शिवरात्रि के दिन श्री स्वामीजी आये। तीन दिन रहे। प्रेस व आश्रम, दोनों तरफ देखना है, यह आदेश दिया। और कहा, तुम्हें रायपुर हर माह जाना चाहिए। कागज के आर्डर हिसाब का काम हाथ में लो, यह सब कुछ तुम्हें करना है, मीटिंग में मुंगेर भी आना होगा। 15 मार्च को आयेंगे तो मीटिंग करेंगे, कहकर 16 फरवरी को मुंगेर गये।

1972 की गतिविधियाँ

श्री स्वामीजी 15 मार्च को नन्दग्राम आये। 16 को मीटिंग की। 25 दिसम्बर 1973 को योग आन्दोलन के प्रणेता, स्वामी सत्यानन्द 50 वर्ष पूरे करेंगे। योग की इस अर्द्ध शताब्दी को स्वर्ण जयन्ती मनाने की बात थी। और स्वर्ण जयन्ती सम्मेलन नन्दग्राम में करने की बात पहले तय हुई थी। फरवरी में मीटिंग में श्री स्वामीजी ने कहा था, स्वर्ण जयन्ती मुंगेर में करना सुविधाजनक होगा। सभी मेम्बरों की इच्छा थी कि सत्यव्रत जी यहाँ करने वाले थे, उनकी इच्छा थी, हम यहीं करना चाहते हैं।

16 मार्च को मीटिंग हुई, श्री स्वामीजी ने कहा, सम्मेलन हम यहाँ भी कर सकते हैं, वहाँ के सब कार्य-कर्त्ताओं को यहाँ आकर सब काम करना होगा। देश-विदेश से कई हजार लोगों के आने की बात है, यहाँ बहुत कुछ करना पड़ेगा। मुंगेर में कई सम्मेलन हो चुके हैं, वहाँ के लिए सब कारोबार जमा हुआ है, साधन-सुविधा सबकुछ है। बसन्त पंचमी के अवसर पर कुछ काम शुरू भी कर दिया गया है। स्वामी सच्चिदानन्द, महेश्वरानन्द, वेदानन्द, अग्निमित्रा विदेशों में प्रचार-प्रसार के लिए जा चुके हैं। स्वामी निरंजन लंदन में कॉलेज भी जाते हैं, स्कूल, कॉलेज व टी.वी. में योग का प्रोग्राम भी देते हैं। विदेशों के भक्त शिष्य मदद करते हैं।

कमेटी मेम्बरों को मुंगेर का सम्मेलन मानना पड़ा। 16–17 मार्च को माहेश्वरी भवन में प्रोग्राम हुआ। 18 की सुबह श्री स्वामीजी नागपुर गये, उनके साथ 7–8 शिष्य भी थे। 18 से 20 मार्च 1972, नागपुर के धनवटे

चेम्बर में तंत्र-शास्त्र पर प्रवचन हुआ। तीन दिन की सत्संग सभा के बाद 21 तारीख को गोंदिया पहुँचे, एक दिन वहाँ सत्संग प्रोग्राम के बाद 22 की सुबह बालाघाट से सिवनी, छिन्दवाड़ा, बैतूल, आठनेर, इटारसी, खण्डवा, इंदौर, धार, उज्जैन, भोपाल, पंचमढ़ी, सागर, टीकमगढ़, छतरपुर, सतना, रींवा, कटनी, जबलपुर, नरसिंहपुर, मण्डला, सिहोर, उमरिया, शहडोल, अमलाई, इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी, गया होते हुए, सब जगह एक-एक दिन का प्रोग्राम करते मुंगेर पहुँचे।

आश्रम की गाड़ी, पुष्पक और गरुड़ से यात्रा कर रहे थे। दिन में प्रोग्राम होता, रात में प्रोग्राम के बाद प्रस्थान करते, दूसरे दिन सुबह से रात तक प्रोग्राम के बाद फिर प्रस्थान। इस तरह का प्रोग्राम तो श्री स्वामीजी ही कर सकते हैं, दूसरों के लिए सर्वथा असंभव है दिन में प्रोग्राम रात में सफर ...

गुरु पूर्णिमा मुंगेर में मनायी गयी। 23-24-25 जुलाई को सत्संग हुआ। 26 जुलाई को गुरु पूर्णिमा मनायी गयी। उसी दिन कुटीर आश्रम मुंगेर में 'प्रगतिशील शिक्षा संस्थान' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था में दुर्बोध बच्चे, जो सामाजिक, मानसिक या शारीरिक रूप से विकृति युक्त हैं, श्री स्वामीजी के निर्देशन में बाल-मनोविज्ञान के विशेषज्ञों द्वारा उनकी देखभाल व चिकित्सा की जाएगी।

श्री स्वामीजी 8 सितम्बर के प्रोग्राम के बाद, 21 सितम्बर की संध्या संबलपुर पहुँचे। 22 की सुबह मंत्र-दीक्षा, सत्संग-प्रवचन के बाद, रात को बिलासपुर के लिए प्रस्थान किया। 23 को दिनभर व्यस्त प्रोग्राम के बाद, रात में नन्दग्राम के लिए प्रस्थान किया।

24 सितम्बर को दिनभर प्रोग्राम करके संध्या-सत्संग के बाद कार से नागपुर के लिए प्रस्थान किया। 25 को दिनभर व्यस्त प्रोग्राम और रात्रि सत्संग के बाद 10 बजे रायपुर के लिए प्रस्थान किया। 26 को सुबह से जेल, मेडिकल कॉलेज, राजकुमार कॉलेज और आश्रम में प्रोग्राम के बाद, संध्या 7 बजे योग शिविर का दीप जलाकर, गुरुदेव शिवानन्द जी के चित्र को पुष्प-हार अर्पण करके उद्‌घाटन किया। प्रवचन के बाद, शिविर संचालन के लिए दो स्वामियों को छोड़कर, 9 बजे रात्रि में राउरकेला के लिए प्रस्थान किया।

कार द्वारा रात को सफर, दिन को प्रोग्राम करना, यह कठिन योग श्री स्वामीजी ही कर सकते हैं।

स्वर्ण जयन्ती, 1973

स्वर्ण जयन्ती की तारीख तय हुई, 9 से 15 अक्टूबर 1973 को मनायी जाएगी। ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द जी मलाया में डॉक्टर थे। 1923 में वे सब कुछ त्याग कर भारत आये, ऋषिकेश पहुँचे। प्रेरणा मिली, अदृश्य शक्ति द्वारा दीक्षा मिली मई 1923 में। संयोगवश 25 दिसम्बर 1973 को उनके कर्मठ शिष्य, अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के प्रवर्तक, बिहार योग विद्यालय के संचालक, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने चरण पचासवें वर्ष में रखेंगे। गुरु के सर्वस्व त्याग कर संन्यासी होने का व शिष्य के जन्म का पचासवाँ वर्ष (अर्द्ध शताब्दी) स्वर्ण जयन्ती के रूप में साकार हो रहा है। सब जगह फार्म, पम्पलेट, कार्ड छपने लगे, भेजे जाने लगे।

1973 बसन्त पंचमी का प्रोग्राम मुंगेर में तीन दिन का हुआ। सम्मेलन के काम में तेजी आ गयी। श्री स्वामीजी के कई शिष्य देश-विदेश में भ्रमण करके योग का संदेश व निमंत्रण दे रहे हैं।

श्री स्वामीजी का भी विश्व-भ्रमण का कार्यक्रम बन चुका है। मार्च में विक्टोरियन योग सम्मेलन का उद्‌घाटन किया और ऑस्ट्रेलिया के प्रान्तों में गये। 20 अप्रैल को अखिल भारतीय स्वागत समिति मुंगेर की मीटिंग में मुंगेर, भारत आये। मीटिंग के बाद सबको काम बताकर श्री स्वामीजी दक्षिण अमेरिका गये। मई में यूरोप जायेंगे।

14 जुलाई, शिवानन्द निर्वाण दिवस का प्रोग्राम विशेष उत्साह से मनाया गया। 8 सितम्बर, शिवानन्द जन्मोत्सव के प्रोग्राम में सत्संग-प्रवचन, भजन-कीर्तन हुआ।

अक्टूबर में लोगों का आना शुरू हुआ। आठ अक्टूबर तक दस हजार भक्त, शिष्य व दर्शनार्थी आ चुके थे और बाहर से आ ही रहे थे। ज्योतिर्मठ के जगत्‌गुरु, श्री शान्तानन्द आये। वे पाँच दिन रहेंगे। महर्षि मेंहीदास, तंत्र विद्या के पण्डित श्री सूरत चक्रवर्ती, गायत्री देवी, ऋषिकेश के स्वामी चिदानन्द, अवधूत स्वामी करुणानन्द और माता सेवानन्द आये। श्री शुद्धानन्द भारती, श्री विरागी जी, श्री मनुवर्य और नन्दग्राम से डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्रा आये।

दक्षिण अमेरिका से स्वामी निरंजन 24 भक्तों का ग्रुप लेकर आये। विदेशों के 20 राष्ट्रों के प्रतिनिधि, योगी, डॉक्टर, प्रोफेसर, योगाचार्य, वैज्ञानिक व हर क्षेत्र के कलाकार व योग शिक्षक पधारे।

9 अक्टूबर 1973 को प्रात: पाँच बजे आश्रम में यज्ञ से शुभारम्भ हुआ। आठ बजे तक मुख्य अतिथि व दर्शकों से विशाल पण्डाल भर गया। पार्षदों के जयघोष के साथ शंकराचार्य श्री शान्तानन्द पधारे। तत्पश्चात् पार्षदों के वेदपाठ के बाद उनका उद्घाटन प्रवचन शुरू हुआ, उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी की चर्चा की, उनके कर्मों की प्रशंसा की। स्वामी सत्यानन्द जी के विशाल कार्यों की प्रशंसा की, शुभकामना दी। महर्षि मेंहीदास जी का आशीर्वचन हुआ। अनेक सन्तों के प्रवचन हुए, श्री स्वामीजी के प्रवचन हुए।

3 बजे प्रात: से ही भजन-कीर्तन शुरू हो जाता। प्रात: 4 से 6 बजे तक क्रिया योग व ध्यान की कक्षायें लगतीं। प्रात: 8 से 11, अपराह्न 2 से 4 और संध्या 5 से 7 बजे तक संत-महर्षियों व देश-विदेश से आये शिक्षा-शास्त्रियों, डॉक्टरों, अनुसंधानकर्ताओं व मनीषियों के प्रवचन, आसन-प्रदर्शन, जन-जीवन के लिए उपयोगी वार्तायें होतीं। श्री स्वामीजी का प्रवचन हर सत्र में होता। सम्मेलन की विशेषता थी–मंच ऋषियों, महर्षियों, संत-महात्माओं से भरा रहता। यहाँ तक कि धर्मशाला की छत, अहाते की दीवाल और सड़क के पेड़ों पर भी लोग शान्ति से बैठे सुनते रहते थे। इतनी भीड़ के बावजूद पण्डाल एवं मंच की सुरुचिपूर्ण व्यवस्था–शालीनता एवं अनुशासनप्रियता का उदाहरण सामने था।

11 तारीख की शाम को बादल महाराज भी संत-समागम के दर्शन हेतु उमड़ने लगे, गरजने लगे, गुलाब जल की छींटे देने लगे। सभी परेशान, पर श्री स्वामीजी शान्त भाव से सिंह गर्जना करते रहे। इस सम्मेलन में मुंगेर के पेड़-पत्ते तक सजीव हो उठे हैं। 'गुरुदेव के गृहत्याग की इस जयन्ती' में सभी को आना होगा, जो नहीं आयेंगे, उन्हें युग कभी माफ नहीं करेगा, सभी को आना ही होगा ...।

रात्रि 12 बजे से इन्द्रदेव का ताण्डव नृत्य शुरू हुआ, आश्रम में कीर्तन हुआ। श्री स्वामीजी के आदेश से सभी धर्मशाला, स्कूल, जहाँ-जहाँ अतिथि ठहरे थे, कीर्तन शुरू हुआ। पूरी रात प्रतियोगिता में बीती, कभी कीर्तन की ध्वनि तेज होती, कभी इन्द्रदेव का नृत्य तेज होता। भयानक आँधी-तूफान के साथ गंगा जी बहुमुखी धारा से मुंगेर में बरसने लगीं और हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण की तरह उसे झेलने लगे। पूज्य गुरुदेव की निर्णय शक्ति अद्भुत है। प्रात: पाँच बजे से दर्जनों जीपें दौड़ने लगीं। स्थिति तो ऐसी थी कि आँधी-तूफान और भयानक बरसात में कमरे के बरामदे

में निकलना असंभव लगता था। ऐसी तूफानी परिस्थिति में कार्यकर्त्ता और स्वयं-सेवक अन्नपूर्णा से चाय-नाश्ता और भोजन जीप में भरकर ले जाते और सभी अतिथियों को समय पर चाय-नाश्ता व भोजन कराते। साथ ही सभी को कीर्तन के लिए प्रोत्साहित करते रहे।

सभी लोग कीर्तन-भजन में मस्त थे और गुरुदेव सत्यानन्द देव शक्तियों से समझौता-वार्ता में व्यस्त थे। 12 तारीख का पूरा दिन तूफान से जूझता रहा, पर शाम होते तक इन्द्रदेव धीमें पड़ने लगे, लगा कि उन्होंने संधिवार्ता पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। और अपनी माया समेटने लगे। 20 घण्टे की तूफान सहित मूसलाधार बरसात से पण्डाल अस्त-व्यस्त हो गया था, ट्यूब लाइट व बल्ब टूट-फूट गये थे, चारों तरफ पानी ही पानी दिखता था।

बिहार वालों का अनुमान था, पछुवा हवा की तूफानी बरसात होने पर हफ्तों चलती है, बरसात रुकने की संभावना कम रहती है। प्रभु की विशेष अनुकम्पा से रात को बादल साफ हो गये। 13 तारीख की सुबह से ही शामियाना-पण्डाल ठीक करने का काम शुरू हो गया। तार ठीक करने, लाइट लगाने, पानी निकालने, सफाई करने में हजारों लोग जुट गये और सुबह 9 बजे आश्रम हॉल में सत्संग शुरू हुआ।

उज्ज्वल हंस अनेक, विमल मानस के रंजन ।
जनमानस के परमहंस, तेरा अभिनन्दन ॥

इस अभिनन्दन गीत के बाद स्वामी चिदानन्द का भजन-कीर्तन-आशीर्वचन हुआ, फिर उन्होंने अपने प्रिय बाल-बन्धु को शुभकामना उपहार प्रदान किया। लगा कि गुरु के त्याग व शिष्य के जन्म की स्वर्ण जयन्ती की वास्तविक स्वर्णिम बेला यही है। देश और विदेश के सैकड़ों आश्रमों के संचालक, विशाल सम्पदा के मध्य निर्लिप्त भाव से रहने वाले स्वामी सत्यानन्द ने बाल-बन्धु स्वामी चिदानन्द द्वारा गुरु आश्रम से प्राप्त उपहार–चादर ओढ़ कर, पुस्तकों की पेटी सामने रख कर, फल-मेवा, बिस्कुट, टॉफी, सब सामान को गोद में समेट कर प्रसन्नता भरे गले से कहा, 'अब मैं धनी हूँ।'

और सामान को रख कर, पूज्य बन्धु को प्रणाम करना चाहा, तो पूज्य बन्धु ने प्रिय बन्धु को अपने में समेट लिया। लग रहा था, दोनों की आँखें व हृदय भरे हुए हैं। सभी लोग इस नयनाभिराम दृश्य को देखने में तल्लीन थे और मेरी आँखें स्मृति-सम्मोहन सी देखने लगीं।

गंगोत्री यात्रा के समय 23 मई 1957 को संध्या सत्संग में स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था–'लगता है सत्यम् की जेब भारी है।' तब स्वामी सत्यम् ने कहा था–'परिव्राजक की जेब खाली है स्वामीजी, सत्यम् आप से ही झोली भरवा कर यात्रा करेगा।'

विधि का विधान हम समझ नहीं पाते, पर इन्द्र कोप का रहस्य ही यही है कि यह शुभ कार्य हॉल में शिवानन्द ज्योति के समक्ष ही हो, और दो उत्तराधिकारी बेटों (शिष्यों) पर गुरु पिता का आशीष-कण बिखर पड़े। संयोग को साकार रूप देने ही इन्द्रदेव को यह लीला करनी पड़ी थी।

दिनभर में सभी स्थल ठीक हो गये। जमीन बहुत गीली थी। ट्रकों में पुआल (घास) आया, बिछाया गया, उसके ऊपर दरी बिछाई गयी। तीसरे प्रहर की सभा पण्डाल में हुई। मंच पर दोनों बाल-बन्धु आसीन थे। आँखें देख रही थीं, कान सुन रहे थे, स्वामी चिदानन्द और स्वामी सत्यानन्द के आश्रम-जीवन के शरारत भरे, स्नेह भरे अनुभव सुनकर आनन्द सागर में गोते लगा रहे थे, और सामने 'स्वामी-द्वय' का बालपन लहरा रहा था।

स्वामी चिदानन्द ने कहा–पशुओं में अज्ञान है। पुरुषत्व भी पशुत्व में बँधा हुआ है, और इसीलिए मानव दुर्दशा में है। मानवता की दिव्यता की क्षमता वाला व्यक्तित्व ही जीवन है। सांसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी, मात्र मरने नहीं, अमर होने आए हैं। हमें आनन्द की ओर जाना है। प्रकाश का अभाव ही अंधकार है। प्रकाश ही सत्य है। हे मानव! जागो, वह तुम्हें बुला रहा है। नित्य सत्य को भुलाकर या अलग कर, असत्य की ओर जाकर सुख नहीं प्राप्त कर सकते। वास्तव में जो नित्य सत्य है, उसे पाकर ही सुख और आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। इन सार तत्त्वों का उद्घाटन करते हुए, स्वामी चिदानन्द ने स्थूल, सूक्ष्म और कारण को समझाते हुए, पाशविक शक्ति और देव शक्ति की व्याख्या की, जो शरीर के अन्तर्गत है। साथ ही स्वामी सत्यानन्द के कार्य को सराहा, शुभकामना दी।

संतों की जीवन-चर्या अद्भुत होती है। स्वामी चिदानन्द ने अपने गुरुदेव व सभी गुरु भाइयों की ओर से हमारे गुरुदेव, अपने बाल-बन्धु सत्यम् को शुभकामना दी, देश-विदेश से आये प्रतिनिधियों एवं जिज्ञासुओं को शुभकामना दी, विश्व-कल्याण हेतु शांति पाठ किया।

14 तारीख की सत्संग सभा में 13 वर्षीय स्वामी निरंजन के प्रवचन के पहले, श्री स्वामीजी ने नन्हें शिष्य का परिचय देते हुए कहा–'निरंजन के

लिए तो हम हैं, परन्तु हमारी जो व्यक्तिगत क्षति हुई है, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती।' गुरुदेव अपने प्रिय शिष्य, अभिन्न सखा को नहीं भूले हैं। श्री टैगोर जी के शब्द याद आ गये, 'मरण-सागर के पार भी तुम अमर हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं।'

मरण सागर पारे, तोमरा अमर, तोभादरे स्मरि।

दोपहर के सत्संग में प्रतिनिधियों ने अभिनन्दन की इच्छा व्यक्त की, समय व अनुमति चाही, समय मिला, सिर्फ एक घण्टे का ही।

शाम की सभा की भीड़ देखकर व्यवस्थापक, स्वयं-सेवक परेशान हो रहे थे। पण्डाल, बरामदा, छत, दीवार, पेड़, सड़क, सब तरफ सिर्फ आदमी ही आदमी दिखाई दे रहे थे। समापन-प्रवचन और शांति पाठ के बाद, श्री स्वामीजी के स्नेहपूर्ण आदेशानुसार जनता बड़ी शान्ति से चली गई। व्यवस्थापक, प्रतिनिधि एवं स्वयं-सेवक आश्चर्यचकित देखते ही रह गये।

इस तरह सत्संग सभा के 7 दिन बीत गये। शिव मंदिर में भव्य शृंगार, सजावट व मंत्र-पाठ सहित दुग्धाभिषेक विशेष दर्शनीय रहा। आश्रम हॉल में योग साहित्य की प्रदर्शनी के साथ ही कुण्डलिनी के हर अंग की नयनाभिराम हस्तकला भी दर्शनीय रही। 7 दिन में मंच पर एक से बढ़कर एक विद्वान् महापुरुष आये। अवधूत स्वामी करुणानन्द का 'ब्रह्म मुरारी सुरार्चित लिंगम्', श्रीमती अमरसंगीत के भजन-कीर्तन और श्रीमती कृष्णा देवी का श्लोक सहित रामायण पर मोहक प्रवचन, मैथिल भाषा में मिथिला में फुलवारी कथा ...।

पत्रकार श्री साधन चैतन्य के शब्दों में ...

जब भी कुछ शुभ कार्य होता है, तब बाधायें भी अपनी शक्ति आजमाने के लिए उपस्थित हो जाती हैं। सोच रहा था, हर बार गेंद जमुना में गिर जाती है, और नाग-नाथना पड़ता है। आखिर यह प्रक्रिया कब समाप्त होगी?

लेकिन जब श्री स्वामीजी की ओर देखा, तब लगा कि हमारा कृष्ण जरा-भी विचलित नहीं है। इन्द्र के कोप से जरा भी चिन्तित नहीं है। इन्हें तो बार-बार नाग-नाथने में आनन्द ही आता है। तूफान-पानी के समय लगा कि यमुना किनारे खड़े होकर चुनौती दे रहे हैं–

तान तान फन व्याल -
कि मैं तुझ पर चढ़कर बाँसुरी बजाऊँ ॥
विषधारी मत डोल -

कि मेरा आसन बहुत कड़ा है ॥
लघुता में भी कृष्ण -
आज विषधारी 'साँपों' से बहुत बड़ा है ॥

और सम्मेलन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया। कहा तो यहाँ तक जा सकता है कि यह सम्मेलन विश्वभर में योग की क्रान्ति को एक नई दिशा देगा। हमेशा की तरह बम्बई के मि.पई ने सातों दिन की पूरी फिल्म बनायी, जो छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन में सभी जगह दिखायी गयी।

अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल व सभी संस्था वालों ने तय किया कि हम लोगों को अनुमति मिल जाये तो 3-3 दिन का शिविर करेंगे। सेक्रेटरी होने के नाते श्री स्वामीजी से बात करने का दायित्व धर्मशक्ति को दिया गया। उन्होंने कहा—ठीक है, सबको बुला लो, हम बात करेंगे। सबसे बातें हुईं, तय हुआ कि 2–3 दिन प्रोग्राम होगा। अपना व शहर का नाम लिख कर सब हमें दे दो। प्रथम शिविर नन्दग्राम में होगा, दिसम्बर 29–30–31 को। उसी समय हम सबको तारीख बता देंगे, फिर हम मुंगेर आयेंगे। फरवरी या उससे पहले जैसा तय होगा, हम दो माह तक सब जगह जायेंगे।

नन्दग्राम में सम्मेलन की पूरी तैयारी हुई। 28 दिसम्बर 1973 को श्री स्वामीजी, तीन अन्य स्वामी, स्वामी निरंजन और दक्षिण अमेरिका के 8 व 10 वर्षीय सनन्दन और सनत कुमार के साथ कार से आये। चार स्वामी नवम्बर में ही भेजे थे, तैयारी व काम करने के लिए। सब तरफ से लोग आये थे। करीब छः-सात सौ लोग बाहर से आये थे। 29 तारीख की सुबह से नियमित कक्षाएँ शुरू हो गयीं। प्रतिदिन 4 सत्र चलने लगे। बाहर से आये संत-महात्माओं, साहित्यकारों, श्री स्वामीजी एवं स्वामी निरंजन के प्रवचन होते। श्रीमती अमरसंगीत का भजन-कीर्तन होता, राजेश मुहम्मद का रात को रामायण पर प्रवचन होता।

31 दिसम्बर की सुबह श्री स्वामीजी ने प्रवचन में कहा, '31 दिसम्बर सत्यव्रत जी की पुण्य तिथि माने या कुछ भी माने, तिथि तो शरीर की होती है, आत्मा की नहीं, आत्मा तो अभी भी है, जैसे पहले थी। उनके और हमारे बीच में जितनी आपसी समझ थी, जितना हम लोग एक-दूसरे को समझते थे, हमको उतना समझने वाला आज तक नहीं मिला ...।

यह जीवन तो चला गया, मगर निश्चित है हमने जीवन में एक आदमी को देखा, जिसको देख कर हमने भी सीखा कि किस प्रकार से मनुष्य सोच सकता

है; एक आदर्श जीवन गृहस्थ आश्रम में बिता सकता है; और किस प्रकार से गुरु की सेवा करते हुए, चेले के रूप में भी गुरु उसको गुरु मानता है। हम उनको बहुत मानते थे ...।' इसी तरह एक घण्टे प्रवचन में उन महान् आत्मा को याद किया, बहुत सी पुरानी बातें बतायीं, फिर शन्ति पाठ ... मौन ...

शाम के प्रवचन के बाद उन्होंने कहा, इसे छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन का नाम देना है। फरवरी-मार्च, दो माह जो सब जगह प्रोग्राम होंगे, वे सब इसी के अन्तर्गत होंगे। सभी जगहों के लिए तारीख की सूची दी। सब बताया, समझाया और प्रोग्राम के बाद मुंगेर के लिए प्रस्थान किया। तीन दिन के सम्मेलन में प्रवचन का विषय था–'सुरत शबद योग'।

1974 की गतिविधियाँ

28 जनवरी 1974 को बसन्त पंचमी, सरस्वती पूजा के दिन 'बेड़ा कोलियरी धनसार' (धनबाद से 4 किलोमीटर दूर) में 'धनबाद योग विद्यालय' की स्थापना हुई। श्री गोपीकृष्ण केजरीवाल ने अपना निवास स्थान आश्रम के लिए समर्पण किया। श्री स्वामीजी उसे आश्रम का रूप देकर, वहाँ स्वामी रखकर, योग कक्षाएँ चलाने की बातें समझा कर, सत्संग-प्रवचन करके मुंगेर आये। मुंगेर में दो दिन का सत्संग हुआ।

छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन के नाम से 20 शहरों में दो-दो दिन का प्रोग्राम बना है। श्री स्वामीजी ने 4 स्वामियों व स्वामी निरंजन, सनन्दन एवं सनत कुमार को लेकर 4 फरवरी को मुंगेर से प्रस्थान किया। पहले इलाहाबाद गये, फिर अम्बिकापुर, कोरबा, जांजगीर, बिलासपुर, रायपुर, भिलाई, महासमुन्द, धमतरी, जगदलपुर, नन्दग्राम आये। एक दिन विश्राम करके गोंदिया गये। वहाँ से बालाघाट, पंचमढ़ी, जबलपुर, सतना, भोपाल, सागर, टीकमगढ़ होते हुए, सभी जगह दो-दो दिन का प्रोग्राम करते हुए 30 मार्च को मुंगेर पहुँचे।

4 अप्रैल को दक्षिण अमेरिका के लिए प्रस्थान किया, वहाँ योग सम्मेलन का उद्घाटन करके 10 अप्रैल को मुंगेर आ गये। 12 अप्रैल को श्री स्वामीजी सम्बलपुर पहुँचे। वहाँ 13 से 15 तारीख तक योग सम्मेलन था, उद्घाटन व संचालन करके 16 अप्रैल को मुंगेर के लिए प्रस्थान किया।

मुंगेर आश्रम में 4 जुलाई को गुरु पूर्णिमा उत्सव मनाया गया, 3 दिन का साधना शिविर लगा।

कोलम्बिया आश्रम संचालन के लिए स्वामी निरंजन बगोता पहुँचे। बगोता में रजत जयन्ती मनाने की विशाल-व्यापक तैयारी हो रही थी।

28 सितम्बर से 18 अक्टूबर तक श्री स्वामीजी का प्रोग्राम जर्मनी में था, प्रोग्राम के बाद वे मुंगेर आ गये।

1 से 3 नवम्बर 1974 तक धनबाद में 'कोल फील्ड योग सम्मेलन' हुआ। उद्घाटन बद्रिकाश्रम के श्री शंकराचार्य जी ने किया, संचालन श्री स्वामीजी ने किया। अनेक संत-महात्मा, वैज्ञानिक एवं संगीतज्ञों का आगमन हुआ था।

1975 की गतिविधियाँ

30 जनवरी 1975 गुरुवार को प्रात: 9.15 बजे श्री स्वामीजी द्वारा रायपुर आश्रम का भूमि-पूजन सम्पन्न हुआ।

फरवरी में मुंगेर आश्रम में बसन्त पंचमी 'वार्षिकोत्सव' मनाया गया। तीन दिन का प्रोग्राम हुआ, भजन-कीर्तन-प्रवचन, रामायण का कार्यक्रम हुआ।

8 से 11 मार्च तक बिलासपुर में संभागीय योग सम्मेलन हुआ। श्री स्वामीजी ने उद्घाटन एवं संचालन किया।

गुआ (सिंध भूमि) में 17 से 25 अप्रैल तक योग सम्मेलन हुआ, जिसका उद्घाटन व संचालन श्री स्वामीजी ने किया।

मई माह में नन्दग्राम में बच्चों का एक माह का सत्र चला। 106 बच्चे आये थे। 14 मई को श्री स्वामीजी का शुभ आगमन हुआ। बच्चों ने श्री स्वामीजी का दर्शन-सत्संग व आशीष प्राप्त किया। वे 3 दिन रहे। नन्दग्राम में अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन होने की बात थी।

मीटिंग करके श्री स्वामीजी ने नवम्बर 7 से 10 तक 4 दिन की तारीख तय करके, सब बातें समझायीं, किसको बुलाना है, क्या लिखना है, सब बताया। 4 स्वामी छोड़े, सितम्बर में और स्वामी लोग मुंगेर से आयेंगे मदद करने। बद्रिकाश्रम के शंकराचार्य शान्तानन्द जी को पत्र हम लिखवा देंगे, यह सब बताकर व सब काम समझाकर श्री स्वामीजी जबलपुर गये। जबलपुर में योग शिविर लगना था। श्री स्वामीजी ने 'महिला योग मण्डल' का उद्घाटन किया, दो दिन रहे, फिर 6 से 18 जून तक होने वाले शिविर का उद्घाटन करके, संचालन के लिए वहाँ दो स्वामी छोड़कर श्री स्वामीजी मुंगेर आ गये।

26 जुलाई 1975, गुरु पूर्णिमा के अवसर पर मुंगेर में 3 दिन का साधना शिविर लगा। 23 जुलाई को गुरु पूजा, भजन-कीर्तन, आशीर्वचन हुआ।

24 और 25 जुलाई को भजन-कीर्तन-सत्संग और रामायण पर श्रीमती कृष्णा देवी का प्रवचन हुआ।

26 जुलाई को 5 बजे सुबह श्री स्वामीजी ने 5 शिष्यों को 'अखिल भारतीय पद-यात्रा' के लिए आशीष देकर विदा किया। ये पद-यात्री संन्यासी प्रत्येक छ: मील पर पड़ाव डालेंगे, भिक्षाटन कर भोजन करेंगे। सत्संग करेंगे, गीता-रामायण पर चर्चा करेंगे, गाँव वालों को कुछ सिखायेंगे, समझायेंगे, उनके साथ जरूरत देखेंगे तो कर्म योग भी करेंगे। हर गाँव में एक दिन रहेंगे। इस तरह भारत के 77000 गाँवों में पैदल चलकर योग का संदेश जन-जन में पहुँचायेंगे।

स्वामी निरंजन योग सम्मेलन के कार्य में व्यस्त हैं, कोलम्बिया के क्षेत्रीय शहरों का दौरा कर रहे हैं।

1 अक्टूबर 1975 को श्री स्वामीजी व स्वामी अमृतानन्द रजत जयन्ती सम्मेलन के लिए बगोता गये। सम्मेलन के बाद वे इक्वाडोर, पेरू, अरुवा, ब्राजील, बोलिविया, चिली, पनामा, वेनेजुवेला, अर्जेन्टाइना, कुरासाव, ग्वाटेमाला, ऊरुग्वे, अलसालवादोर, परागुआ, त्रिनोदाद, गुआना तथा अन्य छोटे-छोटे द्वीपों में गये। बार्सीलोना, कोपेनहेगेन, स्टॉकहोम और पेरिस भी गये, वहाँ से मुंगेर आये।

नन्दग्राम में अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन

योग सम्मेलन के संचालन के लिए श्री स्वामीजी 5 नवम्बर 1975 की शाम को नन्दग्राम पहुँचे। सात तारीख से सम्मेलन होना है, तैयारी हो चुकी है, काम चल रहा है। छ: नवम्बर को लोगों का आना शुरू हो गया। चार बड़ी-बड़ी धर्मशालाओं में इन्तजाम था, और सभी धर्मशालायें पूरी भर चुकी थीं। श्रीमती कृष्णा देवी नहीं आ सकीं किसी कारणवश, श्रीमती अमरसंगीत व श्री राजेश रामायणी आये। श्री अशोक दास, श्री सोमनाथ कानौजे, स्वामी आनन्द कपिल, कुमारी गीता अयंगार, प्रो. राव, डॉ. केन्धे, श्री विष्णु कुमार आर्य, कुछ संत-भक्त, सभी आश्रमों के स्वामी, सभी संस्था वाले व परिचित लोग। 2000 लोगों का बाहर से आगमन हुआ था। बद्रिकाश्रम के स्वामी शान्तानन्द जी ने उद्घाटन किया, वे तीन दिन उपस्थित रहेंगे। श्री स्वामीजी ने संचालन किया। कुमारी गीता अयंगार के आसन-प्रदर्शन देख सब चकित हो उठते, श्रीमती अमरसंगीत के भजन, राजेश मुहम्मद की रामायण, सभी मनीषियों

के प्रवचन, श्री स्वामीजी के प्रवचन होते रहे। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश और विदेश से भी लोग उत्सुकतावश आये थे। नन्दग्राम के प्रति सबको आकर्षण था, क्योंकि यह स्वामी सत्यव्रत का गाँव था, जिसे स्वामी सत्यानन्द जी ने अपना सारनाथ बनाया था। और स्वामी निरंजन की जन्मभूमि होने का सौभाग्य भी इस ग्राम को प्राप्त है। इन्हीं सब आकर्षणों से लोग दूर-दूर से आये थे।

4 दिन का सम्मेलन बहुत ही सफलता के साथ पूरा हुआ। स्मृति ग्रंथ था, 'ध्यान तंत्र के आलोक में।' 10 नवम्बर की रात को समापन करके, 11 तारीख से 15 दिन की ध्यान-साधना कक्षा की योजना थी, श्री स्वामीजी ने उसका उद्घाटन 10 नवम्बर की शाम को किया व आश्रम प्रांगण में वट वृक्ष लगाकर आशीर्वचन के साथ समापन करके, रात को ही कार से रायगढ़ के लिए प्रस्थान किया।

11 नवम्बर को रायगढ़ विद्यालय की प्रशासिका समिति की मीटिंग हुई, विद्यालय व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करके श्री स्वामीजी मुंगेर गये।

श्री स्वामीजी ने 17 से 19 दिसम्बर तक बम्बई में सत्संग दिया। पटना में 3 दिन के सम्मेलन में 4 स्वामी लेकर गये।

1976 की गतिविधियाँ

5 से 7 फरवरी 1976 तक मुंगेर आश्रम का तेरहवाँ प्रतिष्ठान दिवस मनाया गया। तीन दिन का सत्संग हुआ, श्रीमती कृष्णा देवी, श्री राजेश मुहम्मद का कथामृत, श्री अशोक दास के भजन हुए। श्री स्वामीजी के प्रवचन हुए, बाहर से बहुत लोग आये थे।

अखिल भारतीय योग पद-यात्रा के 5 संन्यासियों की टोली, बिहार प्राँत की सफल यात्रा के बाद अब मध्य प्रदेश में प्रवेश कर चुकी है और मध्य प्रदेश के गाँवों में यात्रा कर रही है।

श्री स्वामीजी ने टेलिविजन कम्पनी और 'इन्डियन चेम्बर ऑफ कॉमर्स' के महिला स्वाध्याय मण्डल के विशेष निमंत्रण पर कलकत्ते में 19 एवं 20 फरवरी को 'आधुनिक युग तथा हठ योग और तंत्र योग' पर प्रवचन दिया। इसके पहले आसनसोल में 18 फरवरी को प्रोग्राम था। कलकत्ता से इलाहाबाद गये, वहाँ 24 से 26 तक प्रोग्राम करके, फिर कलकत्ता आये। वहाँ 2 मार्च तक रहे। फिर सुपौल, सम्बलपुर, रामगढ़ होते हुए 11 मार्च को नन्दग्राम पहुँचे।

वहाँ एक हफ्ते का प्रोग्राम था। वहाँ से बड़हिया आये, वहाँ 20–21 को प्रोग्राम था, वहाँ से मुंगेर आये।

श्री स्वामीजी ने 13 से 16 अप्रैल तक नन्दग्राम में प्रवास किया। सुबह दीक्षा, आध्यात्मिक गोष्ठी, शाम को सामान्य सत्संग होता रहा।

श्री स्वामीजी ने 16 अप्रैल शाम को भिलाई परियोजना के कर्मचारियों द्वारा भिलाई होटल में आयोजित समारोह में भाग लिया, इसका आयोजन योग मित्र मण्डल, भिलाई द्वारा किया गया था।

'आश्रम ग्राफिक्स' मुंगेर में प्रकाशन एवं मुद्रण स्तर को बढ़ाने के उद्देश्य से लाइनों मोनो कम्पोजिंग मशीन स्थापित की गयी। पत्राचार पाठ्यक्रम 'क्रिया' नाम से हिन्दी व अँग्रेजी में हर माह प्रकाशित होने लगा। जनवरी 1974 से तीन वर्ष का पाठ्यक्रम है, दिसम्बर 1976 में पूरा हो जाएगा।

श्री स्वामीजी ने तेनुघाट, हजारीबाग में 1 से 10 मई तक 'क्रिया योग सत्र' का संचालन किया।

7 से 22 मई तक मुंगेर में 10 से 18 वर्ष के बच्चों का सत्र लगा था। उसमें करीब 150 बच्चे आये।

ऐतिहासिक नगर मुंगेर से पाँच पद-यात्रियों ने 26 जुलाई 1975 को पद-यात्रा शुरू की थी, वे बिहार से मध्य प्रदेश पहुँचे हैं। स्वामी वेदानन्द, स्वामी अगेहानन्द, स्वामी शंकराचार्य, स्वामी विद्युतानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द। ये पद-यात्री श्री स्वामीजी से ग्राम 'सरसिबा', जिला बिलासपुर में मिले। वहाँ सत्संग सभा का आयोजन हुआ। श्री स्वामीजी के आदेशानुसार ये रायगढ़ योग विद्यालय में आयोजित कार्यक्रम में भाग लेंगे।

11 जुलाई 1976 को गुरु पूर्णिमा मध्य प्रदेश योग विद्यालय, रायगढ़ में मनायी गयी। 11 को गुरु-पूजा, 12–13 को सत्संग-प्रवचन, भजन-कीर्तन का प्रोग्राम हुआ। श्री स्वामीजी 13 तारीख तक वहाँ रहे, तीनों दिन उनके निर्देशन में सत्संग हुआ।

स्वामी निरंजन ने, जो सत्यानन्द आश्रम बगोता का संचालन कर रहे हैं, मनीला लेज, ग्वाटेमाला, सेन सल्वाडोर (मध्य अमेरिका) में सफलतापूर्वक योग सम्मेलन किया।

श्री स्वामीजी ने राँची के इस्पात क्लब द्वारा आयोजित 'योग-सेमिनार' का समापन 25 जुलाई को किया। इन्डियन एक्सप्लोजिव्स, गोभिया को अपनी शुभकामना दी, और योग-सेमिनार का उद्घाटन करके आश्रम वापस आ गये।

श्री स्वामीजी अगस्त की 5–6 तारीख को कलकत्ता, 7 को खड़गपुर, 8 को कटक गये। 9 को विशाखापट्टनम, 10 को मद्रास पहुँचे। 10 से 14 तक महावलीपुरम्, 15–16 को हैदराबाद, 17 को नागपुर, 18 अगस्त को जबलपुर पहुँचे। वहाँ से मुंगेर गये।

9 से 14 अक्टूबर 1976 तक अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन सिडनी में हो रहा है। इस सम्मेलन के लिए श्री स्वामीजी और स्वामी अमृतानन्द सिडनी गये हैं।

रायपुर में 6 से 10 नवम्बर 1976 तक राष्ट्रीय योग सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन व संचालन श्री स्वामीजी ने किया। रायपुर आश्रम के नवनिर्मित भवन का उद्घाटन हुआ। द्वीप प्रज्वलित किये गये। बाहर से बहुत लोग आये थे। सबका प्रवचन होता, श्री स्वामीजी का प्रवचन होता, फिर प्रश्नोत्तर होता। कुमारी उमा भारती का प्रवचन हुआ। श्रीमती कृष्णादेवी का रामायण पर बहुत ही मोहक प्रवचन होता था। 11 तारीख को श्री स्वामीजी मुंगेर गये।

श्री स्वामीजी ने भोपाल में 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल' के तत्त्वावधान में 1 से 3 दिसम्बर तक आयोजित त्रिदिवसीय योग सेमिनार का उद्घाटन एवं संचालन किया। प्रवचन हुए, फिर प्रश्न-उत्तर चला।

14 वर्ष पूर्व, 1963 में गुरुदेव ने दो नन्हें पौधे 'योगविद्या' और 'योगा' नाम देकर, स्वामी सत्यव्रत को सौंपे थे, और उन्हें स्वामी सत्यव्रत ने अपना सर्वस्व समझकर खून-पसीने से सींचा था। अब वे वट-वृक्ष से देश-विदेश में फैल गये हैं। आशाओं के प्रतीक इन्हीं पौधों को धर्मशक्ति ने विषम परिस्थिति में गुरुदेव को कई बार सौंपना चाहा था। वे यही कहते, 'सत्यव्रत जो काम शुरू कर गये हैं, तुम्हें उसे आगे बढ़ाना है, पूरा करना है। तुम नारी नहीं हो, अवधूत बन कर पूरी जिम्मेदारी उठाओ और उनके काम को पूरा करो।' उन्हीं आशाओं के प्रतीक पौधों को गुरुदेव ने जनवरी 1977 से अपने संरक्षण में लेना स्वीकार कर लिया है।

प्रभु की विशेष कृपा, गुरुदेव के असीम आशीष, ब्रह्मलीन महान् आत्मा के सहयोग से प्रेस, आश्रम, संस्था, पत्रिका, पुस्तकें और पूज्य गुरुदेव का कार्य, सब काम संभालने की शक्ति मिली। एक काम पूरा हुआ, कुछ और अधूरे काम हैं, उन्हें भी जल्द से जल्द पूरा कर सकूँ, यही कामना व प्रार्थना है।

जनवरी 1977 से दोनों पत्रिकायें, 'योगा' और 'योग विद्या' आश्रम ग्राफिक्स, मुंगेर में छपेंगी। गुरुदेव के आज्ञानुसार हिन्दी पुस्तकें योग विद्या प्रेस, नन्दग्राम से छपती रहेंगी।

1977 की गतिविधियाँ

जनवरी 1977 से 'योगा' और 'योगविद्या' मुंगेर से प्रकाशित होने लगीं।

जनवरी की 24–25–26 तारीख को बसन्त पंचमी के अवसर पर चौदहवाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। श्री स्वामीजी ने शिविर का उद्घाटन और संचालन किया।

तोप चांची में 'क्रिया योग' की व्यावहारिक कक्षा चल रही थी, श्री स्वामीजी के आदेशानुसार प्रशिक्षण काल में सब साधकों ने मौनव्रत रखा था। इस समारोह के समापन पर आशीर्वचन देने श्री स्वामीजी तोप चांची गये।

श्री स्वामीजी ने 24 जनवरी 1977 को बिहार योग विद्यालय में एक योग अनुसंधान केन्द्र समिति का गठन किया। यह केन्द्र विश्व में हो रहे अनुसंधान और इसी विषय से सम्बन्धित अन्य विषयों पर हो रहे विभिन्न प्रयोगों की सूचना व आँकड़े एकत्र करेगा।

इस केन्द्र के शोध के विषय होंगे–क्रिया योग, कुण्डलिनी योग, प्राण विद्या, योग निद्रा, ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, त्राटक, अजपाजप, स्वर योग, नाद योग, हठ योग, षट्कर्म, आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बंध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय सम्बन्धी सभी पैथियाँ (पद्धतियाँ), जैसे, पॉली पैथी, होमियोपैथी, आस्टियोपैथी, कीरोपैथी, आयुर्वेद, योगाथेरापी, सन्तुलित आहार, अक्युपंक्चर, साइकिक हीलिंग, आत्म-चिन्तन द्वारा आरोग्य, मनोविज्ञान, आधुनिकतम अनुसंधान, बायोफीडबैक, किर्लियन फोटोग्राफी, इनोप्लास्मिक थ्योरी, पिरामिडयोलॉजी, कास्मोलॉजी। इसके अलावा जेन, थाम-ची-थान, कैथोलिकि मेडिटेशन, ज्योतिष विज्ञान, ग्रह विज्ञान, ग्राफोलॉजी, फ्रेनोलॉजी, उजाल, हिप्नोटिज्म, तांत्रिक पूजा विधि, चक्र विद्या, साइकिक फिजियोलॉजी, मण्डल, मंत्र और यंत्र आदि विद्याओं का समावेश किया जायेगा।

यह अनुसंधान समिति स्वामी सत्यानन्द के मार्गदर्शन में कार्य करेगी। इसके सदस्य होंगे–स्वामी योगमुद्रानन्द और स्वामी निरंजन। इनके साथ भारत के 5 डॉक्टर व विदेश के 22 डॉक्टर भी रहेंगे।

श्री स्वामीजी 20 फरवरी को स्वामी अमृतानन्द एवं स्वामी योगमुद्रानन्द के साथ काठमाण्डू पहुँचे। काठमाण्डू के लायन्स क्लब व नेपाल में भारतीय दूतावास के निमंत्रण पर श्री स्वामीजी ने दो सभाओं में योग पर प्रवचन दिये। 'संयुक्त राष्ट्र विकास परिषद्' के विशिष्ट अधिकारी श्री हाउसनर के निवास पर विशेष सत्संग हुआ। नेपाल के लोगों पर योग का विशेष प्रभाव पड़ा। 25 फरवरी की अंधेरी रात को, अंधेरी निशा में सोई हुई पर्वत-मालाओं की संकीर्ण सड़क, कुण्डलिनी की तरह बल खाती सुषुम्ना नाड़ी से (सड़क से) श्री स्वामीजी कार से भारत आ गये।

स्वामी निरंजन ने स्वामी सत्य वेदानन्द के साथ तस्मानिया के विभिन्न भागों में अपना कार्यक्रम पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न किया। इस कार्यक्रम में स्वामी निरंजन ने व्यावहारिक अभ्यास, आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बंध तथा प्राण विद्या की कक्षाओं का आयोजन किया व सामूहिक प्रवचन भी दिये।

ऑस्ट्रेलिया वासियों के विशेष अनुरोध पर श्री स्वामीजी, स्वामी अमृतानन्द के साथ ऑस्ट्रेलिया पहुँचे। वहाँ के सत्यानन्द आश्रम में 1 से 3 जुलाई तक होने वाले विशेष सत्संग लाभ के लिए ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और प्रशान्त महासागरीय द्वीपों के एक हजार से अधिक भक्तगण उपस्थित थे। इसके बाद श्री स्वामीजी और स्वामी अमृतानन्द मनीला और हांगकांग होते हुए 7 जुलाई को भारत वापस आ गये।

स्वामी निरंजन अपनी छः वर्षों की यूरोप, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया की लम्बी यात्रा के बाद मुंगेर आ गये हैं।

रायपुर आश्रम में गुरु पूजा का कार्यक्रम मनाया गया। तीन दिन के सत्संग में श्री स्वामीजी, स्वामी निरंजन और स्वामी अमृतानन्द के साथ उपस्थित थे। कलकत्ते में विशेष काम के कारण श्री स्वामीजी दूसरे दिन रात को ही कलकत्ता चले गये।

19 अगस्त 1977 को कलकत्ता के थियेटर रोड में जमुना बिल्डिंग की तीसरी मंजिल पर श्री स्वामीजी ने 'बिहार योग विद्यालय, कलकत्ता आश्रम' का उद्घाटन किया।

श्री स्वामीजी ने स्वामी अमृतानन्द के साथ 3 से 6 सितम्बर तक जिनाल में यूरोपीय देशों के योग शिक्षक प्रशिक्षकों के सम्मेलन में भाग लिया व उन्हें सम्बोधित किया। इसका आयोजन यूरोपियन नेशनल फेडरेशन ऑफ योग ने किया था। इस सम्मेलन में भाग लेने श्री स्वामीजी के गुरुभाई,

स्वामी सच्चिदानन्द न्यूयार्क से व स्वामी वेंकटेश्वरानन्द मॉरीशस से आये थे। सभी जगहों से संत, भक्त, जिज्ञासु आये थे।

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में 26 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक 'क्रिया योग प्रशिक्षण सत्र' का आयोजन किया गया है, जिसमें सम्मिलित होने ऑस्ट्रेलिया से श्री स्वामीजी के 70 साधक शिष्य आ रहे हैं। डॉ. कर्मानन्द, एम.बी. बी.एस., सिडनी, बिहार योग विद्यालय मुंगेर में शोध कार्यों में योगदान देने हेतु आ चुके हैं।

श्री स्वामीजी ने 18 से 23 नवम्बर तक कलकत्ता आश्रम में प्रवास करके भक्तों को सत्संग लाभ दिया।

17 नवम्बर को 'महिला योग क्लब, कुमारडुब्बी' के नये भवन की प्राण-प्रतिष्ठा की, प्रवचन दिया, फिर वहाँ से कलकता गये।

15 से 17 दिसम्बर तक मैदेलीन, कोलम्बिया में प्रवास किया, फिर बार्सीलोना होते हुए भारत आ गये।

श्री स्वामीजी के प्रवचनों की व हर तरह की बीमारियों के निवारण व योग से उपचार पर कई पुस्तकें छप चुकी हैं। डॉक्टरों की भी बीमारी व योगोपचार सम्बन्धी कई पुस्तकें, श्री स्वामीजी के निर्देशन में छप चुकी हैं, छप रही हैं।

1978 से हो रहे योग पर वैज्ञानिक अनुसंधानों की रिपोर्ट, विविध रोगों में योगोपचार के तरीके, विख्यात संतों, वैज्ञानिकों और डॉक्टरों की कलम से प्रस्तुत होंगे, पत्रिका में छपेंगे।

जनवरी 1978 में विद्वान् चिकित्सकों द्वारा मधुमेह, हृदय रोग, रक्तचाप, चर्मरोग, आर्थ्राइटिस, योग निद्रा, ध्यान और शीर्षासन पर किये गये शोध कार्यों की रिपोर्ट मिली। पूरे विवरण सहित हिन्दी और अँग्रेजी, दोनों पत्रिकाओं में छपी, पुस्तकें भी छपीं। शोध जारी है।

गंगादर्शन का पूर्व इतिहास

आज से पाँच हजार वर्ष पहले एक महायोगी, महादानी, महारथी, सूर्य पुत्र कर्ण महाभारत काल में हुए थे। माता कुन्ती के गर्भ से जन्म लिया, माता राधा ने पालन किया, राधेय कहलाये। कठिन परिस्थिति में विद्या सीखी, परिस्थिति ने अंग देश का राजा बना दिया। महाभारत काल का अंग देश ही भागलपुर है। इतिहास के अनुसार मुंगेर का किला ही राजा कर्ण का निवास था। चाहे

राजा कर्ण रहे हों इस किले में या अन्य किलों में, यह सोचना कि यहाँ रहे थे, बड़ा सुखद लगता है।

हाँ, तो मुंगेर शहर के तीनों ओर गंगा जी गोल घूम गई हैं। बीच में ऐतिहासिक शहर है। तीन दिशाओं में विशाल फाटक हैं। बीच में एक 23 एकड़ जमीन का टीला है, शहर से काफी ऊँचा। इसी किले के यानी टीले के नीचे तीन तरफ खाई है, सामने सड़क है, बगल में तालाब है। शायद पहले दो तालाब थे–राजा ताल, रानी ताल कहाते थे। इसी टीले पर वह ऐतिहासिक किला था। अगल-बगल में कई छोटे-छोटे भवन थे। मुख्य भवन के सामने ढाई-तीन फुट ऊँचा बड़ा-सा चबूतरा था, जिसे 'कर्ण चौरा' कहा जाता था। अध्यात्म विभूति, सूर्य पुत्र राजा कर्ण, जो कुन्ती पुत्र था, जो सूत-पुत्र कहलाया, जिसकी वीरता से प्रभावित होकर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने अंग देश का राज्य देकर उसे महाराजा कर्ण बनाया, वह इसी वैभवशाली 'कर्ण चौरे' पर बैठकर नित्य प्रति सवा मन सोना दान करता था।

इस किले का अंतिम बादशाह 'मीरकासिम' हुआ, उसके बाद यह किला अँग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। यह किला 1978 तक मुर्शिदाबाद के राजा कमला रंजन राय के अधिकार में था। खण्डहर हो चुका था, गलत तत्त्वों का अड्डा बना हुआ था। अपने बीते दिन की याद में बिखरा हुआ सा, किसी योग्य अधिकारी की प्रतीक्षा में था। लोग इस जगह को ही कर्णचौरा कहते थे। यानी पूरा टीला, खण्डहर भवन, सभी कर्ण चौरा ही कहलाते थे।

श्री स्वामीजी परिव्राजक जीवन में, 1956 में घूमते हुए जब बिहार आये, तब परिचित भक्त के अनुरोध पर मुंगेर आये थे। किले के पास ही भक्त का घर था। उनके घर में रहते थे, विशेष प्रोग्राम भी नहीं बना था, शाम का सत्संग ही होता था। यह स्थान ऊँचा व एकान्त में होने के कारण श्री स्वामीजी को बहुत अच्छा लगता था। सुबह-शाम-दोपहर यहीं बैठे रहते, भजन गाते, कुछ लिखते, कभी साधना भी करते। गर्मी के दिनों में देर तक बैठते, कभी सो भी जाते। इस जगह के प्रति इतना आकर्षण क्यों है, सोचते थे गृहस्थ के घर में रहता हूँ, कुछ प्रोग्राम तो रहता नहीं, खुले आकाश के नीचे, मुक्त वातावरण में अद्भुत शान्ति मिलती है। शुरू से ही प्रकृति की गोद में रहने व घूमने के कारण ही कर्ण चौरा विशेष प्रिय लगता ...

उस चौरे पर बैठने या सोने से उन्हें अजीब अनुभव होने लगे। कभी अच्छी व कभी भयावनी-डरावनी अनुभूति होती। सोचते कि कहीं यह भ्रम

तो नहीं है, मेरा मन क्यों ऐसा देखता है, हमेशा इसी जगह के विचार मन में रहते, जब मुंगेर से बाहर जाते तो सब कुछ भूल जाते, इसकी याद भी नहीं आती।

एक बार शाम को श्री स्वामीजी चौरे पर सो गये थे, नींद खुली तो शरीर में खूब आलस था। सोचा, सबेरा हो रहा है, खुले में रातभर सोया था, इसीलिए इतना आलस लग रहा है, चलकर स्नान करना है, पर आलस से उठा नहीं जा रहा था। काफी देर बाद चैतन्यता आई तो देखा, अभी तो शाम के साढ़े सात बजे हैं।

दूसरी बार वहीं पर सोये थे तो लगा भूमि हिल रही है। सोचा, भूकम्प है, मुंगेर भूकम्प पट्टी के अन्तर्गत आता है। शान्ति से बैठे रहे कि यह तो खुली जगह है, ऊपर छत तो है नहीं जो डरना ...।

कुछ समय बाद श्री स्वामीजी ने देखा कि चौरा एक जगह से फट गया है, जहाँ बैठे थे वहाँ से 15 फुट दूर चौरे में दरार पड़ गई थी, उसमें से सफेद लबादा पहने एक ऊँचा, लम्बी दाढ़ी वाला आदमी निकला, उसके कपड़े हवा में उड़ रहे थे, लम्बी सफेद दाढ़ी थी, उसने इनकी ओर देखा, फिर चला गया। कुछ भय-सा लगा, फिर सोचा, कोई बात नहीं, डर क्यों? पास जाकर देखा, दरार बड़ी है, नीचे कुछ कब्र सी दिख रही है। मन में विचार उठा, 'वह आदमी आकर मुझे ले जायेगा', वापस आ गये। इसी तरह कई अनुभव हुए। पर जब मुंगेर छोड़ा, तब सब कुछ भूल गये।

श्री स्वामीजी कुछ माह बाद फिर मुंगेर आये। एक-दो भक्त थे, विशेष प्रोग्राम तो होता नहीं था। भोजन के बाद उसी पहाड़ी पर बैठते, 'कर्ण चौरा' में बैठते, सो भी जाते। उत्सुकतावश वहाँ पर तीन रातें व्यतीत कीं। एक दिन कर्ण चौरा में शवासन में लेटे थे, ऐसा लगा कि लेटे-लेटे ही ऊपर उठ रहे हैं, इतनी तेजी से उठ रहे हैं कि हृदय धड़कने लगा। जब नीचे आये, तब पसीने-पसीने हो रहे थे। अपने को संभालने का प्रयत्न करने लगे, दाहिनी करवट सोये, बायीं करवट ली, सीधा सोये, मकरासन में सोये, सीधा सोकर गहरी लम्बी साँसें लेने लगे। भारीपन व धड़कन कम नहीं हो रही थी। एकाएक वही आदमी चौरे की दरार से निकल कर आया और बोला, 'तुम यहाँ ठहरो।'

श्री स्वामीजी तेजी से उठे और अपने इष्ट की याद करते हुए वहाँ से चले गये। सोचा, यह स्थान सुरक्षित नहीं है, और वहाँ जाना छोड़ दिया। श्री स्वामीजी 9–10 वर्ष की उम्र में मसान साधना कर चुके थे। वे डरते नहीं थे,

इसी से इन घटनाओं का उन पर कोई असर नहीं हुआ। फिर मुंगेर आये तो गोयनका जी के निमंत्रण पर आनन्द भवन में ठहरे। वह जगह भी प्राकृतिक छटा से भरपूर लुभावनी है, वहाँ भी कई अनुभव होते रहे। वहाँ रहते, साधना करते, कर्ण चौरा की तरफ ध्यान ही नहीं देते। अब जब भी मुंगेर आते, आनन्द भवन में रहने लगे। साधना करते, सत्संग करते, काम बढ़ने लगा, फैलने भी लगा, प्रोग्राम होने लगे। श्री स्वामीजी के शिष्य भक्त आते, वे भी आनन्द भवन में रहते, साधना करते, अनुवाद करते, पुस्तकों के काम में मदद करते।

1963 में श्री स्वामीजी को अपने गुरु जी के दर्शन हुए, आदेश प्राप्त हुआ, आश्रम की बात हुई, आश्रम बना। 19 जनवरी 1964 को उद्घाटन हुआ। दीपक प्रज्वलित हुआ, योग कक्षायें शुरू हुईं, सम्मेलन हुआ, देश-विदेश के लोग आने लगे। पर कर्णचौरा को श्री स्वामीजी भूल नहीं सके। वह ऐतिहासिक किला सामने ही था। आश्रम के सामने सड़क के बाद खाई है, खाई के पीछे टीला है, और मुख्य भवन का खण्डहर सामने ही था। आने वालों के लिए आकर्षण का केन्द्र भी था। लोग आश्चर्य से देखते व पूछते, श्री स्वामीजी उसका इतिहास बताते, अक्सर गर्मियों में सुबह घुमाने भी ले जाते थे सबको।

'सच्ची बात' के संपादक श्री देवेन्द्रनाथ गुप्त का श्री स्वामीजी से परिचय हुआ। वे श्री स्वामीजी, योग विद्यालय के कार्यक्रमों, सम्मेलनों व योग साहित्य से प्रभावित थे। वे हमेशा कहते, ऐतिहासिक 'कर्ण चौरा' श्री स्वामीजी के पास आकर अपना नया इतिहास अवश्य बनायेगा। वे बतलाते थे, इस ऐतिहासिक जगह पर 1950 ईस्वी में सरकार ने 'अमला-कॉलोनी' बनाने का निर्णय लिया था, पर लोगों के विरोध करने पर इसे सार्वजनिक उपयोग के लिए छोड़ दिया। इस किले के सम्बन्ध में अनेक दंत-कथायें हैं।

भागलपुर अंग देश था और यह अंगराज कर्ण का, चण्डी देवी भक्त कर्ण का, दानवीर कर्ण का किला, कर्ण-चौरा था। अनुश्रुतियों के संकलन के क्रम में 'बुकानन' ने ज्ञात किया कि राजा कर्ण ने ही यह भवन इस पहाड़ी पर बनवाया था, निवास के लिए नहीं, बल्कि दान कृत्य के लिए। अँग्रेजों के जमाने में मीरकासिम ने इस पर अधिकार जमाया, भवन भी उसने ही बनवाया, महाभारत काल के भवन तो कब के खत्म हो गये होंगे। अँग्रेजी सेना के कमाण्डर व और भी कई लोग रहते थे। इस ऊँचे स्थान से अँग्रेज

अधिकारियों को समय-समय पर तोपों की सलामी दी जाती थी। बाद में इस स्थान को अँग्रेजों ने विजय नगरम् के राजा के हाथों बेच दिया। बाद में उस राजा से मुर्शिदाबाद के राजा अन्नदाराय ने खरीद लिया, उनके पुत्र आशुतोष राय इस भवन में रहने लगे। कर्ण-चौरा 'चबूतरे' पर उनकी संगीत गोष्ठी जमने लगी। उस समय लोग इस जगह पर वायु-सेवन, विश्राम, गोष्ठी व मनोरंजन के लिए आने लगे। जमींदारी उन्मूलन के बाद राजा आशुतोष व उनका लड़का कमला रंजन राय मुर्शिदाबाद में रहने लगे।

पहाड़ी पर 23 एकड़ भूमि में ऐतिहासिक किला 'कर्ण-चौरा' था, उसी के पार्श्व में बन्दूक कारखाने का निर्माण हुआ। वातावरण कुरूप-सा होने लगा। असंख्य फल-पौधे कट गये। चबूतरे के आस-पास स्थित अनूठे अज्ञात नाम वृक्ष काट दिये गये। 'कर्ण-चौरा' चबूतरे से सटा पूर्व दिशा में एक चत्वर वृक्ष था। कोई भी पहचान नहीं सका था। उसकी किसी भी एक डाल को जरा सा छू देने से समूचा वृक्ष हिलने व काँपने लग जाता था। दो दशक पहले तक वह वृक्ष था। सरकारी वृक्षारोपण समारोहों की धूमधाम के बावजूद परिसर में फैले अनेक फल-फूल के वृक्षों को नष्ट कर दिया, 'वेदिका' चबूतरे को क्षतिग्रस्त कर डाला, उस खण्डहर रूपी भवन में असामाजिक तत्त्वों ने अधिकार जमा लिया। मुंगेर के हृदय-स्थान की विकृत अवस्था से पुराने बूढ़े लोग व्यथित थे।

पहाड़ी पर तीन तरफ खाई है। सामने किले से बाहर जाने का रास्ता व बड़ा-सा मैदान था। किले के सामने, रास्ते के बगल में बन्दूक कारखाना बन गया। सड़क के दूसरी तरफ इलेक्ट्रिक ऑफिस बन गया। बगल में राइफल क्लब का रोड व ग्राउन्ड है। पहले दो तालाब थे–राजा ताल, रानी ताल; अब तो एक ही बचा है। शायद एक को सुखाकर मैदान बनाया हो। पता चला कि खण्डहर भवन की जगह पर 'फाइव स्टार सुपर होटल' खुलने की योजना बन रही है। जिसमें मद्य-विक्रय और पान-सिगरेट की उत्तम व्यवस्था रहेगी। बन्दूक कारखाना तो बन ही चुका है, दारूखाना की कमी थी, वह भी पूरी हो जाएगी।

'कर्ण चौरा' का पुनर्जन्म 'गंगा दर्शन' के रूप में

कर्ण चौरा का पूर्व इतिहास जानने वालों व पुराने बुजुर्गों को वहाँ होटल खुलने की योजना से बहुत दु:ख हुआ, उन लोगों ने कहा, 'कितना अच्छा होगा, श्री स्वामीजी इस जगह को लेकर योग का स्थान बनायें। उनकी योजना बहुत

बड़ी है।' कुछ लोग श्री देवेन्द्रनाथ गुप्त को मुखिया बनाकर श्री स्वामीजी से मिले। बातें कीं, श्री स्वामीजी ने कहा, 'उस जगह के प्रति मेरे मन में आकांक्षा तो है, अगर वे बेचना चाहें तो ले लूँगा। वहाँ के लिए मेरे मन में योग प्रशिक्षण केन्द्र, योग लाइब्रेरी, योग रिसर्च सेन्टर, अस्पताल, बहुत-सी योजनायें हैं। आप लोग पता लगायें।'

श्री देवेन्द्रनाथ राजा कमला रंजन राय के पास गये, बातें कीं। कई बार उनके पास गये। कई तरह से उन्हें समझाते, सलाह देते, अनुरोध करते। जब श्री स्वामीजी कलकत्ता आश्रम जाते, तो वे मुर्शिदाबाद जाकर राजा साहब को कलकत्ता लाकर श्री स्वामीजी से मिलाते थे। कितनों ही दिनों तक इसी तरह बातें होती रहीं। अंततः इस ऐतिहासिक भूमि को राजा कमला रंजन राय ने जनवरी 1978 में योग्य व्यक्ति स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के हाथों में देना स्वीकार कर ही लिया।

राजा कमला रंजन राय ने तो श्री स्वामीजी को ही देंगे कह दिया। अब काँग्रेस गवर्नमेंट से बात करनी थी, क्योंकि प्रॉपर्टी टैक्स बहुत ज्यादा हो जाने से इस पर गवर्नमेंट का अधिकार था। और वह इसे बेचकर अपना टैक्स वसूलना चाहती थी।

दिल्ली जाने व सबसे मिलने का भार भी लिया श्री देवेन्द्रनाथ गुप्त ने, जिन्हें हम सब दादा जी कहते थे। उन्होंने इस विशेष कार्य को पूरा करने का संकल्प ही ले लिया। वे वकील थे, फिर बाद में 'सच्ची बात' साप्ताहिक पेपर निकालने लगे। उनकी उम्र 79 वर्ष, कन्धे तक बाल, सफेद-शुभ्र लम्बी दाढ़ी, लिबास धोती-कुर्ता-चादर। रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लगते थे। वृद्धावस्था में भी इस काम के लिए उन्हें बहुत उत्साह था। उनको कई बार दिल्ली जाना पड़ा, कितने लोगों से मिलना पड़ा, कितनी जगह चक्कर लगाने पड़े। गड़बड़ी करने वालों की कमी नहीं थी, ज्यादा रुपये का लालच देने वाले भी बहुत थे, बहुत परेशानी उठानी पड़ रही थी।

होनी ने अपना रूप दिखाया, प्रभु की असीम कृपा हुई, श्रीमती इंदिरा गाँधी श्री स्वामीजी से मिल चुकी थीं, बहुत प्रभावित भी थीं, श्री स्वामीजी का साहित्य भी पढ़ चुकी थीं, उन्होंने इस काम में पूर्ण सहयोग दिया और काम जल्दी पूरा करवा दिया। यह जगह श्री स्वामीजी को प्राप्त हो गयी।

राजा कमला रंजन राय से बात पक्की हो जाने के बाद 27 जनवरी को श्री स्वामीजी ने अपने शिष्यों-भक्तों के साथ 'कर्ण-चौरा' में पदार्पण किया।

घूमकर सब उस चौरे में बैठे, उसी समय श्री स्वामीजी ने कहा, इसी चत्वर (चौरे) में राजा कर्ण सोना बाँटते थे, मैं (सत्यानन्द) यहीं पर योग बाँटूँगा।

मार्च के पहले हफ्ते में काँग्रेस सरकार की स्वीकृति मिल गयी। लेन-देन पूरा करके कागज प्राप्त हुआ। श्री स्वामीजी ने बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के आश्रमों में कार्यरत शिष्यों को टेलिग्राम देकर बुलाया और 11 मार्च 1978 की सुबह सबको साथ लेकर कर्ण चौरा गये। कर्म योग शुरू हुआ, दो घण्टे काम के बाद कुछ देर आराम करने का आदेश मिला। श्री स्वामीजी एक पत्थर पर बैठकर माँ गंगा के दर्शन करने लगे। हम सब लोग भी उनके चारों तरफ बैठ गये। श्री स्वामीजी ने कहा, 'देखो, तीनों तरफ गंगा जी कैसे मेखलाकार घूम गई हैं, बीच में मुंगेर शहर जैसे गोद में बैठा बालक हो। इस निर्माणाधीन 'बिहार योग विद्यालय' का नाम होगा, 'गंगा दर्शन'। ऊँचे टीले पर स्थित इस जगह से सब माँ गंगा का दर्शन कर सकेंगे। किनारे पर लहलहाते खेत, प्रात:-सायं काल का सुन्दर नैसर्गिक दृश्य दर्शनीय है। माँ गंगा योग की प्रतीक हैं। गंगोत्री से समुद्र तक की उनकी यात्रा जीवात्मा की स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा है...' कहते-कहते गुरुदेव विभोर हो उठे।

10 बजे आश्रम पहुँचे। भोजन के बाद आदेश हुआ, अब आराम करो, एक बजे चलेंगे। कुछ स्वामियों ने एक योजना बनाई, फिर कहा, हम लोग गंगादर्शन जा रहे हैं, वहीं आराम करेंगे। उन लोगों ने ऊँची चौरस जमीन देखकर 4 लकड़ी गाड़कर मचान, जैसा कि खेतों में किसान लोग बनाते हैं, वैसा ही बैठने योग्य बनाया, बनाकर खुश हो रहे थे कि श्री स्वामीजी देखकर चकित हो जायेंगे। एक बजे सबको लेकर श्री स्वामीजी आये ... 'अरे वाह! तुम लोगों ने तो मचान बना डाला', कहते हुए उछलकर उस पर बैठ गये और हँसने लगे। उस समय अचानक बरसात होने से श्री स्वामीजी प्रसन्न हो उठे। संन्यासी लोग दौड़कर कर्मयोग करने लगे।

और इस तरह उस ऐतिहासिक जगह के भाग्य बदले। मुंगेर आने की, अनुभव होने की बात साधारण नहीं थी, ऐतिहासिक घटना कितना महत्त्व रखती है, भविष्य ही बतायेगा।

इस तरह 'कर्ण चौरा' का पुनर्जन्म 'गंगा दर्शन' के रूप में हुआ। काम शुरू हुआ। अहाते की दीवार बनी, फिर कुएँ का काम शुरू हुआ। प्रमुख चत्वर ही साधना हॉल का रूप लेगा। यानी वह चौरा पूरा हॉल बना, उसके किनारे से दीवारें बनीं। उसके पास ही श्री स्वामीजी के लिए कुटिया का काम शुरू हुआ।

1978 की गतिविधियाँ

डॉ. स्वामी शंकरदेवानन्द व उनके सहयोगियों द्वारा इन विषयों पर शोध हुआ–मधुमेह दीर्घकालीन प्रयोगों के प्रकाश में, हृदय रोग और योग, ध्यान का शरीर प्रणाली पर प्रभाव, रक्तचाप में बन्धों की उपयोगिता, योग निद्रा की उपयोगिता, चर्म रोगों में वमन की उपयोगिता, शीर्षासन का शरीर पर प्रत्यक्ष प्रभाव, आर्थ्राईटिस रोग और योग। योग की क्रियाओं द्वारा किये गये शोध कार्यों की विद्वान् चिकित्सकों द्वारा रिपोर्ट की लेख-माला 'योग विद्या' पत्रिका में निकालने लगे।

देश व विदेश के डॉक्टरों द्वारा हर बीमारी पर किये गये शोध कार्य की रिपोर्ट हर माह छपने लगी, अलग-अलग पुस्तकें भी छपीं व छप रही हैं।

फरवरी 1978, बसन्त पंचमी में तीन दिन का प्रोग्राम हुआ। भजन-कीर्तन, सत्संग, प्रवचन, रामायण पाठ हुआ।

7 अप्रैल को श्री स्वामीजी ने इ.एम.ए. मुंगेर शाखा में वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन द्वारा आयोजित सभा में उच्च रक्तचाप पर अपने विचार व्यक्त किये। 10 अप्रैल को धनबाद में कुमारडुब्बी महिला-योग-क्लब में सत्संग दिया। 15 को जमालपुर रेलवे वर्कशॉप में आयोजित रामायण सम्मेलन का उद्घाटन किया। 16 अप्रैल को वैद्यनाथ गोयनका गर्ल्स हाई स्कूल, मुंगेर में सांस्कृतिक आयोजन में छात्राओं को उद्बोधन दिया।

कलकत्ता आश्रम में 16 अप्रैल से 7 मई तक व रायगढ़ आश्रम में 1 से 16 मई तक मधुमेह शिविर का आयोजन किया गया।

श्री स्वामीजी 28 अप्रैल को स्वामी अमृतानन्द के साथ धनबाद गये। स्वामी निरंजन ने 22 से 24 अप्रैल तक खड़गपुर में योग-शिविर का संचालन किया।

श्री स्वामीजी दक्षिण अमेरिका गये। वहाँ आश्रम में प्रेस लगाने की योजना बनी। 'योग विद्या' स्पेनिश भाषा में निकलेगी। उनकी पुस्तकें भी स्पेनिश, डच, फ्रेन्च भाषा में अनुवाद होकर छप चुकी हैं। इधर गंगादर्शन में काम भी चल रहा है, गुरु पूर्णिमा महोत्सव गंगा दर्शन में निर्मित हो रहे साधना हॉल में होगा, काम तेजी से चल रहा है।

20 जुलाई 1978 को गुरु पूर्णिमा ऐतिहासिक जगह कर्णचौरा, गंगा दर्शन के साधना हॉल में आयोजित की गयी। दो दिन का सत्संग हुआ, सुबह-दोपहर-शाम को प्रोग्राम हुआ। 20 तारीख को सुबह पाँच बजे से भजन-कीर्तन

शुरू हुआ। छः बजे से गुरु-पाद-पूजा शुरू हुई। मेघाछन्न आसमान की छाया में अपूर्व विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा। 10 बजे पूजा-प्रोग्राम समाप्त करके, श्री स्वामीजी का आदेश हुआ, सबको तुरन्त आश्रम पहुँचना है, बरसात जोर से आने वाली है। भोजन का समय भी हो गया है। सब आश्रम पहुँचे, बरसात भी जोर पकड़ने लगी। शुभ कार्य में शुभ भी जरूरी है। दो बजे के बाद बरसात थमी, तीन बजे सभी संन्यासियों व हजारों अतिथियों के साथ श्री स्वामीजी ने गंगादर्शन जाकर, पानी साफ करके रेत फैलायी, ट्रकों में पुआल आया, उसे भी फैला कर ऊपर दरियाँ बिछा दी गयीं। शाम के सत्संग में गंगादर्शन का प्रांगण मंच से सड़क तक खचाखच भर गया। उत्सुकतावश अतिथि भी बहुत आये थे, मुंगेरवासी तो लगता था सभी आ गये हैं। चारों तरफ मैदान, टीले, पेड़ों और खण्डहरों की छत तक पर लोग बैठे थे।

प्रतिष्ठा दिवस का कार्यक्रम श्री चन्द्रशेखर खाँ के भजनों से प्रारम्भ हुआ। श्री राजेश मुहम्मद की रामायण पर सुबोध व्याख्या हुई व श्रीमती कृष्णा देवी ने सुमधुर स्वर में रामायण की चौपाइयों से श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। फिर श्री स्वामीजी के आशीर्वचन के साथ सभा समाप्त हुई। बादल छाये थे, कुछ छींटे भी पड़ रहे थे। श्री स्वामीजी ने कहा, आप सबको तुरन्त जाना है, बातें करते रुकिये नहीं, आठ बज रहे हैं, इन्द्रदेव ने कृपा करके इतना ही समय दिया है। फुहारें पड़ने लगी थीं, हम लोगों के आश्रम पहुँचते तक बारिश शुरू होकर फिर मूसलाधार बरसात हुई, प्रभु की लीला अपार है।

श्री स्वामीजी ने 30 सितम्बर से 2 अक्टूबर तक सत्यानन्दाश्रम, ऑस्ट्रेलिया द्वारा मैंग्रोव पर्वत पर आयोजित विश्वयोग सम्मेलन का उद्‌घाटन किया। उसमें 12000 साधकों ने भाग लिया। श्री स्वामीजी के साथ स्वामी अमृतानन्द भी गयीं।

3 अक्टूबर को बागा-बागा कॉलेज में, 4 अक्टूबर को मेलबोर्न युनिवर्सिटी में, 5 अक्टूबर को होबार्ट (तस्मानिया) में, 6 अक्टूबर को होबार्ट में प्रातःकालीन ध्यान की कक्षायें हुईं। तत्पश्चात् मेलबोर्न के आश्रम में योग शिक्षकों और भक्तों के बीच सत्संग हुआ। अपनी इस यात्रा के दौरान श्री स्वामीजी ने लगभग 700 साधकों को मंत्र दीक्षा दी।

भारत आते समय श्री स्वामीजी ने 8 अक्टूबर को हांगकांग के हिन्दू मंदिर में भक्तों और साधकों के मध्य सत्संग किया।

सम्बलपुर आश्रम में 15 से 20 नवम्बर तक दमा के रोगियों के लिए विशेष सत्र का आयोजन किया गया। श्री स्वामीजी ने एक नवम्बर को बोकारो में एक सभा का उद्‌बोधन किया। अपने शिष्यों के साथ झरिया गये, वहाँ नवनिर्मित मातृ-सदन का अवलोकन किया, आशीर्वाद दिया।

श्री स्वामीजी ने 2 से 5 नवम्बर तक, 'खटाउ सेठिया मैदान' बस्ता टोला, धनबाद में आयोजित कोल-फील्ड-अन्तर्राष्ट्रीय-योग-सम्मेलन का संचालन किया। इस सम्मेलन में 10,000 से अधिक लोगों ने भाग लिया। संत-महात्मा व प्रवचनकर्ता, सभी लोग आये थे। श्रीमती कृष्णा देवी, श्री राजेश मुहम्मद व बालक विष्णु अरोरा (रतलाम) आये थे। श्री स्वामीजी ने उद्‌घाटन व संचालन किया।

श्री स्वामीजी ने 17 से 24 नवम्बर तक बगोता योग विद्यालय में क्रिया-योग-सत्र का संचालन किया।

घण्टाली योग मित्र मण्डल द्वारा 23 से 26 दिसम्बर 1978 तक आयोजित अखिल भारतीय योग सम्मेलन का संचालन करने श्री स्वामीजी, स्वामी अमृतानन्द, स्वामी निरंजन तथा आठ-नौ शिष्यों सहित थाणे गये। सम्मेलन में 3000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ख्याति प्राप्त डॉक्टरों का विशाल समूह आया था। डॉक्टरों ने यौगिक रिसर्च और उसके उपचार की पद्धतियों पर व्याख्यान दिया। सम्मेलन में विषय था, 'वैज्ञानिक योग और आधुनिक मानव की समस्याओं के लिए उसका व्यावहारिक ज्ञान।'

24 दिसम्बर को डॉक्टरों की एक विशेष सभा का आयोजन किया गया। चर्चा का विषय था, 'योग को आधुनिक वैज्ञानिक युग में स्वीकृति' और इस पर अधिक शोध करने की बातें हुईं।

सम्मेलन के बाद श्री स्वामीजी ने एक दिन बम्बई में प्रवास किया। 28 दिसम्बर को श्री स्वामीजी का बॉम्बे टेलिविजन सेन्टर में इन्टरव्यू हुआ, जो 3 जनवरी को प्रसारित किया गया।

1979 की गतिविधियाँ

श्री स्वामीजी ने 3 से 5 जनवरी 1979 तक राजगीर तथा बिहारशरीफ में तथा 8 से 11 जनवरी तक राँची में सत्संग दिया।

9 फरवरी को जमालपुर में चक्षुदान यज्ञ का समापन किया। 11 फरवरी को दशरथपुर ग्राम व 13 फरवरी को अभयपुर ग्राम में सत्संग किया।

इसके बाद श्री स्वामीजी ऑस्ट्रेलिया गये। सत्यानन्द आश्रम, सिडनी में सत्संग-प्रवचन, मंत्र-दीक्षा और संन्यास-दीक्षा दी।

वापस आकर श्री स्वामीजी ने भारत में 1 मार्च से 2 अप्रैल तक बैतूल, खामगाँव, पूना, सिकन्दराबाद, नन्दग्राम, सम्बलपुर, जबलपुर, बम्बई, बंगलूर, नागपुर, रायपुर, रायगढ़, आदि शहरों में प्रवास किया, सत्संग किये।

श्री स्वामीजी ने दो दिन के ऑस्ट्रेलिया प्रवास में सत्यानन्द आश्रम, मैंग्रोव माउन्टेन में आयोजित सेमिनार में सत्संग-प्रवचन दिये। 7 मई 1979 को 25 भक्तों को संन्यास दीक्षा दी। सत्संग-प्रवचन-दीक्षा के बाद वापस आये।

ऑस्ट्रेलिया से लौटते हुए सिंगापुर के नये आश्रम में, जिसका संचालन स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कर रही हैं, सत्संग किया। एक दिन बम्बई प्रवास करके मुंगेर आये। पटना में 19 से 22 मई तक प्रोग्राम था। इस त्रिदिवसीय योग-सम्मेलन का उद्घाटन राज्यपाल कृष्ण वल्लभ सिंह ने किया। श्री स्वामीजी ने संचालन किया।

श्री स्वामीजी 16 जून को दानापुर गये। बिहार सैनिक केन्द्र के लेफ्टिनेंट कर्नल बिसला के आवास में भव्य स्वागत हुआ। ब्रिगेडियर थम्बू की अध्यक्षता में सत्संग सभा हुई। 17 जून की सुबह श्री स्वामीजी ने राजभवन में बिहार के राज्यपाल श्री के.बी.एन. सिंह व मुख्य मंत्री श्री रामसुन्दर दास जी से भेंट-वार्ता की, फिर सत्संग-सभा हुई। शाम को देहली होते हुए कोलंबिया के लिए प्रस्थान किया। श्री स्वामीजी ने 21 से 26 जून तक मेदेलीन, दक्षिण अमेरिका में क्रिया-योग-सत्र का संचालन किया और बगोता आश्रम की ऑफसेट प्रेस का उद्घाटन किया।

स्वामी निरंजन सरस्वती का 6 से 22 जून तक ग्रीस में प्रोग्राम था। 24 जून से 8 जुलाई तक स्विट्जरलैंड में प्रोग्राम हुआ। 9 जुलाई को गुरु-पूर्णिमा-सत्संग बार्सीलोना में किया। फिर डबलिन में 21 से 23 सितम्बर तक होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय-योग-सम्मेलन की तैयारी करने, डबलिन गये।

श्री स्वामीजी 9 जुलाई को गुरु पूर्णिमा समारोह के लिए मुंगेर, सम्बलपुर, रायगढ़, रायपुर, नन्दग्राम, बैतूल के स्वामियों को लेकर 6 जुलाई को बिलासपुर पहुँचे, वहाँ नाजोदिया धर्मशाला में रहने व सत्संग की पूरी व्यवस्था थी। तीन दिन का साधना-शिविर था। 7–8 को भजन-कीर्तन, ध्यान, सत्संग-प्रवचन हुआ। 9 तारीख की सुबह पाँच बजे से भजन-कीर्तन शुरू हुआ। छः बजे से गुरु-पाद-पूजन शुरू हुआ। हजारों लोगों ने गुरु-पूजा की, मंत्र दीक्षा

हुई, प्रसाद वितरण, सत्संग-सभा, आशीर्वाद ज्ञापन प्रोग्राम रात तक चला। कार्यक्रम के पश्चात् उन्होंने गोंदिया के लिए प्रस्थान किया।

10 जुलाई को गोंदिया वालों ने गुरु-पूर्णिमा मनायी। विशेष सत्संग हुआ। 11–12 जुलाई को सत्संग-प्रवचन, प्रश्न-उत्तर हुआ। भक्तों के आग्रह पर श्री स्वामीजी ने सभी के घरों में चरण रखे। सबने गद्-गद् भाव से पूजा-प्रसाद किया। शाम के सत्संग के बाद सबसे मिलकर श्री स्वामीजी ने मुंगेर के लिए प्रस्थान किया।

श्री स्वामीजी 14 जुलाई को धनबाद पहुँचे, 15 जुलाई को मीटिंग हुई। धनबाद आश्रम में नये भवन के लिए भूमि-पूजन किया गया, शाम को उन्होंने मुंगेर प्रस्थान किया।

श्री स्वामीजी 23 जुलाई को कलकत्ता से सिंगापुर पहुँचे। 'कृष्णा अवर गाइड' के तत्त्वावधान में विशेष शिविर का आयोजन किया गया। 24 से 26 जुलाई तक सभी कार्यक्रम डेवलेप बैंक सिंगापुर के विशाल सभा-भवन में सम्पन्न हुए। 26 जुलाई को भास्कर अकादमी द्वारा प्रस्तुत 'उषा कल्याणम्' नृत्य-नाटिका के साथ विशेष कार्यक्रम हुआ। श्री स्वामीजी बैंकॉक होते हुए 30 जुलाई को मुंगेर पहुँचे।

श्री स्वामीजी ने 18 से 25 अगस्त तक यूरोप के योगाश्रमों और योग-केन्द्रों का दौरा किया। जिनाल, स्वीट्जरलैण्ड में होने वाले यूरोपियन यूनियन ऑफ इन्टर नेशनल फेडरेशन ऑफ योग कॉन्फ्रेंस और डबलिन के विराट् अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन का संचालन किया।

19 मई 1979 को पटना योग सम्मेलन में बिहार के राज्यपाल श्री कृष्ण वल्लभ सिंह ने कहा, 'श्री स्वामीजी मुंगेर, बिहार में एक विशाल योगाश्रम का निर्माण करके न केवल भारत में, बल्कि देश-विदेश में योग का प्रचार कर रहे हैं। आज करीब 500 आश्रम पूरे विश्व में चलाये जा रहे हैं।

योग आध्यात्मिक उन्नति का प्रथम साधन है, जिसके द्वारा हम जीवन के चरम लक्ष्य पर आसानी से पहुँच सकते हैं और जिससे हमें अलौकिक शक्ति के साथ-साथ परम शान्ति का भी साक्षात्कार होता है। श्री स्वामीजी हम सबके लिए अत्यन्त शक्ति सम्पन्न, प्रतिभाशाली, विलक्षण बुद्धि तथा योग एवं अध्यात्म के स्तम्भ स्वरूप हैं।

श्री स्वामीजी ने शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश में योग की अपार ज्ञान-राशि को प्राप्त गुरु से परम्परानुसार संन्यास की दीक्षा ली। तदन्तर बारह वर्ष तक

कठोर योग-साधना करके लोक कल्याण हेतु योग को विश्वव्यापी बनाने का शुभ संकल्प लेकर, आज अथक परिश्रम द्वारा विश्व के कोने-कोने में इसे पहुँचा रहे हैं एवं मानव-समाज उससे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करके आज दिन-प्रतिदिन योग-मार्ग की ओर आकृष्ट हो रहा है। यह योग हम लोगों के लिए कोई नई चीज नहीं है। किन्तु हम अज्ञानवश इसे विस्मरण कर चुके हैं। आज श्री स्वामीजी द्वारा इसे पुन: पहचानने की कोशिश कर रहे हैं।'

भागलपुर के भूतपूर्व उपकुलपति श्री के.बी.एन. सिंह ने कहा, 'जिस योग का दिन-प्रतिदिन पतन होता जा रहा है, जिसके प्रसाद से हम अज्ञानवश वंचित होते जा रहे थे, आज उसी योग का संदेश श्री स्वामीजी के माध्यम से देश-विदेश में पहुँच रहा है। आज योग मात्र आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का साधन नहीं, बल्कि वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण में परम शक्तिशाली तथा सांसारिक जीवों के शारीरिक व मानसिक कष्टों को निर्मूल करने में परम समर्थ एवं चमत्कारपूर्ण प्रतीयमान हो रहा है। आज पटना में दिव्य पुरुष स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का पदार्पण सौभाग्य का विषय है, और हम सभी भाग्यशाली हैं। मैं पटना की जनता की ओर से श्री स्वामीजी का अभिनन्दन करता हूँ।'

श्री स्वामीजी ने 27–28 सितम्बर को चण्डीगढ़ में और 1 से 3 अक्टूबर तक उदयपुर में सत्संग किया।

श्री स्वामीजी के निर्देशन में ऑस्ट्रेलिया से आये साधकों ने 19 नवम्बर से 4 दिसम्बर तक क्रिया-योग-प्रशिक्षण प्राप्त किया।

इटली से आये साधकों ने 5 से 20 दिसम्बर तक क्रिया-योग-प्रशिक्षण प्राप्त किया।

श्री स्वामीजी ने 24 से 27 दिसम्बर तक राजगीर में आयोजित क्रिया-योग-सत्र के संचालन हेतु वीरायतन, राजगीर में प्रवास किया। शाम का सत्संग सबके लिए होता था।

कोलम्बिया से आये बड़े ग्रुप के लिए 19 दिसम्बर से 7 जनवरी तक विशेष सत्र का आयोजन किया गया।

1980 की गतिविधियाँ

ऑस्ट्रेलिया, सिडनी से एक बड़ा ग्रुप 10 से 20 जनवरी 1980 तक विशेष सत्संग के लिए मुंगेर आश्रम आया। इसके बाद 21 से 31 जनवरी तक स्पेन से

आये लोगों का प्रशिक्षण हुआ। और इसके बाद 13 से 20 फरवरी तक बाम्बे और चेकोस्लोवाकिया के लोगों का प्रशिक्षण हुआ।

22 जनवरी 1980 को बिहार योग विद्यालय के प्रतिष्ठा-दिवस, बसंत पंचमी के शुभ अवसर पर गंगादर्शन में विराट् नगर भोज किया गया। जिसमें नारायण भोजन के अतिरिक्त मुंगेर व आस-पास के नौ-दस गाँवों से आने वाले नागरिकों ने भण्डारे का प्रसाद ग्रहण किया।

श्री स्वामीजी ने 23 जनवरी को झंझारपुर में 'पार्वती लक्ष्मी कन्या उच्च विद्यालय' का उद्घाटन किया व शाम को कामेश्वर सिंह संस्कृत विद्यालय, दरभंगा में प्रवचन दिया।

श्री स्वामीजी ने बलांगीर में 2 से 4 फरवरी तक पश्चिम-उड़ीसा-योग-सम्मेलन का संचालन किया। 4 फरवरी को बलांगीर योग विद्यालय में ज्योति प्रज्वलित कर आश्रम का उद्घाटन किया।

मुंगेर में 14 फरवरी, शिवरात्रि को कई लोगों ने संन्यास दीक्षा ली। फिर 20 फरवरी को बरियारपुर में मानस-सम्मेलन का उद्घाटन किया।

फरवरी की 25–26–27 तारीख को कहलगाँव में योग सम्मेलन हुआ। 25 फरवरी को वहाँ ज्योति प्रज्वलित की गयी।

श्री स्वामीजी ने एक माह का शिक्षक प्रशिक्षण सत्र मार्च में अँग्रेजी में और जून में हिन्दी में करने का निश्चय किया।

स्वामी निरंजन सरस्वती ने सत्यानन्द आश्रम पेरिस में 9 से 24 फरवरी तक दो सत्रों का संचालन किया।

मुंगेर में मार्च 1980 के शिक्षक-प्रशिक्षण-सत्र में सभी प्रान्तों से 70 प्रतिनिधि आये। योग की विभिन्न क्रियाओं एवं शरीर-विज्ञान का ज्ञान, श्री स्वामीजी का सत्संग, डॉ. शंकरदेवानन्द, डॉ. कर्मानन्द एवं अन्य स्वामियों की कक्षायें हुईं। तत्पश्चात् प्रतिभागियों को प्रमाण-पत्र दिया गया। जून माह का आरक्षण शुल्क इतना ज्यादा आ गया कि लौटाना पड़ा। यह देख कर तय किया गया कि जुलाई में भी शिक्षक प्रशिक्षण सत्र होगा। 1980 की गुरु पूर्णिमा सतना में मनायी जाएगी, 25–26–27 जुलाई को श्री स्वामीजी वहाँ रहेंगे।

1 से 12 अप्रैल तक फ्राँस और स्पेन से आने वाले साधकों के लिए विशेष सत्र का आयोजन किया गया।

श्री स्वामीजी ने अक्टूबर 1980 में बगोता में होने वाले योग सम्मेलन के सिलसिले में 29 अप्रैल से 30 मई तक इन स्थानों का दौरा किया–एथेन्स,

रोम, फ्रैंकफर्ट, वियना, ज्यूरिख, कोपेनहेगेन, स्टॉकहोम, पेरिस, बार्सीलोना, लंदन और बेलफास्ट। 31 मई को दिल्ली आये।

स्वामी निरंजन सरस्वती ने फ्राँस में बच्चों व शिक्षकों के लिए लिल्ले में टेलीविजन सामूहिक सभा, रेडियो प्रोग्राम तथा पेरिस में सत्संग किया। स्पेन एवं काडीज में योग शिविर; मलागा में सत्संग व प्रवचन। तोरो मोलिनों, लॉस पालमास और तेन रिफ में सत्संग किया। अमेरिका जाने का प्रोग्राम है, अमेरिका यात्रा के पहले मुंगेर आयेंगे।

दक्षिण अफ्रीका सत्यानन्द आश्रम के सहसचिव, बाबू भाई गोसाईं अपनी विश्वयात्रा के दौरान भारत आये। 10 फरवरी 1980 को दिल्ली में श्रीमती इंदिरा गाँधी को 'बिहार योग विद्यालय' की प्रकाशित पुस्तकें भेंट कीं। श्रीमती गाँधी ने श्री स्वामीजी के कार्य की प्रशंसा की और 1980 अक्टूबर में जोहान्सबर्ग में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन के लिए अपनी शुभकामना प्रकट की।

श्री स्वामीजी ने जून माह में ग्रीस, इटली, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, स्वीट्जरलैण्ड, बेल्जियम, डेनमार्क, फ्राँस, स्पेन, मायोर्काद्वीप, इंगलैण्ड, आयरिश रिपब्लिक और उत्तरी आयरलैण्ड का तूफानी दौरा किया। योग केन्द्रों का अवलोकन किया, सार्वजनिक प्रवचन दिये। टेलीविजन, रेडियो कार्यक्रम, सत्संग-ध्यान की कक्षा, मंत्र दीक्षा, संन्यास दीक्षा का प्रोग्राम किया। श्री स्वामीजी ने कहा, इस यात्रा के दौरान बगोता में होने वाले योग सम्मेलन में महादेशों से लाखों लोग पधारेंगे। विश्व के किसी भी भाग से घटी हुई दर पर यात्रियों को लाने-ले-जाने के लिए हवाई कम्पनियों से बातचीत हो चुकी है। होटल भी आरक्षित हो चुके हैं।

श्री स्वामीजी ने इटालियन योग सम्मेलन की अध्यक्षता की।

स्वामी निरंजन अमेरिका में प्रवचन, सत्संग व सत्रों का संचालन कर रहे हैं।

गुरु पूर्णिमा के लिए श्री स्वामीजी 24 जुलाई 1980 को सतना पहुँचे। 25 एवं 26 जुलाई के साधना शिविर में श्री स्वामीजी की अध्यक्षता में भारत के विभिन्न भागों से आये हुए भक्तों व विद्वान् वक्ताओं के प्रवचन, आसन-प्रदर्शन और भजन-कीर्तन हुए। 27 तारीख की सुबह छः बजे से हर्षोल्लास से हजारों-हजार लोगों ने गुरुपाद पूजा की। मंत्र दीक्षा व यज्ञोपवीत भी हुआ। भजन-कीर्तन चलता ही रहा। शाम को श्री स्वामीजी का आशीर्वचन हुआ। और 28 तारीख को उन्होंने मुंगेर के लिए प्रस्थान किया।

मुंगेर आश्रम की प्रेस में आधुनिक 'ऑफसेट' प्रिंटिंग मशीन आ चुकी है। श्री स्वामीजी द्वारा लिखित पुस्तक 'तंत्र योग पनोरमा' इटालियन भाषा में और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'योग निद्रा' फ्रेंच भाषा में प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री स्वामीजी ने 31 अगस्त से 6 सितम्बर तक चामरान्दे (इस्सोन), फ्राँस में एक अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन का संचालन किया। फिर उन्होंने जिनाल (स्वीट्ज़रलैण्ड) में 7 से 14 सितम्बर तक छठे अन्तर्राष्ट्रीय योग सप्ताह का संचालन किया। इसके बाद श्री स्वामीजी 15 सितम्बर से 7 अक्टूबर तक स्पेन में रहे। वे मलाया, तोरभोलिनो, मेड्रिड, कासाब्लांका (मोरक्को), लॉस पाल मास एवं तेनेरिफ में भ्रमण करते हुए 8 अक्टूबर को बगोता पहुँचे। वहाँ श्री स्वामीजी ने 10 से 14 अक्टूबर तक होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय-योग-पर्व 1980 का संचालन किया। बहुत विशाल सम्मेलन हुआ, कई हजार लोग वहाँ आये।

श्री स्वामीजी ने 2 नवम्बर को मुंगेर जिला योग सम्मेलन, बरियारपुर का संचालन किया, प्रवचन दिये।

स्वामी निरंजन सरस्वती, जो बिहार योग विद्यालय एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रतिनिधि हैं, इस समय संयुक्त राज्य अमेरिका में भ्रमण कर रहे हैं। उन्होंने उत्तरी कैलिफोर्निया के लायन्स क्लबों में एवं पाँच 'ड्रग एण्ड अल्कोहल रिहैबिलिटेशन सेंटर्स' में प्रवचन व प्रोग्राम किये। फिर उन्होंने सेन कुयेन्टिन जेल में 'योग ट्रेनिंग सीजन' का संचालन किया।

श्री स्वामीजी 6 नवम्बर को सिंगापुर जायेंगे, वहाँ आश्रम का उद्घाटन करेंगे। फिर ऑस्ट्रेलिया जायेंगे। उनकी उपस्थिति में मैंग्रोव माउन्टेन आश्रम में योग शिविर, प्रारंभिक क्रिया सत्र, उच्च क्रिया सत्र, साधना सत्र, योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र एवं 'ओपन वीक', इत्यादि कार्यक्रम का संचालन किया जाएगा।

गुरुदेव के प्रति उद्गार

श्री स्वामीजी ने गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द सरस्वती के बारे में अपने संस्मरण बताते हुए कहा था–

'अनन्त काल से इस धरती पर आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण संत-महात्मा, मानव की चेतना को विकसित करने व मार्गदर्शन देने के लिए समय-समय पर आते रहे हैं। स्वामी शिवानन्द जी भी एक ऐसी ही विभूति थे, जिन्होंने विश्व के हजारों-हजार लोगों को आध्यात्मिक जीवन दिया। वे अपने जीवन काल में न तो कभी पाश्चात्य राष्ट्रों में गये और न ही पूर्व के किसी राष्ट्र में गये, पर आज

उनकी गूँज सर्वत्र है, उनके शिष्य व भक्तगण विश्व के हर कोने में हैं। विगत 30 से 50 वर्षों की मध्यावधि में इस आध्यात्मिक आकाश-गंगा में जितने भी महात्मा आये, उनमें से अधिकतर लोगों से मैं मिल चुका हूँ। मुझमें उन सबके प्रति श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और सम्मान की भावना है। उन सबका मैं आदर करता हूँ, परन्तु उनमें से किसी ने भी मेरे ज्ञान का निरूपण नहीं किया।

मैं सभी वस्तुओं के प्रति आलोचनात्मक विचार रखता था तथा स्वयं की ही आलोचना किया करता था। वस्तुत: महान् विभूति स्वामी शिवानन्द जी की जीवनशैली, दैनिक कार्यकलाप, बाह्य आचरण तथा आध्यात्मिक शक्ति की अभिव्यक्ति ही इतनी प्रभावशाली और विश्वास दिलाने वाली थी कि मुझे लगता मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो स्वामी शिवानन्द जी मेरे गुरु हुए।

मैं स्वामी शिवानन्द जी की तुलना अन्य महात्माओं से नहीं करना चाहता, लेकिन निश्चिय ही जब मैं युवावस्था में था, उस समय मेरे अन्दर व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के विचार थे। मैं जब किसी सिद्ध पुरुष या महात्मा को देखता तो सोचता था, 'सिद्धियों की क्या उपयोगिता है?' इस प्रकार मैं साधुओं की आलोचना किया करता था। जब भी मैं उन लोगों से विश्व-एकता या सर्व-धर्म-समन्वय की बातें सुनता, तो मेरी बुद्धि उनसे सवाल करती, वे स्वत: इनका अभ्यास क्यों नहीं करते तथा उनके बोलने का क्या उपयोग है? मैं भी तो ऐसा कह सकता हूँ।

दस वर्ष की अवस्था से ही मैं इस प्रकार के आलोचनात्मक विचार रखता था। मेरे सवालों का समाधान नहीं हो सका। सन् 1943 से 1956 के मध्य, जब मैं स्वामी शिवानन्द जी के साथ रहता था, तब मैंने उनके विचारों का गहरा अध्ययन किया, और उनकी पुस्तकों में लिखे हुए विचारों के प्रत्येक खण्ड को सूक्ष्म दृष्टि से देखा। मैंने पाया कि उनके उपदेश, आचरण और व्यवहार में कहीं भी असमानता नहीं है। फिर मैंने मान लिया कि जिस मानव के विचार, वाणी और कार्य में अन्तर नहीं है और जो ब्रह्माण्डीय चेतना से जुड़ा हुआ है, वस्तुत: वही महात्मा है।

स्वामी शिवानन्द जी का व्यक्तित्व बहुत ही सरल और सभी बातों से अनभिज्ञ बालक के समान था। वस्तुत: उनमें योगी होने का अहंकार लेशमात्र भी नहीं था। आध्यात्मिक जीवन में चेतना की एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ पहुँचकर आप बालक सदृश बन जाते हैं। इसका अर्थ बचपना नहीं, बल्कि बच्चों जैसी सरलता, निर्मलता है।

उनकी सारी चेष्टायें अति स्वाभाविक गति से होती थीं और उनको कभी सोचने की जरूरत भी नहीं पड़ती थी। ऐसा लगता था मानो उनके व्यक्तित्व, मन, शरीर और आत्मा, इन सबसे एक विशिष्ट प्रकार की सुगंध निकल कर वातावरण में फैल रही हो। स्वामी शिवानन्द जी के स्वभाव में कृत्रिमता नहीं थी। उनका स्वभाव मूल रूप से सहज था और मेरे अनुसार उनकी यह स्वाभाविकता ही उनको दूसरे महात्माओं से अलग श्रेणी में रखती है।

स्वामी शिवानन्द जी का जन्म दक्षिण भारत की ताम्रपर्णी नदी के किनारे 8 सितम्बर 1887 को हुआ था। उस नदी के विषय में ऐसी भविष्यवाणी थी कि आध्यात्मिकता का संभावी अवतार उस नदी के किनारे होगा। करीब तीन सौ वर्ष पूर्व उनके खानदान में एक महान् शिवभक्त ने जन्म लिया था, जिन्हें शिवजी के दर्शन व आशीष मिला था। स्वामी शिवानन्द जी ने भी अपनी परम्परा को धारण किया।

वे डॉक्टर हुए और मलेशिया में 1922 तक सेवा कार्य करते रहे। जब उन्हें महसूस हुआ कि मनुष्य के दुःख का कारण बहुत ही गंभीर रूप से उसकी अपनी प्रकृति में बसा हुआ है, तब 1923 में भारत आ गये और घूमते हुए ऋषिकेश पहुँचे। सन् 1924 में संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। सन् 1923 से 1963 तक (निर्वाण प्राप्ति तक) वे आजीवन ऋषिकेश में ही रहे। वे कोई आश्रम बनाना नहीं चाहते थे। लेकिन उनको केन्द्र बनाकर स्वतः एक आश्रम का विकास होता गया। उन्हें शिष्य बनाने की इच्छा नहीं थी, लेकिन शिष्यों तथा मानने वालों ने स्वयं उन्हें अपना गुरु बनाया।

शिष्यों का समुदाय प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया और अंत में उनको रहने के लिए एक निवास स्थान खोजना पड़ा, जहाँ वे सभी साथ रह सकें। ऋषिकेश के वर्तमान आश्रम, मुनि की रेती में स्वामी शिवानन्द जी और उनके शिष्यगण रहने लगे। पहले इसी स्थान पर एक पुरानी गोशाला थी। इसी गोशाला का विकास बाद में 'डिवाइन लाइफ सोसाइटी' के नाम से हुआ, और आश्रम बढ़ता ही गया।

सर्वप्रथम मैं 19 मार्च 1943 को प्रातःकाल स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में आया। जब मैं उनसे मिला, वे एक छोटे-से कमरे में बैठे हुए थे, जो कि उनका ऑफिस था। मुझे देखते ही वे उठ खड़े हुए और 'ॐ नमो नारायणाय' कहते हुए उन्होंने मेरा अभिवादन किया। मैं उस समय 19 वर्ष का था। उन्होंने

मुझे बैठा कर मेरे आने का प्रयोजन पूछा। मैंने कहा कि मैं किसी चीज को ढूँढ रहा हूँ। पहली ही मुलाकात में सब कुछ बता पाना मेरे लिए संभव नहीं था। उन्होंने कहा, 'तुम्हें मेरे साथ रहना चाहिए।' और इसलिए मैं बारह वर्ष तक उनके साथ रहा। उन बारह वर्षों के निवास काल में मैंने जो कुछ पाया, उसके अनुसार स्वामी शिवानन्द जी का प्रत्येक कार्य दिव्य या ईश्वर-तुल्य कहलाने योग्य था। मैं जितना भी उनके विषय में सोचता हूँ, और अपने से तुलना करता हूँ, उतना ही मुझे परिपूर्णता का अर्थ समझ में आने लगता है। मैं जानता हूँ कि आप सब को ऐसी परिपूर्णता देखने को नहीं मिल सकती, क्योंकि ऐसे अवतारी पुरुष दुर्लभ होते हैं। जो कुछ परिपूर्णता स्वामी शिवानन्द जी में थी, उससे उनके व्यक्तित्व का सौन्दर्य और विशालता पूर्ण रूप से प्रकट होती थी।

स्वामी शिवानन्द जी के साथ रहते हुए मैंने हठ योग, राज योग, भक्ति योग, तंत्र योग, उपनिषद् या गीता का अध्ययन नहीं किया। सुबह से शाम तक और कभी-कभी रात को भी मैं एक गधे की तरह काम करता रहा, क्योंकि स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे एक ही आदेश दिया था, कठिन परिश्रम करो, तुम्हारी चित्त शुद्धि हो जाएगी। तुमको प्रकाश लाने की जरूरत नहीं है, प्रकाश तुम्हारे अंदर में ही है। बुद्धि के द्वारा उनके उपदेश का अर्थ जानना तब मेरे लिए संभव नहीं था, लेकिन वे मेरे गुरु थे, इसलिए मैं शौचालय साफ करने से लेकर पूरे आश्रम की व्यवस्था तक का काम बारह साल तक एक पागल की तरह करता रहा। वह बारह वर्षीय आश्रम जीवन मेरे लिए देश-काल की सीमाओं से परे था। ऐसा लगता था मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

मेरा आश्रम जीवन अत्यन्त कठोर था और मैं सोचता हूँ मेरा कोई भी शिष्य उस हालत में आश्रम जीवन नहीं बिता सकता है। दूसरे संन्यासी शिष्यों के साथ मैं आश्रम का विकास करने के कार्य में सहायता करता रहा। उन दिनों में हम लोग कभी यह नहीं जानते थे कि अगले दिन क्या खायेंगे। मैं स्वामी शिवानन्द जी के पास जब जाता था, तब वे कहते, 'तुम बहुत दुबले हो, तुमको अच्छी तरह से खाना चाहिए।' मैं पूछता, 'कहाँ से?' और वे हँसने लगते थे। उनकी मुस्कुराहट असाधारण थी। एक सौ सुन्दरियों की मुस्कुराहट मुझे लज्जित करने में असमर्थ थी, लेकिन मेरे गुरु स्वामी शिवानन्द जी की एक मुस्कुराहट मुझे मारने के लिए काफी थी।

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे, तुम दुबले हो इसकी चिन्ता मत करो, तुम्हारे अन्दर प्राण शक्ति है और उससे तुमको आवश्यकतानुसार शक्ति मिल सकती है। खाने के लिए अच्छा भोजन नहीं मिलता था, और न ही सोने की जगह ही। सिर पर छत नहीं, और न ओढ़ने के लिए कम्बल। आश्रम जीवन की पूरी अवधि में कभी मच्छरदानी नहीं देखी, केवल मच्छरों के समूह को ही घूमते हुए देखा था। पानी पीने के लिए हम लोगों को सैकड़ों सीढ़ियाँ नीचे उतरनी पड़ती थीं और पानी पीने के बाद उतनी ही सीढ़ी फिर चढ़नी पड़ती थी।

एक बार मुझे डायरिया हुआ, मुसीबत ही हुई। टट्टी के लिये जंगल में जाना पड़ता था, और वापस लौटते-लौटते फिर जंगल की तरफ दौड़ना पड़ता था। एक बार मुझे पीलिया हुआ, और मुझे पता भी नहीं चला। एक दिन सबेरे मैं बाजार से लौट रहा था, तब एक वृद्ध संन्यासी ने कहा, 'अरे, तुमको तो पीलिया हुआ है।' मैं समझा नहीं, क्योंकि मुझे रोग का अनुभव ही नहीं हुआ था। आश्रम आया, तब मैंने स्वामीजी से पूछा कि पीलिया क्या होता है। उन्होंने कहा कि वह शरीर का एक रोग है, मैं उसे भूल गया। और मुझे कुछ भी नहीं हुआ।

उन दिनों इन सब कठिनाइयों के बावजूद भी हम लोगों का आध्यात्मिक विकास हो रहा था। हम लोग दिन-रात आश्रम के कमरे बनाने और छपाई करवाने में बिताते थे। मैं प्रत्येक माह लाहौर जाता था, जो उस समय भारत में था। पुस्तकें व मासिक पत्रिका छपवा कर लौट आता था। हम लोग जानते ही नहीं थे कि हम काम कर रहे हैं। वह दिव्य जीवन था, जिसमें काम करने से विश्रान्ति मिलती थी। आश्रम जीवन के बारह वर्षों में मुझे कोई मानसिक चिन्ता नहीं हुई, मुझे कोई परेशानी नहीं हुई।

स्वामी शिवानन्द जी के साथ रहना एक शिशु के साथ रहने के समान था। उनके सान्निध्य में रहने से किसी को अपने अहंकार का कभी ख्याल नहीं हो सकता था। आप चाहे बड़े अधिकारी हों, किसी देश के प्रधानमंत्री हों अथवा अपराधी हों; आप गोद में रहने वाले शिशु के साथ कैसा व्यवहार करते हैं? उस समय भेदभाव नष्ट हो जाता है, स्वामी शिवानन्द जी का भी यही प्रभाव था और संत लोगों का जीवन ऐसा ही होता है।

ऐसे महात्माओं के विषय में बात करना बहुत ही कठिन है। किसी भी व्यक्ति की आध्यात्मिक उपलब्धि का पता लगाना बहुत ही कठिन है, मन

और तर्क की सीमाएँ होती हैं, लेकिन आध्यात्मिक उपलब्धियों की सीमा नहीं होती। इसलिए सीमित बुद्धि के द्वारा आध्यात्मिक जीवन की गहराई का, जो असीमित है, पता नहीं लग सकता।

स्वामी शिवानन्द जी ने हम लोगों को अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की थी। हम लोगों को अपना जीवन संभालना, आश्रम बनाना, पुस्तकें छपवाना और आयोजन करना, आदि, सभी प्रकार के काम करने पड़ते थे। कोई भी समस्या आ खड़ी होने से हम लोगों को उसका उपाय ढूँढना पड़ता था। हम लोगों को गलती करने की भी स्वतंत्रता थी। स्वामी शिवानन्द जी को विश्वास था कि सब लोग यहाँ अच्छे उद्‌देश्य से आये हुए हैं। यदि कोई उनसे कहता कि कुछ संन्यासी आपस में झगड़ रहे हैं, तो वे कहते, 'अरे, वे लोग क्षणभर के लिए मन हल्का कर रहे हैं, वे शीघ्र ही ठीक हो जायेंगे।' इसी कारण उनके शिष्य उनके साथ रहते थे।

स्वामी शिवानन्द जी इस आश्रम के निर्माता नहीं थे, वास्तव में इस माया का निर्माण तो उनके शिष्यों द्वारा किया गया था, और स्वामी शिवानन्द जी मात्र द्रष्टा थे। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों को सीखने के लिए काफी मौका दिया, इसीलिए उनके शिष्य आज विश्व में आश्चर्यजनक काम कर रहे हैं। उनका काम राजसिक प्रकृति से दूषित नहीं होता, बल्कि वह कार्य सात्त्विकता से और मानवता को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है।

स्वामी शिवानन्द जी के पास रहते समय दूसरे आश्रम के बहुत लोग मुझसे पूछते थे, 'तुम्हारे गुरुजी तुमको क्या सिखाते हैं?' उन लोगों को मालूम था कि मैं संस्कृत का पण्डित हूँ। मैं कहता था, 'कुछ नहीं।' वे पूछते थे, 'क्या हठयोग नहीं सिखाते हैं? शक्तिपात नहीं करते हैं?' मेरा उत्तर हमेशा नकारात्मक रहता था।

मैं प्रवचन करता हूँ, पुस्तकें लिखता हूँ और हठयोग सिखाता हूँ। वास्तव में इन सबका स्फुरण मुझमें कहाँ से होता है, यह मैं जानता ही नहीं हूँ। मैंने पुस्तकों में इन चीजों को पढ़ा ही नहीं है, लेकिन इनका ज्ञान स्पष्ट रूप में मेरे अन्दर से स्फुरित होता है। इसी प्रकार हठयोग, तंत्र और कुण्डलिनी के विषय में प्राथमिक शिक्षा दे सकता हूँ। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि ज्ञान बाहर से नहीं आता है, जो कुछ अन्दर है उसको प्रकट करने को ही ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान मुझमें है, वह आप में भी है। मगर मुझे एक चीज मालूम थी, वह है 'निष्काम भाव से गुरु की सेवा करना।' यही मेरे जीवन का आनन्द था।

एक दिन कोई प्रभावी राजनैतिक नेता आश्रम में आये। उन्होंने मुझसे कहा, 'देखो बेटा, तुम अपना समय यहाँ बर्बाद कर रहे हो। तुम मेधावी हो और बहुत अच्छे बनना चाहते हो, इसलिए तुम पूरे देश को प्रभावित कर सकते हो। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारा मार्गदर्शन करूँगा।' मैं कुछ देर चुप रहा और सोचा कि यह भी मेरे गुरु की परीक्षा है। वह बहुत बड़ा प्रलोभन था। वह मुझे बहुत बड़ी संस्था का अधिकारी बनाना चाहता था, इस प्रकार मैं बहुत से शक्तिशाली व्यक्तियों का नेता बन सकता था, लेकिन मैंने इस प्रलोभन को स्वीकार नहीं किया। मुझे स्वामी शिवानन्द जी के शब्द याद आ गये, 'कठोर परिश्रम करो, और अपने को शुद्ध करो, प्रकाश तुम्हारे साथ है।' मैंने अनुभव किया कि उनका कथन सत्य है।

मैंने दानशील व्यक्तियों के विषय में पुराणों में कहानियाँ पढ़ी हैं। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से स्वामी शिवानन्द जी के अलावा किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा। कोई भी व्यक्ति उनका दर्शन करके खाली हाथ नहीं लौटता था। कोई पैसा माँगे तो पैसा मिलता, कपड़ा, कम्बल, अन्न, दवा, रहने के लिए जगह, प्रेम, प्रमाण पत्र, वगैरह माँगने की देर थी–मिल जाती थी। उनके हृदय का बड़प्पन था। स्वामी शिवानन्द जी के पास पैसा नहीं था। असल बात तो यह थी कि आश्रम वर्षों तक ऋण के आधार पर चल रहा था। आश्रम की परिस्थितियों के बारे में यदि कोई स्वामी शिवानन्द जी से बात करता, तो वे कहते, 'देने वाला मैं नहीं, भगवान है।' जब आश्रम में किसी चीज का अभाव होता, तब हम लोग उसको ऋषिकेश के बाजार से लाते थे। यदि वह चीज बाजार में उपलब्ध न हो तो देहरादून या दिल्ली से जाकर लाते थे।

स्वामी शिवानन्द जी की दानशीलता आश्रम की सबसे बड़ी समस्या थी। डाकघर से पैसा मिलते ही उसको बाँटा जाता था और कुछ बचता नहीं था। इसलिए जब कभी वे पैसा माँगते तो हम लोग बोल देते थे कि कुछ बचा नहीं है। जब स्वामी शिवानन्द जी को यह जानकारी हुई, तब दक्षिणा के रूप में जो पैसा मिलता, वे उसको तुरन्त बाँट देते थे।

आश्रम में सब लोग स्वामी शिवानन्द जी की प्रशंसा ही नहीं करते थे, कुछ लोग दिन-रात उनकी निन्दा भी करते थे। वास्तव में कुछ लोग केवल निन्दा करने और दोष निकालने के लिए ही आश्रम में आते थे। स्वामी शिवानन्द जी यह बात अच्छी तरह जानते थे। वे कहते थे, 'भगवान की सृष्टि के अनेक रूप हैं, और इसीलिए वह सुन्दर है। यदि कोई भी निन्दा नहीं करेगा तो हम लोगों

का विकास रुक जाएगा। यदि आप ऐसे जगत् की कामना करते हैं, जहाँ सब लोग आपके तत्त्व ज्ञान, व्यक्तित्व, उपदेश और जीवन-प्रणाली को स्वीकार करें, तो आप असंभव की कामना कर रहे हैं।'

किसी दु:ख या समस्या को लेकर जब लोग स्वामी शिवानन्द जी के पास आते थे, तब उनकी वृत्ति बनावटीपन या अहंकार से मुक्त रहती थी। मैंने ऐसे किसी महात्मा को नहीं देखा। बहुत से लोग सिद्धियों का प्रदर्शन करते हैं और सहायता करने का श्रेय लेते हैं। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी ऐसा नहीं करते थे। वे हमेशा कहते थे, 'मैं आपके लिए प्रार्थना करूँगा या इस समस्या के लिए इस मंत्र का जप करो, भगवान करुणामय हैं, आप ठीक हो जायेंगे।'

यदि कोई कहता कि स्वामी शिवानन्द जी की आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा वह लाभान्वित हुआ है, तो स्वामीजी कहते, 'नहीं, भगवान बड़े दयालु हैं, उन्होंने सहायता की है। मैं तो उनका एक साधन मात्र हूँ।'

बहुत से लोगों ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग पैसा, राजनैतिक सत्ता या शिष्यों को प्रभावित कर संख्या बढ़ाने के लिए किया है। आज के युग में ऐसा किया जाता है, और इतिहास में भी ऐसा ही किया गया ...।

स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार साधना के द्वारा जो आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, वह भगवान की इच्छा की अभिव्यक्ति है, इसलिए आप साधन मात्र हैं। उतना ही श्रेय आप को मिल सकता है। आप साधक हैं, सिद्धियों के प्रवर्तक नहीं। आप रोग निवारण करने वाले त्रिकालदर्शी नहीं हैं। ये सब भगवान की विभूतियाँ हैं। प्रत्येक संन्यासी के लिए इस प्रकार का विचार बड़े संयम की बात है, महानता की बात है।

एक दिन मेरे पैर के अँगूठे में बिच्छू ने काट लिया, मैं बालकों जैसा क्रंदन कर रहा था। मुझे इतनी असह्य वेदना हो रही थी कि मैं अपने अँगूठे को ही काट देना चाहता था। लेकिन मैं गुरुजी से मिला, उन्होंने पूछा, 'तुमको क्या हो गया?' मैंने उत्तर दिया, 'बिच्छू।' उन्होंने कहा, 'मुझे देखने दो।' और जब उन्होंने मेरे अँगूठे को स्पर्श किया तो मैं तुरंत ठीक हो गया। मैंने पूछा, 'आपने यह कैसे किया?' उन्होंने कहा, 'अरे, इसके लिए मुझे एक योग्य मंत्र का स्मरण हो आया था।' मुझे मालूम था कि वे किसी मंत्र का प्रयोग नहीं कर रहे थे। लेकिन वे श्रेय भी नहीं चाहते थे।

13 जुलाई 1963 की रात मैं मुंगेर में था, और नींद में मुझे एक स्पष्ट स्वप्न दिखाई दिया। मैंने स्वामी शिवानन्द जी को ऋषिकेश से एक बहुत बड़े जहाज

द्वारा गंगा पार करते हुए देखा। मैं किनारे पर खड़ा था, गंगा जल की कुछ बूँदें मेरे ऊपर पड़ीं, स्वप्न समाप्त हुआ, और मैं जान गया कि मेरे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी देह त्याग दी है। गुरु का भौतिक शरीर इस संसार से किसी भी क्षण नष्ट हो सकता है, क्योंकि वह प्रकृति के नियमानुसार रहता है। लेकिन गुरु की आत्मा विकसित शिष्य के साथ हमेशा रहती है। यह आत्मा शिष्य के प्रत्यक्ष जीवन, स्वप्न और विचारों के क्षेत्र में हमेशा मार्गदर्शन करती है। आत्मा अमर है।'

1981 की गतिविधियाँ

3 जनवरी 1981 को श्री कृष्ण सेवा सदन मुंगेर में श्री स्वामीजी की अध्यक्षता में विभावरी द्वारा प्रेमचंद जन्मशती समारोह का आयोजन किया गया। गंगादर्शन में निर्माण कार्य चल रहा है। साधना हॉल बन चुका है। वहाँ हर माह होने वाले शिक्षक प्रशिक्षण सत्र व स्वास्थ्य रक्षा सत्र साधना हॉल में ही होते हैं। वेल हाऊस पूरा हो गया है, कुटीर पूरा हो चुका है। अब उसके ऊपर भी बनना शुरू हुआ है। योग-आरोग्य बिल्डिंग भी पूरी हो गयी है। अब नया काम अन्नपूर्णा भवन का शुरू हो गया है। नीचे रसोई, स्टोर, चार बड़े हॉल, दोनों तरफ लम्बा बरामदा व ऊपर पैंतीस-चालीस कमरे बनेंगे। यहाँ पर शिक्षार्थी रहने भी लगे हैं, भोजन के लिए दोनों समय शिवानन्द आश्रम सब जाते हैं।

9 फरवरी 1981 को बसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर श्री स्वामीजी की उपस्थिति में, गंगा दर्शन में हवन, भजन-कीर्तन-प्रवचन के साथ ही नवनिर्मित भवन 'योग-आरोग्य' का उद्‌घाटन हुआ।

15 फरवरी को श्री स्वामीजी ने मुंगेर के आर.डी. एण्ड डी. जे. कॉलेज में राष्ट्रीय सेवा योजना के विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र प्रदान किये तथा विद्यार्थियों के लिए योग की महत्ता पर प्रकाश डाला। 15 तारीख की शाम को ही जमालपुर के पास फुलका ग्राम में श्री स्वामीजी ने ग्रामवासियों की सत्संग-सभा में प्रवचन दिया।

श्री स्वामीजी ने 16 फरवरी को रामपुर कॉलोनी जमालपुर में आयोजित 'रामायण सम्मेलन' का उद्‌घाटन किया।

श्री स्वामीजी ने 27 फरवरी से 1 मार्च तक 'अखिल भारतीय गीता सम्मेलन', सनातन धर्म मंदिर, नयी दिल्ली में सत्संग सभा में भाग लिया। तत्पश्चात् 2 मार्च तक भिलाई स्टील प्लांट योग निकेतन के तत्त्वावधान में हो

रहे सम्मेलन, 'योग रजत जयन्ती सम्मेलन भिलाई' का संचालन किया। तीन दिन तक 4 सत्र होते थे, श्री स्वामीजी सभी सत्रों में उपस्थित रहते थे।

तत्पश्चात् श्री स्वामीजी रायगढ़ गये। वहाँ 10 मार्च को जेसिस क्लब में आयोजित प्रवचन कार्यक्रम में वहाँ के सदस्यों को सम्बोधित किया।

रायगढ़ से आकर मुंगेर में रहे। मुंगेर में 1981 के मार्च-अप्रैल में दो माह का 'संन्यास सत्र' आयोजित हुआ था। यह सत्र उनके लिए हुआ जो संन्यास ग्रहण के पूर्व संन्यास जीवन की जीवन्त अनुभूतियों से परिचित होना चाहते थे। प्रतिभागियों ने दो माह तक संन्यासी-जीवन-यापन किया।

श्री स्वामीजी अप्रैल में यूरोप गये। वहाँ स्वामी ओम् मूर्ति द्वारा आयोजित 'तंत्र-योग-ध्यान' सत्र का 2 से 4 अप्रैल तक मिलान, इटली में संचालन किया। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी स्वामी शिवमूर्ति द्वारा ग्रीस में 7 से 9 अप्रैल तक आयोजित योग सम्मेलन का संचालन करके इटली गये। 11 एवं 12 अप्रैल को स्वामी आनन्दानन्द द्वारा आयोजित कार्यक्रम का तोरिणों, इटली में संचालन किया।

1980 में 'योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र' मार्च, जून, जुलाई एवं अगस्त में हिन्दी में तथा अक्टूबर में अँग्रेजी में भारतीयों के लिए हुए थे। नवम्बर में 'क्रिया योग सत्र' हिन्दी-अँग्रेजी में हुआ था। अब नवम्बर, दिसम्बर व जनवरी 1981 में विदेशियों के लिए सत्र हुए।

श्री स्वामीजी ने 19 अप्रैल को भागलपुर इंजीनियरिंग कॉलेज में साप्ताहिक योग प्रशिक्षण सत्र का आयोजन किया। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी ने सबौर योग मित्र मण्डल द्वारा आयोजित कार्यक्रम में बिहार कृषि महाविद्यालय में प्रवचन दिया।

स्वामी निरंजन सरस्वती ने अमेरिका वासियों को योग का संदेश देते हुए सम्पूर्ण अमेरिका का भ्रमण किया। अमेरिका के प्रोग्राम ...

न्यूयार्क में सप्ताहांत एवं साप्ताहिक कक्षायें। एलीजाबेथ, न्यू जर्सी में सप्ताहांत योग सत्र। सेन फ्रांसिस्को, विभिन्न ड्रग रिहेबिलीटेशन सेन्टर में प्रवचन। उत्तरी कैलिफोर्निया के 30 लायन्स क्लबों में प्रवचन। डाउनी में अनाहीम एवं एस. आर. एफ. में योग कक्षायें। लॉस एंजिल्स में एस.आर.एफ. के मुख्यालय का भ्रमण। युक्का वैली, कैलिफोर्निया में प्रवचन। साल्ट लेक सिटी, यूटाह में योग केन्द्रों का भ्रमण। शिकागो मेटेसन और मार्टन, ग्रोग, इलियोनोड्स में प्रवचन। वुड स्टॉक एवं रॉचेस्टर, न्यूयार्क में भेंटवार्ता। सेन फ्रांसिस्को में शिक्षक प्रशिक्षण सत्र।

स्वामी निरंजन ने अपनी कार द्वारा विभिन्न राज्यों की द्वितीय बार यात्रा जनवरी 1981 में प्रारम्भ की। इस यात्रा में स्वामी प्रशान्तानन्द एवं अंजलि माता (राममूर्ति स्वामी की शिष्या) ने भी साथ दिया। उनका कार्यक्रम निम्नलिखित स्थानों में हुआ, जिसमें योग शिविर भी सम्मिलत हैं–लॉस एंजिल्स, युक्का वैली, सेन फ्रांसिस्को, इनीस, नीयस, बेन्सन, डेमिंग, अल्वाक्येरक्यू, ओक्ला होमा सिटी, सेंट लुइस एवं शिकागो।

उपर्युक्त कार्यक्रमों का संचालन करने के दौरान स्वामी निरंजन रॉचेस्टर, न्यूयार्क में रहेंगे, जहाँ वे एक आश्रम का संचालन करेंगे तथा प्रवचन एवं कक्षायें आयोजित करेंगे।

श्री स्वामीजी ने 17 मई को सायंकाल मुंगेर में संत मत सत्संग आश्रम द्वारा आयोजित महर्षि मेंहीदास जी महाराज की 98 वीं जयन्ती सभा का उद्‌घाटन किया। श्री स्वामीजी ने 12 जून को बांका, भागलपुर में तंत्र योग ज्योतिष प्रतिष्ठान का शिलान्यास किया। सांसद सदस्य श्री चंद्रशेखर सिंह मुख्य अतिथि थे।

जुलाई में 17 तारीख को गुरु पूर्णिमा उत्सव जबलपुर में महिला योग मण्डल द्वारा मनाने का प्रोग्राम बना। स्वीट्‌जरलैण्ड, कोलंबिया, ब्राजील एवं इटली के साधक मुंगेर आये थे। 6 से 13 जुलाई 1981 तक मुंगेर में विशेष योग साधना सत्र में भाग लेने के बाद सभी साधक जबलपुर गये। बार्सीलोना से श्री नयनानी परिवार भी वहाँ आया था।

श्री स्वामीजी 14 तारीख को जबलपुर पहुँचे। भारत के सभी प्रांतों से शिष्य, भक्त व परिचित और अपरिचित, सभी पधारे थे। 15 एवं 16 जुलाई को सुबह से रात तक चार सत्रों में सत्संग, प्रवचन, भजन-कीर्तन का कार्यक्रम चला। 17 की सुबह पाँच बजे से भजन-कीर्तन चला, गुरु पाद पूजा, मंत्र-दीक्षा और यज्ञोपवीत सुबह छः से ग्यारह बजे तक चला, भजन-कीर्तन चलता ही रहा, फिर प्रसाद। शाम को आशीर्वाद-प्रवचन हुआ। वहाँ वालों का आभार प्रवचन, फिर शान्ति पाठ हुआ।

श्री स्वामीजी 18 तारीख दोपहर को प्लेन से दिल्ली के लिए रवाना हुए। वहाँ से पेरिस होते हुए फिनलैण्ड पहुँचे। वहाँ पर 'फिनिश योग फेडरेशन' द्वारा 400 योग शिक्षकों के लिए आयोजित योग प्रशिक्षण सत्र का 22 से 28 जुलाई तक संचालन किया। इसके पश्चात् श्री स्वामीजी ने योग युनिवर्सिटी पेरिस, फ्राँस में यूरोपियन योग शिक्षकों के लिए 29 जुलाई से 9 अगस्त

तक एक योग सत्र का संचालन किया। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी का 12 से 19 अगस्त तक जिनाल, स्वीट्जरलैण्ड में कार्यक्रम हुआ।

गंगादर्शन, मुंगेर में एक माह का शिक्षक प्रशिक्षण सत्र चलता है ही, लोगों के विशेष अनुरोध पर पन्द्रह दिन का 'स्वास्थ्य रक्षा सत्र' भी 16 से 30 तारीख तक चलने लगा।

श्री स्वामीजी 6 से 13 सितम्बर तक आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय योग सप्ताह में भाग लेने जिनाल, स्वीट्ज़रलैण्ड गये। वहाँ 'नेशनल योग फेडरेशन' यूरोपीय संघ ने इस वर्ष स्वामी शिवानन्द जी का 94 वाँ जन्मदिवस मनाया। इस सम्मेलन का सभापतित्व दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष, ऋषिकेश के स्वामी चिदानन्द और इन्टीग्रल योग संस्थान, अमेरिका के स्वामी सच्चिदानन्द ने किया। इस सम्मेलन में सभी देशों से भक्त-साधक आये थे व 48 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। स्वामी सत्यानन्द के सभी आश्रमों के संचालक शिष्य-स्वामी एवं स्पेन से 62 शिष्य भक्त भी इस सम्मेलन में आये थे।

सम्मेलन के पश्चात् श्री स्वामीजी पेरिस पहुँचे। 16 से 20 सितम्बर तक स्वामी योग भक्ति द्वारा आयोजित कार्यक्रमों का संचालन किया। श्री स्वामीजी ने 'हाऊस ऑफ द कान्शसनेस' में विश्वव्यापी जीवन-कला, 'तंत्र' पर और 'रोग निदान में योग की भूमिका' पर सार्वजनिक प्रवचन दिये। कॉन्डरसेट कॉलेज में उन्होंने मनुष्य में अंतर्निहित शक्तियों के उद्‌घाटन सम्बन्धी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक यौगिक क्रियाविधियों के एक सप्ताहिक शिविर का संचालन किया।

शिवानन्द आश्रम, फ्राँस के चार वर्षीय प्रशिक्षणोत्तीर्ण योग शिक्षकों की पहली टोली के सदस्यों को श्री स्वामीजी ने 20 सितम्बर को डिप्लोमा प्रमाण-पत्र वितरित किये तथा योग शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय का सभापतित्व स्वीकार किया।

श्री स्वामीजी ने 20 से 23 सितम्बर तक बार्सीलोना, स्पेन में स्थित आश्रमों का दौरा किया। शिष्य भक्तों को सत्संग, प्रवचन, मंत्र दीक्षा प्रदान की।

श्री स्वामीजी 24 सितम्बर को रोम पहुँचे, जहाँ उन्होंने क्रिया योग प्रशिक्षण के आकांक्षी साधकों के साथ विशेष सत्संग किया।

विश्व यात्रा के पश्चात् 26 सितम्बर को नागपुर पहुँचे, वहाँ एक सत्संग गोष्ठी का संचालन किया। तत्पश्चात् कार द्वारा नन्दग्राम होते हुए रायपुर

पहुँचे। रायपुर योग विद्यालय में उन्होंने 30 सितम्बर को पत्रकारों से साक्षात्कार किया। वहाँ पर 4 दिन के सम्मेलन का आयोजन हुआ था।

श्री स्वामीजी ने 1 से 4 अक्टूबर तक नेताजी स्टेडियम में आयोजित विशाल 'राष्ट्रीय योग सम्मेलन, रायपुर' की अध्यक्षता की। मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री, श्री अर्जुन सिंह ने उद्घाटन किया। मुख्य अतिथि भी वही थे। भोपाल, इंदौर, नागपुर, बड़ौदा से वक्ता आये थे। श्री स्वामीजी के संन्यासी शिष्य सभी आश्रमों से आये थे, सभी जगहों से परिचित डॉक्टर भी आये थे। रायपुर के कलेक्टर श्री नजीब जंग व श्रीमती जंग ने काफी सहयोग दिया। श्री दीक्षित जी का सहयोग तो था ही। श्रीमती कृष्णादेवी और श्री राजेश मुहम्मद का रामायण प्रवचन हुआ। कुमारी करुणा मिश्रा का वेदान्ती प्रवचन, सोमनाथ कनौजे, कुमारी मीरा हर्णे का भजन, बहुत ही मोहक प्रोग्राम रहा। 4 दिन के सफल प्रोग्राम के बाद श्री स्वामीजी 6 अक्टूबर को मुंगेर पहुँचे।

स्वामी निरंजन सरस्वती ने लॉस एंजिल्स में लगभग 200 व्यक्तियों के लिए योग शिविर का संचालन किया। सितम्बर माह में चार्ल्स विल एवं वर्जीनिया में भी योग कार्यक्रम आयोजित किये। वाशिंगटन में भी एक विशाल योग शिविर का संचालन किया।

श्री स्वामीजी व स्वामी अमृतानन्द सिंगापुर आश्रम में आयोजित प्रथम वार्षिकोत्सव के उद्घाटन के लिए 5 नवम्बर को सिंगापुर पहुँचे। 6 नवम्बर को श्री स्वामीजी ने ऐलिजाबेथ मेडिकल कॉलेज में प्रवचन दिया। श्री स्वामीजी ने 7 नवम्बर को वार्षिकोत्सव का उद्घाटन किया तथा प्रवचन दिया। मलाया प्रायद्वीप तथा निकटवर्ती देशों से आये भक्तों, साधकों व शिष्यों को दर्शन और दीक्षा दी व उनके साथ बृहत सत्संग किया। 10 नवम्बर तक भक्तों के निवास पर सत्संग, प्रवचन, दीक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी 11 नवम्बर को भारत लौट आये।

श्री स्वामीजी दिसम्बर में दक्षिण अमेरिका पहुँचे। 3 से 17 दिसम्बर तक कोलंबिया का देश-व्यापी दौरा किया। फिर जर्मनी गये। तत्पश्चात् गंगा दर्शन आश्रम में यूरोपीय योग शिक्षकों के लिए आरम्भ होने वाले सत्र संचालन हेतु मुंगेर आ गये।

1982 में जनवरी-फरवरी में दक्षिण भारत के व्यापक दौरे का प्रोग्राम बन चुका है। जनवरी अंतिम सप्ताह में बंगलौर में प्रथम दक्षिण भारत योग सम्मेलन की तैयारी शुरू हो गई है।

स्वरूप ग्रहण करता गंगा दर्शन

समय तो उड़ा जा रहा है, उसके साथ ही उड़ा जा रहा है पूज्य गुरुदेव का योग अभियान। महाभारत कालीन प्रसिद्ध पहाड़ी पर स्थित गंगा दर्शन का निर्माण कार्य विकास की दिशा पर अग्रसर है। कर्ण चौरा पर ही बना साधना हॉल, जहाँ पर कभी स्वर्ण बँटता था। महादानी कर्ण रोज सवा मन सोना दान करता था, उसी जगह पर भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी के महामहिम शिष्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती योग बाँट रहे हैं। एक जमाना था जब लोगों को स्वर्ण की आवश्यकता थी, पर आज लोगों के पास सब साधन हैं, इस भौतिकवादी युग में सब साधन प्राप्त होने पर भी लोग त्रस्त हैं। शारीरिक सुख व मानसिक शान्ति के लिए भटक रहे हैं, और उसी ऐतिहासिक जगह पर योग सीख कर शारीरिक व मानसिक शक्ति व शान्ति प्राप्त कर रहे हैं। गुरुदेव भी योग के नये-नये अध्याय खोलते जा रहे हैं।

साधना हॉल के बगल में जो कुटिया बनी है, उसके ऊपर याने दूसरी मंजिल गुरुदेव की कुटीर बन रही है। कुटीर के पीछे ही रास्ता है। पीछे दरवाजा है, जिससे अन्नपूर्णा भवन और प्रेस बिल्डिंग में गाड़ी जा सकेगी। सड़क के पीछे है योग-आरोग्य भवन। उसके पीछे काफी जगह है, पेड़-पौधे हैं, पीछे गेट की तरफ बन रहा है अन्नपूर्णा भवन, जो पूरा होने वाला है। और अब शुरू हुई है 'प्रेस बिल्डिंग'। एक फर्लांग लंबी होगी, नीचे का पूरा स्थान प्रेस के लिए ही रहेगा, ऊपर 65–70 कमरे बनेंगे। दोनों तरफ बड़े-बड़े हॉल रहेंगे। ऊपर सिर्फ महिलाएँ रहेंगी–महिला संन्यासिनी व प्रशिक्षण एवं आश्रम वास के लिए आने वाली महिलायें। वह 'शक्ति विहार' कहलायेगा।

यहाँ से उत्तर वाहिनी गंगा का विहंगम मनोरम दृश्य अवलोकनीय है और अब योग प्रशिक्षण की गंगा भी बह चली है। इस आश्रम में एक माह का शिक्षक प्रशिक्षण सत्र भी चलता ही है, अब पन्द्रह दिन के योग-साधना व योग-चिकित्सा सत्र का आयोजन भी प्रारम्भ हो गया है। श्री स्वामीजी और भी कई महत्त्वपूर्ण योजनाओं को रूप देंगे। उनकी योजना विशाल है।

एक दिन बहुत लोग बैठे थे, श्री स्वामीजी कह रहे थे, 'प्रेस भवन' के बाद 'प्रमुख भवन' सात मंजिला बनेगा। उसमें रिसर्च सेन्टर शुरू होगा। बीमारियों पर शोध होंगे, कम्प्यूटर मशीन आयेंगी, बीमारी के लिए योग व दवाई, दोनों व्यवस्था रहेगी। 'शिवानन्द मठ' के नाम से जो संस्था होगी, वह होनहार छात्रों

को छात्रवृत्ति देगी। गरीब बच्चों को 'कॉपी-किताब' देगी, देहातों में स्कूल बनायेगी, चापाकल लगवायेगी, गाँवों में जाकर दवाइयाँ और कपड़े बाँटेगी। हर तरह से जरूरतमंदों की मदद करेगी ...। श्री स्वामीजी की योजना सुनकर सब आश्चर्यचकित हो रहे थे। श्री गोवर्धन प्रसाद सिंह के उद्गार–

आज कर्ण की पुण्य भूमि पर, स्वामी सत्यानन्द खड़े हैं।
माँ गंगे हाँ चुपके कह दो, दोनों में से कौन बड़े हैं ॥1॥

मीर कासिम का किला पुराना, तू अपना मुँह खोलेगा कब।
वही कर्ण दानी राजा क्या, सत्यानन्द बन आये हैं अब ॥2॥

स्वर्ण दान वे नित करते थे, योग दान ये भी करते हैं।
दीन सम्पन्न बनाते थे वे, ये जन की पीड़ा हरते हैं ॥3॥

परशुराम के वे चेले थे, ये शिवानन्द के चेले हैं।
उनके संग सेना थी भारी, इनके संग चेले-चेले हैं ॥4॥

वे रण में अर्जुन को ढूँढे, ये अनन्त को ढूँढ रहे हैं।
चाह उन्हें थी एक जीत की, ये चाहों से आज झगड़ते ॥5॥

महाभारत के थे वे योद्धा, ये जग में योगर्षि कहाये।
श्री कृष्ण के कर्म योग को, विश्व के अर्जुन को बतलाते ॥6॥

कर्णचौरा अब गंगा दर्शन, जग का नव इतिहास बना है।
स्वागत है इस भू पर सबका, नहीं किसी के लिए मना है ॥7॥

माँ गंगा चुपके से कह दो, किले की मिट्टी मुस्काती है ।
कर्ण हमारा पहुँच गया फिर, माँ चण्डी कह हर्षाती है ॥8॥

1982 की गतिविधियाँ

गंगा दर्शन आश्रम में 31 दिसम्बर 1981 से 15 जनवरी 1982 तक प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया योग सत्र का आयोजन श्री स्वामीजी के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में हुआ। इस सत्र में फ्राँस, इटली, स्वीट्ज़रलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, युगोस्लाविया, ग्रीस, इजराइल, संयुक्त राज्य अमेरिका, कोलंबिया, और ऑस्ट्रेलिया के योग साधकों ने भाग लिया। इस सत्र की कक्षायें कर्ण चौरा के नव निर्मित साधना हॉल में संचालित की गईं। शिवानन्द आश्रम (पुराने

आश्रम) में योग चिकित्सा व साधना सत्र चलाये गये। दोनों कक्षायें अलग, पर एक ही समय में चलीं।

चिली, दक्षिण अमेरिका से साधकों का ग्रुप क्रिया योग के लिए फरवरी में आया। विदेशियों में बहुत उत्साह व उत्सुकता है।

श्री स्वामीजी ने 18 जनवरी से 16 फरवरी तक दक्षिण भारत का व्यापक दौरा किया। मुंगेर से बम्बई गये, 18 एवं 19 जनवरी 1982 को वहीं प्रोग्राम हुआ।

20 जनवरी को बंगलौर पहुँचे। 22 से 24 जनवरी तक बंगलौर में प्रथम दक्षिण भारतीय योग सम्मेलन का संचालन किया। तत्पश्चात् 25 जनवरी को हसन में, 26 जनवरी को मैसूर में, 27 से 29 जनवरी तक त्रिवेन्द्रम में, 29 से 31 जनवरी तक कोयम्बटूर में, 2 से 3 फरवरी तक त्रिची में, 4 से 5 फरवरी तक मदुराई में, 6 फरवरी को बिवेली में, 7 से 10 फरवरी तक मद्रास में, 11 से 14 फरवरी तक हैदराबाद में और 15 फरवरी को पूना में प्रोग्राम हुआ। 16 फरवरी को बम्बई वापस आये।

गंगा दर्शन में 1982 में मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त और अक्टूबर माह में शिक्षक प्रशिक्षण सत्र हिन्दी में चलेंगे। मई और अक्टूबर में हिन्दी-अँग्रेजी, दोनों कक्षायें चलेंगी। 15 दिवसीय स्वास्थ्य रक्षा व योग साधना सत्र भी चलेगा। नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी में क्रिया-योग, स्वर-योग, उच्च साधना सत्र, विशेष सत्र चलेंगे।

श्री स्वामीजी ने मार्च-अप्रैल में यूरोप की यात्रा की। पहले स्वीट्जरलैण्ड में प्रोग्राम हुआ। 19 से 21 मार्च तक उन्होंने 'स्विस योग फेडरेशन ग्वाट' के वार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन व संचालन किया। 26 मार्च को जिनेवा में ही 'इन्टरनेशनल कांग्रेस फॉर नेचुरल मेडिसिन' में प्रवचन दिया। 28 मार्च से 3 अप्रैल तक स्पेन व मोरक्को में सत्संग किया। फिर 5 से 7 अप्रैल तक लंदन में स्वामी प्रज्ञामूर्ति द्वारा आयोजित कार्यक्रमों, भेंट-वार्ताओं में भाग लिया। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी का कार्यक्रम 8 से 13 अप्रैल तक मार्तिनिक में, 14 से 16 अप्रैल तक ग्लासगो में, 17–18 अप्रैल को न्यूकैसल में, 19 से 21 अप्रैल तक मेनचेस्टर में तथा 23 अप्रैल को सत्यानन्द आश्रम डेनमार्क में हुआ।

गंगा दर्शन में फरवरी में बसन्त पंचमी प्रतिष्ठा दिवस के अवसर पर तीन दिन का प्रोग्राम हुआ। भजन, कीर्तन, सत्संग चला। रात को राजेश

रामायणी का रामायण पर तीनों दिन प्रोग्राम हुआ। बाहर से बहुत लोग आये थे।

9 मार्च 1982 को होली के शुभ अवसर पर गंगा दर्शन के नवनिर्मित भवन 'अन्नपूर्णा' में पाक-गृह का शुभारंभ किया गया। अभी तक पुराने आश्रम में ही रसोई बनती थी, वहीं भोजन होता था। नौ मार्च को संन्यासियों एवं शिक्षार्थियों ने प्रसाद ग्रहण किया। उसी दिन से गंगा दर्शन के अन्नपूर्णा में सबका भोजन बनने लगा। पुराने आश्रम की पूरी रसोई गंगा दर्शन में ही आ गयी और 15 मार्च को आश्रम कार्यालय का भी गंगा दर्शन में स्थानांतरण कर लिया गया, सब काम गंगा दर्शन में होने लगे। स्वामी दोनों जगह रहते थे।

प्रेस भवन का काम जोर-शोर से चलने लगा, जून में छत ढलाई हो गयी। फर्श का काम चलने लगा। गुरु पूर्णिमा का आयोजन इसी नये भवन में होने की योजना बनी। 1982 में ही दिसम्बर तक प्रेस भी नवनिर्मित भवन लाने की योजना है। ऊपर के कमरे बाद में बनते रहेंगे। जो मुख्य भवन का खण्डहर है, शायद किसी जमाने में वह राजभवन भी रहा होगा, जिसकी मरम्मत करना भी असंभव है, श्री स्वामीजी ने उसी जगह पर सात मंजिले भवन का भूमि पूजन भी गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन में करने की बात तय की। जुलाई महीने में शिक्षक प्रशिक्षण व स्वास्थ्य रक्षा सत्र बंद रखने की योजन बनी। तैयारियाँ शुरू हुईं।

स्वामी निरंजन जी ने अस्तारा फाउन्डेशन, कैलिफोर्निया, यू.एस.ए. में तंत्र योग शिविर का संचालन किया।

श्री स्वामीजी 9 मई को टोकियो पहुँचे, वहाँ शिष्यों-भक्तों की अपार भीड़ ने अभिनन्दन किया। श्री स्वामीजी ने जापान का व्यापक दौरा किया, वे क्योतो, हिरोशिमा व नागासाकी भी गये। वहाँ सत्संग-प्रवचन दिए। 'अन्तर्राष्ट्रीय धर्म एवं परा मनोविज्ञान संस्थान' के संस्थापक डॉ. हिरोशी मोटोयामा, उनके सहयोगियों एवं मित्र मण्डली ने विशेष सत्कार व कार्यक्रम आयोजित किये। उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्रों और विश्वविद्यालय में प्रवचन दिये। टेलीविजन केन्द्र में भेंट-वार्ता हुई। कोलंबिया जाते हुए श्री स्वामीजी लॉस-एंजिल्स में रुके। श्री स्वामीजी के दर्शन हेतु स्वामी निरंजन सरस्वती, कमल व जीवत मुखी, स्वामी प्रशान्तानन्द और माता अंजनी के साथ सेनफ्रांसिस्को से आये। श्री स्वामीजी ने भारतीय व अमेरिकन शिष्यों, भक्त मण्डली को दर्शन-सत्संग दिया।

19 मई को श्री स्वामीजी मेदेलीन गये। वहाँ नवीन आश्रम का उद्घाटन किया। श्री स्वामीजी सान आगस्तिन गये, जो कोलंबिया की प्राचीन संस्कृति का जीता जागता भग्नावशेष है।

23 मई को श्री स्वामीजी सांतो दोमिगो पहुँचे, वहाँ सत्यानन्दाश्रम के तत्त्वावधान में आयोजित 'कैरेबियन योग एण्ड हेल्थ सेमिनार' का उद्घाटन व संचालन किया। 23 से 31 मई तक सिरियो लेवेनिज पेलेस्तिनी क्लब में प्रवचन दिये। मेडिकल डॉक्टरों को सम्बोधित किया, टेलीविजन के लिए कई साक्षात्कार वार्तायें दीं। साधकों को दीक्षा दी, सत्संग दिये और 3 जून को स्वामी सत्संगी के साथ भारत वापस आये।

मई माह में हिन्दी-अँग्रेजी में योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र का अलग-अलग आयोजन हुआ। काफी लोग आये थे, दोनों कक्षायें हुईं।

श्री देवेन्द्रनाथ गुप्त का, जिन्हें हम सब दादाजी कहते थे, 16 जून 1982 को निधन हो गया। वे 83 वर्ष के थे, गुरुदेव के निकटतम भक्त शिष्य थे, कमेटी के उपाध्यक्ष पद पर थे। वे 1928 से मुंगेर में वकालत करते आ रहे थे। वे अमृत बाजार पत्रिका, युगान्तर, आनन्द बाजार पत्रिका, स्टेट्स मैन, इन्डियन नेशन, सर्च लाइट, इत्यादि समाचार पत्रों से सम्बद्ध रहे। फिर उन्होंने सच्ची बात साप्ताहिक निकालना शुरू किया। 1964 में जब से आश्रम बना, कर्णचौरा उनका स्वप्न था, जो उनके विशेष प्रयत्नों से 1978 में पूरा हुआ था। सेवा कार्य में व्यस्त सरल जीवन यापन करने वाले 'दादी जी' सच्चे संत थे।

गुरु पूर्णिमा महोत्सव 4 से 6 जुलाई 1982 को मुंगेर में मनाया गया। 4 तारीख से दो दिन का साधना शिविर शुरू हुआ। सुबह साधना, दोपहर श्री स्वामीजी का सत्संग, प्रवचन, प्रश्न-उत्तर, संध्या कुमारी, करुणा मिश्रा का गीता-रामायण पर प्रवचन, श्रीमती कृष्णा देवी का रामायण पर प्रवचन होता, ये सब प्रोग्राम नवनिर्मित प्रेस भवन में होते थे।

5 तारीख दोपहर को गंगादर्शन के मुख्य भवन का भूमि-पूजन 'शिलान्यास' श्री स्वामीजी के कर कमलों द्वारा हुआ। बाकी सभी प्रोग्राम नियमित हुए।

6 जुलाई प्रातः काल से निर्माणाधीन प्रेस भवन के विशाल हॉल में पाँच बजे भजन-कीर्तन शुरू हुआ। छः बजे गुरु-पाद पूजा हुई, पूरे भारत के कोने-कोने एवं विदेशों से आए शिष्य भक्तों ने गुरु पूजा की, गुरुदेव से दिव्य आशीष एवं मंत्र दीक्षा प्राप्त की। किशोर बालकों का उपनयन संस्कार हुआ। कर्म संन्यास एवं संन्यास दीक्षा हुई। आशीर्वचन प्रवचन हुआ। शाम

को भजन-कीर्तन, कुमारी करुणा मिश्रा का वेद-उपनिषद् पर प्रवचन हुआ। श्रीमती कृष्णादेवी का रामायण पर प्रवचन हुआ।

श्री स्वामीजी ने 9 जुलाई को भागलपुर में योग मित्र मण्डल द्वारा आयोजित 'योग आध्यात्मिक साहित्य सम्मेलन' का संचालन किया। श्री स्वामीजी ने 18 जुलाई को प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र मुंगेर की जनसभा में सत्संग दिया।

श्री स्वामीजी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका गये, वहाँ पर 22 अगस्त से 13 सितम्बर तक स्वामी निरंजन सरस्वती द्वारा आयोजित कार्यक्रमों का संचालन किया। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी इटली गये, जहाँ उन्होंने 15 से 30 सितम्बर तक योग सम्मेलनों एवं सत्संग कार्यक्रमों का संचालन किया। 1 से 7 अक्टूबर तक श्री स्वामीजी ने ग्रीस में 'सत्यानन्द आश्रम ग्रीस' द्वारा आयोजित कार्यक्रमों की अध्यक्षता व संचालन किया।

तत्पश्चात् श्री स्वामीजी भारत आये। बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन में रह कर 'योग शिक्षक प्रशिक्षण' सत्र वालों को सत्संग दिये।

28 तारीख को श्री स्वामीजी सम्बलपुर, उड़ीसा पहुँचे। वहाँ पर 29 अक्टूबर से 1 नवम्बर तक होने वाले 'अखिल भारतीय योग सम्मेलन' की अध्यक्षता व संचालन किया। जगह-जगह से भक्त, शिष्य, साधक आये थे। विदेशों से भी साधक भक्त आये थे। सत्संग, प्रवचन, व्यक्तिगत भेंट, मंत्र दीक्षा नियमित चलती रही।

श्री स्वामीजी ने 14 एवं 15 नवम्बर को पोर्टोरिको, दक्षिण अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय योग शिक्षक संघ द्वारा आयोजित कार्यक्रम का संचालन किया। 21 से 24 नवम्बर तक प्वाइंट-ए-पितरे, दक्षिण अमेरिका में और 25 से 27 नवम्बर तक 'सान्तोदोमिगो' द्वीप में सत्संग-प्रवचन किये। तत्पश्चात् वे 28 नवम्बर से 6 दिसम्बर तक मैदेलिन में रहे, सत्संग-प्रवचन चलता रहा।

स्वामी निरंजन सरस्वती ने यू.एस.ए. में मिशिगन, वर्जिनिया, वाशिंगटन डी.सी., पोर्टोरिको, डेनवर और सेन होसे में योग पर व्याख्यान और शिविरों का संचालन किया।

श्री स्वामीजी ने 10 से 12 दिसम्बर तक मिथिला योग सम्मेलन, बेगुसराय की अध्यक्षता एवं संचालन किया और वहाँ के नवीन आश्रम का उद्घाटन किया।

श्री स्वामीजी ने 25 से 27 दिसम्बर तक ठाणे योग सम्मेलन की अध्यक्षता व संचालन किया। उन्होंने 24 दिसम्बर को 'होमी भाभा एटॉमिक रिसर्च

इंस्टीट्यूट' को योग विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में रोगों की उत्पत्ति विषय पर सम्बोधित किया। सभी आश्रमों के शिष्यों सहित श्री स्वामीजी 25 दिसम्बर को ठाणे पहुँचे। श्री मुरार जी देसाई ने उनका स्वागत किया। योग सम्मेलन का उद्घाटन भी श्री मुरार जी देसाई ने किया, श्री स्वामीजी ने अध्यक्षता व संचालन किया। सभी जगहों से आये रिसर्च करने वाले डॉक्टरों का बाहुल्य था। चिकित्सक, वैज्ञानिक एवं योग विशेषज्ञ, सभी आये थे। हजारों भक्त शिष्यों ने भाग लिया, चार दिन का यह विशाल प्रोग्राम अनेक अर्थों में महत्त्वपूर्ण रहा।

29 दिसम्बर को खीरा नगर स्थित बिहार योग विद्यालय के बम्बई आश्रम में सत्संग-प्रवचन दिये। 30 दिसम्बर को मुंगेर के लिए प्रस्थान किया।

स्वामी निरंजन का उत्तराधिकारी के रूप में अभिषेक

19 जनवरी 1983 को बसन्त पंचमी एवं बिहार योग विद्यालय के स्थापना दिवस की उन्नीसवीं जयन्ती के शुभ अवसर पर स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती को बिहार योग विद्यालय की अध्यक्षता सौंपी। स्वामी निरंजन अमेरिका में सत्यानन्द आश्रम का संचालन कर रहे थे। पूज्य गुरुदेव के आदेश से वे तीन दिन पहले ही, यानी 16 जनवरी को मुंगेर आये हैं।

योग के विश्वव्यापी पुनरुत्थान, लोकप्रियता और आवश्यकता को देखते हुए, स्वामी सत्यानन्द जी से लगातार अनुरोध किया जाता रहा है कि वे देश-विदेश में योग कार्यक्रमों का संचालन करें और बिहार योग विद्यालय के अन्य आश्रमों, केन्द्रों एवं विद्यालयों को मार्गदर्शन दें तथा उनका विकास करें। अब श्री स्वामीजी संस्थापक अध्यक्ष पद पर रहते हुए बिहार योग विद्यालय के लिए कार्य करेंगे तथा उनके क्रिया-कलापों में मार्ग-दर्शन देते रहेंगे, पथ प्रदर्शन करते रहेंगे।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के भक्त-शिष्य व अभिन्न सत्यव्रत जी के गृह में गुरुदेव के मंगल आशीष से, उनके मिशन के कार्य हेतु ही स्वामी निरंजन सरस्वती का जन्म 14 फरवरी 1960 को हुआ। पूज्य गुरुदेव बम्बई से 19 मार्च को नन्दग्राम आये, 35 दिन के बालक को गोद में लेते ही उनकी आँखें चमक उठीं, लगा कि गुरुदेव बालक शिष्य की नजरें मिलीं ... और वे हँस पड़े। बोले, 'यह निरंजन है, इसे निश्चित कार्य की पूर्ति हेतु ही आना पड़ा है। वह

कार्य जो अनेक आत्माओं से सम्बन्धित है। यह आवश्यक सामग्री के साथ ही प्रकाश बन कर आया है। मुझे तुम दोनों पर विश्वास है कि इस दिव्य रत्न को यथार्थ दिव्य बना सकोगे। यह सिर्फ माता-पिता के लाड़-प्यार-स्नेह का अधिकारी नहीं, घर-बाहर, देश, राष्ट्र, विश्व का भी अधिकारी होगा। यह निरंजन है, इसे निरंजन ही कहना।'

दिव्य गुरु की शुभकामनाओं के प्रतीक बालक निरंजन ने अपने क्रियाकलापों से सबको चकित करते हुए, अल्पावस्था में ही आश्रम जीवन स्वीकार किया। जिस उम्र में बालक माँ की गोद में रहता है, माँ के आँचल में मुँह छिपाता है, पिता की ऊँगली पकड़ कर चलता है, उसी उम्र में मनस्वी बाल योगी निरंजन ने माया-मोह से दूर, गुरु आश्रम में रहने व संन्यासी बनने की इच्छा व्यक्त की, व उसे पूर्ण भी किया।

आरम्भ से ही स्वामी निरंजन को विभिन्न प्रकार की शिक्षा मिली। गुरु के सान्निध्य में रहने एवं अनुशासित आश्रम जीवन से विलक्षण अन्तर्ज्ञान एवं सजगता अर्जित की। साथ ही उन्हें विभिन्न लोगों और परिस्थितियों का पूर्ण अनुभव मिला।

10 वर्ष के होने पर 10 फरवरी 1970, बसन्त पंचमी के शुभ दिन में संन्यास लेकर सेवा-साधना शुरू की। 1 मार्च 1971 को आश्रम कार्य हेतु आयरलैण्ड पहुँचे। बेलफास्ट, इंगलैण्ड व पूरे स्कॉटलैण्ड, फ्राँस, स्वीट्जरलैण्ड, ऑस्ट्रिया का भ्रमण करके, सभी जगह सत्संग, प्रवचन, प्रोग्राम करते हुए अक्टूबर 1973 में कोलंबिया से साधकों का समूह लेकर स्वर्ण-जयन्ती-समारोह में मुंगेर आये।

1974 में फिर दक्षिण अमेरिका गये। कोलंबिया के पुरातत्त्व काल के प्रमाणावशेष संग्रह हेतु गये, जहाँ प्राचीन विश्व संस्कृति योग को दर्शाती है, उस पर शोध भी किया। आश्रम संचालन, प्रवचन, सत्संग, सेमिनार करते हुए दक्षिण अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया के सभी शहरों में तथा अन्य देशों में भी भ्रमण और कार्यक्रम करते रहे, पुरातत्त्व सामग्री की खोज करते रहे।

जुलाई 1976 में गुरुदेव के साथ ऑस्ट्रेलिया से भारत आये। मुंगेर आकर, आश्रम का पूरा काम, प्रेस का पूरा काम किया तथा श्री स्वामीजी के सचिव का कार्य संभाला। कुछ समय पश्चात् दिसम्बर 1977 से कलकत्ता आश्रम का कार्यभार संभाला। कलकत्ता व बुरला (उड़ीसा) में मधुमेह शोध कार्य में सहायता की। कलकत्ता में रहकर बहुत काम किया।

जून 1979 को स्वामी निरंजन ग्रीस पहुँचे। आस-पास के सभी देशों में गये, सभी जगह सत्संग, प्रवचन, आश्रम संचालन, सेमिनार, सम्मेलन, प्रोग्राम करते रहे। वहाँ पर प्रोग्राम बहुत व्यस्त रहा।

अप्रैल 1980 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की यात्रा की। करीब 25 शहरों में भ्रमण, सत्संग, प्रवचन, सेमिनार और सम्मेलन किये। अक्टूबर 1980 में, अमेरिका में सत्यानन्द आश्रम की स्थापना की। वहाँ की नागरिकता प्राप्त की। इस दरम्यान उच्च पादरियों, गुरुओं, सनातन धर्म के महान् संतों, सभी धर्म के विशिष्ट लोगों, स्वामी शिवानन्द जी के शिष्यों, भक्तों और बौद्ध आचार्यों से भी मिले। कैलिफोर्निया के डॉक्टर जो. कामिया के साथ वैज्ञानिक शोध-कार्य में भाग लिया। सभी रिसर्च सेन्टरों में गये। चर्चा हुई, सबके साथ काम किया। सभी स्थानों पर विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और लायन्स, रॉटरी क्लबों में कार्यक्रम हुए। सभी संस्थाओं में सत्संग-प्रवचन हुए। आश्रम संचालन व योग प्रचार करते रहे।

16 जनवरी 1983 को पूज्य गुरुदेव के आदेश से स्वामी निरंजन भारत वापस आये, और 19 जनवरी 1983 बसंत पंचमी के पावन अवसर पर गुरुदेव ने 23 वर्षीय स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती को बिहार योग विद्यालय का अध्यक्ष पद सौंप कर बहुत बड़ी जिम्मेदारी दे दी।

श्री स्वामीजी की सचिव, स्वामी सत्यसंगानन्द ने कहा, 'बिहार योग विद्यालय के इतिहास में 1983 का साल एक नये आयाम और एक नई दिशा की सूचना देता है। एक संस्था का निर्माण करना अपने आपमें एक महान् कार्य है, किन्तु उसके उच्च आदर्शों और मर्यादाओं को सुरक्षित बनाये रखने के लिए एक सुयोग्य उत्तराधिकारी का चुनाव कर लेना कम महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है। संस्था के प्रारम्भ से ही स्वामी सत्यानन्द जी को गुरु और प्रबंधक की दोहरी भूमिकाओं को निभाने में अनेक परेशानियों का सामना भी करना पड़ा है, किन्तु अद्वितीय बुद्धिमता के कारण ही उनकी सफलता संभव हो सकी है।

गुरु के कर्त्तव्यों से हम सभी अवगत हैं। वे अनेक लोगों के गुरु, प्रेरणादायक व परीक्षक के रूप में विलक्षण भूमिका अदा कर रहे हैं। गुरु से अपने सम्बन्धों को विकसित किये बिना इस जीवन को जीने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपनी क्षमता द्वारा वे लोगों की समस्याओं का सूक्ष्म तथा यथार्थ निराकरण करते रहे हैं। एक तरफ वे अन्तर्मुखी हों, तो दूसरी ओर उन्हें

अपनी उसी चेतना को बहिर्मुखी बनाना पड़ता है। वास्तव में उच्च अवस्थाओं से निम्न अवस्थाओं में मन का सतत् उतार-चढ़ाव करना कोई खिलवाड़ नहीं है, न ही इसे आसानी से किया जा सकता है, क्योंकि मन की एक अवस्था दूसरी अवस्था की पूरक नहीं है। केवल जीवन-मुक्त संत ही ऐसी भूमिका बड़ी आसानी से निभा सकते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी ऐसे ही व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। उनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन लोगों को सतत् आलोकित करता रहा है।

श्री स्वामी जी कहते हैं, 'मेरा जीवन 20 वर्षों के युगों में विभक्त है। मेरा जन्म 1923 में हुआ, 1943 में गुरु आश्रम में प्रवेश किया, 1963 में अपने आश्रम की स्थापना की और 1983 में अवकाश ग्रहण करूँगा। लोगों को प्रेरणा दूँगा, उनका मार्गदर्शन करता रहूँगा।'

श्री स्वामीजी यह भी कहते हैं, 'किसी भी संस्था के संस्थापक के लिए यह सर्वथा आवश्यक है कि वह अपने जीवन काल में ही अपने स्थान को रिक्त कर अपने उत्तराधिकारी को वहाँ प्रतिष्ठित कर दे ताकि उत्तराधिकार ग्रहण करने वाला व्यक्ति अपने कार्यों में दक्षता प्राप्त करने में समर्थ हो जाए।'

यह संन्यास संस्था के लिए विशेषत: युक्तिसंगत है, क्योंकि यहाँ वास्तव में किसी व्यक्ति का कुछ भी नहीं होता। अनेक जीवन-मुक्तों व मुक्त-पुरुषों को देखा है, जो अपने जीवन काल में बड़े ही क्रियाशील रहे हैं। किन्तु अपने पीछे एक समर्थ शक्ति-स्तंभ को छोड़ जाने में असमर्थ ही रहे हैं।

मिशन के प्रशासन के लिए स्वामी निरंजन 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के प्रधान हैं एवं वे मिशन की सभी गतिविधियों का प्रत्यक्ष रूप से संचालन करेंगे। एक शिष्य के लिये अपने गुरु के मौखिक या अन्य निर्देशों को मानना सर्वोपरि महत्त्व की चीज है। उसे अपने गुरु की आवश्यकताओं का पूर्वाभास होना चाहिए तथा सतत् सावधान रहना चाहिए, तभी गुरु अपना ज्ञान और मार्गदर्शन शिष्य में सम्प्रेषित कर सकेंगे एवं कर्मठ शिष्यों के द्वारा अपने मिशन को यथावत् विकसित करते रहेंगे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि स्वामी निरंजन ऐसे समर्पित शिष्य की तरह कर्तव्यपरायणता के उच्च आदर्शों की रक्षा करते रहे हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी केवल 23 वर्ष की है, परन्तु उनका अनुभव, निर्णायक क्षमता एवं विवेक की तुलना दुगनी आयु वाले व्यक्ति से ही की जा सकती है। वे 10 वर्ष की अवस्था से ही व्यापक रूप से विश्व-भ्रमण कर रहे हैं। शायद तब उन्हें इसकी जानकारी



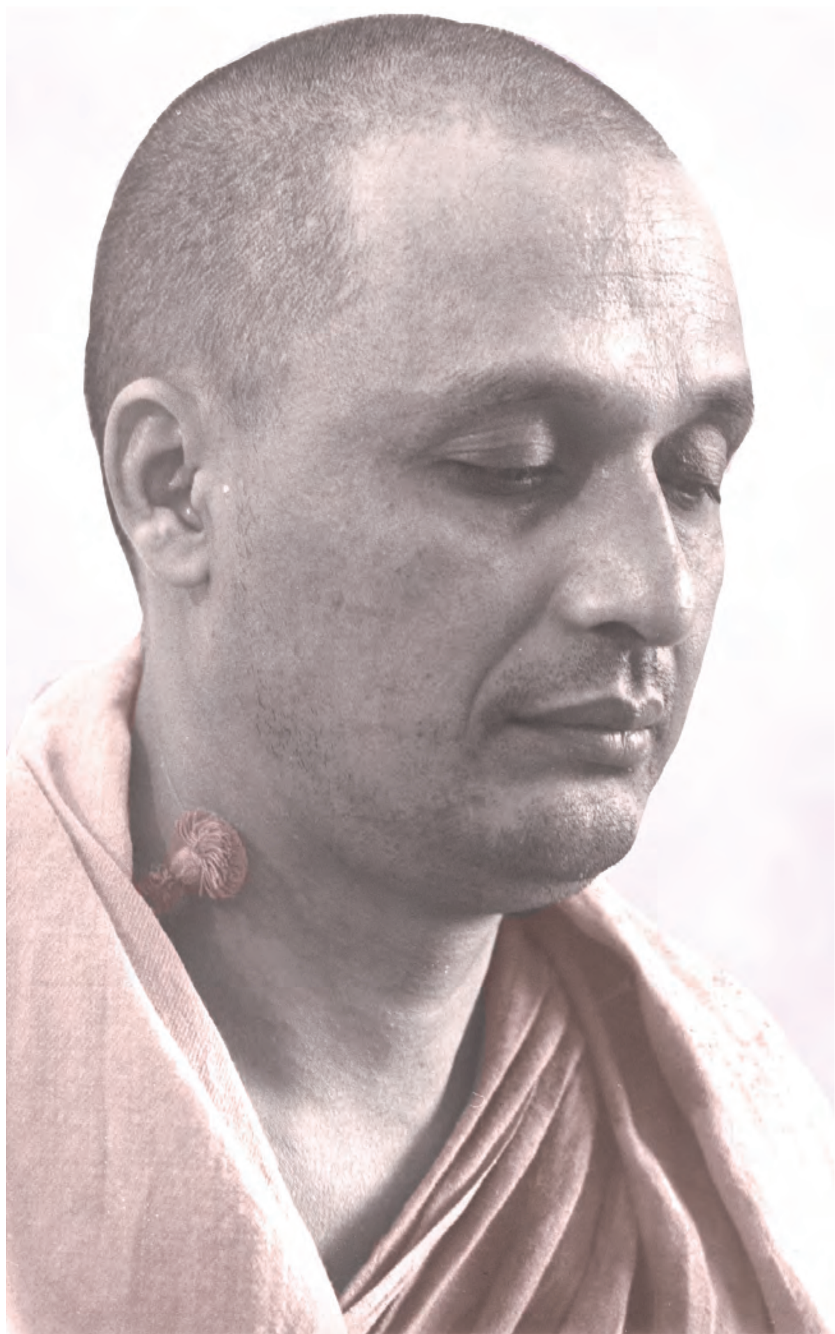














भी नहीं थी कि भविष्य में उत्तरदायित्व का बहुत बड़ा बोझ उन पर पड़ने वाला है। उनके असाधारण पूर्व कीर्तिमान पर दृष्टिपात करने से ऐसा जान पड़ता है कि विशाल उत्तरदायित्व का भार यद्यपि एक नवयुवक के जिम्मे है, किन्तु यह हिमालय-सा विशाल, गुरुदेव की कार्यक्षमता वाला भार सुदृढ़ कंधों और परिपक्व व्यक्तित्व पर टिका है।

अब संस्था के प्रशासनिक कार्यों से अवकाश पाने के बाद श्री स्वामीजी विस्तृत एवं व्यापक रूप से अन्य कार्य कर सकेंगे। इस संदर्भ में विभिन्न देशों, नगरों एवं ग्रामों में योग शिविरों एवं योग सम्मेलनों के व्यापक आयोजन एवं श्री स्वामीजी द्वारा उनकी अध्यक्षता किये जाने की प्रतीक्षा की जा रही है। इस प्रकार अपने गुरु के शब्दों में, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती नगर-नगर और डगर-डगर तक योग प्रचार-प्रसार कर सकेंगे, योग गंगा बहा सकेंगे।'

श्री स्वामीजी के शिष्य, भक्त व परिचित चकित हृदय से उनके कार्यकलाप देखते रहे, वे बड़े प्रसन्न व प्रफुल्लित दिख रहे थे। उन्होंने मंत्र दीक्षा, कर्म संन्यास दीक्षा व बीस लोगों को संन्यास दीक्षा दी। आशीर्वाद एवं प्रवचन दिया। उनके पुराने शिष्य, जो उनके गुरु-आश्रम से जुड़े हैं या परिव्राजक काल से जुड़े हैं, मन-ही-मन प्रार्थना कर रहे थे। इस युग के हमारे शुकदेव मुनि का दर्शन, सत्संग, सान्निध्य हमें मिलता रहे, मुक्त गगन का यह अमर पंछी युगों-युगों तक अपना वेद-गान सुनाता रहे। प्रभु इतनी कृपा हम अज्ञानी लोगों पर करते रहना ...।

पंचम खण्ड

देश-विदेश में योग गंगा की लहरों की झाँकियाँ



अनासक्त नर रत्न!

आश्चर्यचकित है विधाता, आपको देखकर, क्योंकि उसने तो आपको निर्विकार ही रचा था। आप अपने मन को ज्ञान की अग्नि में तपा, शुद्ध कंचन बना, संसार-सागर में कमल के पत्ते के समान रहते हुए भी इस संसार से निर्लिप्त ही रहे।

गंगा तटस्थं चिरयोगिराजं, योगे रमन्तं शुचि शान्त मूर्तिम् ।
आनन्द संस्थं विपिने वसन्तं, काषायवन्तं सततं नमामि ॥

पंचम खण्ड

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' कहकर भी लोग उस अनन्त प्रभु की महिमा अपनी कल्पना के अनुसार विविध भाषा में लिखते ही हैं। उसी तरह हमने भी पूज्य गुरुदेव के बारे में लिखने का सोचा, जो कठिन ही नहीं दुस्तर भी है। लिखने का शौक हमेशा से रहा, अखबार के रविवार अंक में व महिलाओं की पत्रिका, दीदी व जननी में लिखती थी। कभी सिलाई-बुनाई के बारे में, कभी रसोईघर से। कभी विचार आता कि यह क्यों लिखती हूँ। फिर तीज-त्योहार पर लिखने लगी। श्री स्वामीजी के सत्संग के बाद लगा यह सब निरर्थक है। श्री स्वामीजी के प्रवचनों को लिखने लगी, फाइल बना कर रखती व पेपरों के लिए भेजती। सन् 1957 में आदेश हुआ गंगोत्री यात्रा के बारे में लिखने का, वह कार्य पूरा हुआ।

श्री स्वामीजी का आदेश हुआ—हमारे लेखों को संपादित कर तैयार करो। हमारे विचार व आदेशों को सूक्ति रूप में लिखो। हमारे प्रवचनों का संग्रह तैयार करो। बद्री-केदार-गंगोत्री-यमुनोत्री पर लेख लिखो। लेख परिचयात्मक रहेंगे। यह काम तुरन्त हाथ में ले लो। तुम्हें जल्दी ही 3–4 पुस्तकें तैयार करनी हैं। समझ कर भी अनजान हो, अक्ल भी देनी होगी क्या? हमेशा कागज, कलम साथ रखो और लिखते जाओ।

'आकाश का तारा, धरती का फूल' छपने के बाद सत्यव्रत जी ने कहा—श्री स्वामीजी के 'जीवन व कार्य' पर एक पुस्तक लिखो। हम तो सोच भी नहीं सकते थे क्या, कैसे लिखना होगा। श्री स्वामीजी से सत्यव्रत जी की बातें तो होती रहतीं, जब सत्यव्रत जी को कोई बात महत्त्वपूर्ण लगती या कभी पूर्वाश्रम की बातें होतीं, तो श्री स्वामीजी की उन बातों को आशुलिपि में लिख लेते, फिर हम अपनी डायरी में लिखते। सत्यव्रत जी हमेशा कहते, इन कागजों व

डायरी को संभाल कर रखना, बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। कभी पुस्तक का रेखा-चित्र समझाते, कहते, 'गुरु-ग्रंथ जरूर लिखना। मैं रहूँ या न रहूँ, पर जब तुम्हारी पुस्तक तैयार होगी, तब मेरी आत्मा को बहुत शान्ति मिलेगी। मेरा आशीर्वाद तुम्हें लिखने में सहयोग देता रहेगा।'

सत्यव्रत जी के एक्सीडेंट के बाद यह सब असंभव-सा लगने लगा। पर विचार हमेशा उमड़ते रहते, कभी फाइलों को देखती रहती, कभी सोचती ही रहती। समय बदलता गया, दुनिया बदल गई, दो दशक बीतने लगे, तो चिन्तन भी बढ़ा। प्रभु की असीम अनुकम्पा से गुरु-कृपा का 'अमृत घट' मेरे पास है–गुरुदेव की बातें, उनके विचार, उनके साथ किये सत्संग, उनके साथ की यात्रायें, समय-समय पर उनके साथ हुए अनुभव। कुछ बातें उनके गुरु-भाइयों से सुनीं, कुछ पुस्तकों में पढ़ीं, उनके भक्त-शिष्य-सखाओं की संगृहीत फाइलों व डायरी में जो भी मिलता, उन सबको यथास्थान सजा कर पुस्तक का रूप देने पर ही सोचती रहती, उन पर त्राटक करती रहती।

श्री स्वामीजी कहते हैं–भगवान बनना तो सरल है, पर 'सच्चा मानव' बनना बहुत ही कठिन है। और मैं उन्हीं महा-मानव की बातें लिखने का दु:साहस कर रही हूँ। अब उन्हीं 'महा-मानव' ने अपनी जीवन रूपी गंगा की धारा को एक नया मोड़ दे दिया है ...।

कई वीतराग संतों की एक कौपीन के पीछे गृहस्थी बसाने वाली कहानी तो सुनी ही है। पर सर्व-सुख-सुविधा युक्त गंगादर्शन जैसे निवास को त्याग, भिक्षुक पथ अपनाने वाले श्री स्वामीजी विदेहराज जनक के अभिनव अवतार ही तो हैं। सोचती हूँ तो उपयुक्त शब्द नहीं मिलते, फिर उनके गुरु आश्रम में पहुँच गई। वही जगह मेरे लिए कल्पवृक्ष है–

स्वामी शिवानन्द वटवृक्ष हैं, ऋषिकेश है मूल ।
स्वामी सत्यानन्द को क्या कहूँ, सब जाती हूँ भूल ॥

भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी आत्मा के प्रकाश से ऐसे सूर्य का निर्माण किया जो कण-कण में भगवान जैसे सबकी आत्मा में समाहित हो रहा है। हमारा भारतवर्ष युगों-युगों से ऋषियों की तपोभूमि रहा है। इतिहास बताता है कि वे ऋषि-मुनि हजारों वर्षों तक कठिन तपस्या करके अपने को मिटा डालते थे, पर आज तक किसी संत-संन्यासी को साधना और आध्यात्मिक पूर्णता के लम्बे रिकार्ड के साथ नहीं पाया गया है।

19 वर्ष की अल्पावस्था में श्री स्वामीजी ने गृह-त्याग किया। नियति ने उन्हें स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में पहुँचा दिया। बारह वर्षीय कठोर आश्रम-जीवन ने उन्हें मानव-जीवन के प्रति बहुमूल्य अन्तर्ज्ञान दिया। उन्होंने महसूस किया कि 'दिखावटी ऊँचाई' व उपदेश देना ही जीवन का लक्ष्य नहीं है, जन-जीवन को अपनाना होगा। सन् 1956 में गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी से दिग्विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद प्राप्त कर लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाये।

श्री स्वामीजी ने दिल्ली में पहला प्रोग्राम शुरू किया। दिल्ली से ही सत्यव्रत जी में अपने व्रत की विशेषता का संचार कर 7 जून 1956 को श्री स्वामीजी नन्दग्राम आये। सत्यव्रत जी को अर्जुन बनाकर प्रभु श्रीकृष्ण के समान शंखनाद किया–'योग ही भविष्य की संस्कृति है' और 'नन्दग्राम ही मेरा सारनाथ है।'

सैद्धान्तिक ज्ञान से उच्चतम विवेक मिलता है, पर श्री स्वामीजी के विचार से ज्ञान क्रियान्वित होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को न केवल आध्यात्मिक सत्य को जानना चाहिए, वरन् उसके अनुसार खुद रहना भी चाहिए। हमारा योगशास्त्र कुछ रहस्यपूर्ण सूत्रों में बद्ध था और कुछ भारतीय साधक ही इसे जानते थे। पर आज सम्पूर्ण भारत व विदेशों में भी लाखों-लाख व्यक्ति आसन-प्राणायाम व अजपाजप और क्रियायोग भी करते हैं। कुण्डलिनी शक्ति के बारे में भी जानकारी रखते हैं। योग-गंगा सबके लिए समान है।

श्री स्वामीजी अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के संस्थापक, प्रेरक व संचालक हैं। उनका लक्ष्य यौगिक अच्छाइयों को मानव मस्तिष्क में प्रवेश कराना है। उन्होंने योग के दुराग्रह एवं अज्ञान के किले को तोड़ा है। यह उनका पुराण-शास्त्र में बद्ध योग के विरुद्ध धर्म-युद्ध है।

चार्वाक, बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक, योग मीमांसा, वेदान्त, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, उपनिषद् और गीता-दर्शन–ये हैं भारत के गौरवपूर्ण प्राचीन दर्शन। इन्हीं दर्शन समुद्रों से थोड़ा-थोड़ा ज्ञान लेकर अनेक सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। जितने दर्शन हैं, वे सत्य के एक अंग को स्पष्ट करते हैं। सत्य के बहुत स्वरूप हैं, फलस्वरूप एक दर्शन को मानने वाले, दूसरे दर्शन को मानने वालों से वैमनस्य स्थापित कर लेते हैं।

अस्तु ऐसे युग में जबकि मनुष्य की आवश्यकताएँ बदल गईं, जीवन की मान्यताएँ बदल गईं, रहन-सहन बदल गया, धर्म और संस्कृति की रक्षा

प्राण-प्रण से करते रहने के बावजूद भी परम्परा और नियम टूटते रहे। देश के भी टुकड़े हो गये। मजे की बात कि भगवान शंकर भी अपने महान् कैलास पर्वत सहित चीनियों के पक्ष में चले गये। (भगवान शंकर तो सर्वदेशीय, सर्व व्यापी हैं, उनका आना-जाना बराबर ही है।) हम लोग ही बँटवारा करके सुख का अनुभव करते हैं। इस विषम परिस्थिति में, भौतिकता से त्रस्त विज्ञान युग में, श्री स्वामीजी ने योग आन्दोलन शुरू किया। सन् 1962 में अपनी योजना को मूर्त्त रूप दिया, अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल का मुख्यालय नन्दग्राम बना और श्री स्वामीजी नगर-नगर, डगर-डगर योग-गंगा बहाने लगे।

देव श्री गुरु ने शिष्य को दर्शन व आदेश दिया। योग श्री शिष्य ने उत्तरवाहिनी गंगा के किनारे आश्रम बना कर, गुरु-ज्ञान-ज्योति का अखण्ड दीप प्रज्वलित करने का संकल्प लिया। और उस संकल्प को श्री केदारनाथ गोयनका जी ने आश्रम बना कर पूरा किया।

बिहार योग विद्यालय में हर धर्म और हर जाति व विभिन्न वर्गों के लोग आकर योग सीखने लगे। इस विद्यालय व अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल ने किसी धर्म, सम्प्रदाय, मत या वाद का प्रचार नहीं किया। बिना भेदभाव के साधना की सम्पूर्ण पद्धतियाँ सिखलाना व वैज्ञानिक आधार पर जीवन में उसकी उपादेयता सिद्ध करना, लोगों को शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य लाभ और आध्यात्मिक उन्नति कराना ही लक्ष्य रहा है। धीरे-धीरे लोग योग को अपनाने लगे। कार्यक्षेत्र बढ़ता गया, देश-विदेश के कोने-कोने से लोग आने लगे। सभी शहरों व गाँवों में 'योग मित्र मण्डल' की शाखायें खुलने लगीं, आश्रम बने, शिविर, कैम्प, सम्मेलन होने लगे।

भविष्य की संभावनाएँ असीम, अपरिमित एवं अवर्णनीय हैं। योग-विज्ञान भारत का अति प्राचीन ज्ञान-कोष है। अन्य विज्ञानों की भाँति ही इस विज्ञान में भी नित नवीन खोज जारी है। योग विद्या का क्षेत्र अब सिर्फ गृह त्याग किए हुए व गलत काम करके पलायन किए हुए साधु-संन्यासी तक सीमित नहीं रह गया है, इस ज्ञान यज्ञ के होता–बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी, सुशिक्षित वर्ग, इन्जीनियर, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, अमीर-गरीब सभी हैं।

श्री स्वामीजी प्राचीन योग संस्कृति के पुन: उत्थान के लिए कटिबद्ध हैं। योग के खोये हुए गौरव को फिर से इस युग में पुन: स्थापित कर रहे हैं। योग-विज्ञान इस एटम बम के युग में उतना ही उपयोगी है, जितना प्राचीन ऋषियों के युग में था।

श्री स्वामीजी के दुर्लभ योग के कठिन प्रयास की सफलता के लिए जितना भी कहा जाये कम ही है। इतनी अल्प अवधि में देश-विदेश में सैकड़ों आश्रम, संस्थाएँ, सम्मेलन, योग-सत्र, शिक्षक प्रशिक्षण, क्रिया योग व लगातार हर शहर में 2–3 दिन का सम्मेलन। दिन में प्रोग्राम, रात में सफर, कभी-कभी माह में 25–30 शहरों में प्रोग्राम, कभी 4 माह तक 25–30 शहरों में घूमना। न आराम, न विश्राम, दिन को प्रोग्राम, रात को सफर, इस तरह की दिग्विजय तो स्वामी सत्यानन्द जी ही कर सके हैं, दूसरे तो सोच भी नहीं सकेंगे।

श्री स्वामीजी की सौ से अधिक पुस्तकें छप चुकी हैं, और कई बार छपने पर भी अप्राप्य रहती हैं। 'योगासन प्राणायाम मुद्रा बंध' पुस्तक लाखों की तादाद में छपती है, हिन्दी व अँग्रेजी में 25–26 बार छप चुकी है। कई भाषाओं में विदेशों में छप चुकी है, इसे विदेशों में 'फैमिली डॉक्टर' कहते हैं। कई पुस्तकों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

श्री स्वामीजी के शब्दों में–

'मेरा लोक संग्रह ईश्वरीय पथ है, जिसका चरम अन्त है–मानव समाज का दिव्यीकरण। यही मेरी साधना है, यही मैं अन्त तक करता जाऊँगा।' वे समस्त विश्व को एक परिवार में बदल देना चाहते हैं। वे कहते हैं–'हम एक परिवार हैं।'

श्री स्वामीजी के उपर्युक्त कथन के प्रति सदैव जाग्रत रह कर, सदैव क्रियाशील रहना ही उनके भक्तों, शिष्यों और संस्था के सभी सदस्यों का प्रथम कर्त्तव्य है। हमें अपने क्षेत्रों का विकास करना है। स्नेह एवं करुणा का विशाल दृष्टिकोण लिये, हम एक बड़े परिवार का निर्माण करेंगे। मानवता और विश्व-शान्ति की ज्योति सदैव प्रज्वलित रखने के लिए हम सबको अपना व्यक्तिगत आध्यात्मिक योगदान देना है, जीवन देना है, श्री स्वामीजी के योग यज्ञ में हम सबको होता बनना है।

गुरु आश्रम से श्री स्वामीजी अकेले ही चले थे, पर सफर में कारवाँ बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया और बढ़ता ही जायेगा ...। श्री स्वामीजी तो शुरू से ही कमल के पत्ते के समान निर्लिप्त थे, हमेशा रहेंगे। हमने तो यही देखा, समझा व अनुभव किया है। वे जो करते हैं, वही कहते हैं और जो कहते हैं, वह वेद-वाक्य है।

बिहार योग विद्यालय अनेक कार्य कर रहा है। गंगादर्शन के निर्माण के बाद शोध की संभावनाएँ बढ़ गई हैं, काम शुरू भी हो गया है। श्री

स्वामीजी का काम इस तरह बढ़ने लगा, रिसर्च के बारे में उनकी योजना बनने लगी, शिवानन्द मठ के लिए भी उन्होंने काम शुरू करवाया। उनका सत्संग, प्रवचन, मंत्र दीक्षा यथा योग चलता रहा।

1983 की गतिविधियाँ

23 जनवरी 1983 को श्री स्वामीजी ने कृषि महाविद्यालय सबौर, भागलपुर के सभा-भवन में सत्संग, प्रवचन, मंत्र दीक्षा का प्रोग्राम किया।

25 फरवरी 1983 को स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने सूर्यगढ़ा, मुंगेर द्वारा आयोजित 'प्रेम-भक्ति हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन' का उद्घाटन किया व प्रवचन दिया।

गंगादर्शन में शिक्षक-प्रशिक्षण व स्वास्थ्य-रक्षा-सत्र नियमित चलता है। मई माह में गुरुकुल शिक्षा सत्र 7 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए होगा। सत्र एक माह का होगा, कई सौ बच्चे आयेंगे, इसलिए अन्य सभी सत्र मई में बन्द रहेंगे।

3 फरवरी 1983 को श्री स्वामीजी, स्वामी सत्यसंगानन्द के साथ लन्दन पहुँचे। वहाँ से मैनचेस्टर गये। वहाँ क्रिया-योग, तंत्र तथा हठयोग पर अनेक प्रवचन दिये। 5 फरवरी को उन्होंने ध्यान पर विशेष प्रवचन दिया एवं कर्म-संन्यास दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी ने 7 फरवरी को लन्दन के लिए प्रस्थान किया। लन्दन के कैवस्टनहॉल में एक त्रि-दिवसीय समारोह का उद्घाटन किया। उस समय श्री स्वामीजी ने अपने अवकाश ग्रहण करने तथा स्वामी निरंजन की नियुक्ति की घोषणा की। सुनकर उपस्थित भक्त प्रसन्न हो उठे, वे सब स्वामी निरंजन से परिचित थे और उनके अध्यक्ष बनने का उन लोगों को पूर्वानुमान भी था।

श्री स्वामीजी प्रतिदिन क्रिया-योग, योग निद्रा तथा ध्यान पर प्रवचन देते, इसके अतिरिक्त योग एवं तंत्र के अनेकानेक पक्षों पर भी चर्चा करते। लंदन में एक योग सेमिनार भी आयोजित किया गया, इस अवसर पर मंत्र-दीक्षा व संन्यास-दीक्षा दी गई।

लंदन प्रवास के समय श्री स्वामीजी ने बी.बी.सी. के हिन्दी समाचार संपादक श्री भनोट से भी भेंट की। 'योग टुडे' के सम्पादक ब्रियान नेटशर तथा हिन्दी पत्र अमरदीप के संपादक श्री कौसल ने श्री स्वामीजी से साक्षात्कार वार्ता की।

श्री स्वामीजी ने 11 फरवरी को प्लाई-माउथ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ द्वि-दिवसीय सेमिनार का आयोजन था। श्री स्वामीजी ने वहाँ कुण्डलिनी योग पर प्रवचन दिया। अनेक लोगों ने मंत्र-दीक्षा ली। वहाँ से 14 फरवरी को कार से हार्लो के लिए प्रस्थान किया।

14 फरवरी शाम को हार्लो में सेमिनार का उद्घाटन किया और प्रवचन दिया। 15 फरवरी को योग निद्रा, क्रिया-योग, ध्यान तथा योग के विभिन्न पक्षों पर प्रवचन दिये। स्थानीय पत्रकार रोनाल्ड फ्रीमैन ने श्री स्वामीजी का इन्टरव्यू लिया। 16 फरवरी को लंदन गये, वहाँ से पेरिस के लिए प्रस्थान किया।

श्री स्वामीजी 16 फरवरी को पेरिस में शिवानन्द आश्रम गये। 17 फरवरी को बहुत लोग व्यक्तिगत रूप से मिले, मंत्र दीक्षा व संन्यास दीक्षा हुई।

18 फरवरी को श्री स्वामीजी ने टेनान अस्पताल में आयोजित सभा में 'योग और ओषधि' पर व्याख्यान दिया। इस सभा में देश के प्रख्यात डॉक्टर उपस्थित थे। फिर शिवानन्द आश्रम गये, वहाँ अनेक भक्तों ने मंत्र-दीक्षा ली।

19 फरवरी 1983 को श्री स्वामीजी ने डी.ई.पी.एस. के 25 विद्यार्थियों को डिप्लोमा वितरित किया। इन विद्यार्थियों ने स्वामी देवात्मानन्द, शिवानन्द आश्रम पेरिस द्वारा संचालित त्रिवर्षीय योग प्रशिक्षण सत्र समाप्त किया था। प्रशिक्षण की अवधि में उनके लिखे शोध प्रबंध भी देखे। फिर सोरबोन विश्वविद्यालय में 'पश्चिमी तथा पूर्वी दर्शन का अभिगम' विषय पर चर्चा की, उसी दिन संध्या को श्री स्वामीजी ने डोमस मेडिका में 'भूली बिसरी वेद-निरूपित ऋषि-संन्यास परम्परा तथा आधुनिक मनुष्य' विषय पर व्याख्यान दिया। कई लोगों को संन्यास दीक्षा दी, 20 फरवरी को पीसा गये।

पीसा हवाई अड्डे पर भक्तों ने स्वागत किया। वहीं से श्री स्वामीजी फ्लोरेंस के लिए रवाना हो गये। वहाँ सेमिनार का आयोजन था। वहाँ श्री स्वामीजी ने पतंजलि के योग सूत्र पर प्रवचन दिया। प्रतिदिन सत्संग, मंत्र दीक्षा, कर्म संन्यास का कार्यक्रम चला। 23 फरवरी को श्री स्वामीजी जेनेवा के लिए रवाना हुए।

जेनेवा में 4 दिवसीय आवासीय योग सेमिनार का आयोजन हुआ था। 'चक्र' विषय पर आयोजित इस सेमिनार में यूरोप के सभी भागों से प्रतिभागी आये थे। श्री स्वामीजी ने मानव शरीर में चक्रों और उनकी स्थिति का विस्तार से विश्लेषण किया। बहुत भक्तों ने मंत्र-दीक्षा व कर्म-संन्यास लिया।

27 फरवरी को बार्सीलोना पहुँचे, वहाँ साधक शिष्य बहुत हैं। सबके निवास पर गये, सत्संग किया। आश्रम में प्रतिदिन सत्संग का आयोजन होता था। 3 मार्च को कार से एक घंटे की यात्रा करके देहात के आश्रम (स्वामी लैण्ड) गये, पूरे दिन प्राकृतिक सौंदर्य के स्थान में रहे। बहुत लोगों ने मंत्र-दीक्षा ली, कुछ ने संन्यास-दीक्षा ली।

भविष्य की रूप-रेखा

फरवरी 1983 में एथेन्स, मैनचेस्टर और लंदन में श्री स्वामीजी के प्रवचन के कुछ अंश ...

"सन् 1943 में स्वामी शिवानन्द जी के पास जाने के पहले मैं कई गुरुओं से मिला था। परन्तु जब मैं स्वामी शिवानन्द जी से मिला, तब मुझे लगा कि मैं किसी विशाल प्रकाशपुंज के सामने खड़ा हूँ। मुझे इस बात का गर्व है कि मैं उनके साथ सन् 1956 तक रहा। बारह वर्ष की यह समयावधि बड़ी विलक्षण थी। मैंने ईसामसीह के बारे में बहुत कुछ पढ़ा था, लेकिन यह कभी नहीं सोचा था कि उनकी तरह का महामानव इस धरती पर अब भी रहता होगा। परोपकार, प्रेम, करुणा के गुण किसी व्यक्ति में मुश्किल से ही मिलते हैं। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी में मुझे ये सभी गुण मिले।

उनमें आसक्ति नाम-मात्र भी नहीं थी, फिर भी वे सबको प्यार करते थे। उनका हृदय बड़ा विशाल था तथा उनका जीवन अत्यन्त अनुशासित। वे सतत् त्याग के एक साकार विग्रह थे। कोई भी व्यक्ति उनके पास कुछ भी प्राप्त करने की आशा से जा सकता था, और उसे सब कुछ मिलता था।

आज आपके समक्ष उनके बारे में सारी बातें बता पाना संभव नहीं है, और न ही मैं उनके बारे में ज्यादा बातें करना चाहता हूँ। हाँ, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ और यह मेरा व्यक्तिगत मामला है, आप लोग भी अपने-अपने गुरु को ढूँढ लीजिए और मेरी तरह उन्हें प्रेम कीजिए।

19 मार्च 1956 की सुबह उन्होंने मुझे अपनी कुटिया में बुलाया। फिर उन्होंने मुझसे मेरे जीवन के लक्ष्य के बारे में चर्चा की। उन्होंने कहा, तुम 1923 में पैदा हुए और 1943 में मेरे पास आए। 1963 में तुम स्वतंत्र रूप से कार्य करना प्रारंभ कर दोगे। 1983 में तुम्हारे संस्थागत कार्य समाप्त हो जायेंगे और उसके बाद तुम ब्रह्माण्डीय स्तर पर कार्य करना प्रारंभ कर दोगे। मैं उन्हीं के निर्देशों के अनुसार कार्य कर रहा हूँ।

स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि के बाद मैंने कई बार स्पष्ट रूप से उनकी उपस्थिति का अनुभव किया है। मुझे उनका स्वर बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ा है। परन्तु आज भी मुझे पता नहीं है कि मैं उनसे किस प्रकार सम्पर्क स्थापित कर सकता हूँ। यद्यपि चाहते हुए भी मैं उनसे सम्पर्क नहीं कर सकता, परन्तु उनका सुखद, शान्ति प्रदायक अनुभव मुझे स्पष्ट रूप से होता है। ऐसा अनुभव मुझे तब होता है, जब मुझे अपनी ही मेहनत से बनाई गई वस्तुओं से विराग हो जाता है, और मैं उनका त्याग करने के लिए उद्यत हो जाता हूँ। आश्रम मुझे पसंद नहीं है, मैंने सदैव यह सोचा है कि संन्यासी को दूसरी ही तरह की जिंदगी जीनी चाहिए, परन्तु मैं ऐसा नहीं कर पाता हूँ।

अंतिम बार, नवम्बर 1982 में मुझे स्वामी शिवानन्द जी की उपस्थिति का अनुभव तब हुआ जब मैं पोर्तरिको के समुद्र-तट पर था, और मौसम के कारण कुछ उदास था। उन्होंने कहा–आश्रम जीवन के बंधन से अब तुम मुक्त हुए।

उस समय स्वामी निरंजन समेत अमेरिका, कोलंबिया और यूरोप के लगभग 90 संन्यासी मेरे साथ थे। मैंने निरंजन से कहा, मेरी अगली योजना स्पष्ट हो गयी है। अब मैं बिहार योग विद्यालय, मुंगेर या किसी भी संस्था के प्रशासन से सम्बद्ध नहीं रहूँगा। अमेरिका के अपने कार्यक्रम रद्द कर तुम जितनी जल्दी हो सके मुंगेर पहुँचो।

19 जनवरी 1983 को मैंने बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र देकर स्वामी निरंजनानन्द को इस पद का भार सौंप दिया। आप लोगों में से बहुत लोग उन्हें जानते हैं। वह उत्तरी आयरलैण्ड, यूनाईटेड किंगडम, मैनचेस्टर और न्यू कैसिल में बहुत दिन तक रहे हैं।

4 वर्ष की अवस्था में वह मेरे पास आये थे और तभी से मैंने उन्हें प्रशिक्षित करना प्रारंभ कर दिया। मैंने उन्हें यह नहीं बताया था कि उनको अध्यक्ष पद दूँगा या उत्तराधिकारी बनाऊँगा। अब वही प्रशासन सम्बन्धी सारी बातों की देखभाल करेंगे। कितनी कुशलता से वह यह उत्तरदायित्व निभायेंगे, यह उनके ऊपर निर्भर है। इस बात से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। अब मेरा बिहार योग विद्यालय से कोई रिश्ता नहीं है, मेरा रिश्ता योग से है। संस्था किसी लक्ष्य का साधन हो सकती है, परन्तु वह लक्ष्य नहीं बन सकती।

प्रारंभ में अभियान एक साधन होता है और दर्शन लक्ष्य। परन्तु बाद में संस्था लक्ष्य बन जाती है और दर्शन साधन बन जाता है। ऐसा सभी

धर्मों और संस्थाओं के साथ होता है। और तब हमारा लक्ष्य मात्र इतना रह जाता है कि संस्था किसी प्रकार बनी रहे। मैं ऐसा नहीं करूँगा। जिस संस्था को मैंने जन्म दिया, जिसके लिए मैंने मनोयोगपूर्वक कार्य किया, अब मैं उससे अलग हो रहा हूँ। इसका मतलब यह है कि संस्था के रूप में बिहार योग विद्यालय से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सोचना अनुचित होगा कि मेरे और इस संस्था के बीच कोई विरोध उत्पन्न हो गया है या वहाँ मुझे कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि मैं किसी संस्था के दायरे में सीमित नहीं रहना चाहता हूँ। संन्यासी को धर्मों और संस्थाओं से ऊपर होना चाहिए। उसकी दृष्टि में सभी प्रकार की आध्यात्मिक संस्थाएँ उसकी आत्मा का अंश हैं तथा सभी धर्म समान रूप से मूल्यवान्, महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक हैं।

अगले बीस वर्ष मैं मानवता के कल्याण के लिए कार्य करूँगा। व्यक्तिगत रूप से मैं योग को लक्ष्य नहीं, वरन् साधन मानता हूँ। बहुत वर्षों से मैं सोच रहा हूँ कि जब मुनष्य को सफलता, सामर्थ्य और प्रसिद्धि मिलती है, तब वह अपने उद्देश्य भूल जाता है। तब वह मात्र अपने लिए कार्य करने लगता है।

योग के लिए हमें उसी सीमा तक कार्य करना है, जिस सीमा तक हम लोगों को यह विश्वास दिला सकें कि यह उनके लिए उपयोगी हो सकता है। किसी विशेष दर्शन या विज्ञान का प्रचार केवल उतना ही करना चाहिए जितना कि वह लोगों को लाभ पहुँचा सके। यदि हम मानवता के कल्याण का लक्ष्य भूल जाएँ और योग शिक्षण को ही सब कुछ मान बैठें, तो बहुत बड़ी गलती करेंगे। इस बात को नहीं भूलना चाहिए।

यदि आप इस पर गंभीरता से सोचेंगे तो आपको समझ में आयेगा कि अन्ततः सभी संस्थाओं का प्रवाह रुद्ध हो जाता है। बड़े-बड़े प्रशासक और अधिकारी वहाँ नियुक्त हो जाते हैं। संविधान बनाये जाते हैं और संशोधित किये जाते हैं। संस्था को जीवित रखने के लिए विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त निरूपित किये जाते हैं। राजनैतिक दलों का भी सहारा लिया जाता है और इस सबका अन्त होता है अव्यवस्था और दुर्व्यवस्था में।

इसीलिए मैंने सोचा कि संस्था के बंधन से मुक्त हो जाऊँ और स्वतंत्र रह कर सबसे योग की चर्चा करूँ। मैं समझता हूँ कि योग ने अब तक मानवता को जितना दिया है, उससे भी अधिक उसका योगदान हो सकता है। योग का शिक्षण आवश्यक तो है, परन्तु विभिन्न संस्थाओं के द्वारा जिस प्रकार का

शिक्षण प्रदान किया जाता है, उससे योग का क्षेत्र सीमित हो गया है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वह लोगों को स्वीकार्य नहीं होता।

सभी आध्यात्मिक साधकों को इन आदर्शों को स्वीकार करना है जिनकी चर्चा मैं कर रहा हूँ। उन्हें न तो किसी संस्था का प्रतिनिधित्व करना चाहिए और न किसी पंथ, वर्ग या गोत्र कुल का। उन्हें तो बस चलते रहना चाहिए, गतिमान बने रहना चाहिए, ताकि कोई यह न कह सके कि वे किसी विशेष संस्था, नाम, धन या प्रसिद्धि के लिए कार्य कर रहे हैं।

19 जनवरी तक मैं बिहार योग विद्यालय के लिए कार्य कर रहा था, परन्तु अब नहीं। अब मैं सभी के लिए कार्य करूँगा और दूसरों को पहले से और अधिक देने की कोशिश करूँगा।

नवम्बर 1983 से मैं आश्रम के बाहर आ जाऊँगा और अगले 20 वर्षों तक मैं एक भिक्षुक की तरह या यों कहें कि राजसी भिक्षुक की तरह जीवन व्यतीत करूँगा। वैसे मैंने पहले आठ वर्ष भिक्षुक की तरह बिताये हैं, लेकिन तब मैं राजसी भिक्षुक नहीं था।

मैं विश्व के प्रत्येक देश में जाऊँगा, जगह-जगह घूमूँगा और छोटे समूहों में लोगों से मिलूँगा। मुझे भीड़ पसंद नहीं है। भीड़ के बीच पहुँचकर मैं अपनी आँखों को सुख नहीं देना चाहता। मैं यह जानता हूँ कि कुछ ही लोग होते हैं जो वास्तविक सभ्यता के आधारस्तंभ बनते हैं। भीड़ का सहारा लेते हुए जो ढाँचा खड़ा किया जाता है, वह अन्ततः धराशायी हो जाता है। इतिहास मेरी इस बात का साक्षी है। अब मैं छोटे-छोटे समूहों में लोगों से क्रिया योग, राज योग, योग निद्रा, जप तथा जो कुछ उनके लिए उपयोगी होगा, उस पर उनसे चर्चा करूँगा। अपने जीवन के अगले 20 वर्ष मैं इस प्रकार व्यतीत करूँगा।"

श्री स्वामी जी 5 मार्च को भारत के लिए रवाना हुए और बम्बई में एक दिन रहकर मुंगेर आ गये।

9 से 16 अप्रैल 1983 तक श्री स्वामीजी ने सत्यानन्द आश्रम, ऑस्ट्रेलिया में प्रवास-सत्संग किया। अनेक भक्तों ने मंत्र दीक्षा ली। साठ साधकों ने संन्यास दीक्षा ली। ऑस्ट्रेलिया प्रवास की अवधि बढ़ा ली गई। श्री स्वामीजी मैंग्रोव माउन्टेन में 22 मई तक रहे। नये प्रेस-भवन का उद्घाटन किया। नई मुद्रण-मशीन लगाने के अवसर पर विधिवत् पूजा की। 21 मई को मंत्र, कर्म संन्यास व संन्यास दीक्षा दी। स्वर योग पर प्रवचन दिया। 22 मई को स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती के साथ भारत के लिए प्रस्थान किया।

मुंगेर से 15 कि.मी. दूर बरियारपुर में 'अंग देशीय योग सम्मेलन' का विशाल स्तर पर आयोजन किया गया। 15,16, 17 मई की तारीख तय हुई। स्थानीय फिलिप उच्च विद्यालय के परिसर में पण्डाल लगाया गया। 15 मई की संध्या को स्वामी निरंजन ने दीप जला कर उद्घाटन किया, प्रवचन दिया। 16 तारीख के प्रात: स्वामी निरंजन ने मंत्र दीक्षा दी, अपराह्न में स्वामी निरंजन ने आश्रम के लिए भूमि-पूजन करके पाँच पत्थरों से बरियारपुर आश्रम की नींव डाली। तीन दिन तक नियमित सत्संग-प्रवचन हुआ। आसन, प्राणायाम की कक्षायें भी चलीं।

बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन में गुरुकुल शिक्षा सत्र में भारत के सभी भागों से 450 बच्चे आये थे। पूरा मई महीना आश्रम एक बाल-नगरी के रूप में दृष्टिगोचर होता रहा। पूरे दिन कक्षायें, खेल, कर्मयोग, कीर्तन-सत्संग, चलता था। आश्रम के विस्तृत भूखण्डों में लगे पेड़-पौधों और फुलवारियों के बीच बच्चों को खेलने-कूदने व शरारतें करने की पूरी छूट थी। यह सब स्वामी निरंजन के कुशल निर्देशन में संचालित किया गया। और सभी दृष्टि से सफल रहा। 25 मई को गुरुकुल शिक्षा सत्र सम्पन्न हुआ। बहुत बच्चों ने गुरु मंत्र लिया, अगले वर्ष फिर आने की इच्छा व्यक्त करते हुए सभी बच्चे खुशी से वापस गये।

3 जून से 'योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र' का शुभारम्भ हुआ।

10 जुलाई को श्री स्वामीजी स्वामी सत्यसंगानन्द व कई संन्यासियों को लेकर पटना पहुँचे। शिष्यों-भक्तों से मिले, जन-समुदाय को सम्बोधित किया। प्रेस कॉन्फ्रेंस हुई। रोटरी क्लब, कॉलेज व कई जगह प्रोग्राम हुए। आकाशवाणी में संदेश रिकार्ड किया गया। अनेक भक्तों ने मंत्र दीक्षा ली, हजारों लोगों ने दर्शन-सत्संग किया। सैकड़ों भक्तों ने व्यक्तिगत मार्गदर्शन प्राप्त किया। फिर 13 जुलाई को श्री स्वामीजी ने कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया।

श्री स्वामीजी 14 से 20 जुलाई तक कलकत्ता आश्रम में रहे, वहाँ सत्संग-प्रवचन, मंत्र-दीक्षा प्रोग्राम हुआ।

21 जुलाई को श्री स्वामीजी शिष्यों के साथ 'गुरु पूर्णिमा महोत्सव' में भाग लेने रायपुर पहुँचे। 22 एवं 23 जुलाई को साधना शिविर का विशेष सत्संग चला। 24 तारीख की सुबह 5 बजे से भजन-कीर्तन शुरू हुआ। छ: बजे से गुरु-पूजा प्रारंभ हुई। पूरे भारत से आये कई हजार भक्तों के समूह ने प्राचीन

संस्कृति के अनुसार अपने गुरु की पूजा-उपासना की। ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिका से आये भक्तों, स्वामियों ने टेलीविजन हेतु सभी कार्यक्रम रिकार्ड किये। रायपुर दूरदर्शन ने भी पूजा का पूरे समय का कार्यक्रम रिकार्ड किया, जिसे 15 दिन बाद दिखाया भी, 25 मिनट का प्रोग्राम था।

मंत्र दीक्षा और कर्म संन्यास दीक्षा हुई, श्री स्वामीजी का आशीर्वचन भी उसी समय हुआ। श्री स्वामीजी ने कहा, 'मैं गुरुपूर्णिमा महोत्सव में 1964 से ही भाग ले रहा हूँ और इस अवसर पर मेरे उपस्थित होने का यह अंतिम साल है। इसके बाद मैं इस प्रकार के किसी भी कार्यक्रम में भाग नहीं लूँगा। इसलिए इस साल की गुरु पूर्णिमा बहुत महत्त्व रखती है। यह बात मैं आप सभी को स्पष्टत: समझा देना चाहता हूँ।

पिछले साल की गुरु पूर्णिमा तक हमारा व्यक्तित्व स्तम्भित रहता था, और दो भागों में बँटा रहता था। एक बाहरी और दूसरा आन्तरिक, अर्थात् एक साधु बाबा और दूसरा गुरुजी का। दोनों की भूमिका हमें निभानी पड़ती थी। मुश्किल तो बहुत पड़ती थी, मगर मैंने किसी तरह निभाया। बीस साल तक निभा ही लिया।

पहले जब गुरु पूर्णिमा होती थी, तब मेरे को लगता कि गुरुजी की गुरु पूर्णिमा हो रही है या साधक की। आप लोगों को तो इस भेद का पता नहीं लगता है, क्योंकि आप लोग श्रद्धालु हो और श्रद्धा में इतना प्रकाश होता है कि आँखें चौंधिया जाती हैं। बहुत चीजें दिखाई ही नहीं देतीं। जिस प्रकार 10-20 सूरज के एकत्र होने से आँखें चौंधिया जाती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा के प्रकाश में कुछ दोष दिखाई नहीं देता है। इस साल जो गुरु पूर्णिमा मनाई जा रही है, वह एक स्वच्छन्द साधु के लिए मनाई जा रही है जिसका किसी से लगाव नहीं है। इस उत्सव में आज यहाँ पर किसी को न इनाम देना है, न पुरस्कार। अब मैं सभी प्रकार की जिम्मेदारियों से मुक्त होकर देश-विदेश में योग को घर-घर पहुँचाऊँगा और प्रकृति की गोद में कहीं भी विश्राम करूँगा। जब मर्जी होगी आऊँगा अथवा नहीं आऊँगा। मैं किसी से बँधा हुआ थोड़े ही हूँ। पूर्वजों की शक्तिशाली परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए हमने आपकी गुरु पूर्णिमा का महत्त्व ही बढ़ाया है।

गुरु पूर्णिमा के दिन संन्यासी लोगों को भी अच्छी तरह से सोचना होगा कि उनका कर्त्तव्य क्या है, उनकी परम्परा और साधना क्या है, उनका व्यक्तित्व और दायित्व क्या है? ये आसन-प्राणायाम, हमारे लिए व्यवसाय नहीं है, यह

तो हमारी साधना है। और जो लोगों से हमको थोड़ा-बहुत गुरुजी का दर्जा मिल जाता है, उस प्रतिष्ठा का हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। संन्यासी को सभी चीजों के प्रति बिल्कुल अनासक्त रहना चाहिए। जल में कमल के पत्ते सा रहना है।

एक बात और कहनी है कि हर एक व्यक्ति को गुरु दीक्षा लेने के बाद उस मंत्र की नियमित साधना करनी चाहिए, जरूरी है। साधना के बिना जीवन में आत्मविश्वास नहीं आता, जब तक आत्मविश्वास नहीं आता, तब तक रोज-रोज दुनिया में जो तकलीफें होती हैं, वे दूर नहीं होतीं। तुम्हारे पास जो शक्ति बीज-रूप में विद्यमान है, उसे साधना के द्वारा विकसित करके अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकते हो। हम ऐसा नहीं कहते हैं कि मनुष्य की शत-प्रतिशत समस्याओं का समाधान हो सकता है, किन्तु बहुत हद तक मनुष्य अपनी तकलीफों का निराकरण स्वयं ही अवश्य कर सकता है। 15 से 25 मिनट आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान आदि का अभ्यास नियम बना कर करो, इस साधना से अपने अन्दर दिव्य-शक्ति का उद्भव होता है, जिसको आत्मशक्ति कहते हैं। इसी शक्ति को जाग्रत करने हेतु आपको मंत्र दिया गया है, और आज गुरु पूर्णिमा का यही संदेश सबके लिए है।'

प्रोग्राम के बाद श्री स्वामीजी निवास स्थान पर गये। कार में बैठे तो धर्मशक्ति को बुला कर बोले, 'हम नन्दग्राम नहीं जायेंगे, मेरे बातों को समझ रही हो न? हम दो दिन कमरे से बाहर नहीं आयेंगे।' और चले गये। आश्रम से एक घण्टे के बाद धर्मशक्ति गई, श्री स्वामीजी के कक्ष के सामने ही धर्मशक्ति का कमरा था, उनके कमरे में ताला लगा था, उनका आदेश था, दो दिन दरवाजा नहीं खोलना है, हम जब ऑफिस में फोन करेंगे, तब खोलना।

श्री स्वामीजी का 25 से 27 जुलाई तक नन्दग्राम में प्रोग्राम था, रायपुर में गुरु पूर्णिमा प्रोग्राम तय होने पर धर्मशक्ति का अनुरोध था 26 जुलाई को नन्दग्राम में कार्यक्रम करेंगे। श्री स्वामीजी की स्वीकृति मिल गई, उन्होंने पत्रिका में भी छपवा दिया था। नन्दग्राम में विशेष तैयारी पूरी करके आश्रम के स्वामी को सब समझा कर रायपुर गई थी। वहाँ फिर श्री स्वामीजी से प्रोग्राम के बारे में बातें हुई थीं। उन्होंने कहा, दो दिन प्रोग्राम करना, 25 के दोपहर से 26 के दोपहर तक रहेंगे, उसने वैसा ही समाचार नन्दग्राम भेज दिया था, समाचार पत्र में प्रोग्राम भी छप गया था। धर्मशक्ति ने सोचा, जैसी गुरुदेव की इच्छा हो और जब तक गुरुदेव से मिल न लेवें, कहीं जाना नहीं है। आश्रम वाले स्वामी व सभी लोग आते और लौट जाते।

26 जुलाई को प्रातः श्री स्वामीजी की समाधि टूटी, नीचे ऑफिस में फोन किया, दरवाजा खोलने को कहा। धर्मशक्ति दर्शन को गई, बातें होती रहीं, काफी देर बैठी। श्री स्वामीजी ने कहा, 'अब हम स्वतंत्र हैं न, बड़ी निश्चिन्तता से दो दिन रहे। कई बार सोचते थे, पर गुरु पूर्णिमा का दिन इतना व्यस्त होता कि हम अपना कुछ नहीं कर पाते थे। मेरे विचार तो तुम्हें मालूम हैं, जो नहीं सोचा था वही सब कर रहा हूँ। गुरु-ऋण अदा कर रहा हूँ। मेरी मर्जी का कोई प्रश्न ही नहीं है। मैंने घर न गुरु बनने के लिए छोड़ा और न ही आश्रम बनाने या चलाने के लिए छोड़ा। घर केवल छोड़ने के लिए छोड़ा, जब घर में रहना ही नहीं तो छोड़ दिया, आगे जैसी प्रभु की इच्छा हो, अब तो मेरे लिए गुरु-आदेश ही ईश्वर-वाणी है। मुझे माध्यम बनाकर प्रभु को कुछ कराना होगा तो वह तो होगा ही, मैं कुछ नहीं कर सकता। प्रभु से प्रार्थना है मेरे माध्यम से यौगिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं, प्रभु की दिव्य इच्छा की पुनीत धारा ही प्रवाहित हो। हरि इच्छा बलवान है।

तुमने तो हमारा बहुत सत्संग किया है, हम नन्दग्राम नहीं गये, इससे कुछ विचार नहीं करना, हम तो सभी जगह हैं, सबके साथ हैं। अगर हमारे लिये कुछ विशेष चीज रखी हो तो मुंगेर आओगे तब ले आना। कब जा रहे हो नन्दग्राम?' हमने कहा, 'स्वामीजी, आपका प्लेन तो दोपहर को है, मैं शाम को जाने का सोच रही हूँ। विचार तो कुछ नहीं करती, पर वहाँ जाने पर, लोगों के पूछने पर, परेशानी तो जरूर होगी, आप आशीर्वाद दीजिए मैं मजबूत बनूँ।'

श्री स्वामीजी हँसने लगे, 'तुम्हें तो आशीर्वाद पहले ही मिल चुका है। बहादुर बच्चे की तारीफ बाप ही नहीं, दुनिया करेगी। तुममें क्षमता थी, तभी तो आशीर्वाद ग्रहण कर सकी हो, हरि ॐ।'

श्री स्वामीजी ने दोपहर को मुंगेर के लिए प्रस्थान किया। शाम की ट्रेन से हम भी नन्दग्राम गये। दो घण्टे का रास्ता है, प्रेस पहुँची तो वहाँ कई लोग इन्तजार में बैठे थे, पता चला आश्रम में सुबह से भजन-कीर्तन चल रहा है। 500 आदमी जमा हैं वहाँ, बाहर से भी काफी लोग आये हैं। हमने कह दिया, 'श्री स्वामीजी विशेष कारण से नहीं आ सके।' कितने ही फोन आये, कितने लोग आये, 8 बजे सब प्रेस वालों को छुट्टी देकर राउत (चौकीदार) से कहा, दरवाजा बंद कर दो और अपने सत्यधाम में चली गई। गुरु पूर्णिमा को हमारा कमरा बंद था, आज वहाँ कुछ करना था, पर कुछ हो नहीं सका, मन में

विचारों का एलबम खुलता जा रहा था। बहुत प्रयत्न किया कि जप ही कर लें, आखिर में हम भी विचारों के लहरों में गोते लगाने लगे।

विचारों का तार फैलता जा रहा था, श्री स्वामीजी, उनके कार्य, उनके शब्द चलचित्र-से दिख रहे थे। जीवन में विभीषिका क्यों है, मानवता अपूर्ण क्यों है? यही मैंने अपने गुरुदव से सीखा है कि मानवता की पूर्णता भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय में है, जिसका आधार है सम्पूर्ण मानवता यानी विश्वात्मा से परम योग, क्योंकि न तो भोजन से शान्ति मिल सकती है, और न आदर्शवाद से सुख ही, बल्कि मनुष्य को देह, मन व आत्मा में किसी एक की ही ओर न होकर सब ओर होना चाहिए। योग और त्याग में, राग और वैराग्य में, सत्य व असत्य में, ज्ञान व व्यवहार में समझौता करो, क्योंकि एकांगी विकास पूर्ण सुन्दरता नहीं है। यह कितना दिव्य प्रकाश है, जिसमें सभी मार्ग स्पष्ट दिखने लगते हैं।

जिस महान् प्रयोजन के लिए श्री स्वामीजी ने घर त्यागा, संन्यास लिया, कठोर साधना की, दर-दर भटके, आश्रम बना कर, योग सिखाने का महायज्ञ किया व नित्य नवीन प्रयोग कर रहे हैं, यह जीवन इतना सरल नहीं है जितना कि लोग समझते हैं। यह तो ऐसा कठिन जीवन है, जैसे दिन-रात तलवार की धार पर चलना या सुई के छेद से हाथी को निकालना। श्री स्वामीजी कहते हैं, योग व धर्म सम्प्रदाय नहीं, जीवन की विधियाँ हैं।

गंगा दर्शन, मुंगेर में भी गुरु-पादुका पूजन का आयोजन किया गया था। 24 जुलाई की प्रात: ही भजन-कीर्तन शुरू हुआ। तीसरी मंजिल का सत्संग-हॉल भक्तों से भरा हुआ था। अति हर्षोल्लास से पादुका पूजन हुआ, शाम को श्री चन्द्रशेखर खाँ के भक्ति संगीत तथा श्रीमती कृष्णा देवी का रामायण पर प्रवचन हुआ।

अक्टूबर 1983 में गंगादर्शन में क्रिया योग, तत्त्व शुद्धि शिविर का आयोजन किया गया। श्री स्वामीजी के मार्ग-निर्देशन में भारतीयों व विदेशियों के लिए अलग-अलग शिविर लगे थे। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से 200 साधकों ने भाग लिया। दूसरे सत्र में इंगलैण्ड, इटली तथा ग्रीस के साधकों ने भाग लिया। करीब 60 भारतीयों ने कर्म संन्यास लिया। बहुत-से विदेशी साधकों ने भी कर्म संन्यास लिया।

26 अक्टूबर को श्री स्वामीजी का रोटरी क्लब, मुंगेर में प्रवचन-सत्संग हुआ।

9 नवम्बर 1983 को श्री स्वामीजी ने विश्व-भ्रमण के लिए मुंगेर से प्रस्थान किया। धनबाद में दर्शन, सत्संग, दीक्षा प्रोग्राम के बाद श्री स्वामीजी कलकत्ता गये। कलकत्ते में 11 से 13 नवम्बर तक 'उच्च रक्तचाप तथा सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा' विषय पर आयोजित सेमिनार की अध्यक्षता की। इस अवसर पर डॉ.स्वामी शंकरदेवानन्द, डॉ. विवेकानन्द, न्यायाधीश श्री टी.के. वसु, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री डी.राय, कलकत्ता, बम्बई के डॉ. टी. डब्ल्यू. तुलपुले, बेलब्यू क्लिनिक के डॉ. एस.एस. सान्याल, कलकत्ता विश्वविद्यालय के न्यूरोफिजियोलॉजी विभाग के प्रोफेसर ए.के. माड़ती, डॉ. उषा सुन्दरम् (धर्मकीर्ति) के अलावा और भी कई डॉक्टर आये थे। इस सेमिनार में डॉक्टरों के एक पैनल ने 'हृदय रोगों पर योग की भूमिका' पर चर्चा की। इस सेमिनार की अवधि में 2 डॉक्टरों ने संन्यास लिया। इसके बाद श्री स्वामीजी ने ऑस्ट्रेलिया के लिए प्रस्थान किया।

9 दिसम्बर को स्वामी निरंजनानन्द ने बरियारपुर में नेत्रदान-यज्ञ का उद्‌घाटन किया।

श्री स्वामीजी 16 नवम्बर को स्वामी सत्यसंगानन्द के साथ सिडनी पहुँचे। 28 नवम्बर को मैंग्रोव माउन्टेन आश्रम में उन्होंने एक विशाल सभा को सम्बोधित किया व त्रि-दिवसीय सेमिनार का उद्‌घाटन किया। उच्च स्तरीय क्रिया-योग-सत्र की शुरुआत 28 तारीख को श्री स्वामीजी के मांगलिक मार्गदर्शन में हुई। श्री स्वामीजी का सत्संग व क्रिया योग और तंत्र पर रोज सारगर्भित प्रवचन हुए।

4 दिसम्बर को श्री स्वामीजी ने 'मंत्र नाद तथा प्रतीक' सप्ताह का उद्‌घाटन किया। इस सप्ताह में उन्होंने कई साधकों को दीक्षा दी। 11 तारीख को श्री स्वामीजी ने विशेष कर्म संन्यास सत्र का उद्‌घाटन किया, 50 साधकों को कर्म संन्यास भी दिया।

18 दिसम्बर को सिडनी में सार्वजनिक प्रवचन दिये। 19 दिसम्बर को मैनली आश्रम में कई साधकों ने मंत्र दीक्षा ली। 24 दिसम्बर को अनेक भक्त तथा परिचित लोग मंत्र दीक्षा लेने, आध्यात्मिक नाम प्राप्त करने तथा व्यक्तिगत रूप से उनसे बातें करने के लिए, ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न भागों से मैंग्रोव माउन्टेन आये।

25 दिसम्बर को 24 लोगों ने पूर्ण संन्यास लिया, बहुतों ने कर्म संन्यास व मंत्र दीक्षा ली।

1984 की गतिविधियाँ

जनवरी 1984 से गंगा दर्शन में तीन माह के संन्यास प्रवेश सत्र का आयोजन हुआ है। संन्यास लेना नहीं है, सिर्फ अनुभव करना व संन्यासी जीवन में रहकर उसी तरह साधना करके अनुभव लेना है।

शिक्षक प्रशिक्षण, सामान्य योग प्रशिक्षण, स्वास्थ्य रक्षा सत्र का आयोजन हर वर्ष की भाँति होगा। मई में बालकों के लिए सत्र होगा, पर वे अपने अभिभावक के साथ ही प्रवेश पा सकेंगे।

7 फरवरी 1984, बसन्त पंचमी को स्थापना दिवस समारोह मनाया गया। तीन दिन के विशेष उत्सव का आयोजन हुआ। करीब 2000 लोगों ने कार्यक्रम में भाग लिया। हवन, गीता-पाठ, कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान, जप तथा नारायण भोजन आदि कार्यक्रम हुए, रोज शाम को स्वामी निरंजन का प्रवचन हुआ।

15 जनवरी को श्री स्वामीजी न्यू कैसल गये। उन्होंने वहाँ समाचार पत्रों के संवाददाताओं तथा ए.बी.सी. रेडियो नेटवर्क को साक्षात्कार दिया। श्री घोष के निवास पर गये, वहाँ भारतीयों तथा इंडियन वैदिक सोसाइटी के सदस्यों के समक्ष 'दैनिक जीवन में योग की प्रासंगिकता' पर सत्संग दिये।

20 जनवरी को श्री स्वामीजी ने कैर्न्स, क्वीन्सलैण्ड के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में हाउस विले में एक टेलीविजन साक्षात्कार देने के लिए रुके। कैर्न्स पहुँचने पर रेडियो नेटवर्क तथा स्थानीय समाचार पत्रों द्वारा आयोजित संवाददाता सम्मेलन में भाग लिया। 21 जनवरी को ध्यान पर सार्वजनिक भाषण दिये। 22 जनवरी को कैर्न्स सिटी में सत्यानन्द आश्रम का उद्‌घाटन किया और 23 जनवरी को योग के चिकित्सा पक्ष पर प्रवचन दिया। कर्म संन्यास, मंत्र दीक्षा तथा आध्यात्मिक नाम भी दिये।

26 जनवरी को श्री स्वामीजी कैनबरा सत्यानन्द आश्रम में कुछ देर रुक कर रॉकलिन (विक्टोरिया) पहुँचे। 27 जनवरी को रॉकलिन में श्री स्वामीजी ने दीपक जलाकर नवनिर्मित सत्यानन्द आश्रम का उद्‌घाटन किया और 'आश्रम तथा आश्रम जीवन का महत्त्व' पर प्रवचन दिया। जंगल में जंगली जानवरों से घिरे इस आश्रम का शान्त वातावरण साधकों के लिए बहुत अनुकूल सिद्ध होगा। इस आश्रम में 250 लोगों के निवास की भी व्यवस्था है।

8 दिन तक चलने वाले योग सेमिनार में श्री स्वामीजी ने योग के विभिन्न पक्षों पर प्रवचन व सत्संग दिया। कर्म संन्यास की दीक्षा, मंत्र व आध्यात्मिक

नाम भी दिये। आश्रम में आयोजित क्रिया योग सत्र का 31 जनवरी को उद्घाटन कर श्री स्वामीजी कैनबरा गये।

1 फरवरी को श्री स्वामीजी ने कैनबरा के प्रेस क्लब में कैनबरा टाइम्स तथा ऑस्ट्रेलियन समाचार पत्रों के संवाददाताओं को साक्षात्कार दिया। चैनल 7 टी.वी. नेटवर्क को विशेष साक्षात्कार दिया। अनेक साधकों को कर्म संन्यास में दीक्षित किया, मंत्र दीक्षा व आध्यात्मिक नाम दिये और 2 फरवरी को मैंग्रोव माउन्टेन वापस आ गये।

5 फरवरी को ए.बी.सी. रेडियो नेटवर्क के जेन सिमिलटन को सिटी एक्सट्रा प्रोग्राम के लिए श्री स्वामीजी ने साक्षात्कार दिया। यह साक्षात्कार पूरे ऑस्ट्रेलिया में प्रसारित किया गया। 12 फरवरी को मासफोर्ड में श्री स्वामीजी ने सार्वजनिक भाषण दिया।

तत्पश्चात् श्री स्वामीजी क्वीन्सलैंड गये, जहाँ उन्होंने 17 से 20 फरवरी तक सत्संग-प्रवचन दिया तथा ब्रिसबेन में सेमिनार में भाग लिया। गोल्ड कोस्ट में सार्वजनिक प्रवचन देने के पश्चात् श्री स्वामीजी न्यू साउथ वेल्स गये।

21 से 29 फरवरी तक श्री स्वामीजी ने लिलियन रॉक, निम्बिन बर्लिंगेन, टारी, न्यू कैसल तथा सिडनी में सार्वजनिक प्रवचन दिया।

श्री स्वामीजी का ऑस्ट्रेलिया भ्रमण अत्यन्त सफल रहा। हजारों की संख्या में साधकों ने सभी कार्यक्रमों में भाग लिया। प्रत्येक स्थान में अनेक साधक उनके द्वारा संन्यास, कर्म संन्यास, मंत्र, नाम और प्रतीकों में दीक्षित किये गये।

कर्म संन्यास का विवरण ...

मैंग्रोव माउन्टेन सिटी में 36 ने कर्म संन्यास लिया। विलियन रॉक सिटी में 27, निम्नवन सिटी में 16, बैर्लिजेन सिटी में 11, न्यू कैसल व टारी सिटी में 10, रॉकलिन सिटी में 60, कैनबरा सिटी में 12, ब्रिसबेन सिटी में 27, कैर्न्स में 16, होवर्ट सिटी में 30 लोगों ने कर्म संन्यास लिया।

मार्च माह में श्री स्वामीजी ने ऑकलैण्ड और लेक बंगेपी (न्यूजीलैण्ड), लॉन्सेस्टन, होवर्ट तथा न्यूटन (तस्मानिया), पर्थ (पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया), रॉकलिन (विक्टोरिया), मैलेक तथा एलिस स्प्रिंग्स (नादर्न टेरीटरी), बोला गांग और मैनली (न्यू साउथ वेल्स), एडिलेड (दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया) में सत्संग तथा प्रवचन दिया एवं सत्यानन्द आश्रम स्टेगन में क्रिया योग सत्र का उद्घाटन किया।

बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन में स्वामी निरंजन ने 19 फरवरी को कल्याणपुर रेलवे स्टेशन पर और 21 फरवरी को बरियारपुर रेलवे स्टेशन पर, जमालपुर रेलवे वर्कशॉप रामायण समिति द्वारा आयोजित रामायण सम्मेलन का उद्घाटन किया।

19 फरवरी, शिवरात्रि को गंगा दर्शन में भजन-कीर्तन, विशेष सत्संग का आयोजन हुआ। स्वामी निरंजन ने योग यज्ञाग्नि के सन्मुख श्री स्वामीजी द्वारा ऑस्ट्रेलिया से भेजे गये नाम व माला प्रदान कर 9 लोगों को संन्यास दीक्षा और 10 लोगों को कर्म संन्यास संन्यास दीक्षा दी।

30 मई को श्री स्वामीजी लेनिस से दक्षिणी फ्राँस पहुँचे, 31 मई को सत्यानन्द योग सेन्टर का उद्घाटन किया।

नन्सि में 1 जून को पोल्ले नेरुडा हॉल में आयोजित 'योग में स्वतंत्रता तथा अनुशासन' विषय पर श्री स्वामीजी का सार्वजनिक प्रवचन हुआ। 2 जून को प्रेरणास्पद प्रवचन के साथ एक क्रिया योग सत्र का उद्घाटन किये और योग के विभिन्न पक्षों पर सत्संग दिये।

8 जून को श्री स्वामीजी ने पाँच दिनों के सत्र के संचालन हेतु मनोभावन द्वीप डेज एम्बीएज (कोट.डी.अजूर.) के लिए प्रस्थान किया। यह भूमध्य सागरीय द्वीप चारों ओर से देवदार के वृक्षों से घिरा हुआ है। यहाँ श्री स्वामीजी ने मंत्र दीक्षा दी और 12 जून को कई साधकों को संन्यास दीक्षा भी दी, नित्य सत्संग तथा दैनिक जीवन में तंत्र के विशेष महत्त्व के संदर्भ में प्रवचन दिये।

दक्षिणी फ्राँस में निवास व प्रोग्राम अत्यन्त सफल रहा। 13 जून को श्री स्वामीजी ने पेरिस के लिए प्रस्थान किया। 14 जून को दुलान से पेरिस पहुँचे। भक्तों-शिष्यों ने स्वागत किया। 15 जून को शिवानन्द आश्रम में श्री स्वामीजी ने 'भारतीय धर्मग्रंथ तथा परम्परा एवं उनके व्यावहारिक उपयोग' विषय पर प्रवचनों की त्रि-भागीय शृंखला प्रारंभ की। इन प्रवचनों में वेद, तंत्र शास्त्रों तथा भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों को अधिक सूक्ष्म व स्पष्ट रूप से बताया-समझाया।

उन्होंने ग्रीक दर्शन तथा पाश्चात्य सभ्यता व धर्म पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का विशेष विवेचन करते हुए बताया कि इस दर्शन ने एक ऐसे समाज को जन्म दिया जिसमें आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक जीवन अलग-अलग थे। जबकि वेदों में निहित शिक्षाओं के परिणामस्वरूप एक ऐसी

सुन्दर अनुकूल तथा क्रांतिकारी विचारधारा पनपी, जिसमें सांसारिक जीवन, धार्मिक मान्यताओं तथा अंतिम लक्ष्य के मध्य समन्वय था। इस कार्यक्रम में श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये व्याख्यान अद्वितीय थे, जिसमें उनकी विलक्षण प्रतिभा दिखाई दी।

18 से 24 जून के मध्य श्री स्वामीजी ने योग तथा तंत्र के विभिन्न पक्षों पर अनेक सार्वजनिक प्रवचन दिये। 18 जून को उन्होंने डी लोम एला कोनेसान्स केन्द्र में 'दाम्पत्य जीवन में आध्यात्मिक अन्वेषण' पर प्रवचन दिया। 19 जून को फ्री मैसन्स, पेरिस में एक विशिष्ट व्यक्तिगत आयोजन के सम्माननीय अतिथि के रूप में भाग लिया। उनके प्रवचन का विषय था–योग के माध्यम से भारत द्वारा पाश्चात्य जगत् को दी गई सामयिक भेंट। 20 तथा 21 जून को सत्यानन्द आश्रम पेरिस में विशाल जन-समूह को श्री स्वामीजी के सत्संग का लाभ मिला।

22 जून को श्री स्वामीजी पुन: डॉ. डोसी तथा प्रोफेसर क्लोरेक के विख्यात चिकित्सालय टेनान गये। ये दोनों अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त 'हृदय रोग' विशेषज्ञ हैं। टेनान अस्पताल के सभा-भवन में श्री स्वामीजी ने 'योग तथा भावी ओषधियाँ' विषय पर प्रवचन दिया। संध्या समय फ्राँस में बुद्धिजीवियों के प्रसिद्ध केन्द्र 'सोरबोन विश्व विद्यालय' में प्रवचन दिया। विषय था–'योग पर आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान'। श्री स्वामीजी ने श्रोताओं को उन तथ्यों की भी जानकारी दी जिसके कारण रूस द्वारा एक भारतीय योगाभ्यासी को अन्तरिक्ष में भेजने के लिए प्रेरणा मिली।

23 जून को श्री स्वामीजी ने शिक्षा विभाग के अनेक सदस्यों के साथ तथा कण्डोर सेट कॉलेज के अध्यापकों के साथ एक 'गोलमेज' सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन का विषय था–'योग तथा भावी शिक्षा'।

25 जून को यूरोपियन यूनियन ऑफ योग की ओर से श्री जेरार्ड क्लिट्ज के आमंत्रण पर श्री स्वामीजी ने शामराँ, फ्राँस के लिए प्रस्थान किया। शामराँ योग यूनिवर्सिटी में 5 दिन का सत्र चला, वहाँ योग तथा तंत्र के विभिन्न पक्षों पर श्री स्वामीजी का प्रवचन हुआ, जिसमें उन्होंने पतंजलि के राजयोग-सूत्रों पर विशेष चर्चा की। मुख्य विशेषता यह थी कि इस अवसर पर श्री स्वामीजी की पुस्तक 'फोर चैप्टर्स ऑन फ्रीडम' के फ्रेन्च अनुवाद 'लिबर्टे' का विमोचन किया गया। यह पुस्तक स्वामी योग भक्ति द्वारा अनुवादित है और मुद्रण एवं प्रकाशन श्री जेरार्ड क्लिट्ज के निर्देशन में यूरोपियन यूनियन ऑफ योग द्वारा

किया गया है। योग शिक्षकों के लिए पूरे यूरोप में एक पाठ्यक्रम के रूप में फेडरेशन ने इसे मान्यता दी है। पेरिस में 7 साधकों ने संन्यास दीक्षा ली।

30 जून को थेसालोनिकी में गुरु पूर्णिमा के लिए श्री स्वामीजी ग्रीस गये। यूरोप में श्री स्वामीजी की उपस्थिति में गुरु पूर्णिमा मनाने का यह प्रथम अवसर है। 13 जुलाई को गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर 3 दिन का उत्सव मनाया गया, इसमें विश्व के विभिन्न भागों तथा पूरे ग्रीस से आये संन्यासियों, भक्तों, शिष्यों व सत्संगियों ने सत्संग लाभ लिया। 13 तारीख को गुरु-पूजा के विशेष अवसर पर गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का दर्शन हजारों लोगों ने किया, श्रद्धा-सुमन अर्पित किये एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। अनेक लोगों ने मंत्र-दीक्षा ली, 7 लोगों ने कर्म-संन्यास लिया। विदेशियों ने विशेष नया अनुभव प्राप्त किया।

बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन में 10 से 12 जुलाई तक साधना शिविर का आयोजन किया गया। 10 तारीख की शाम को चंद्रशेखर खान का गायन हुआ। 11-12 की शाम श्रीमती कृष्णा देवी तथा राजेश मुहम्मद का रामायण पर प्रवचन हुआ। 12 तारीख की प्रात: से भजन-कीर्तन शुरू हुआ, हवन हुआ, तत्पश्चात् पादुक-पूजन हुआ। तीन हजार लोगों ने भाग लिया, प्रोग्राम बहुत ही अच्छा हुआ।

14 जुलाई को श्री स्वामीजी ने ग्रीस से फ्राँस के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने फ्राँस में योग शिक्षकों के लिए 7 दिवसीय योग सेमिनार का संचालन किया। यह सेमिनार वारजेक रीजन में 800 वर्ष पुराने दुर्ग के प्रेरक वातावरण में स्वामी योगशक्ति द्वारा आयोजित किया गया था। तत्त्वशुद्धि कक्षा का संचालन स्वामी सत्यसंगानन्द ने किया। यूरोप में तत्त्वशुद्धि का यह प्रथम सत्र था। सत्र में दर्शन, योग, तंत्र तथा दैनिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर श्री स्वामीजी के सत्संग हुए।

23 जुलाई को श्री स्वामीजी ने मध्य फ्राँस के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देहात के एक आश्रम 'हर्मिटेज' में स्वामी देवात्मानन्द तथा प्रज्ञानन्द द्वारा आयोजित 15 दिवसीय सेमिनार में भाग लिया। इस सेमिनार के प्रतिभागी 'डेफ्यूजन्स ऑफ टीचिंग्स ऑफ स्वामी सत्यानन्द सरस्वती' के विद्यार्थी थे। डी.ई.पी.एस. योग शिक्षकों को ट्रेनिंग देने वाली एक संस्था है। यहाँ पर प्रतिदिन श्री स्वामीजी का सत्संग आयोजित किया गया। उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण तथा वेदों पर उनके प्रवचन हुए। यहाँ तीन साधकों ने संन्यास दीक्षा ली।

तत्पश्चात् श्री स्वामीजी न्यू कैसल, स्विट्जरलैंड गये, वहाँ वे सीरू नैनानी के अतिथि रहे। वहाँ उन्होंने साधना-सत्र की अध्यक्षता की।

18 अगस्त को श्री स्वामीजी स्वर योग, सांख्य, तंत्र तथा वेदान्त पर आयोजित एक सेमिनार में भाग लेने हेतु मार्गिन्स, स्विट्जरलैंड गये। यह सेमिनार खूबसूरत स्की मैदान में आयोजित किया गया था। यहाँ पर श्री स्वामीजी ने कुछ ऐसे विषयों पर स्पष्ट तथा तार्किक प्रवचन दिये, जिनके बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है।

वहाँ तीन साधकों को कर्म संन्यास दीक्षा देने के बाद दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। दिल्ली से 29 अगस्त को मुंगेर पहुँचे।

मुंगेर में साधना सत्र, योग शिक्षक सत्र, स्वास्थ्य रक्षा सत्र तो हर माह चलते ही रहते हैं। आश्रम के संन्यासी भी शिविर-कैम्प के लिए बाहर जाते रहते हैं।

श्री स्वामीजी ने 14 अक्टूबर 1984 को हिन्दी-क्रिया-योग, तत्त्व-शुद्धि का उद्घाटन किया एवं सत्संग दिया।

6 नवम्बर को अँग्रेजी में क्रिया-योग व तत्त्व शुद्धि सत्र का उद्घाटन स्वामी निरंजन ने किया।

नवम्बर में इटली से स्वामी आनन्दानन्द एक ग्रुप लेकर आये।

इंगलैण्ड से स्वामी संयम एक ग्रुप लेकर आईं, दूसरी जगहों से भी काफी साधक आये थे, क्रिया योग, तत्त्व शुद्धि में सभी ने भाग लिया। श्री स्वामीजी ने नवम्बर-दिसम्बर में 4 साधकों को पूर्ण संन्यास और 90 साधकों को कर्म संन्यास दिया। सैकड़ों लोगों ने मंत्र दीक्षा ली।

1984 मई माह में 'इफेक्टिव बिजनेस मैंनेजमेंट' के अँग्रेजी में 2 सत्र लगाये गये।

आश्रम में कम्प्यूटर युग का श्री गणेश

अक्टूबर 1984 में विजया दशमी के अवसर पर गंगा दर्शन, मुंगेर में 2 कम्प्यूटर लगाये गये। इन कम्प्यूटरों का उपयोग योगाभ्यासों पर आधारित अनुसंधान सामग्री तथा श्री स्वामीजी के प्रवचनों से एकत्र सामग्री और पुरातन तांत्रिक व योग सम्बन्धी साहित्य से प्रतिपादित सिद्धान्तों को संकलित करने में किया जाएगा। इस प्रकार भारत के कम्प्यूटर नक्शे में मुंगेर का भी नाम जुड़ गया।

1985 की गतिविधियाँ

3 से 6 जनवरी 1985 तक स्वामी निरंजन का धनबाद आश्रम में सत्संग-प्रवचन हुआ। तत्पश्चात् श्री संजीव कुमार के निवास, आई.एस.एम. ऑडिटोरियम, धनबाद लायन्स क्लब, कोयला भवन ऑडिटोरियम, सिजुआ क्लब, डिग्लाडीह क्लब, सुदामाडीह कोलियरी, मूलीडीह कोलियरी, महिला सत्संग भवन, गुजराती समाज (झरिया), अग्रसेन भवन (झरिया), पिस्तोदेवी विद्या मंदिर, कुस्तौर क्लब, गोलुकडीह कोलियरी, कुजिमा कोलियरी, सी. सी.डब्ल्यू.ओ. तथा सरायधेला में स्वामी निरंजन का प्रोग्राम हुआ। 24 जनवरी को उन्होंने कल्याणपुर, मुंगेर में एक शिविर का उद्घाटन किया।

3 फरवरी को उन्होंने सूर्यगढ़ा, मुंगेर में एक 'ब्लाइण्ड रिलीफ कैम्प' का उद्घाटन किया। 10 फरवरी को उन्होंने शिशु मंदिर मुंगेर के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन किया। और 17 फरवरी को उन्होंने बाल भारती विद्या मंदिर के प्रांगण में स्थित प्राकृत चिकित्सा एवं योग केन्द्र का उद्घाटन किया।

बसन्त पंचमी को स्थापना दिवस 3 दिन के सत्संग-भजन-कीर्तन-प्रवचन के साथ मनाया गया। नारायण भोजन भी हुआ।

श्री स्वामीजी ने 17 फरवरी, शिवरात्रि को 8 भारतीय साधकों को पूर्ण संन्यास तथा 25 को कर्म संन्यास दिया एवं बहुतों ने मंत्र दीक्षा भी ली।

24 फरवरी को श्री स्वामीजी ने स्वामी सत्यसंगानन्द के साथ गंगा दर्शन, मुंगेर से इंगलैण्ड के लिए प्रस्थान किया। श्री स्वामीजी 26 तारीख को लंदन पहुँचे।

श्री स्वामीजी ने लंदन में एन्टोनिया बोयलो द्वारा आयोजित एक गोष्ठी में 2 मार्च को 'ध्यान' पर प्रवचन दिया तथा 8 से 10 मार्च तक स्वामी प्रज्ञामूर्ति द्वारा कान्वे हॉल में 'योग एवं तंत्र' पर आयोजित एक सेमिनार की अध्यक्षता की। इस गोष्ठी में श्री स्वामीजी के प्रवचन तांत्रिक ध्यान के परिप्रेक्ष्य में शरीर, मन तथा चेतना के व्यावहारिक पक्षों से सम्बन्धित थे। श्री स्वामीजी ने लंदन प्रवास की अवधि में एक साधक को पूर्ण संन्यास तथा 13 को कर्म संन्यास की दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी 26 मार्च को 2 माह के लिए गंगा दर्शन पहुँचे। उन्होंने अक्टूबर 1984 में दो सार्वजनिक संस्थाओं, 'शिवानन्द मठ' तथा 'योग रिसर्च फाउन्डेशन' की स्थापना की थी, अब वे निबंधित हो चुकी हैं। शिवानन्द मठ के अन्तर्गत त्रैमासिक पत्रिका 'शिवानन्द मठ' के नाम से निकालनी शुरू हुई है। होनहार विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति व गरीब बच्चों को पुस्तकें-नोट-बुक भी दी जा रही हैं।

इस वर्ष सत्यानन्द आश्रम, एथेन्स में गुरु पूर्णिमा मनाने का निर्णय लिया गया है। तीन दिन के साधना-सत्संग कार्यक्रम की अध्यक्षता करने श्री स्वामीजी ने 22 जून को ग्रीस के लिए मुंगेर से प्रस्थान किया। साथ में स्वामी सत्यसंगानन्द भी गयी हैं। श्री स्वामीजी ने मई-अप्रैल में 23 लोगों को कर्म संन्यास की दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी ने एथेन्स जाते समय 2 दिन बम्बई में रह कर वहाँ के भक्तों को दर्शन-सत्संग दिये। बम्बई से 24 जून को एथेन्स के लिए रवाना हुए। एथेन्स पहुँचने पर वहाँ के भक्तों-शिष्यों ने आगवानी की। श्री स्वामीजी पेनिया के नये आश्रम को देखने गये, यह आश्रम 10 हेक्टेयर भूमि में फैला हुआ है। यहाँ के शान्त वातावरण में ग्रीस तथा यूरोप से आये भक्तों को श्री स्वामीजी के साथ व्यक्तिगत सत्संग लाभ मिला।

29 जून 1985 को श्री स्वामीजी के प्रेरणाप्रद उद्घाटन प्रवचन के साथ गुरु पूर्णिमा महोत्सव का प्रारंभ हुआ। कोलम्बिया से आयी स्वामी योगशक्ति का भजन-कीर्तन हुआ, स्वामी सत्यसंगानन्द, स्वामी देवात्मानन्द के गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर प्रवचन हुए। श्री स्वामीजी ने योग, तंत्र तथा भारतीय दर्शन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला।

2 जुलाई, गुरु पूर्णिमा के पवित्र दिन गुरु-पादुका-पूजन किया गया, जिसमें ग्रीस, यूरोप, अमेरिका तथा इंगलैण्ड से आये हजारों भक्तों ने श्रद्धा के साथ भाग लिया। इस पर्व को देखने का पाश्चात्य जगत् के सभी शिष्यों को बहुत अच्छा अवसर मिला।

गंगा दर्शन, मुंगेर में भी 2 जुलाई को गुरु पादुका पूजन, विशेष हर्षोल्लास से मनाया गया। 2000 लोगों ने भाग लिया, भजन-कीर्तन, रामायण, सत्संग-प्रवचन हुआ।

श्री स्वामीजी ने 3 जुलाई को तत्त्वशुद्धि सत्र का उद्घाटन किया, जिसका संचालन स्वामी सत्यसंगानन्द ने किया।

श्री स्वामीजी 9 जुलाई को राजयोग, वेदान्त इंस्टीट्यूट के संचालक, अपने अत्यन्त पुराने शिष्य श्री राम सेनन के आमंत्रण पर एन्टवर्प, बेल्जियम गये। श्री स्वामीजी ने एन्टवर्प निवास अवधि में प्राणायाम, मुद्रा, बंध तथा कुण्डलिनी योग पर प्रवचन दिया। उन्होंने योग निद्रा की एक विशेष कक्षा का भी संचालन किया, जिसे टेलीविजन पर दिखाया गया। उन्होंने उस समय 17 साधकों को पूर्ण संन्यास एवं 44 साधकों को कर्म संन्यास की दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी 14 जुलाई को एथेन्स गये। वहाँ पूर्ण संन्यास, कर्म संन्यास व मंत्र दीक्षा दी। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी ने 19 जुलाई को भारत के लिए प्रस्थान किया। भारत पहुँचने पर वे 3 दिन बम्बई में रहे। उनके निवास व प्रोग्राम की व्यवस्था नवगठित संस्था, 'सत्यानन्द योग सेन्टर' के सदस्यों द्वारा की गई। दर्शन, सत्संग, प्रवचन और सार्वजनिक प्रवचन-सत्संग का आयोजन हुआ। 23 जुलाई को दिल्ली गये, 24 जुलाई को श्री स्वामीजी मुंगेर पहुँचे।

श्री स्वामीजी ने गंगादर्शन, मुंगेर में कर्म संन्यास व मंत्र दीक्षा दी। फिर 18 अक्टूबर को धनबाद गये। भक्तों से भेंट एवं सत्संग किया, तत्पश्चात् वे 19 अक्टूबर को नोवामुण्डी पहुँचे। टिस्को के उपाध्यक्ष श्री आर.एन.शर्मा अपने व्यक्तिगत विमान में श्री स्वामीजी को नोवामुण्डी लाये थे। आयोजकों ने विशेष आगवानी की तथा टिस्को प्राथमिक व माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों ने परम्परागत ढंग से स्वागत किया। नोवामुण्डी योग केन्द्र में विशाल जनसमूह को सम्बोधित करने के बाद श्री स्वामीजी ने बिहार योग विद्यालय, मुंगेर के स्वामियों द्वारा संचालित एक क्रिया-योग-सत्र का समापन किया व प्रेरणात्मक प्रवचन दिया। शाम को नोवामुण्डी क्लब में सार्वजनिक प्रवचन दिया।

सत्यानन्द योग सेन्टर, बम्बई के निमंत्रण पर 21 अक्टूबर को बम्बई के लिये प्रस्थान किया। श्री स्वामीजी ने 22 से 30 अक्टूबर के अपने प्रवास के दौरान 'भारती विद्या भवन' में कुण्डलिनी योग पर तीन सार्वजनिक प्रवचन दिये। श्री स्वामीजी ने तंत्र के उन विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जो अब तक अज्ञात थे। समाज के विभिन्न वर्गों के अनेक लोग इन कार्यक्रमों में उपस्थित हुए। 29 अक्टूबर को श्री स्वामीजी को 'होमी भाभा एटॉमिक रिसर्च सेन्टर, ट्राम्बे' में प्रवचन देने के लिए निमंत्रित किया गया।

श्री स्वामीजी ने श्री एवं श्रीमती मुन्शी के शट्यू विंडसर, बम्बई के निवास स्थान पर प्रतिदिन सत्संग दिया। उन्होंने अनेक साधकों को मंत्र दीक्षा व 16 साधकों को कर्म संन्यास दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी नवम्बर में मुंगेर आये, क्रिया-योग, तत्त्व-शुद्धि-सत्रों के साधकों को सत्संग दिया। अनेक को मंत्र व 7 भारतीय साधकों को पूर्ण संन्यास की दीक्षा दी। नवम्बर में स्वामी प्रज्ञामूर्ति इंगलैण्ड से ग्रुप लेकर क्रिया योग के लिए आई। इटली से स्वामी आनन्दानन्द भी ग्रुप लेकर आश्रम-वास व कर्म योग हेतु मुंगेर आए।

श्री स्वामीजी को देश के कोने-कोने से निरंतर भ्रमण के लिए निमंत्रण प्राप्त हो रहे थे। उन्होंने सभी एक लिए अपना यह संदेश प्रसारित किया–

श्री स्वामीजी का संदेश

मुझे समय-समय पर अपने शिष्यों से आमंत्रण के अनेक पत्र प्राप्त होते रहते हैं तथा यहाँ आने वाले दर्शनार्थी एवं प्रशिक्षणार्थीगण भी भ्रमण का अनुरोध करते हैं। मैं निश्चित रूप से आता, क्योंकि मेरा अपने शिष्यों के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है और विशेष रूप से उनके साथ जिन्हें मैं अपना मानता हूँ। परन्तु यह अभी संभव नहीं है।

किन्तु फिर भी सबकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए मैंने अपनी ओर से स्वामी निरंजन को भेजने का निर्णय लिया है। यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूप से वहाँ उपस्थित नहीं रहूँगा, परन्तु स्वामी निरंजन में मेरी आत्मा, मेरा हृदय और मन वहाँ उपस्थित रहेंगे।

अत: सभी संन्यासियों, कर्म संन्यासियों, शिष्यों, भक्तों तथा मित्रों को स्वामी निरंजन के भ्रमण की सूचना दो। वे उन्हें केवल मेरे एक प्रतिनिधि के रूप में ही नहीं, बल्कि बिना किसी अन्तर के मेरे ही स्वरूप में पायेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि मेरा संदेश स्पष्ट है।

1986 की गतिविधियाँ

जनवरी 1986 में मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र का प्रोग्राम बना। श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन एवं उनके साथ 4 स्वामियों को भी भेजा। स्वामी निरंजन सबके साथ 5 जनवरी को भागलपुर पहुँचे, वहाँ कुछ घण्टे रुक कर, कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया। कलकत्ते में 6 जनवरी को सत्संग करके 7 की सुबह रायगढ़ पहुँचे। रायगढ़ में व्यस्त प्रोग्राम रहा, मंत्र दीक्षा, सत्संग, प्रवचन, शाम को सार्वजनिक प्रवचन हुआ।

स्वामी निरंजन 9 जनवरी को भिलाई पहुँचे। वहाँ 9 से 12 तारीख तक 4 दिवसीय योग सम्मेलन का आयोजन था। 9 जनवरी को संध्या समय स्वामी निरंजन ने दीप जलाकर व श्री स्वामीजी के चित्र को माल्यार्पण कर सम्मेलन का उद्घाटन किया। भजन, कीर्तन, प्रवचन, भस्त्रिका प्राणायाम, योग निद्रा, प्रश्नोत्तर नियमित चलने लगा। नन्दग्राम वालों के विशेष अनुरोध पर, वहाँ के लिए 4 घण्टे का समय दिया था।

12 तारीख की सुबह स्वामी निरंजन कार द्वारा भिलाई से नन्दग्राम पहुँचे। नन्दग्राम के लोग सुबह से ही अपने प्रिय निरंजन को देखने आश्रम पहुँच रहे थे। वहाँ सबने स्वागत किया। स्वामी निरंजन आश्रम पहुँचने पर सबसे पहले समाधि-स्थल में प्रणाम करने गये। फिर मंत्र दीक्षा हुई, 43 लोगों ने मंत्र दीक्षा ली। दीक्षा के बाद हॉल में आये लोग उन्हें देख प्रसन्न हो रहे थे। वृद्ध लोग पास से देखने के लिए नजदीक आ गये। 2000 लोगों की उपस्थिति हो गई थी, और लोग आते ही जा रहे थे। स्वामी निरंजन ने कहा–'आप लोगों के बीच दर्शन देने नहीं, आशीर्वाद लेने आया हूँ, पूज्य गुरुदेव का संदेश लेकर आया हूँ।' सबसे मिल कर, दर्शन लाभ देकर, 11 बजे भिलाई वापस हो गये।

भिलाई में मंत्र दीक्षा, प्रेस कॉन्फ्रेन्स, प्रवचन, सत्संग, मिलना-जुलना। 12 तारीख तक बहुत व्यस्त प्रोग्राम रहा।

13 जनवरी की प्रात: कार द्वारा रायपुर पहुँचे। प्रेस वार्ता में भाग लिया, आयुर्वेद कॉलेज कन्या महाविद्यालय में प्रोग्राम हुआ। आकाशवाणी रायपुर द्वारा एक भेंट वार्ता रिकार्ड की गई। पत्रकारों से भेंट वार्ता हुई। जिज्ञासुओं के बहुत बड़े समूह के समक्ष प्रवचन दिया। 14 जनवरी को मंत्र दीक्षा के पश्चात् वे सेंट जोसेफ चर्च गये, वहाँ 'आधुनिक युग में योग का महत्त्व' विषय पर प्रवचन हुआ। प्रश्नोत्तर, सत्संग, प्रवचन के कार्यक्रम के बाद 14 तारीख की रात की गाड़ी से स्वामी निरंजन, संन्यासियों व अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बलपुर के लिए रवाना हुए।

15 जनवरी की प्रात: सम्बलपुर पहुँचे, वहाँ त्रि-दिवसीय उत्कल-योग-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। वहाँ भजन-कीर्तन, सत्संग-प्रवचन, प्रश्नोत्तर प्रोग्राम हुआ। मंत्र दीक्षा, संन्यास दीक्षा भी हुई। श्रीमती कृष्णा देवी का रामायण-प्रवचन तीनों दिन हुआ। 17 जनवरी को इंजीनियरिंग कॉलेज बुरला में भी प्रवचन हुआ। 3 दिन के प्रोग्राम का समापन 18 तारीख को करके, संन्यासियों के साथ बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

19 जनवरी को बम्बई पहुँचे, थाणे में स्वामी निरंजन ने 'उत्तम स्वास्थ्य के लिये योग' पर एक सार्वजनिक प्रवचन दिया तथा योग शिक्षकों को प्रमाण-पत्र वितरित किया। 20 से 25 जनवरी तक भारतीय विद्या भवन में ध्यान एवं चिदाकाश की व्यावहारिक कक्षाओं का संचालन किया। उन्होंने प्रतिदिन विभिन्न व्यक्तियों से भेंट की, व्यक्तिगत साक्षात्कार भी दिया। रोज उनका प्रवचन हुआ। उन्होंने 21 जनवरी को इस्कॉन ऑडिटोरियम, जुहू

में एक सार्वजनिक प्रवचन दिया। विषय था, 'पतंजलि का राजयोग'। 22 जनवरी को बम्बई वेस्ट के रोटरी क्लब में 'योग चिकित्सा' पर प्रवचन दिया। 23 तारीख को भांडूप स्थित गेस्ट कीन विलियन्स कम्पनी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कार्यक्रम में 'योग द्वारा तनाव नियंत्रण' विषय पर बोलते हुए योग की सरल विधियों का वर्णन किया। 24 जनवरी टाटा ऑडिटोरियम में 'आज का विज्ञान व भविष्य की संस्कृति योग' पर प्रवचन दिया। 25 जनवरी को स्वामी निरंजन के मार्गदर्शन में भारतीय विद्या भवन में बच्चों के लिए आसनों की कक्षा का संचालन किया गया। ये सभी कार्यक्रम 'सत्यानन्द योग सेन्टर' द्वारा आयोजित किये गये थे। तत्पश्चात् स्वामी निरंजन ने 25 जनवरी की रात की गाड़ी से गोंदिया के लिए प्रस्थान किया।

26 जनवरी को अपराह्न में गोंदिया पहुँचे। स्वामी निरंजन का विशेष स्वागत हुआ। सत्संग, प्रवचन, प्रश्नोत्तर, भजन-कीर्तन हुआ। 27 को मंत्र दीक्षा, व्यक्तिगत साक्षात्कार, सत्संग, प्रवचन हुआ। तत्पश्चात् मुंगेर के लिए प्रस्थान किया और कलकत्ता होते हुए 29 जनवरी को मुंगेर पहुँचे।

श्री स्वामीजी 5 फरवरी को दिल्ली गये। वहाँ से अमरावती, महाराष्ट्र जायेंगे। वहाँ 7 से 9 फरवरी तक होने वाले त्रि-दिवसीय 'पाँचवें राष्ट्रीय योग सम्मेलन, महाराष्ट्र', का उद्घाटन व अध्यक्षता करेंगे। श्री स्वामीजी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, 'व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में योग का महत्त्व' विषय पर प्रेरणाप्रद प्रवचन दिया। 8 एवं 9 फरवरी को सार्वजनिक प्रवचन एवं सत्संग दिया तथा सम्पूर्ण भारत से आये योग शिक्षकों तथा विद्यार्थियों से भेंट की। तत्पश्चात् श्री स्वामीजी 10 फरवरी को दिल्ली आये, वहाँ से मुंगेर आये।

श्री स्वामीजी 1 मार्च को पटना पहुँचे, वहाँ उन्होंने भारत के पूर्वी राज्यों से आये बच्चों की एक रैली का उद्घाटन किया। इस रैली का आयोजन अखिल भारतीय शिशु संगम द्वारा किया गया था। श्री स्वामीजी ने दीपक प्रज्वलित करके रैली का शुभारंभ करने की घोषणा की। तत्पश्चात् मेघालय राज्य के बच्चों द्वारा श्री स्वामीजी को 'गार्ड ऑफ ऑनर' प्रस्तुत किया गया। उसके बाद श्री स्वामीजी ने भारत के बच्चों को अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को जानने की अनिवार्यता विषय पर प्रवचन दिया। 2 मार्च को श्री स्वामीजी मुंगेर आये।

श्री स्वामीजी गंगा दर्शन, मुंगेर में प्रशिक्षणार्थियों तथा भक्तों को सत्संग लाभ देते रहे। दिसम्बर 1985 से मार्च 1986 तक सैकड़ों लोगों ने मंत्र दीक्षा ली। 3 साधकों ने संन्यास दीक्षा व 68 लोगों ने कर्म संन्यास की दीक्षा ली।

बम्बई, लोनावाला, कच्छ, भुज में प्रोग्राम बना। स्वामी निरंजन को प्रोग्राम में बम्बई, लोनावाला, कच्छ, भुज भेजा। 5 मई को स्वामी निरंजन धनबाद पहुँचे, वहाँ कई जगह प्रवचन, सत्संग, मंत्र दीक्षा प्रोग्राम करके दिसेरगढ़ तथा सेन्कटोरिया गये। 7–8 मई वहाँ रहे। उन्होंने इस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड के अधिकारियों के लिए तनाव नियंत्रण हेतु एक दिवसीय शिविर का संचालन किया।

9 मई को स्वामी निरंजन बम्बई पहुँचे। 10 मई को उन्हें भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बी.ए.आर.सी., ट्राम्बे में 'दैनिक जीवन हेतु योग' विषय पर प्रवचन देने हेतु आमंत्रित किया गया। 11 मई को स्वामी निरंजन सत्यानन्द योग केन्द्र के प्रतिभागियों एवं प्रशिक्षणार्थियों के लिए आयोजित एक योग रिट्रीट के संचालन हेतु लोनावाला गये। उन्होंने दैनिक कक्षाओं एवं सत्संग के अलावा वेद व उपनिषदों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की व्याख्या की। अनेक साधकों को मंत्र दीक्षा प्रदान की।

18 मई को स्वामी निरंजन बम्बई लौटे। यहाँ उन्होंने भारतीय विद्या भवन में सत्यानन्द योग केन्द्र बम्बई द्वारा 'प्राण विद्या' विषय पर आयोजित त्रि-दिवसीय शिविर का संचालन किया। बम्बई में उनके अन्य कार्यक्रमों में ताज होटल में रोटरी क्लब समारोह के दौरान दिया गया 'हारमनी टू हारमनी' विषय पर प्रवचन, टाटा व रोज लिमिटेड में तनाव नियंत्रण विषय पर एक शिविर, प्रतिभा मुन्शी के आवास पर दिया गया सत्संग भी प्रेरणादायक था।

19 मई को स्वामी निरंजन वायुयान द्वारा भुज, कच्छ पहुँचे। वहाँ उन्होंने कक्षाओं का संचालन किया। दीक्षा प्रदान की तथा व्यक्तिगत भेंट एवं प्रेस वार्तायें दीं एवं रोटरी क्लब चेम्बर ऑफ कॉमर्स, मर्चेन्ट्स एसोसियेशन व जेसीज के सदस्यों को भी सम्बोधित किया। उन्होंने भारतीय वायुसेना, सीमा सुरक्षा बल एवं भारतीय सेना के अधिकारियों के समक्ष भी प्रेरणाप्रद प्रवचन दिया। उन्होंने शान्ति निकेतन में भी संध्या कालीन दैनिक सत्संग दिया।

तत्पश्चात् 26 मई को कच्छ-भुज से बम्बई, वहाँ से कलकत्ता होते हुए, कलकत्ते में एक दिन रुक कर फिर 30 मई को मुंगेर पहुँचे।

श्री स्वामीजी का गंगा दर्शन, मुंगेर में नियमित सत्संग-प्रवचन चलता रहा। मंत्र दीक्षा, कर्म संन्यास दीक्षा होती रही। शिवानन्द मठ व रिसर्च सेन्टर के लिए भी योजनाएँ बनाते रहे, उसे कार्य रूप में परिणत करते रहे।

इस वर्ष 'गुरु पूर्णिमा महोत्सव' बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन में मनाया गया। 18 से 20 जुलाई 1986 तक विशेष साधना शिविर का आयोजन हुआ।

सुबह से आसन, प्राणायाम, भजन-कीर्तन, सत्संग-प्रवचन, गीता-उपनिषद्, पाठ नियमित चलता रहा। दतिया, मध्य प्रदेश से डॉ. मानस विश्वास आये थे, रोज रात को उनका रामायण-प्रवचन होता था। तीन दिन के साधना शिविर में नियमित प्रोग्राम चला।

21 जुलाई की प्रात: 5 बजे से भजन-कीर्तन शुरू हुआ। 6 बजे से पादुका-पूजन का कार्यक्रम शुरू हुआ। करीब 3000 लोगों ने पादुका पूजन किया। पादुका पूजन साधना हॉल में हुआ, श्री स्वामीजी कुटीर में ही थे। लोगों के विशेष अनुरोध पर पूजा नहीं, सिर्फ प्रणाम की अनुमति मिली। लोग पादुका पूजन के बाद लाइन में लगते थे और गुरु जी को सिर्फ प्रणाम करके वापस होने वाली लाइन में लग जाते, यानी प्रणाम करके तुरन्त वापस हो जाते थे। इस तरह प्रोग्राम 11 बजे तक चला। पूज्य गुरुदेव ने प्रात: साधकों को मंत्र दीक्षा व संन्यास दीक्षा दी थी। जुलाई माह में 50-60 लोगों ने कर्म संन्यास भी लिया था। गंगा दर्शन के नवनिर्मित मुख्य भवन की तीसरी मंजिल के सभाकक्ष में सत्संग, प्रवचन, आशीर्वचन हुआ। सभी प्रोग्राम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए।

श्री स्वामीजी कुछ दिन गंगा दर्शन में रहेंगे। कुछ विशेष काम उन्हें करना है। उन्होंने शिवानन्द मठ की स्थापना अपने गुरु, ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्द जी की पुण्य स्मृति में की है। जिनकी जन्म शताब्दी उनके शिष्यों द्वारा विश्वभर में मनाई जाएगी। स्वामी शिवानन्द जी अपने जीवन-काल में प्रेम, सेवा, करुणा, प्रेम और दया की जीवन्त मूर्ति रहे हैं। शिवानन्द मठ एक निबंधित सामाजिक दातव्य संस्था के रूप में मानव कल्याण हेतु स्वामी शिवानन्द जी के जीवन्त आदर्शों के प्रति समर्पित हैं। ऐसे महान् गुरु व शिष्य के चरणों में प्रणाम।

शिवानन्द मठ अपने स्थापन काल से ही मुंगेर जिले के निर्धन व जरूरतमंद छात्रों को छात्र-वृत्ति, पुस्तकें एवं अन्य अध्ययन सामग्रियाँ दे रहा है। मठ के उद्देश्यों के अनुसार योग्य छात्रों को यथासंभव सहायता करने हेतु यह एक अपरिमित योजना है। इसके द्वारा जरूरतमंद व्यक्तियों को आवश्यक दवाइयाँ भी नि:शुल्क वितरित की जा रही हैं।

24 दिसम्बर 1985 को शिवानन्द मठ के तत्त्वावधान में लक्ष्मीपुर, मुंगेर के आक्रान्त क्षेत्र में पुरुषों, महिलाओं एवं बड़े व छोटे बच्चों को वस्त्र वितरित किये गये। लक्ष्मीपुर गाँव हाल में ही रक्तपात, आगजनी एवं लूटमार का शिकार बना था। श्री स्वामीजी ने पहले जिला कार्यालय को अपनी योजना से अवगत कराकर, उनसे सूची लेकर, 216 परिवारों का नाम लिख कर, कपड़ों

की संख्या, किसको क्या कपड़ा देना है, सूची बना दी थी। मुंगेर सदर के 22 स्थानीय कार्यकर्त्ता, 7 स्वामियों, शिवानन्द मठ के कार्यकर्त्ताओं के साथ स्वामी निरंजन को भेज कर 216 परिवारों को वस्त्र दिलवाये थे। 2 परिवारों को रसोई बनाने के बरतन भी दिलवाये थे। शिवानन्द मठ ने इन वस्त्रों को सिंगापुर में रहने वाले भक्तों से अनुदान के रूप में प्राप्त किया था।

श्री स्वामीजी की योजना है, एक एम्बुलेंस गाड़ी आयेगी, जो आश्रम के चलता-फिरता अस्पताल का रूप लेगी। डॉक्टर, नर्स व दवाई लेकर देहातों में जायेंगे, देखेंगे, दवाई देंगे। जैसे 1 तारीख को मनुष्यों के लिए दवाई लेकर जायेंगे, 15 तारीख को पशुओं के लिए दवाई व डॉक्टर लेकर जायेंगे। एकदम देहात में जहाँ स्कूल नहीं है, वहाँ पर स्कूल बनवाकर देंगे। बिहार के मुख्य मंत्री श्री भागवत झा आजाद आश्रम आये थे, तब श्री स्वामीजी ने उनसे बातें की थीं। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की व स्कूल के लिए जगह व शिक्षक देना भी स्वीकार कर लिया है। इस तरह श्री स्वामीजी की योजना बढ़ रही है।

स्वामी शिवानन्द जी की जन्म शताब्दी

8 सितम्बर 1987 स्वामी शिवानन्द जी की शताब्दी है, इसलिए जुलाई 1987 की गुरु पूर्णिमा, गुरु जी की शताब्दी-गुरु-पूर्णिमा के रूप में मनाई जाएगी। उस समय पूरे भारत व विदेश से भी लोग आयेंगे। 8 से 10 हजार लोग आ सकते हैं। श्री स्वामीजी ने कहा–तीन दिन के सत्संग का आयोजन होगा। सुबह 8 बजे सौंदर्य-लहरी का पाठ, गीता पाठ व 2 बजे रामायण-उपनिषद् का पाठ होगा। स्वामी शिवानन्द जी को संगीत बहुत प्रिय था, इसलिए उनकी शताब्दी में संगीत का विशेष आयोजन होगा। एक से एक विशेषज्ञ, संगीतज्ञ, अपना नाम दे रहे हैं, आने को इच्छुक हैं, उन्हें बुलायेंगे, तीनों दिन तीन घण्टे का संगीत-सम्मेलन रात को होगा।

रिसर्च सेन्टर के लिए भी उनके मन में, कैसे करना है, क्या करना है, पूरा नक्शा है। कम्प्यूटर मशीने आयेंगी, कमरा भी उसी के अनुरूप बना है। सब काम पूरा हो जाने पर डॉक्टरों का सेमिनार होगा। शोध कार्य तो कई वर्षों से चल ही रहा है, सभी जगहों के डॉक्टरों की रिपोर्ट, फाइल सब कुछ है।

विशाल लाइब्रेरी है, बड़े साइज की 101 आलमारियाँ हैं, जिनमें अँग्रेजी-हिन्दी की पुस्तकें भरी हुईं हैं। सभी धर्मों की, सभी भाषाओं की पुस्तकें हैं। श्री स्वामीजी की योजना विशाल है, उनका कार्यक्षेत्र भी विशाल है।

'कर्म ही सच्चा योग है', यही श्री स्वामीजी का महामंत्र है। इसी मंत्र के सहारे ही उनके शिष्यगण अटूट आत्म-विश्वास के साथ आगे बढ़ते जा रहे हैं। श्री स्वामीजी ने मानव विकास को एक नई एवं व्यावहारिक दिशा दी है।

भूमण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी ने कठोर साधना की तथा अपनी समस्त आकांक्षाओं को अपने मानवेतर शिष्य में संजोया। सत्यम् रूपी ज्ञान गंगा को 12 वर्षों तक अपने में गुप्त रखा, पश्चात् 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' उसे दिशा प्रदान की। श्री सत्यम् गुरुदेव की आत्म-ज्योति से आलोकित मार्ग पर, उनसे दिग्विजय करने का आशीर्वाद प्राप्त कर, परिव्राजक जीवन अपनाकर चल पड़े। नयी-नयी अपरिचित जगहों में नगर-नगर और डगर-डगर घूमना, कठिनाइयाँ हुईं, परेशानियाँ हुईं, पर इन्हें चलना था, चलते ही रहना था। सफलता हर जगह स्वागत करने लगी। 'काँटे कहाँ रहे अब पथ में, फूलों से पथ गया सँवारा'।

1957 जून में गंगोत्री में देव शक्तियों के माध्यम से संकेत व आदेश मिले। 1961 में बद्रीनाथ धाम में आदेश मिला। वापसी में ऋषिकेश में गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी से आदेश-उपदेश व आशीर्वाद प्राप्त कर, दिव्य संकेत व आदेश को साकार रूप देने का प्रण किया। 'योग ही भविष्य की संस्कृति है', इस घोषणा के साथ 'अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल' की स्थापना की। परमगुरु के ब्रह्मलीन होने पर उनके स्मृति-स्वरूप अखण्ड-ज्योति प्रज्वलित करके गुरु के कार्य की पूर्ति में तत्पर हुए। कठोर साधना करके परमहंस स्थिति को प्राप्त हुए। पश्चात् अपने मिशन को गति प्रदान की।

योग आन्दोलन की प्रगति का ज्वलन्त उदाहरण है—श्री स्वामीजी की योग शिक्षा, देश व विदेश में योग आश्रम, योग सम्मेलन, अनेक रोगों पर शोध कार्य, अनेक यौगिक केन्द्रों की स्थापना। उनकी अनेक पुस्तकें, जो लाखों की तादाद में छप चुकी हैं, छपती ही जा रही हैं। उनकी रचनाओं का देश-विदेश में विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन एवं उनका अत्यन्त व्यस्त विश्वव्यापी कार्यक्रम, हिन्दी एवं अँग्रेजी की मासिक पत्रिकायें 'योग विद्या' एवं 'योगा', जो 21 वर्षों तक विश्व-भर में भ्रमण कर सफलता से जन-सेवा करने के बाद अब दूसरे रूप में प्रकाशित होने लगी हैं। जनता की माँग पर 'क्रिया योग' जैसी उच्च साधना का प्रशिक्षण देने वाली पत्रिका 'क्रिया' का प्रकाशन भी हिन्दी-अँग्रेजी में हर माह साधकों का मार्गदर्शन करने के लिए 3 वर्षों तक होता रहा।

योग वेदान्त फॉरेस्ट यूनिवर्सिटी प्रेस, ऋषिकेश के श्री वासुदेव शर्मा ने 1954 में श्री स्वामीजी के 31वें जन्म दिवस पर लिखा–

आनन्द कुटीर के स्तंभ!

गर्व है इस विशाल अट्टालिका को, जो कि गंगा तीर पर उच्च मस्तक किये खड़ी है, क्योंकि उसने सुरसरि से भी पवित्र हृदय वाले, हिमालय से भी चिर स्थित, दृढ़ संकल्पी और पवित्र हृदय वाले, मधु से भी मधुरतर वाणी वाले देव-स्तंभ का सहारा लिया है।

यह भाव पूर्ण लेख 1954 का है, और इसी भाव को आज भी कह सकते हैं, आनन्द कुटीर को गंगा दर्शन कह कर ...। जैसे, हे गंगा दर्शन के स्तंभ।

श्री स्वामीजी ने 1954 के शुरू में एक लेख लिखा, 'मैं संन्यासी हूँ', जो विचार उस समय थे, वही विचार उनके आज भी हैं–

मैं संन्यासी हूँ

"देवों पर मनुष्य ने विजय पाई, समुद्रों को उसने पार किया, आकाश की असीमता को नापा, समुद्र की गहराई खोजी, प्रकृति के तत्त्वों को पहचाना, धर्मों को धारण किया, दुःखों पर विजय पाई, जीवन और मृत्यु के दोनों किनारों को जीवन की कड़ी से जोड़ा, देवत्व को पहचाना, अनन्त जीवन के परमाधार तत्त्व को खोज लिया। सब कुछ पाया, सब कुछ खोया, सब कुछ देखा। फिर भी मनुष्य अधूरा है, उसका जीवन अपूर्ण है, उसकी आशायें असन्तुष्ट हैं। मृत्यु उसका अंत है, और जन्म उस मृत्यु का अभियान।

जीवन के लिए मरण है, और मरण के लिए जीवन। न धर्म, न कर्म, न योग, न विज्ञान, न मंत्र, न तंत्र–कुछ भी नहीं, जो जीवन को पूर्ण बना सके। आत्म-निष्ठ जीवन के नाम पर, योग-निष्ठ जीवन के नाम पर मानी गई पूर्णता भी बन्ध्या-पुत्र के समान सम्पन्न और शिक्षित है (है ही नहीं)।

यह अभी तक समस्या है, इसका समाधान करने वाला अभी तक हुआ नहीं। योगी, तपस्वी, ज्ञानी, महात्मा, वैज्ञानिक सभी हार गये। अनन्त की असीमता के समान यह भी एक रहस्य है। हम या तो जीवन की व्यक्तिगत खोज में खो गये, या जीवन की भौतिक खोज में हार गये, या जीवन की आनन्दमयी सत्ता में सब कुछ भूल गये। किसी ने आत्मा को पहचाना, किसी ने परमात्मा को, किसी ने ईश्वर को जाना, कोई प्रकृति में भटकता रह गया;

कोई अनन्त ब्रह्माण्ड को खोजने चला, किसी ने विशाल जलराशि के अन्दर छिपे हुए संसार को खोजा, तो किसी ने विशाल वायुमंडल की परिधि को। किसी ने शान्ति खोजी, किसी ने विप्लव मचाया। पर जीवन की अनन्तमुखी खोज आज तक किसी ने नहीं की।

जीवन का विकास कुछ ही कोणों तक सीमित रहा। हिन्दू मुसलमान नहीं बन सका, न मुसलमान हिन्दू। न गृहस्थ संन्यासी बना, न संन्यासी गृहस्थ। किसी ने संसार को सत्य बताया, किसी ने असत्य। किसी ने कहा, 'एक है', तो किसी ने कहा, 'बहुत', तो किसी ने कहा, है ही नहीं। ज्यों-ज्यों हम खोजते गये, त्यों-त्यों हम खोते गये। जैसे-जैसे हमें ज्ञान मिला, वैसे-वैसे हम अज्ञानी बने। आज युगों की खोज के बाद भी, कालों तक योगियों, ज्ञानियों, वैज्ञानिकों और महात्माओं की सम्पन्न परम्परा के बावजूद भी जीवन का रहस्य खुला नहीं। पर आज हमें इस जटिलता को दूर करना है।

हम समझ गये, जीवन पवित्र है; कलंक नहीं, अभिशाप नहीं, किन्तु एक सुन्दर वरदान। इन योगियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, ब्रह्मवेत्ताओं, तत्त्व ज्ञानियों, भक्तों और शास्त्रकारों ने जीवन को सँवारना चाहा। पर इससे क्या? जीवन का असली स्वरूप तो छिप गया न? हम जीवन के ऊपर चढ़े हुए युगों-युगों के इन रंगों को निकालेंगे; इनको बहा देंगे–धर्म रूपी उपाधियों को, वेदों और शास्त्रों की युक्तियों को, सन्तों की अनुभूतियों को और हम देख लेंगे जीवन का वास्तविक स्वरूप। जीवन सरल है, सादा, पवित्र, एक है। विशाल और कण-कण में ओत-प्रोत और अनुप्राणित है। जीवन व्यापक है और सत्यनिष्ठ। उसके ऊपर चढ़े हुए आवरण तो आडम्बर हैं, दंभ और पाखण्ड है।

अरे जीवन चलने दो, जैसे चलता है, चलना चाहता है। रहने दो अपना ज्ञान, अपनी फिलॉसफी, अपनी आध्यात्मिकता, अपना विज्ञान, अपना सामाजिक नियम और अपनी धार्मिकता। चलने दो मेरा जीवन जैसे सुन्दर बचपन। मुझे पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है। रहने दो मुझे अज्ञानी, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान। नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वत्ता। मुझे तो जंगलों में बसना ही प्रिय है। पक्षियों के कूल-कूजन के साथ गा लेने दो; मुझे रोको मत। सूखे पत्तों की चरमराहट में मुझे दौड़ने दो। रोको मत। उगते हुए सूरज के सामने मुझे प्रकृति की ओर दृष्टिपात करने दो। वन के पत्तों, सरिता के जल और आकाश की वायु पर मुझे जीने दो। रहने दो अपनी सभ्यता, रहने दो

अपना बड़प्पन, रहने दो अपनी कीर्ति और अपना धर्म। मुझे बाँधो मत, मुझे जाने दो, जहाँ मैं चाहूँ। अपने सामाजिक नियमों के बंधन में मुझे मत बाँधो, अपने धार्मिक विश्वासों में मुझे मत भुलाओ, अपनी वैज्ञानिक खोज से मुझे हराओ मत। मुझे बहलाओ मत।"

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा,
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा।
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा,
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा ॥
मैं संन्यासी हूँ, संन्यासी हूँ ...

जनम-जनम का संस्कार लेकर आये संन्यासी की बातें कितनी सच हैं, यह तो वही समझेगा जिसमें क्षमता होगी। हीरा तो मिट्टी-कोयले के माध्यम से ही दुनिया में आता है। अगर रत्न-पारखी मिला तो दुनिया में नाम व काम फैलता है, नहीं तो किसी को पता भी नहीं चलता। खान से हीरा निकला, तो उसकी चमक फैलने लगी, शायद ही कोई पहचान पाया हो। सौभाग्य ने उसे जौहरी तक पहुँचा दिया, जौहरी ने देखते ही उसे पहचान लिया, अपने संरक्षण में रखकर तराशना शुरू किया। बारह वर्ष में हीरे की ज्योति इतनी बढ़ी कि संन्यासी की कुटिया आलोकित हो उठी और ज्योति बाहर फैलने लगी। गुरु ने आशीर्वाद देकर उस अभिनव सूर्य को दिग्विजय करने भेज दिया। अभिनव सूर्य को अपना काम पूरा करना है, जगत् का अन्धकार हरना है, किसी से न मोह न दोस्ती ...।

माँ की ममता-सा चारों ओर फैला-बिखरा प्राकृतिक सौन्दर्य, पिता का वैभव, मित्रों का आदर-अपनत्व, सभी तो था, पर पल्लव तो किसी भी तरह के बंधन के भीतर नहीं रह सके। वे आँगन की चहारदीवारी के भीतर समा ही नहीं सके। पक्षी की तरह स्वच्छन्द आकाश में विहार करने, सब कुछ त्याग कर चल पड़े अनन्त सागर में विचरने के लिए ...। यह बात है 1942 की।

और आज है 1988, याने 46 वर्ष बीत गये। अब वे बालक धर्मेन्द्र नहीं, सत्यम् केशरी हैं, जो अपने योग आन्दोलन व प्रवचन रूपी सिंह गर्जना से अज्ञानान्धकार को दूर भगा रहे हैं। 46 वर्ष याने करीब अर्धशताब्दी बीतने पर भी उन वीत-राग पर वैसा ही प्रभाव है। एक विशाल महत्त्वाकांक्षा, सागर जैसा कार्यक्षेत्र फैला कर, शिवानन्द आश्रम, अखण्ड-ज्योति, गंगा दर्शन,

शिवानन्द मठ, रिसर्च सेंटर, व सात चक्रों वाले भवन के निर्माता, योग गंगा का भागीरथ, इस गंगा दर्शन के आँगन में कैसे समा सकता है।

योग के मसीहा 'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती' पंछी की तरह स्वच्छन्द, पहाड़, पर्वत, आकाश, पाताल पर विचरने के लिए विश्व के सभी देवी-देवताओं से, देव-शक्तियों से आदेश व आशीष लेने, उनको साधुवाद देने, 8 अगस्त 1988 को निकल ही पड़े। 'बहुजन सुखाय, सर्वेभवन्तु सुखिनः' की भावना लेकर।

मानो कह रहे हों–'चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन, रहने दो मुझे अज्ञानी, नहीं चाहिए, तुम्हारा ज्ञान, नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वत्ता। मुझे पंछियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है, मुझे पंछियों की कूल-कूजन के साथ गा लेने दो, मुझे रोको मत, टोको मत।'

हे देवलोक के सत्य देव! आपके लिए माला बनायी है। आपके ही स्नेह, प्रेम, माधुर्य, दया, क्षमा, कर्त्तव्य, ज्ञान के प्रसून, जो सत्संग, प्रवचन व बातों के समय झरते रहे, उन्हें संग्रह करके एक माला का निर्माण किया है। इसमें मेरा तो कुछ भी नहीं है, जो कुछ है सब आपका ही है, इसे आपके श्री चरणों में रखने में संकोच भी है, खुशी भी है।

श्री सुशीला के शब्दों में–

ओ संन्यासी महान् विभूति।
युग-युग तक तुम इस शक्ति का संचार करते रहो।
मन्वन्तर तुम्हारी सत्यनिष्ठा का उपहार लेते रहें।
दधीचि की कोमल अस्थियों से बने हुए
हे असुर संहारी कठोर वज्र।
हमारे असुरों का भी मूलोच्छेदन करते रहना ॥

षष्ठ खण्ड

महर्षि की जीवन-ज्योति के अद्‌भुत दर्शन



हे गंगा दर्शन के देदीप्यमान् आदित्य देव!

सतत् अमर एवं शाश्वत ज्योति के दर्शन के लिए अपने आराध्य के चिरंतन आलोक के सहारे असीम तत्त्व की ओर अग्रसर होते श्री चरणों में नमन। देव तुम्हारे ही शब्दों में –

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्त्र अमृत की धारा ।
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा ॥
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा ।
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा ॥

षष्ठ खण्ड

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता ...गोस्वामी तुलसीदासजी के ये शब्द हम पर ही खरे उतरते हैं। प्रभु के भक्त हर युग में इस धरा पर आते हैं, और कुछ बता जाते हैं, सिखा जाते हैं, दिखा जाते हैं।

अध्यात्म-रत्न, सन्त-जीवन पर कुछ लिखने की आज्ञा, इच्छा व आदेश तो था ही, प्रेरणा व आशीष भी गुरुदेव का ही था। पूज्य गुरुदेव जो कहते हैं, वह होता ही है, इसका अनुभव हमें पग-पग में होता है। गुरुदेव के अभिन्न सखा-बन्धु-शिष्य, सत्यव्रत जी, जो इस संसार-सागर में मेरे संरक्षक, पथ-प्रदर्शक व मार्ग-बन्धु थे, उनके ही सहयोग से घर-परिवार व समाज-रूपी समुद्र को सरलता से पार कर योग-सागर में कदम बढ़ा सकी।

शुभ कर्मों का फल कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, जो हम संत-चरणों में पहुँच सके। श्री स्वामी शिवानन्द जी का आशीर्वाद मिला और स्वामी सत्यानन्द जी के चरणों की छाया मिली। विचार आने लगते हैं तो सोचती ही रह जाती हूँ। 1956 से अभी तक के चित्र हमेशा आँखों के सामने रहते हैं। शुरू से ही सत्यव्रत जी को पुस्तक-पत्रिकाओं का शौक था। हमेशा लेते व मँगाते, पढ़ते व सबको देते रहते थे, हमेशा अलमारी भरी रहती थी। 1956 से स्वामी शिवानन्द जी की सभी पुस्तकें आ गईं। पुस्तकें व सभी पत्रिकाएँ हर महीने कई प्रतियों में आने लगी थीं। उन्हें संभालना व देने-लेने का काम हमारा रहता था।

1956 के बाद से सत्यव्रत जी के आदेश से हमने एक अलमारी अलग रखनी शुरू की। स्वामी शिवानन्द जी की हिन्दी पुस्तकें, अभिनन्दन ग्रन्थ, स्वामी सत्यानन्द जी की पुस्तकें व उनसे सम्बन्धित पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ, उनके लेखों और प्रवचनों की फाइल, डायरी व पत्र उसमें रखने लगी। सन्

1971 में आश्रम बनने पर सत्यव्रत जी ने अपनी लाइब्रेरी आश्रम पहुँचा दी। मेरा छोटा-सा पुस्तकालय हमारे साथ रहा। सत्संग-प्रवचन के बाद हम दोनों श्री स्वामीजी के साथ बैठे रहते, कुछ चर्चा चलती ही रहती थी। कभी वे अपनी बातें बताते, तो सत्यव्रत जी आशुलिपि में लिख लेते थे। बाद में उसे लिख कर फाइल में रख लेती थी।

श्री स्वामीजी की पुस्तकें छपने लगीं, तो उनकी प्रेरणा से हमने भी कुछ लिखा। सत्यव्रत जी की विशेष इच्छा थी, अद्भुत संत, गुरुदेव का जीवन-चरित्र लिखा जाए। हमेशा ऐसा लिखना, इस तरह लिखना, पुस्तक की रूप-रेखा समझाते रहते थे। श्री स्वामीजी कहते, 'क्यों लिखना बेकार की बातें।' तो सत्यव्रत जी कहते, 'महाराज जी, रथ के चक्के तो बना ही लिए हैं, चक्के चलेंगे तो आड़ी-टेढ़ी लाइन पड़ेगी ही। आपकी कृपा-दृष्टि रहे, हम शार्टहैण्ड वाला मतलब निकाल लेंगे।' श्री स्वामीजी कहते, 'अच्छा जी, जरूर लिखो, देखेंगे क्या लिखते हो!'

1969 के बाद श्री स्वामीजी की स्थिति, साधना व विचार के बारे में सत्यव्रत जी बहुत कुछ कहते थे, उस समय हम समझ नहीं पाते थे। अब उन बातों की सच्चाई स्पष्ट देख रही हूँ। वे यह भी कहते, 'आश्रम के सामने जो खण्डहर है, 'कर्ण चौरा', उसके लिए भी श्री स्वामीजी के मन में विलक्षण योजना है, उनकी इच्छा जरूर पूरी होगी। तब एक नया व अमिट इतिहास बनेगा।' कभी कहते, मुझे श्री स्वामीजी के 'जीवन-दर्शन' व उनकी योजना की झलक बिजली-सी कौंध जाती है, और मैं सोचने लगता हूँ, क्या मैं त्रेता युग के ऋषियों की बातें सोच रहा हूँ! पर यह भी सच ही है कि उन्हीं तपोमूर्ति महर्षियों के चरण-चिह्नों पर हमारे गुरुदेव चल रहे हैं, चलते ही रहेंगे। कहते, 'श्री स्वामीजी की स्थिति दिनों-दिन उच्च होती जा रही है। लोग समझ नहीं पाते हैं, सब स्वार्थ साधना चाहते हैं। मैं तो नहीं रहूँगा, पर मेरी शुभेच्छा व सहयोग हमेशा तुम्हें मिलता रहेगा। तुम्हें सब कुछ देखना, समझना व लिखना भी है। तुम्हें जरूर लिखना है।' मैं सुनती रहती, हँसते रहती।

सत्यव्रत जी के नहीं रहने पर लगा कि अब मुझसे कुछ नहीं होगा। श्री स्वामीजी ने कहा, 'तुम्हें अवधूत बन कर सब काम संभालना है, सत्यव्रत जी के अधूरे कार्यों को पूरा करना है।' श्री स्वामीजी के असीम आशीष व आदेश से सब काम यथावत् चलने लगा, पर लिखना असंभव ही लगता। समय

आगे बढ़ता गया, प्रेरणा मिलती रही, अब आगे लिखने के बारे में सोचती तो सोचती ही रह जाती। अमेरिका से स्वामी निरंजन का पत्र मिला, 'श्री स्वामीजी की जीवनी आप को लिखनी है।' लिखने के बारे में सोचती रहती, कहीं कुछ मिलता ही नहीं। जीवन की संध्या भी चेतावनी देने लगी। लगता आत्मा की आवाज भी सचेत कर रही है। बार-बार मानो कह रही है–

बहुत गई थोड़ी रही, लिखने में जल्दी कर ।
जो कुछ संचित किया, गीता सम जीवन भर ॥

श्री स्वामीजी के लिए संगृहीत फाइल, नोट-बुक, पुस्तकों और पत्रिकाओं का अध्ययन तो चलता ही रहता था, अब उन्हें सामने रख त्राटक शुरू किया। विचारों का प्रवाह थमने लगा, सब संगृहीत पुष्पों को गुलदस्ते सा सुरुचि पूर्ण सजाने की छवि स्पष्ट होने लगी, लेखनी चलने लगी। इस युग के शुकदेव मुनि, योग गंगा के भागीरथ, महान् संत के विषय में अपने क्षमतानुसार कुछ तो लिख ही डाला। पर आगे न लिखा जाए, तो पुस्तक कैसे पूरी होगी, और आगे लिखना अति दुस्तर है। अभी तक जो भी लिख पायी हूँ, अपने पिता तुल्य पूज्य, वंदनीय, गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की बातें लिखी हैं, जिसके लिए मुझे आदेश व आशीष भी प्राप्त है। अब आगे लिखना तो 'गंगादर्शन के महा-तापस' के लिए होगा, जो 'सिन्धु होकर बिन्दु बन गये हैं'। बहुत सोचकर यही समझ सकी हूँ कि गुरुदेव सिन्धु तो हैं ही, बिन्दु बन कर साधना-तपस्या में तपकर वे जन्म-जन्म के लिए सिन्धु बन जायेंगे। यही उनकी उत्कट कामना है, प्रभु कृपा से वे पूर्ण सफल होंगे।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने आश्रम व गुरु-पद से अपने को 1983 में मुक्त कर ही लिया था। गंगादर्शन में व बाहर भी समय-समय पर सत्संग-प्रवचन चलता रहता था। उनके चरणों की छाया में गंगादर्शन आश्रम निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हुआ और भविष्य में होता ही रहेगा।

गंगादर्शन से प्रस्थान

जुलाई 1987 में स्वामी शिवानन्द जी की शताब्दी-गुरु-पूर्णिमा उत्साह से मनाने के बाद, सत्संग-प्रवचन में श्री स्वामीजी अपने प्रस्थान व तीर्थयात्रा का आभास देने लगे थे। 1988 की गुरु पूर्णिमा में 3 दिवसीय सत्संग का संचालन श्री स्वामीजी ने स्वयं किया। प्रात: से रात्रि तक मंच पर रहते, सौन्दर्य लहरी,

उपनिषद्, गीता, रामायण, जप-ध्यान, नाद-योग, भजन-कीर्तन, पूरी कक्षायें लेते। सबको चेतावनी भी देते कि मेरा यह अंतिम सत्संग है।

गुरु पूर्णिमा के 10 दिन बाद, रविवार, 8-8-88 को रामायण सीरियल के काफी देर पहले सबको प्रोग्राम देखने का आदेश दिया था। स्वामी निरंजन के विशेष अनुरोध पर मात्र 108 रुपये ही स्वीकार किये थे। स्वामी निरंजन ने समझा, श्री स्वामीजी देव-दर्शन, तीर्थ-यात्रा के बाद अवश्य आयेंगे। *'मेरे मन कछु और है, कर्त्ता के कछु और'*। श्री स्वामीजी ने अपने 'श्री निवास' से प्रस्थान किया। उस समय सब आश्रमवासी 'नयन सुख' में मग्न थे। श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन को 'मन ही मन' सब कुछ सौंप कर, गंगादर्शन को त्याग कर लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाया।

उनके ही शब्दों में– *मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा'*। जैसे त्यागी वैरागी क्षेत्रज्ञ संन्यासी के लिए मानो प्रकृति माता स्वागत कर रही हों– *'कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा'।*

गंगादर्शन के 'महा तपस्वी' सांसारिक सर्वस्व त्याग कर, अपना पुराना 'निर्मोही' नाम सार्थक करके, अपने वायदेनुसार उनके चरणों में नमन करने का संकल्प लेकर देवी-देवताओं के निवास की ओर चले। सर्वप्रथम काशी विश्वनाथ गये, फिर विन्ध्यवासिनी, द्वारकानाथ, वैष्णोदेवी, गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ धाम, हरिद्वार, ऋषिकेश के बाद अक्टूबर में बाबा बैजनाथ के दर्शन के लिए देवघर आये। समाचार मिलते ही स्वामी निरंजन देवघर जाकर श्री स्वामीजी से मिले।

स्वामी निरंजन ने गंगादर्शन आने के लिए अनुरोध किया, तो श्री स्वामीजी ने कहा, 'गंगादर्शन व गुरुपन से मुझे कोई आसक्ति नहीं है। मेरा परिव्राजक जीवन शुरू है। गुरु आश्रम से परिव्राजक होकर आठ वर्ष तक देश के कोने-कोने में भिक्षुक के रूप में घूमा था। अब मैं राजसी भिक्षुक होकर प्रभु के हर दरवाजे पर जाऊँगा। अगर कभी गंगादर्शन आना होगा तो एक साधक के रूप में आऊँगा।'

उन्होंने आगे कहा, 'निरंजन, मैं व मेरा आशीष हमेशा तुम्हारे साथ है। और पूर्ण विश्वास है कि तुम अपना उत्तरदायित्व संभालने की क्षमता रखते हो। कोई रहे, कोई जाए, चिन्ता नहीं करना, इस मतलबी दुनिया में तुम्हें अपना काम सच्चाई से करना है। समय पर ही सब की परख होती है। मैंने तो तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकल्प तुम्हारे जन्म से चार वर्ष पूर्व, गंगोत्री में माँ गंगा के साक्षात् दर्शन व आशीष प्राप्त करके लिया था, उसे पूरा

करके गंगोत्री जाकर माँ को प्रणाम करके आया हूँ। अगले वर्ष तुम्हें ले जाकर माँ के दर्शन व प्रणाम करूँगा।'

उनके पास चार घण्टे रह कर शाम को स्वामी निरंजन देवघर से वापस आए। दूसरे दिन सुबह उन्होंने सभी आश्रमवासियों को श्री स्वामीजी का समाचार बतलाया। उनकी बातें सुन कर सभी व्यथित हो गये। स्वामी निरंजन ने कहा, श्री स्वामीजी की जैसी इच्छा हो, हम लोगों को आदेश पालन करना है। संन्यास परम्परा में पढ़ा है कि अनासक्ति एवं वैराग्य संन्यास के वास्तविक गुण हैं, और स्वामी शिवानन्द जी ने भी कहा था, 'यही वह गुण है, जो स्वामी सत्यानन्द में हम पूर्ण प्रकाशित पाते हैं।'

स्वामी निरंजन के कुशल निर्देशन में सभी कार्य व प्रशिक्षण सत्र यथा-योग्य चलने लगे। श्री स्वामीजी के शुभाशीष आश्रम के कण-कण में व्याप्त हैं। आश्रम आने वाले विशेष अनुभूति लेकर ही जाते हैं।

जनवरी 1989 में कुंभ-मेला-पर्व पर श्री स्वामीजी इलाहाबाद में थे। आदेशानुसार स्वामी निरंजन 12 जनवरी को इलाहाबाद गये। 13 तारीख को श्री स्वामीजी ने स्वामी सत्संगी व स्वामी निरंजन को कुंभ नगर घुमाया, संत-महात्माओं से मिलाया। 14 तारीख की प्रात: (13 की रात में) श्री स्वामीजी इन लोगों को लेकर 10 किलोमीटर पैदल चल कर कुम्भ पर्व, मकर संक्रांति की पुण्य बेला में 2.30 बजे संगम में स्नान करके पैदल ही निवास स्थान पर गए। सत्संग-आशीर्वाद व फरवरी में आने का आदेश लेकर, स्वामी निरंजन मुंगेर आए।

स्वामी निरंजन श्री स्वामीजी के आदेशानुसार 4 फरवरी को इलाहाबाद गये। 6 तारीख को अमावस्या कुम्भ पर्व की पुण्य बेला में 3 बजे प्रात: संगम में स्नान किया। अखाड़ों में गये, संतों से मिले, सत्संग किया, चौथे दिन मुंगेर आये। आश्रम के 'रजत जयन्ती' के काम में लगे।

19 जनवरी 1964 को बसन्त पंचमी के दिन श्री स्वामीजी ने 'बिहार योग विद्यालय' का उद्घाटन करके दीप प्रज्वलित किया था। 10 फरवरी 1989, बसन्त पंचमी को 25 वर्ष पूरे होने पर, 'बिहार योग विद्यालय आश्रम व अखण्ड ज्योति' की रजत जयन्ती मनायी गयी। भजन, कीर्तन, सत्संग, प्रवचन व नारायण भोजन हुआ। साथ ही 11 से 13 तारीख तक देश-विदेश से आये डॉक्टरों का 3 दिन का सम्मेलन भी हुआ। दमा रोग पर चर्चायें हुईं, रिसर्च शुरू हुआ। योजनाएँ बनीं, काम शुरू हुआ, कई जगह शिविर लगाने की योजनाएँ बनीं।

श्री स्वामीजी के आदेशानुसार, स्वामी निरंजन 28 मई को दिल्ली पहुँचे। वहाँ से श्री स्वामीजी के साथ कार से गंगोत्री गये। 1956 में हम लोग (सत्यव्रत जी व बसन्ती) श्री स्वामीजी के साथ गंगोत्री गये थे। धरासू से 75 मील पैदल चल कर गंगोत्री गये थे। अब तो सड़कें बन गईं हैं, बसें चलने लगी हैं। श्री स्वामीजी स्वामी निरंजन को पुरानी बातें बताते रहे, कहाँ ठहरे थे, कहाँ चढ़ाई में परेशानी हुई थी, सब बतलाते-दिखाते रहे। अपने प्रिय सखा सत्यव्रत जी को याद किया, उनकी बातें बतलाते रहे।

गंगोत्री में जिस जगह पर माँ गंगा के दर्शन हुए, देव शक्ति से आशीष मिला, कुछ आदेश मिला, वह जगह दिखायी, प्रार्थना की, अपने उत्तराधिकारी को आशीर्वाद दिलाया। उन्होंने कहा, 'निरंजन तुम्हारी सही जन्मभूमि तो यही है।' (शायद हिमालय की गुफा में ध्यानस्थ किसी योगी और श्री स्वामीजी के विचार यहीं पर टकराए होंगे। आत्मा की आवाज, विचार-प्रवाह यहीं पर मिले हों। विधि के विधान के अनुसार जन्म समय पर हुआ होगा।) नदी, पहाड़, पर्वत दिखा कर, वहाँ जो महात्मा रहते हैं, उनसे मिला कर, आशीर्वाद का शुभ कार्य पूरा करके, तीसरे दिन स्वामी निरंजन को वापस भेज दिया और श्री स्वामीजी ने वहाँ पर कुछ दिन रह कर आगे की यात्रा शुरू की।

स्वामी निरंजन के विशेष अनुरोध पर, श्री स्वामीजी ने अपनी यात्रा का समाचार 'योग विद्या' के लिए लिखकर भेजना शुरू किया। सोचती हूँ, उनकी यात्रा का समाचार पूरा ही इस पुस्तक में दे दिया जाए तो अति उत्तम रहेगा। अब तो उन महा-ऋषि के लिए लिखना सूर्य के प्रचण्ड तेज के सामने छोटी-सा दीपक दिखाने जैसा ही होगा।

श्री स्वामीजी के साथ कुछ तीर्थ यात्राओं में रही एक संन्यासिनी ने एक बार बताया था, "श्री स्वामीजी तो सर्व ब्रह्ममय हैं। उन्होंने गुरु आश्रम में साधना की, सेवा की, कर्म योग किया। दिन-रात काम, न आराम, न विश्राम। तभी तो सर्व-समर्थ हुए। उन्होंने पारिवारिक जीवन में भी कितनी परेशानियाँ उठाईं। उनके लिए 'निन्दा-स्तुति' बराबर ही है। चाहे कोई तारीफ करे या अपमान करे, वे तो दोनों को समान समझते हैं। आश्रम बनने के बाद भी समस्या रहती ही थी, फिर धीरे-धीरे साधन जुटते गये, कदम बढ़ता गया।

जब गंगा दर्शन बना, काम बढ़ता गया, सुविधा-साधन भी उपलब्ध होते गये। यात्रा के लिए ट्रेन में विशेष बोगी लगने लगी, हवाई जहाज से यात्रा व सर्व-साधन-युक्त अपनी कार 'गरुड़' व 'पुष्पक' से पूरे भारत की

यात्रा करने लगे। इन्द्रलोक सा 'श्री निवास' उन्होंने सहज भाव से छोड़ दिया। ट्रेन के दूसरे दर्जे में यात्रा की, बस से यात्रा की। कितनी भीड़ रहती है बसों में, दम घुटने लगता है। पैदल भी चलते थे, पैरों में छाले आ गए थे। कहाँ तो 'सर्व सुविधा युक्त' होटल में ठहरते ... अब भीड़ भरी धर्मशाला में कहीं भी रह लेते। एक जगह गाँव से मीलों दूर एक कुआँ, जो गहरा भी बहुत था, उससे पानी सींच रहे थे, फिर बच्चों को व माताओं को भर कर देने लगे, उनके हाथों में छाले आ गए थे। सड़क के किनारे कहीं भी आराम कर लेते थे। श्री स्वामीजी तो 'हर हाल में अभ्यस्त सच्चिदानन्द ही हैं', पर मेरा मन अभी भी, याद करने पर ... " और वह विह्वल हो उठी, आगे बोल नहीं सकी।

मेरा मन भी तड़प उठा। मैं उन्हें चार दशकों से देखती आ रही हूँ। समय तो आगे बढ़ता जाता है। उसे न रुकना है, न पीछे देखना है। श्री स्वामीजी भी समय के साथ चल रहे हैं। प्रभु राम, श्री कृष्ण, बुद्ध, महावीर और महान् तपस्वी ऋषि-मुनियों के चरण चिह्नों पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। हमने भी उन्हीं महान् तपस्वी-महर्षि की बातें लिखने का प्रयास किया है।

विधि का विधान अद्भुत है। माता-पिता मेरे भविष्य से अनजान नहीं थे, तभी तो उन्होंने इस तरह की शिक्षा-दीक्षा दी कि हम आँधी-तूफान में भी कर्त्तव्य-पथ से नहीं हिले। सर्व-राज्य-सुख-सम्पन्न हो कर भी भौतिकता में नहीं बहे। 1956 जून में श्री स्वामीजी आये तब पिताजी ने बहुत ही प्रसन्नता व संतोष से कहा, 'बेटा, अब तेरे सच्चे पिता तुझे मिल गये, मैं निश्चिन्त हो गया।' मानो इन्तजार ही कर रहे थे। ये देववाणी से शब्द वे बार-बार कहते रहे, और बहुत ही शान्ति व प्रसन्नता से 4 महीने बाद ही अक्टूबर की 2 तारीख को शरीर त्यागा। विधि का विधान ऐसा ही होता होगा। 'ऊपर से निर्मल दिखे, घाव करे गंभीर।'

हमने अपने दिव्य पिता के चरणों में रहकर जो भी देखा, समझा, सीखा व पाया, वह दुनिया वालों के सामने है। श्री स्वामीजी से क्षमा प्रार्थना करते हुए, सुधि-पाठकों से अनुरोध है कि इसे सिर्फ पढ़ें ही नहीं, पढ़कर समझने व जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। मंगलमय प्रभु एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के मंगल आशीष के साथ आगे का विवरण श्री स्वामीजी की 'मेरी यात्रा' और 'स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कलम से' पढ़िये ...

जीवन दर्पण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कलम से–

श्री स्वामीजी ने मुझे सन् 1983 में विदेश से वापस बुलाया था। 19 जनवरी को जैसे ही मैं मुंगेर पहुँचा, वैसे ही श्री स्वामीजी ने मुझसे कहा, 'मैंने तुम्हें यहाँ इसलिए बुलाया है कि तुम बिहार योग विद्यालय तथा मेरे सभी कार्यों का संचालन स्वतंत्र रूप से मेरे उत्तराधिकारी के रूप में करो। मेरा कार्य अब यहाँ समाप्त हो गया है और भविष्य मुझे बुला रहा है। मुझे जाना है।'

उनके शब्द सुनकर मेरी आँखें भर आयीं, क्योंकि मैं श्री स्वामीजी को छोड़ना नहीं चाहता था, लेकिन यह भी समझ में आ रहा था कि उनका लक्ष्य महान् और बहुत व्यापक है। वे स्वयं भी अपनी विश्व-व्यापकता को समझें, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम भी उनके शारीरिक स्वरूप को छोड़ें।

किसी प्रकार मैंने उनसे यह अनुरोध किया कि वे मुंगेर में अभी कुछ समय और रहें, ताकि मुझे उनका मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन प्राप्त हो सके, क्योंकि मैं बचपन से ही उनसे सदैव दूर ही रहा।

मेरे इस अनुरोध को उन्होंने स्वीकार किया और जैसा कि आप जानते हैं, वे मुंगेर में सन् 1987 तक रहे। जैसे ही 1988 आया, वे पुनः अपने जाने के विषय में अपने सत्संग में सामूहिक रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से इसकी चर्चा करने लगे। उन्होंने तो प्रारंभ में ही कहा था कि मेरा जाना अकस्मात् होगा। मैं उसी तरह जाऊँगा, जिस तरह आया था–एक झोला लेकर।

अधिकतर लोग उनके इस कथन पर विश्वास नहीं कर सके और हममें से भी अधिकतर शिष्य यही प्रार्थना करते थे कि यह मात्र उनका एक विचार बन कर ही रह जाये तो अच्छा हो। किन्तु श्री स्वामीजी अपनी बात के पक्के हैं। 8 अगस्त को उन्होंने बिहार योग विद्यालय, मुंगेर तथा वह सब जो उन्होंने पिछले 20 वर्षों में स्थापित किया था, त्याग कर विदाई ली।

उस समय से अब तक हमें उनके ये छोटे-छोटे से पत्र मिलते रहे हैं, जिसमें उनके अनुभव लिखे हुए हैं। ये एक दर्पण की भाँति हैं, जिनमें हम उनके वर्तमान जीवन की झलक देखते हैं।

श्री स्वामीजी द्वारा भेजे गए अपनी यात्रा के विवरणों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे अब अपने आपको पूर्ण रूप से ईश्वरीय इच्छा को समर्पित कर रहे हैं। पहले भी उनका जीवन एक भाव की अभिव्यक्ति था, किन्तु अब

उनका समर्पण अत्यन्त गहन है। अगर ईश्वरीय इच्छा हो तो वे भोजन तथा वस्त्रों का भी त्याग कर देंगे।

वे किसी से मिलते नहीं हैं तथा दिन में एक बार प्रसाद रूप में अल्पाहार लेते हैं। वे अपना भोजन स्वयं पकाते हैं। जहाँ स्थान मिल जाता है, वहीं रह जाते हैं तथा सतत् नाम-स्मरण में लीन रहते हैं।

अवश्य ही यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जाने के पश्चात् चार बार मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। पहला बैजनाथ धाम में, जहाँ पर उन्होंने स्पष्ट रूप से यह साबित किया था कि वे अब एक नये मार्ग पर चल रहे हैं और उनका गुरु के चोले में मुंगेर वापस आना संभव नहीं है। दूसरी बार कुंभ मेले में, जहाँ पर उन्होंने परमहंस नागा के रूप में जीवन व्यतीत करने की चर्चा की, क्योंकि यह दीक्षा उन्हें स्वामी शिवानन्द जी से प्राप्त हुई थी। तीसरी बार मैं उनसे गंगोत्री में मिला, जहाँ वे अपनी ही आन्तरिकता में खोये हुए थे। यहाँ उन्होंने बतलाया कि अपनी पिछली गंगोत्री यात्रा, 1956 में मेरे जन्म से 4 वर्ष पूर्व मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकल्प लिया था। चौथी और अंतिम बार मिट्टी की छोटी-सी कुटिया में उनसे मिला, जहाँ बिना उनके कहे मुझे मालूम पड़ गया कि यह परमहंस अपने पिंजरे से निकल गया है। यह परिवर्तन अविश्वसनीय है, किन्तु यह अत्यन्त स्वाभाविक और उसी दिव्यता का अंश है।

यह थोड़ा विचित्र भी लगता है। हम किसी ऐसे साधु, संत या महात्मा के बारे में नहीं जानते, जिन्होंने ऐसा कदम उठाया है। शास्त्रों में इसके कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं, जैसे, शुकदेव, दत्तात्रेय, महावीर, आदिगुरु शंकराचार्य तथा अन्य परमहंस महात्मा।

मेरा हमेशा यही प्रयास रहा है कि मैं समस्त संस्थागत कार्यों को पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ संभालूँ, ताकि श्री स्वामीजी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वतंत्र हो सकें, जिसके लिए उनका अवतरण हुआ है। मैं इस बात के प्रति सजग रहता हूँ कि हमारी भावुकता या व्यक्तिगत इच्छाओं के कारण श्री स्वामीजी के पथ में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। उनका भविष्य वह है जो ब्रह्माण्डीय व्यापक कल्पना को एक जीवन्त रूप दे सकता है।

हमें सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि हमसे जहाँ तक हो सके, यथाशक्ति उनका साथ दें, क्योंकि इसी प्रकार के सम्बन्ध से हम अपने को आध्यात्मिक रूप से उन्नत तथा जाग्रत कर सकते हैं। इसीलिए सभी गृहस्थ शिष्यों, भक्तों,

मित्रों, कर्म-संन्यासियों, संन्यासियों और शुभाकांक्षियों से मेरा अनुरोध है कि जब तक श्री स्वामीजी उन्हें बुलायें नहीं, तब तक उनके पास जाने का प्रयास न करें। सभी संन्यासियों से मैं कहता हूँ कि अपने आपको भविष्य के कार्य के लिए तैयार करो और जो आदर्श श्री स्वामीजी ने अपने जीवन में स्थापित किया है, उसे अपनाओ।

श्री स्वामीजी के अंतिम यात्रा पत्र में, उन्हीं के शब्दों में यह ज्ञान हो जाना चाहिए कि वे किस पथ पर चल रहे हैं।

मेरी यात्रा 1

काशी विश्वनाथ ने मुझे आशीर्वाद दिया।
विन्ध्यवासिनी ने मुझे वचन दिया।
और, संकट मोचन से मैंने प्रार्थना की,
अपने लिए नहीं और न ही बिहार योग विद्यालय के लिए,
परन्तु किसी के लिए, कहीं पर, जो जीवन के झंझावातों में उलझा हुआ है।
संगम ने मुझे नयी शक्ति दी।
पशुपतिनाथ की हवा में नियंत्रण और अनुशासन था।
वैष्णो देवी ने अनुप्राणित किया,
और जब मैंने हरिद्वार के ब्रह्म-कुण्ड में स्नान किया तो सारे शरीर ने
पुराणों में वर्णित अमृत की मिठास का अनुभव किया।
यमुनोत्री में यमुना देवी ने मुझसे वार्तालाप किया।
गंगोत्री में गंगा ने एक कार्य के लिए प्रेरित किया।
संभवत: एक असंभव कार्य, परन्तु यदि वह चाहें तो कुछ भी असंभव नहीं।
केदारनाथ, ओह! जहाँ मैं समय, दिशा, वह सब कुछ जो अनुभवगम्य है
और अपने आपको भी भूल गया।
बद्री-विशाल जीवन की सारी सुखद अनुभूतियों का चरम बिन्दु।
और अंत में अवर्णनीय शिवानन्दाश्रम।
क्या पुन: मैं अतीत में जी रहा था?
मैंने स्वामीजी की अनुपस्थिति अनुभव नहीं की और उनसे कहा –
आश्रम आध्यात्मिक जीवन का पावर हाउस है।
इसी के साथ मैंने अपने परिव्रजन का प्रथम चरण पूरा किया।

श्री स्वामीजी के ही शब्दों में–

वस्त्रहीन शरीर और खाली हाथों के साथ
घूमने दो मुझे गंगा के पावन तट पर
मेरे होठों में शिव का नाम,
मेरे मन में देवी दुर्गा का ध्यान
मुझे ज्ञान भी न हो कि मैं हूँ
और जब बुलावा आए तो मुझे
ज्ञात भी न हो कि जा रहा हूँ।

दिसम्बर 1988

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कलम से–

दौड़-दौड़कर कुछ लोग प्राप्ति और मार्गदर्शन की आशा से जाते हैं धर्म, गुरु और आध्यात्मिक संस्थाओं की ओर। इससे उनकी भावनाओं की पुष्टि होती है और आत्म-संतोष प्राप्त होता है। धरती की समस्या न सुलझे, परन्तु ज्ञान की गहराई में वे गोते लगाने लगते हैं। ज्ञान से सब प्राप्त है, परन्तु व्यवहार का तराजू हल्का है।

श्री स्वामीजी से साक्षात्कार करने पर लगता है कि ये एक ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ करके दिखायेंगे। उनके व्यक्तित्व में एक ऐसी धारा प्रवाहित होती है जिसमें ज्ञान और कर्म का समन्वय है। ब्रह्मसूत्र का 'ब्रह्म-ज्ञान' और गीता का 'निष्काम कर्म योग', दोनों उनके जीवन में एकाकार हो गये हैं। प्रबुद्धता और कर्म कौशल, दोनों का साथ रहना अद्वितीय प्रतिभा वालों में ही संभव है।

त्याग, तपस्या, दान और बलिदान होते हैं, किन्तु भविष्य को देखकर नहीं। प्राय: स्वान्त: सुखाय ही उसका कारण होता है। एक कार्य होता है संसार को गति देने के लिए तथा दूसरा होता है आत्म-संतोष के लिए, और दोनों से ही जगत् का विकास होता है।

हम सब आत्म-संतोष के लिए कर्म करने वालों में गिने जाते हैं। संसार को गति और संचालन के लिए एक ऐसे नायक की आवश्यकता होती है जिसमें क्रोध हो और क्षमा तथा शान्ति भी, जिसमें परशुराम और राम दोनों मूर्तिमान हों, जिसमें कृष्ण और युधिष्ठिर की-सी निष्ठा और प्रज्ञा मूर्तिभूत हों, जिसमें सरलता के साथ कुटिलता भी हो और जो व्यावहारिक हो तथा दूरदर्शी भी।

केवल सर्वतोमुखी, अनोखी और व्यावहारिक प्रतिभा वाला नायक ही बिखरी शक्तियों को बटोर कर एक निश्चित भविष्य में ढाल सकता है।

श्री स्वामीजी से साक्षात्कार करने या उनके दर्शन करने से प्रत्येक को यही आभास होता है कि वे इसी प्रकार के एक नायक हैं। अभी वे भ्रमण और सिद्ध तीर्थों की यात्रा के नायक हैं। उनका भ्रमण निरुद्देश्य नहीं है। वे संसार के नागरिकों के मन व बुद्धि में एक नये मंत्र का उद्घोष कर रहे हैं। आपको तैयार रहना है।

मेरी यात्रा 2

मैंने वासुकीनाथ में एक छायादार वृक्ष के नीचे विश्राम किया
तो मुझे फन फैलाये हुए एक सर्प का दर्शन हुआ।
उसने मेरे गले में लिपटकर स्पष्ट निर्देश दिया– चक्रवर्ती बनो।
अत: मुझे तीर्थों का चक्रम् जारी रखना पड़ेगा।
मैंने कामाख्या के पुनीत आध्यात्मिक वातावरण में नौ दिनों का
नवरात्रि अनुष्ठान किया।
दशमी को मैंने देवीरूपी कन्या की पूजा की
और परम्परा के अनुसार उनका पाद-प्रक्षालन किया।
जैसे बालक भोलेपन और सरलता से माँ को पुकारता है,
वैसा ही अनुभव मुझे हुआ। उसका प्रत्युत्तर भी मिला।
कालीघाट, कलकत्ता में मुझे काली के दर्शन हुए,
जो काल और प्रारब्ध की संहारक हैं।
जगन्नाथपुरी में पूर्ण आनन्द।
मैंने मंदिर के अहाते में छायादार वृक्षों के नीचे विश्राम किया
और तुरंत मैं पारलौकिक जगत् में चला गया।
मेरी आंतरिक कामना है कि एक बार पुन: उसी प्रांगण में जाऊँ
जहाँ श्रद्धा रोम-रोम से प्रस्फुटित होकर
एक जीवन्त अनुभव का रूप ले लेती है।
यहाँ मैं स्वामी नित्यबोध, महात्मा और अन्य ऑस्ट्रेलिया वासियों से मिला।
और मेरे परिव्रजन का दूसरा चरण समाप्त हुआ।

1/11/88, चित्रकूट

जनवरी 1989

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कलम से –

इस वर्ष मुझे इलाहाबाद के कुंभ मेले में दो बार श्री स्वामीजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

प्रथम अवसर 14 जनवरी 1989, मकर संक्रांति का था। 13 जनवरी को सुबह स्वयं श्री स्वामीजी ने कुंभ नगर घुमाया और हम लोगों ने संगम एवं इस पुनीत अवसर पर एकत्र हुए अनेक साधु-महात्माओं के दर्शन किये। 14 जनवरी को रात्रि-जागरण के पश्चात् प्रात: तीन बजे संगम के बर्फ जैसे शीतल जल में प्रथम स्नान किया। इसके पश्चात् श्री स्वामीजी इलाहाबाद से अनिश्चित गन्तव्यों की यात्रा हेतु निकल पड़े।

श्री स्वामीजी से भेंट का द्वितीय अवसर मौनी अमावस्या का पुनीत दिन था, जिसके लिए मैंने उनसे पहले से ही अनुमति ले ली थी।

कुंभ मेले में जिन साधुओं के दर्शन हुए, उनमें से कुछ का परिचय इस प्रकार है–निर्वाणी अखाड़े के महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विश्वदेवानन्द; जूना अखाड़े के महान् नागा साधु श्री गोदावरी गिरि; पायलट बाबा; कनखल, हरिद्वार की स्वामी संतोषी माता; उदासीन सम्प्रदाय अमरकंटक के महाराज; दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश के स्वामी चिदानन्द; केशवानन्द योग संस्थान के प्रमुख शोधकर्त्ता डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी तथा अन्य कई साधु-संत। हमारी कुंभ यात्रा का मुख्य आकर्षण था–देवराहा बाबा के दर्शन।

6 फरवरी को प्रात: हम सबने दूसरी बार संगम में स्नान किया और अपने स्थान वापस लौट आये।

कुंभ यात्रा के अनुभवों ने हमारे मन पर अमिट चिह्न अंकित कर दिये हैं, क्योंकि वहाँ हमने श्रद्धा एवं विश्वास का सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं, बल्कि जीवन्त रूप में अनुभव किया।

मेरी यात्रा 3

खजुराहो (18 से 20 नवम्बर)

भगवान शिव को समर्पित चंदेल वंश की भक्ति का प्रतीक खजुराहो एक विलक्षण अनुभव था। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने आराधना और उपासना को जीवन का एक अविभाज्य अंग मानकर उनका जीवन्त अनुभव किया। उन्होंने न केवल हमारी सभ्यता को जन्म दिया, बल्कि अपना जीवन भी इस

दृश्यमान पदार्थ के पीछे निहित शक्ति और चेतना की खोज में समर्पित किया। वे अपनी महान् शिल्प कृतियों में सृष्टि की एक ऐसी छाप छोड़ गये, जिसमें जीवन को एक अविरल प्रार्थना के रूप में दर्शाया गया। योद्धा, संगीतज्ञ, देव, अप्सरायें, गंधर्व, मनुष्य, मातृ-शक्तियाँ तथा पशुओं की मूर्तियाँ जीवन्त होकर समस्वर एक ऐसे काल के बारे में बतलाती हैं जब केवल यौन-कर्म ही नहीं, बल्कि जीवन का प्रत्येक कर्म ही भगवत्-प्राप्ति का एक साधन था।

चित्रकूट (21 नवम्बर)

यही है वह स्थान जिसके बारे में लिखा गया है–

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर ।
तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक देत रघुवीर ॥

कामदगिरि की छत्रछाया में मैंने उस काल में प्रवेश किया जब श्रीराम के चरणों ने इस धरती को पावन किया था। उस पहाड़ के नीचे जहाँ हजारों लोग परिक्रमा करते हैं, अपने चिन्तन में मैंने झरनों को, वृक्षों को, नदी को श्रीराम के गुणों का गान करते देखा, जहाँ उन्होंने सीता और लक्ष्मण के साथ लीला की थी।

मैहर (22 नवम्बर)

शारदा देवी के मंदिर की लम्बी और चौड़ी चढ़ाई पर अपने पैरों में घाव होने के कारण जब मैं कुछ पल विश्राम के लिये रुकता था, तब सहस्त्रार तक पहुँचने को आकुल हर चक्र पर ठहरती कुण्डलिनी का ख्याल आता था। विद्यादायिनी शारदा का निवास सहस्त्रार में है और इन्हें कलाकारों और गायकों ने अपनी कृतियाँ समर्पित की हैं, उस सृजनात्मक शक्ति को जगाने वाली महाशक्ति को मैं नमन करता हूँ।

अमरकंटक (3 से 7 दिसम्बर)

दीर्घायुओं का वन जिसमें तपस्वियों, ऋषियों व योगियों की शक्ति स्पंदित हो रही थी, जो यहाँ सनातन काल से साधनारत थे। यहाँ की वायु में शान्ति, समन्वयता और संतुलन पाया। नर्मदा में स्नान के समय शिव के श्वास-स्पर्श का अनुभव किया, जिनके शरीर से नर्मदा जन्मी थी।

कपिल धारा में स्नान करके, जहाँ बर्फीली ठण्ढी नर्मदा उन्मुक्त रूप से गिरती है, सोन के उद्गम का एक घूँट पीकर, भृगु कमण्डल की ओर घने जंगलों में चलकर तथा 'माई की बगिया' में विश्राम करके मैं प्रकृति से मिलकर एकाकार हो गया।

प्रत्येक रात्रि को जब मेरा भौतिक शरीर उदासीन संप्रदाय के आश्रम में विश्राम करता था, तब सूक्ष्म शरीर दूर कहीं गौरवान्वित होकर भगवान शिव के साथ चलता रहता था। उनके शरीर पर था–भस्म का लेप, गले में कुंडलित सर्प, हाथों में त्रिशूल व डमरू तथा वे बीहड़ वनों में शान से विचरते थे।

महाकालेश्वर, उज्जैन (11 से 14 दिसम्बर)

जय भोले बाबा, तव शरणम्। जय महाकालेश्वर, तव शरणम् ॥
जय साम्ब सदाशिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा, तव शरणम् ।
जय पारवती रमणा, तव शरणम्।
जय उमा महेश्वर, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥1॥

जय भक्ति विधाता, तव शरणम्,
जय ज्ञान प्रदाता, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥2॥

जय औढरदाता, तव शरणम्।
जय जनसुखदाता, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥3॥

जय अवन्तिनाथा, तव शरणम्।
जय मृत्यंजय शिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥4॥

जय जय यदुनन्दन, तव शरणम्।
जय कंस निकन्दन, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥5॥

जय राधारमणा, तव शरणम्।
जय जन मन हरणा, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥6॥

जय जय रघुनन्दन, तव शरणम्।
जय जानकी जीवन, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥7॥

जय अंजनीनन्दन, तव शरणम्।
जय मारुतनन्दन, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥8॥

जय सोमनाथ शिव, तव शरणम्।
जय मल्लिकार्जुन, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥9॥

जय महाकालेश्वर, तव शरणम्।
जय ममलेश्वर शिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥10॥

जय ओंकारेश्वर, तव शरणम्।
जय महाकालेश्वर, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥11॥

जय वैद्यनाथ शिव, तव शरणम्।
जय भीमेश्वर शिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥12॥

जय रामेश्वर शिव, तव शरणम्।
जय नागेश्वर शिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥13॥

जय महाकालेश्वर, तव शरणम्।
जय विश्वनाथ शिव, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥14॥

जय त्र्यम्बकेश्वर, तव शरणम्।
जय केदारेश्वर, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥15॥

जय घुष्मेश्वर शिव, तव शरणम्।
जय महाकालेश्वर, तव शरणम्। जय भोले बाबा ॥16॥

जय भोले बाबा, तव शरणम्, जय महाकालेश्वर तव शरणम् ॥
जय साम्ब सदाशिव तव शरणम्। जय भोले बाबा तव शरणम् ॥

अनन्त काल से शाश्वत पवित्र उज्जैन नगर में, जिस पर शिव ने विजय प्राप्त की थी, मैंने महाकालेश्वर (शिव के स्वयंभू ज्योतिर्लिंग) पर भस्म-अभिषेक अनुष्ठित किया। यह अनुष्ठान डेढ़ घण्टे तक चला और उस समय वहाँ कुछ विशेष लोग ही उपस्थित थे। शेष दिन मैंने उपवास रखा तथा महाकालेश्वर के सामने मंत्र उच्चारण करते हुए व्यतीत किया। वह तीन फुट का कृष्णवर्णी लिंगम् एक रजतवर्णी योनि पर प्रस्थापित था और उसके चारों ओर नागराज लिपटे थे।

सैकड़ों भक्तों से घिरे हुए इस लिंगम् ने स्वयमेव अपने अंदर की शक्ति प्रक्षेपित करते हुए तथा सम्पूर्ण ज्ञान को मानो चुनौती देते हुए श्रद्धा और भक्ति की कालातीत परम्परा को जीवन्त रूप में सामने प्रस्तुत कर दिया।

काल भैरव, उज्जैन (14 दिसम्बर)

यहाँ मेरे उद्गार थे–आप अब तक अपने उत्कृष्ट और उत्साही भक्तों द्वारा अर्पित मदिरा सेवन करते रहे हैं। अब मैं आपको एक ऐसा नशा अर्पित करता हूँ जो मुझे जन्म-जन्मांतर तक प्रेरित कर चुका है। मेरे पास अर्पण करने के लिए तो यही है।

इसे नम्रतापूर्वक अर्पित करते हुए यही प्रार्थना है कि जीवन की वीरान राहों पर चलते हुए सर्वदा आपका संरक्षण मुझे प्राप्त हो।

ओंकारेश्वर (15 से 16 दिसम्बर)

नर्मदा देवी के किनारों पर ओम् की आकृति के उस पावन द्वीप ओंकारेश्वर में, जहाँ आदिगुरु शंकराचार्य ने अपने गुरु गोविन्दपाद से संन्यास दीक्षा ग्रहण की थी तथा उसके बाद नर्मदा को अपने कमण्डल में समेट लेने का चमत्कार दिखाया था, मेरी श्रद्धा पुन: मानो जीवन्त अनुभव में परिणत हो गई।

अपने हाथ जोड़े मैं उस गुफा में, जहाँ शंकराचार्य रहे थे, खड़ा हुआ तो अंदर से एक आवाज आई–'तुम्हारी क्या कामना है कहो? वह मिलेगा।' उस समय मेरे मन में मैत्रेयी और नचिकेता के उद्गार गूँजने लगे और मैंने संस्कृत में प्रस्फुटित शब्दों में कहा–'दिग्विजय–नहीं, अमरत्व–संभव नहीं, वैभव व समृद्धि–यथेष्ट मिले, मोक्ष–यह मेरे अंदर है। सिर्फ यहाँ अपनी वह प्रतिज्ञा पूरी करने आया हूँ, जो मैंने आपके समक्ष 30 वर्ष पहले की थी और अपना कार्य समाप्त करके यहाँ लौटने का वचन दिया था।'

शंकराचार्य की गुफा से एक गुप्त रास्ते द्वारा मैं गर्भगृह में पहुँचा। लयात्मक रूप से बजती हुई घंटियों, शंखनाद के कोलाहल के बीच जब मैंने ओंकारेश्वर के समक्ष अपना सिर रखा तो स्पष्ट अनुभव हुआ कि यह ज्योतिर्लिंग तो सहस्रार में हमेशा प्रकाशित था।

दतिया (18 से 19 दिसम्बर)

शक्ति का वह पीताम्बरी पीठ, जिसकी छत्रछाया में साधु-संतों ने असीम का साक्षात्कार किया है। मैं इस स्थान पर 30 वर्षों के बाद लौटा था और मुझे पता चला कि पीताम्बरी पीठ के स्वामीजी अपना भौतिक शरीर त्याग चुके हैं, वे मेरे तीसरे तांत्रिक गुरु थे। ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द जी की सेवा के बाद अपने परिव्राजक काल में मैं उनके साथ चार दिनों तक रहा था।

तांत्रिक साधना के प्रचार के प्रति उनका समर्पण मेरे जीवन में हमेशा श्रद्धा से प्रतिष्ठापित रहेगा।

इसके साथ ही मेरे परिव्राजन का तीसरा भाग पूरा हुआ।

अगस्त 1989

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कलम से –

संन्यासी के जीवन में अलग-अलग अनेक स्थितियाँ आती हैं। वह किसी एक स्थान पर आश्रम बनाकर रहता और सेवा कार्य करता है–यह एक स्थिति है। बाद में वह आश्रम का और अपनी कर्मभूमि का भी त्याग करता है, यह दूसरी स्थिति है। पहले वह एक सीमित समूह में कार्यरत था और जब सीमित को त्याग कर ब्रह्माण्डीय चेतना से संयुक्त होकर एक विश्वव्यापी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है, तब परम्परानुसार यह उच्च स्थिति क्षेत्र-संन्यास है।

एक वर्ष पूर्व श्री स्वामीजी द्वारा आश्रम छोड़ने का उद्देश्य मात्र भारत के सिद्ध तीर्थों की यात्रा करना नहीं था, बल्कि उन्होंने उसी समय क्षेत्र-संन्यास ग्रहण करने का निर्णय लिया था। स्वामी शिवानन्द जी के आज्ञानुसार जब श्री स्वामीजी ने योग के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया, तब उन्हें परमहंस परम्परा की साधना थोड़े समय के लिए छोड़नी पड़ी थी। वे योग को सर्व-साधारण के लिए उपलब्ध बनाना चाहते थे। स्वामी शिवानन्द जी द्वारा श्री स्वामीजी को सबसे पहला निर्देश मिला था, 'सेवा'। जब हम सेवा से मुक्त हो जायें, अर्थात् जब हमारे भीतर के संस्कार, कर्म आदि निर्मूल हो जायें, तब साधना का आरम्भ होता है।

5 से 11 अगस्त तक मैं श्री स्वामीजी के पास त्र्यम्बकेश्वर में रहा। वे एक बहुत छोटे से, 8 x10 फुट के कमरे में रहते हैं। उस कमरे का फर्श वे स्वयं गोबर से लीपते हैं, जमीन पर एक चटाई बिछाकर सोते हैं, नाश्ते में अंकुरित मूँग और भोजन में ब्रह्म खिचड़ी लेते हैं। वहाँ न बिजली है और न शौचालय। वे किसी से मिलते भी नहीं हैं। श्री स्वामीजी पूरे दिन मौन रहकर साधना में लीन रहते हैं। उनका कहना है कि जीवन में एक ऐसा समय आना चाहिए कि जब पूर्ण-सजगता के साथ नाम-स्मरण होता रहे। लेकिन यह अजपाजप की तरह नहीं होना चाहिए, क्योंकि अजपाजप में मंत्र की अचेतन पुनरावृत्ति होती रहती है। यह जप पूरी सजगता और जागरूकता के साथ होना चाहिए।

साधनाकाल में गुरु की चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना की ओर प्रवृत्त होती है और शिष्य लोग अपनी चेतना के स्तर पर गुरु को बंधन में डालना चाहते हैं, जिससे कि साधना में विघ्न उत्पन्न होता है। अत: श्री स्वामीजी किसी को बतलाते भी नहीं हैं कि वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। इस प्रकार की जीवन-पद्धति बहुत लम्बे समय तक चलने वाली है। केवल एक या दो वर्ष तक नहीं। श्री स्वामीजी ने बतलाया, 'अब मेरी साधना का एक लक्ष्य है, सतत् नाम स्मरण। अगर मैं विचलित हो जाऊँ और उस अवस्था में भी नाम के प्रति सजग रहा, तो अनहद्-नाद की अनुभूति होगी।'

श्री स्वामीजी जिस अवस्था में अपने को स्थित कर रहे हैं, उसको पूर्ण करने के लिए उन्हें हम सबकी सहायता की आवश्यकता है। जो उनसे भावनात्मक रूप से जुड़े हैं, वे यह नहीं सोचें कि श्री स्वामीजी क्यों अपने हाथों से भोजन पकाते हैं या क्यों स्वयं गोबर से जमीन लीपते हैं, बल्कि हमें यह सोचना है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे साधना कर रहे हैं, हम उसमें कैसे सहायक बनें। उन्होंने जो निर्देश हमें दिये हैं, उनका अक्षरश: पालन कैसे करें।

निर्देश तो बहुत दिये हैं, परन्तु जो पसंद आते हैं, उन्हें आज्ञा मानकर पालन करते हैं और जो पसंद नहीं आते, उनके बारे में सोचते हैं कि जब आन्तरिक प्रेरणा मिलेगी तब करेंगे। यह पाखण्ड है। यदि ऐसा है तो मतलब ही क्या शिष्य बनने का? इसका कारण हमारा अज्ञान है। अगर हम अज्ञान के मार्ग पर चलकर सोचें कि हम ठीक सोचते हैं और ठीक मार्ग पर हैं, तब उसका कोई उपाय ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति जीवन में पिछड़ा ही रहेगा। अब आप निर्णय कर लीजिए कि आपको किस मार्ग पर चलना है?

मेरी यात्रा 4

मथुरा, गोकुल, बृन्दावन, बरसाने (1 से 11 जनवरी 1989)

मथुरा मण्डल की तीर्थ यात्रा के साथ वर्ष 1989 का आरंभ हुआ, जहाँ पर द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने अवतार लिया एवं समस्त लीलाएँ कीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने वराह पुराण में स्वयं कहा है कि तीनों लोकों में ब्रज अथवा मथुरा से अधिक प्रिय अन्य कोई स्थान नहीं है।

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
समत्वं मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे ॥150/8

मथुरेति च विख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम।
सुरम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥150/11

यमुनोत्री से निकली, निर्मल नीले जल वाली उन्मुक्त यमुना इस नगर से होकर बहती है, जिसके किनारे बैठकर श्रीकृष्ण की राधा के साथ की गई उन लीलाओं की विरही स्मृति पर, जिन्हें प्रसिद्ध कवियों ने बारम्बार गाया है, मैंने गहन चिन्तन किया।

ब्रज की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण-चेतना का आनन्ददायक स्मरण होता है, चाहे गोकुल का दर्शन हो, जो कृष्ण का पहला घर था, जहाँ वे 'माखन चोर' कहलाये, या वृन्दावन, जहाँ उन्होंने कालियमर्दन किया, गोपियों के साथ रास-लीला की और 'रसिया' कहलाये, या गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा, जिसे ऊँगली पर उठाकर इन्द्र के कोप से स्वजनों की रक्षा की और इस प्रकार उन्हें 'गिरधर' का नाम मिला, या बरसाने की यात्रा, जहाँ उनकी सर्वप्रिय गोपी 'राधा' रहती थी।

कृष्ण की भूमि पर श्री अखण्डानन्द जी के आश्रम में मैंने 12 दिन व्यतीत किये और इस समय सम्पूर्ण भागवत की धार्मिक कहानियाँ जीवन्त हो गईं, जो हमेशा मुझे प्रेरणा देती रहेंगी। यहीं पर मुझे महान् सन्त देवराहा बाबा के दर्शन हुए।

कुम्भ मेला–प्रयाग, इलाहाबाद (12 से 14 जनवरी तथा 2 से 7 फरवरी)

प्रयाग–गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम; इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक सर्वदा तीर्थराज रहा है। पद्मपुराण में इसके बारे में लिखा गया है–

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम् ॥ उत्तरखण्ड 24.4

जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य, तारों में चन्द्रमा प्रमुख ग्रह है, उसी प्रकार तीर्थों में प्रयाग प्रमुख है। प्रत्येक 12 वर्षों के पश्चात् जब बृहस्पति वृष राशि तथा सूर्य मकर राशि में होता है, तब प्रयाग में पूर्ण कुम्भ मेले का आयोजन होता है। यह वर्ष विशेष रूप से शुभ था, क्योंकि 172 वर्षों के पश्चात् सोमवती अमावस्या आई थी।

14 जनवरी को मकर संक्रान्ति तथा 6 फरवरी को सोमवती अमावस्या के दिन मैंने स्नान पर्वों में भाग लिया। संगम के आवेशित जल ने मेरे सम्पूर्ण

शरीर को विद्युन्मय कर दिया एवं 'यहाँ स्नान इसी जीवन में दिव्य जीवन प्रदान करता है' इसे मैंने सहज ही अनुभव किया।

इसी पुनीत अवसर पर गंगा, यमुना और सरस्वती के दर्शन के लिए मैंने स्वामी निरंजन को अपने पास बुला लिया तथा बाकी के दिनों में हम लोग लाखों भक्तों से, जो मेरी ही तरह वहाँ आये थे, मिलते रहे एवं उनके मध्य होना अपने आप में एक हृदय-स्पर्शी अनुभव था। प्रत्येक संस्कृति, जाति एवं पंथ के असंख्य लोग अपने मस्तिष्क में एक ही विचार लेकर आये थे–'प्रयाग स्नान'। उनके इस अटूट विश्वास के दृश्य को देखा और 'विश्वास एक ऐसी शक्ति है जो पर्वतों को भी हिला सकती है', इस विचार को मैं आसानी से समझ सका।

मैंने वहाँ एकत्र हुए अनेक साधु-संतों, तपस्वियों और त्यागियों, जैसे जूना अखाड़ा के महन्त गोदावरी, देवराहा बाबा, गोपद गुरु जगद्‌गुरु शंकराचार्य आदि के दर्शन किये। इसके कई दिनों बाद तक और अभी भी गंगा की रेत पर एकत्र अपार जन-समुदाय के दृश्य को एवं इस महान् दृश्य को देखने के लिए आकाश में एकत्र हुए सभी देव, गंधर्व एवं अप्सराओं का आँखें बन्द करके दर्शन कर सकता हूँ।

दतिया (15 जनवरी से 1 फरवरी)

कुम्भ के दो स्नान पर्वों के मध्य में दतिया के पीताम्बरी पीठ में प्रतिष्ठित त्रिपुर *सुन्दरी के अनुष्ठान के लिए वहाँ गया।*

क्षितौ षट्‌पंचाशत् द्विसमधिकपंचाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपंचाशदनिले ।
दिवि द्विःषट्‌त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥

मेरे साथ यहाँ आये हुए संन्यासियों ने अनुष्ठान की सफलता के लिए सौन्दर्य-लहरी का पाठ किया।

कटनी (8 से 10 फरवरी)

कुम्भ मेले में द्वितीय स्नान पर्व के पश्चात् मैंने गुरु का आवरण उतार फेंकने का संकल्प लिया और परिव्राजक के रूप में श्री अग्रवाल जी के आमंत्रण पर

उनके योग विद्यालय का उद्घाटन करने के लिए कटनी गया। हालाँकि मैंने प्रशिक्षण, प्रवचन एवं शिष्यों को दीक्षा देना बंद कर दिया था, किन्तु इस आमंत्रण की पूर्व स्वीकृति दे देने के कारण मुझे वहाँ जाना पड़ा।

द्वारिका (18 से 20 फरवरी)

भगवान कृष्ण समस्त वृष्णी कुल के साथ अपना राज्य स्थापित करने तथा अन्य लीलाएँ करने के लिए मथुरा से द्वारिका में बसने के लिए गये। यहाँ रण से विमुख होकर भाग जाने के कारण उन्हें रणछोड़नाथ जी की उपाधि मिली।

यहाँ बाल-गोपाल या कृष्ण-कन्हैया की प्रतिमाओं के स्थान पर द्वारकाधीश या द्वारकानाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। गोमती नदी के किनारे बैठकर मुझे वह युग याद आ गया जब द्वारिका नगर, जो अब समुद्र में डूब गया है, कभी कृष्ण के राज्य के रूप में समृद्ध था। लोक गीतों के मध्य 108 प्रकार के सजे हुए भोग सहित मुझे चतुर्भुज रणछोड़नाथ जी के दर्शन हुए। दिव्यता का यह दूसरा पहलू था। द्वारिका में मेरा रुक जाना पूर्ण चन्द्र ग्रहण के कारण अधिक शुभ हो गया, जो 20 फरवरी को 7.15 से 10.45 तक (लगातार तीन घण्टे) रहा। इस समय मंदिर के पट बंद थे, ताकि कोई ठाकुर को बाधा न पहुँचा सके और मैं अपने होटल के कमरे में नाम-स्मरण में खो गया तथा अंतर की गहराई में ग्रहण लगे चन्द्रमा में विष्णु के दर्शन किए।

सोमनाथ (21 से 23 फरवरी)

सोमनाथ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है एवं धार्मिक कथाओं के अनुसार इसके इतिहास के विषय में कहा जाता है कि सर्वप्रथम यह स्वर्ण निर्मित लिंग था, जिसे सोमराज या चन्द्र देवता ने सतयुग में बनाया था।

आज इस मंदिर पर अनेक विध्वंसकारी आक्रमणों के बावजूद भी इसके परिसर में एक पत्थर का तेजस्वी ज्योतिर्लिंग देदीप्यमान् हो रहा है।

यहाँ मैंने समुद्र के किनारे बैठकर चिन्तन-मनन में अपना समय व्यतीत किया।

शिरडी (12 से 14 मार्च)

साईं बाबा, जिन्हें अवतार माना जाता है, की समाधि मेरी महाराष्ट्र यात्रा का पहला तीर्थ था। ऐसा कहा जाता है कि मंदिर ही नहीं, वरन् पूरा शिरडी

नगर, महान् संत साईं बाबा की आध्यात्मिकता से स्पन्दित होता है। बाबा की पवित्र धूनी के पास बैठकर मैंने एक सशक्त आध्यात्मिक शक्ति-क्षेत्र का अनुभव किया, जो किसी महापुरुष की तपस्या एवं वैराग्य से ही निर्मित हो सकता है।

प्रात:कालीन आरती, वहाँ एकत्र हुए हजारों लोगों के प्रेम एवं श्रद्धा से परिपूर्ण थी।

महाबलेश्वर (5 से 8 अप्रैल)

महाबलेश्वर का ज्योतिर्लिंग एक काले पत्थर के मन्दिर में सुशोभित है और ऐसा कहा जाता है कि यह सावित्री, कृष्णा, वेन्या, कोयान एवं गायत्री, इन पाँच नदियों का स्रोत है। इस ज्योतिर्लिंग पर रुद्राक्ष का चिह्न अंकित है एवं इन पाँचों नदियों के पवित्र जल से यह सतत् स्नान करता रहता है।

एक किंवदन्ती के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश यहाँ सर्वदा विद्यमान रहते हैं एवं यहाँ की घाटियों का सौन्दर्य, छायादार सघन जंगल, नदियाँ इसकी संभावनाओं की पुष्टि करते हैं।

महाबलेश्वर के जंगल सुन्दर, किन्तु डरावने हैं और बहुत थोड़े लोग ही यहाँ आने का साहस कर पाते हैं। इन जंगलों में मैं कई घण्टे घूमता रहा, ब्रह्मा ने जहाँ यज्ञ किया था, उस स्थान को देखा और एक दिन अचानक सुन्दर कृष्णा की घाटी के ऊपर एक उपेक्षित शिव मंदिर को भी देखा।

नासिक एवं त्र्यम्बकेश्वर (12 से 14 अप्रैल)

नासिक और त्र्यम्बकेश्वर के पवित्र नगरों में मेरी दूसरी यात्रा हुई, जहाँ भारत की सात पवित्र नदियों में से एक गोदावरी का उद्गम स्थान है।

यहीं पंचवटी में श्रीराम ने अपने वनवास के 11 वर्ष व्यतीत किये एवं यहीं पर रावण द्वारा सीता का हरण हुआ।

गोदावरी के उद्गम पर अर्चना के पश्चात् मैंने त्र्यम्बकेश्वर नाथ जी के ज्योतिर्लिंग के दर्शन किये, जो एक ही पत्थर से तीन लिंग में उभरा हुआ होने के कारण विलक्षण प्रतीत होता है। यहाँ मैंने रुद्राष्टकम् पाठ के साथ विशिष्ट पूजा सम्पन्न की।

तत्पश्चात् मैंने मंदिर की परिक्रमा करके यहाँ रहने वाले अनेक महात्माओं के दर्शन किये।

भीमाशंकर (5 से 6 मई)

भीमाशंकर की तीर्थ यात्रा पुन: प्रकृति की यात्रा जैसी थी। आधुनिक सभ्यता से दूर यहाँ के हरे-भरे जंगल शान्ति और सौन्दर्य विकिरित करते हैं।

भीमाशंकर का ज्योतिर्लिंग मनोरम पहाड़ियों से घिरा हुआ है, जिस पर राक्षसी डाकिनी का निवास है। मन्दिर बहुत पुराना है। अन्य तीर्थों में देवता की पूजा करने के लिए ऊपर चढ़ना पड़ता है, किन्तु यहाँ ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने के लिए कुछ सीढ़ियाँ नीचे उतरनी पड़ती हैं।

ज्योतिर्लिंगों में इस स्थान को लोग कम जानते हैं, किन्तु इस स्थान का शान्त वातावरण और आध्यात्मिक स्पन्दन इसे एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ की गरिमा प्रदान करते हैं। भगवान शंकर ने त्रिपुरासुर का वध करने के पश्चात् यहीं पर विश्राम किया था।

घुष्मेश्वर (7 से 9 मई)

घुष्मेश्वर के ज्योतिर्लिंग का नामकरण भक्त 'घुष्मा' के नाम पर हुआ है, जिसने अपनी अटल भक्ति से शिव से वरदान प्राप्त किया था। भगवान शिव ने उसे वचन दिया था कि वे सर्वदा वहाँ विद्यमान रहेंगे, इसलिए इस स्थान को शिवालय भी कहा जाता है। इस मन्दिर से थोड़ी ही दूर प्रसिद्ध ऐलोरा की गुफाएँ हैं, जिन्हें अनेक वर्षों के पश्चात् मैं देखने गया। दैत्याकार पर्वतों को तराशकर बनाई गई तथा एक मील लम्बे क्षेत्र में फैली हुई आश्चर्यजनक सुन्दर प्रतिमाओं को देखकर आँखें तृप्त हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता था मानो ये प्रतिमाएँ सजीव हों।

नाथद्वारा (15 से 17 मई)

नाथद्वारा वल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों का स्थान है एवं पुष्टिमार्गियों द्वारा अपनाये गये धार्मिक कृत्य एवं कर्मकाण्ड के लिए प्रसिद्ध है। नाथद्वारा भगवान कृष्ण के यथार्थ सान्निध्य का अनुभव प्रदान करता है।

कृष्ण की धार्मिक लोक-कथाओं का गायन मन्दिर के प्रांगण में दिन-भर चलता रहता है और निष्ठावान् पुजारी ठाकुर की हर आवश्यकता का, यथा, स्नान कराना, वस्त्र पहनाना, भोग लगाना, रेशमी बिछावन पर शयन कराते समय पंखा झलना, आदि का ख्याल करते रहते हैं। भक्तों को गुलाब एवं खस के सुगन्धित शीतल जल के छिड़काव के मध्य भगवान श्रीकृष्ण की

साज-सज्जा, वस्त्राभूषण के दर्शन भी कराये जाते हैं। भक्तों के लिए यह एक असाधारण अनुभव है। एक कथानक के अनुसार काले पत्थर में श्री नाथ जी के श्रीविग्रह को 1669 में मथुरा से यहाँ लाया गया था। तत्पश्चात् जब प्रतिमा को वहाँ से हटाने का प्रयत्न किया गया तो जिन गाड़ियों में उन्हें ले जाया जा रहा था वे जमीन में धँस गईं।

कांकरोली (15 से 17 मई)

नाथद्वारा से थोड़ी दूर नीचे की ओर पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है, जहाँ द्वारिकाधीश की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

यह एक साधारण-सा मन्दिर है और नाथद्वारा की तरह ही यहाँ भी धार्मिक कृत्य एवं कर्मकाण्ड होता है। पहली बार मैंने यहाँ पर एक सुन्दर चित्रकारी देखी, जिसमें भगवान शंकर द्वारा श्रीकृष्ण को भांग का प्रसाद देते हुए दर्शाया गया है। यहाँ मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ, जब चरणामृत में मुझे भांग के साथ ठण्ढाई दी गई। मैं कई घण्टों तक मंदिर परिसर में बैठा स्थानीय भाषा एवं स्वर में गाये जाने वाले श्रीकृष्ण के भजनों को सुनता रहा।

एकलिंग जी (15 से 17 मई)

श्री एकलिंग जी का मंदिर विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है एवं यहाँ पर प्राय: सभी देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ हैं। मुख्य देवता गर्भगृह में है, जो एक काले संगमरमर के पत्थर पर चार मुखों वाले शिव की प्रतिमा के रूप में उभरा हुआ है।

देवता को हर रोज विभिन्न प्रकार से सजाया जाता है तथा विधिवत् मंत्रोच्चार किया जाता है। गर्भगृह में प्रविष्ट होने के लिए मुझे पुजारी ने विशेष वस्त्र दिये और तब एकलिंग जी महाराज का दर्शन हुआ।

पुष्कर (18 से 20 मई)

जिस प्रकार प्रयाग को तीर्थों का राजा कहा जाता है, उसी प्रकार पुष्कर भी सभी तीर्थों में प्रसिद्ध है। पुष्कर की यात्रा के बिना सभी तीर्थ यात्राएँ अपूर्ण रह जाती हैं।

भारतवर्ष में एक मात्र ब्रह्मा का मन्दिर पुष्कर में होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है। ऐसा कहा जाता है कि अगस्त्य मुनि का आश्रम भी यहीं था।

पुष्कर झील तथा अगस्त्य कुण्ड में स्नान के पश्चात् मैंने ब्रह्मा जी के दर्शन किये एवं मन्दिर में विशिष्ट पूजा की।

गंगोत्री एवं बद्रीनाथ (30 मई से 20 जून)

मेरी तीर्थ-यात्राओं का क्रम मेरे गुरु-आश्रम, ॠषिकेश, गंगोत्री और बद्रीनाथ की यात्राओं के साथ समाप्त हुआ। इस यात्रा में स्वामी निरंजन भी मेरे साथ थे।

वहाँ मैं अनेक संतों से मिला और गंगा के बर्फीले ठण्ढे जल में तथा बद्रीनाथ के तप्त कुण्ड में स्नान किया।

बद्रीनाथ में मैंने सरस्वती के उद्गम का दर्शन किया, जहाँ वह अपनी पूर्णशक्ति के साथ पर्वत मालाओं से निकलती है। यह एक दर्शनीय स्थल है।

14 जुलाई से 14 सितम्बर

अब मेरा 'चातुर्मास' प्रारम्भ होता है। जूना अखाड़ा के महन्त शिवगिरि जी ने मुझे नील पर्वत, त्र्यम्बकेश्वर में रहने के लिए आमंत्रित किया है।

यहाँ हरी-भरी पर्वत श्रेणियों का एक विस्तृत क्षेत्र है, जिनमें से अधिकांश पर्वत शृंखलाएँ प्राथमिक रूप से शिवलिंग के आकार की हैं। नील पर्वत एक जागृत एवं सिद्ध स्थान है। अगले दो महीनों तक यहाँ रहने के लिए मैंने एक छोटी-सी गोशाला का चयन किया है। यह 8X8 का एक कमरा है। मैं यहाँ अज्ञातवास में रहूँगा और अपनी सतत् नाम-स्मरण की साधना का अगला चरण पूरा करूँगा।

मेरी यात्रा 5

14 जुलाई 1989

26 वर्षों के पश्चात् मैं त्र्यम्बकेश्वर में हूँ। यहाँ भगवान शंकर का ज्योतिर्लिंग है। यहीं से 1963 में मेरे जीवन का वह अध्याय प्रारंभ हुआ था जो मुझे मुंगेर ले गया और मैं योग के प्रचार-प्रसार के कार्य के लिए प्रेरित हुआ। यहीं पर मैंने संकल्प लिया था कि योग के प्रचार से जो भी सफलता मुझे प्राप्त होगी, उसे छोड़कर मैं पुन: यहाँ आऊँगा और आत्मानुभूति के मार्ग पर चलने के लिए आगे मार्गदर्शन प्राप्त करूँगा। आज प्रात:काल मैं भगवान मृत्युंजय के दर्शन करने गया और चातुर्मास के दो महीने यहाँ बिताने की आज्ञा माँगी।

एक विचित्र संयोग था जिसके कारण इतने वर्षों के पश्चात् मैं पुन: यहाँ आ पहुँचा हूँ। जूना अखाड़ा, त्र्यम्बकेश्वर के महन्त श्री शिवगिरि जी महाराज ने मुझे नील पर्वत पर रहने के लिए आमंत्रित किया। इसी स्थान पर मैं 26 वर्ष पहले भी रुका था।

मैंने एक गोशाला का चयन किया है। यह 8X8 का कमरा प्राचीनता, पवित्रता और सरलता का प्रतीक रूप है।

मैं अकेला हूँ। मैं क्या करूँ?

मेरे चारों ओर ब्रह्मगिरि की रमणीक पर्वतमालाएँ हैं। यहीं पवित्र नदी गोदावरी का उद्‌गम है, जो पूर्वी समुद्र की ओर बहती है। मैं अपनी कुटिया के सामने गूलर के पेड़ तले बैठकर ध्यान करता हूँ और आदेश की प्रतीक्षा करता हूँ। अपने चारों ओर शिवलिंगाकार पर्वत-शृंखलाओं को देखकर मैं अपने अंदर प्रोत्साहन का अनुभव करता हूँ और सुध-बुध खो बैठता हूँ।

18 जुलाई 1989

आज से गुरु पूर्णिमा व्रत आरम्भ हो रहा है। जब मध्य रात्रि को मैं ज्योति में स्नान कर रहा था तब भयंकर तूफान उठा व बरसात हुई और मुझे स्पष्ट आज्ञा का अनुभव हुआ– *छै सौ सहस इक्कीसौं जाप'*।

अत: अब यहाँ से मेरे जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार मैंने अपने आपको उनकी पूर्वाज्ञा के प्रति समर्पित किया, उसी प्रकार अपने इस नये लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भी अपनी पूरी क्षमता से समर्पण के लिए प्रयत्नशील रहूँगा। अतीत मर चुका है और बीत गया है। मानव होने के कारण मैं संभवत: परिस्थितिवश पुन: उन लोगों से सम्पर्क स्थापित करूँ जिनसे मैं पहले सम्बन्धित था, किन्तु यह भी उन्हीं की इच्छा से होगा। मेरा व्यक्तिगत प्रयास अतीत से अलग रहने का और भगवान मृत्युंजय के द्वारा निर्देशित लक्ष्य को प्राप्त करने का ही रहेगा।

8 सितम्बर 1989

एक प्रश्न कई दिनों से मेरे मन में उठ रहा था और वह था–मैं कहाँ अपने लक्ष्य की पूर्ति करूँ? इसका उत्तर मुझे आज प्राप्त हुआ है। मुझे रहने के लिए अनेक स्थान दिये जा रहे थे, गंगोत्री में गंगा किनारे बहुत सुन्दर गुफा, केदारनाथ में एक कुटिया तथा अन्य कई स्थान। लेकिन मेरा लक्ष्य स्पष्ट न होने के कारण

मैंने अपना निर्णय रोके रखा था। मध्य रात्रि को हमेशा की तरह मैं उठा। उस समय आकाश शान्त था और अष्टमी की चन्द्रमा की किरणें मेरी कुटिया की छोटी खिड़की से अंदर प्रवेश कर रही थीं। मैंने अनुभव किया कि एक बार और एक विचित्र प्रकाश मेरे चारों ओर जगमगा उठा और स्पष्ट आदेश सुनाई पड़ा–'मेरी श्मशान-भूमि में'।

उसी दिन प्रात: जब मैं अपनी चाय बना रहा था तब स्वामी सत्संगी मुंगेर से यहाँ पहुँची और मैंने अपने लिए एक स्थान के चयन का आदेश दिया। संक्षेप में मैंने उन्हें समझा दिया कि मैं किस प्रकार का स्थान चाहता हूँ। इसके तीन घण्टे बाद ही वह मेरे लिए उपयुक्त स्थान की खोज में निकल पड़ी।

12 सितम्बर 1989

आज से 43 वर्षों पहले मैंने उन सबका त्याग किया था जो मेरे पूर्वाश्रम से सम्बन्धित थे। नाम, जाति, गोत्र तथा अन्य कई वस्तुएँ; कोट और पतलून का परित्याग कर गेरु धारण किया था। आज के ही दिन ऋषिकेश में गंगा के किनारे मेरे गुरु स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे दशनामी परम्परा में परमहंस दीक्षा दी थी।

मध्याह्न के समय एक संन्यासी ने मुंगेर से आकर मुझे सूचना दी कि स्वामी सत्संगी ने भगवान शंकर की श्मशान भूमि में एक उपयुक्त स्थान की खोज कर ली है। उस संध्या को मैंने अपने संकल्प की पूर्ति के उपलक्ष्य में 15000 मंत्रों की पूर्णाहुति प्रदान की, क्योंकि 26 साल पहले इसी स्थान पर भगवान मृत्युंजय द्वारा मुझे बिहार योग विद्यालय और गंगा दर्शन के निर्माण का आदेश प्राप्त हुआ था।

मैं सबको यह स्पष्ट रूप से बतला देना चाहता हूँ कि अब मैं मर चुका हूँ और अपने इष्ट देवता की इस श्मशान भूमि में ही तब तक वास करूँगा जब तक कि वे मुझे कोई अन्य आदेश न दें।

उस स्थान पर रहने के पूर्व एक बार मैं कामाख्या जाकर शक्ति के स्थूल रूप की आराधना करूँगा, क्योंकि मैंने गत वर्ष विजयादशमी के दिन यह संकल्प लिया था।

उड़ रहा है हंस मेरा उड़ रहा।
युगों-युगों से पंख खोले
खोजता अपना बसेरा ।
उड़ रहा है हंस मेरा उड़ रहा।
विश्व के सब ज्ञानियों से सीखकर विज्ञान भी,
देवताओं का हृदय में धारकर वरदान भी,
उड़ रहा है बेचैन होकर तीन लोकों का चितेरा।
उड़ रहा है हंस मेरा उड़ रहा।
उड़ रहा है और उड़ता जा रहा अविराम है।
देखता लीला जगत की भोग से उपराम है।
जा रहा है प्रिय मिलन को नील नभ में वो अकेला।
उड़ रहा है हंस मेरा उड़ रहा।

30 सितम्बर 1989 (नवरात्रि)

ॐ नमो नारायणाय
मैंने तुम्हारी आराधना की है
काल भैरव के रूप में एक तत्त्व से
कामाख्या में पाँचों तत्त्वों से
विष्णु के रूप में पत्र, पुष्प, फल और दूध के साथ।
अनेक रूपों में, अनेक विधियों से,
और अनेक स्थानों पर।
तुमने जिस रूप में दर्शन दिया, उसी रूप में
मैंने तुम्हारा पूजन किया।
और अब, मैं तुम्हारी आराधना करूँगा,
श्मशान भूमि में
हर साँस
यह मेरी प्रॉमिस है

शिष्यों को दर्शन

श्री स्वामीजी ने जनवरी 1990 में गंगादर्शन के संन्यासियों को बुलाया। अधिकतर संन्यासियों के लिए गुरु पूर्णिमा 1988 के बाद से यह प्रथम दर्शन था। सबके लिए सामान्य संदेश यह था कि सच्चे शिष्यों के लिए गुरु-शिष्य सम्बन्ध सर्वव्यापी, आंतरिक और भौतिक परिस्थितियों से पूर्णतया परे होता है। अत: हमें श्री स्वामीजी की अकेले रहने की इच्छा का सम्मान करना चाहिए। श्री स्वामीजी के इस त्याग का सम्मान करते हुए, बिहार योग विद्यालय का कार्य निरंतर चलता रहा।

जब हम वहाँ पहुँचे तब श्री स्वामीजी को एक तम्बू में इन्तजार करते पाया। निश्चय ही यह सबको स्तंभित कर देने वाला अनुभव था। उनकी आँखें चमक रही थीं और शरीर देदीप्यमान् हो रहा था। उन्होंने धोती का परित्याग कर केवल लंगोटी पहन रखी थी तथा वे एक हाथ से एक छोटी सुमरनी से जप कर रहे थे।

उन्होंने अपना एक हाथ उठाया और कहा– ॐ नमो नारायणाय। प्रत्येक संन्यासी को इस दर्शन का अलग-अलग अनुभव हुआ। श्री स्वामीजी जब हम लोगों से बातें कर रहे थे तब पुरानी स्मृतियाँ हमारे मन में उभरने लगीं। परन्तु उन्होंने जो कहा, वह निश्चय ही हमारे लिए संदेश था–

"मैंने तुम लोगों को यह बताने के लिए बुलाया है कि इसके बाद अनुमति के बिना यहाँ कोई नहीं आएगा। यह परमहंस अखाड़ा है, आश्रम नहीं। अखाड़ा केवल साधना के लिए होता है। यहाँ कर्म नहीं होता, भोजन तैयार नहीं होता, बल्कि भिक्षा पर ही जीवन निर्वाह होता है। अखाड़ा एक परम्परा है। निरंजनी, निर्वाणी इत्यादि अखाड़ों की तरह यह परमहंस अखाड़ा है और स्वामी शिवानन्द जी इसके देवता हैं।

अभी यह अखाड़ा निर्माणाधीन है। कार्य समाप्त होने के बाद यहाँ मैं और मेरे काले कुत्ते के अतिरिक्त और कोई नहीं रहेगा, क्योंकि कुत्ता भैरव का वाहन है। अखाड़े का भवन केवल नागा संन्यासियों के लिए होगा। वे यहाँ केवल तीन दिन रुक सकेंगे और अपने हाथों से स्वयं भोजन तैयार करेंगे। दूसरी तरफ एक भवन और होगा, जिसमें मेरी शिष्या स्वामी आत्मानन्द रहेंगी, जो सिंगापुर से सब त्याग कर यहाँ आ रही हैं।

मैं यहाँ रहूँगा एवं काले और गेरू रंग के दो झण्डे रखूँगा। जब काला झण्डा ऊपर रहेगा तब अंदर कोई प्रवेश नहीं कर सकेगा। यह अवधि एक,

दो या तीन दिनों की हो सकती है और इसका मतलब होगा कि मैं साधना में हूँ। जब गेरू झण्डा ऊपर रहेगा, तब रास्ता साफ है और तुम मिल सकोगे। यहाँ धूनी जलाऊँगा और उसी दिन अपने इस अंतिम वस्त्र का भी परित्याग करूँगा।

जब मेरी मृत्यु का क्षण आएगा तब मैं डॉक्टरों एवं भक्तों से घिरा हुआ नहीं, समाधि में शरीर छोड़ूँगा और यदि पुन: जन्म लूँगा, तो योगमय परिवार में ही। तुम्हें मुझ पर गर्व होना चाहिए। जब तुम्हारे कर्म समाप्त हो जाएँ और सभी नाम-यश की इच्छाएँ समाप्त हो जाएँ, तब यहाँ आ सकते हो, उससे पहले नहीं।

अपनी सभी इच्छाओं से ऊपर उठना अनिवार्य है, मोक्ष की इच्छा से भी। संन्यासी वैयक्तिक है। उसमें भावनात्मक आसक्तियाँ नहीं होनी चाहिए। उसमें अकेले एवं स्वतंत्र खड़े होने की क्षमता होनी चाहिए।

मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भगवान ने मेरी मदद की। मेरी कोई इच्छा नहीं है, सब उसकी इच्छा है। ईश्वर सदा मेरे अनुकूल रहे और मेरी बहुत मदद की। मुझे सब कुछ दिया। दूसरों की तरह अभावों से नहीं गुजरना पड़ा। उसने मुझे स्वामी निरंजन जैसा सर्वश्रेष्ठ शिष्य दिया। वह स्वयं निर्णय लेता है और उसे मुझसे कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अब आश्रम में जो कुछ होगा, वह उसकी इच्छा से ही होगा।

मेरे बारे में सोचना बंद करो। मुझे तुम्हारा विचार-संप्रेषण, दूर-श्रवण या स्पन्दन नहीं चाहिए। मुझे कोई विचार नहीं चाहिए। तुम लोगों को मुझे भूलना पड़ेगा। मैं अब प्रत्यक्ष मार्गदर्शन नहीं दूँगा। कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए।"

वैद्यनाथ धाम–अतीत और वर्तमान

नासिक के निकटस्थ ज्योतिर्लिंग, भगवान त्र्यम्बकेश्वर श्री स्वामीजी के इष्टदेव हैं। वहीं मन्दिर के समीप गोशाला में चातुर्मास व्यतीत करते समय सन् 1989 में श्री स्वामी शिवानन्द जी के जन्म दिवस 8 सितम्बर को श्री स्वामीजी को अपने इष्ट देवता का आदेश प्राप्त हुआ। इस ईश्वरादेश में उनकी साधना और साधनास्थल का स्पष्ट संकेत था।

जब उन्होंने देवघर का नाम लिया तब सर्वप्रथम हम लोग चकित हो गए, क्योंकि सालभर की उनकी तीर्थयात्रा में अनेक अपौरुषेय, आध्यात्मिक भव्यता सम्पन्न स्थानों के प्रस्ताव उनके समक्ष आये थे, जो साधना के लिए

बड़े सहायक स्थल थे। गंगोत्री में गंगा के तट पर अवस्थित मनोरम गुफाएँ या माउन्ट आबू पर्वत की एकान्त प्रस्तर-कन्दराएँ, जहाँ स्वयं भगवान दत्तात्रेय ने तप किया था, भी उनमें थीं; यहाँ तक की केदारनाथ की कुटिया भी।

आज एक वर्ष के बाद हम जो परमहंस का प्राकट्य देखते हैं तब यह सहज ही समझ में आ जाता है कि उनके लिए इसी स्थान का चयन क्यों हुआ। देवघर अनेक दृष्टियों से श्री स्वामीजी के अनुकूल है। जलवायु की दृष्टि से तो यह साधना के लिए अति अनुकूल है। बिहार की संतापी ग्रीष्म ऋतु यहाँ के लिए अपरिचित है। अत्यन्त गर्म दिनों में भी यहाँ शीतल बयार के झोंके आते रहते हैं। अक्टूबर की उमस भरी दोपहरी में भी यहाँ की हवा में गुलाबी ठण्ढक रहती है।

किसी समय देवघर एक विस्तृत वन प्रदेश था। यहाँ के एकमात्र निवासी संथाल नाम की जनजाति थी, जिसके नाम पर इस पूरे जिले का ही नाम संथाल परगना था। 1983 में देवघर अलग जिला घोषित हुआ। पहाड़ियों से घिरा यह पूरा क्षेत्र सागर की लहरों के समान ऊँचा-नीचा है। धीरे-धीरे संथालों ने जंगल को कृषि कार्य के लिए साफ करना शुरू किया। तत्पश्चात् बड़ी संख्या में बंगाली लोग यहाँ आकर बसने लगे और संथालों की जमीन औने-पौने मूल्य पर अधिग्रहण करने लगे। कहा तो यह भी जाता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के समय कलकत्ता से मारवाड़ी लोग भी आए; अपनी आलीशान कोठियाँ बनाईं, जिनके तहखानों में अपने जवाहरात और दौलत को सुरक्षित किया। इन भवनों के खण्डहर अभी भी अपने अतीत की कथा कहते हैं।

वैद्यनाथ धाम के नाम से विख्यात देवघर के ऐतिहासिक विवरण का उल्लेख शिवपुराण में है। शिवपुराण का काल त्रेतायुग है, जब राम और रावण हुए थे। देवघर का आधुनिक इतिहास तो मात्र 200 वर्षों का है, जब अँग्रेज यहाँ सर्वप्रथम आए थे। अनेक मुहल्लों का नाम अँग्रेज कमिश्नरों के नाम पर है, जो यहाँ पर प्रतिनियुक्त थे। उनके भव्य बंगले आज भी मौजूद हैं। अँग्रेज इस स्थान को बहुत पसन्द करते थे। यहाँ उन्हें बिहार की भीषण गर्मी से त्राण मिलता था, साथ ही शिकार का पर्याप्त अवसर यहाँ था। सुनते हैं कि बाघ, चीते, भालू, और बनैले वाराह देवघर के घने जंगलों में उन्मुक्त विचरण करते थे।

भौगोलिक दृष्टि से देवघर बिहार के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में अवस्थित है। मुंगेर से इसकी दूरी तो मात्र 140 किलोमीटर है, पर दोनों में जमीन-आसमान

का अन्तर है। यहाँ के निवासी विनम्र हैं। मुंगेर जिन दंगों और संघर्षों के लिए कुख्यात है, वे यहाँ अनजान हैं। यहाँ की आबादी मुख्यत: पण्डों, संथालों और बंगालियों की है। पण्डे लोग बिहार के गिद्धौर के राज परिवार द्वारा मिथिला से भगवान शिव की पूजा अर्चना के लिए लाए गए थे।

यहाँ के सम्पूर्ण जीवन के केन्द्र बिन्दु, बाबा बैद्यनाथ शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक हैं। एक ही शिलाखण्ड में तराशे गए शिवलिंग की महिमा और शक्ति लाखों लोगों को पूजा-आराधना के लिए आकृष्ट करती है। मन्दिर के द्वार सबके लिए खुले हैं, चाहे वे किसी भी जाति, सम्प्रदाय या धर्म के हों। अन्य अनेक तीर्थों के विपरीत यहाँ अन्य देश-वासियों के भी प्रवेश पर रोक नहीं है।

एक विचित्रता यह भी है कि अन्य ज्योतिर्लिंगों से भिन्न वह कृष्ण प्रस्तर खण्ड, जो ज्योतिर्लिंग है, थोड़ा दबा हुआ है और मुख्य शिवलिंग तो दीखता भी नहीं। आजकल तो कहा जाता है कि पूजा के समय श्रद्धालुओं के स्पर्श से शिवलिंग घिस कर अवनत हो गया है, परन्तु प्राचीन कथा है कि जब रावण शिवलिंग को भूमि से नहीं उठा सका, तब क्रोध और हताशा में उसने मुष्ठिका प्रहार से इस शिवलिंग को धँसा दिया, जिसमें वह प्रस्तर खण्ड अवनत हो गया।

पुराणों में वर्णित द्वादश ज्योतिर्लिंगों में बाबा बैद्यनाथ भी हैं या नहीं, इस पर विवाद है। कुछ लोगों का दावा है कि पारली, गुजरात में स्थित वैद्यनाथ का शिवलिंग ही वास्तविक ज्योतिर्लिंग है। इस पर शोध तो हुआ नहीं है। फिर भी शिव पुराण में वर्णित द्वादश ज्योतिर्लिंगों में इसका 'बैद्यनाथ चिताभूमि' के रूप में वर्णन है। यों कहा जाय कि यह बैद्यनाथ शिव की चिताभूमि है।

यह मात्र संयोग नहीं है कि देवघर भी शिव की चिताभूमि के रूप में जाना जाता है। जनश्रुति है कि शिव ने यहाँ ही अपना ताण्डव नृत्य किया था, जिसके बाद उनका नाम नटराज पड़ा। ऐसा विश्वास है कि मन्दिर के आस-पास की भूमि से राख भी निकलती है और अस्थियाँ भी मिल जाती हैं। स्वयं श्री स्वामीजी ने अपनी द्वादश ज्योतिर्लिंग यात्रा में यहाँ पूजा की थी। इसके अतिरिक्त मात्र मंदिर में आ जाने से यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि भगवान शिव का यह पीठ ऊर्जा का उद्गम-स्थल है, शक्ति-केन्द्र है। देवर्षि नारद ने हनुमान से बैद्यनाथ धाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि यही एकमात्र स्थान है जहाँ शिव बिना पात्र-कुपात्र, पापी-पुण्यात्मा का विचार किए सबकी कामना पूर्ण करते हैं।

यह तो इसी से स्पष्ट हो जाता है कि लाखों-करोड़ों लोगों की भीड़ सालों भर यहाँ लगी रहती है। इन श्रद्धालुओं में राजा, महाराजा, श्रीमन्त, अफसर से लेकर दीन, अकिंचन सभी होते हैं। संत-महात्मा भी यहाँ आते रहते हैं। एक समय में यह सिद्धों, नागाओं, तांत्रिकों और अघोरों का केन्द्र-स्थल था, जहाँ ये लोग अनेक की संख्या में अपनी साधना करते थे। इधर इनकी संख्या अत्यन्त कम हो गई है। संभवत: इसका कारण है कि इन सम्प्रदायों में अत्यधिक ह्रास हो गया है, क्योंकि ऐसा दृढ़ विश्वास है कि नकली साधु या गलत उद्देश्यों से साधना करने वालों को किसी न किसी कारणवश बाबा बैद्यनाथ का तेज इस जगह पर टिकने नहीं देता है। उनकी सर्वव्यापकता का दृढ़ विश्वास सबमें है और वे तो सर्वव्यापी हैं हीं। यहाँ तक कि सामान्य रूप से यहाँ की गलियों में घूमते-फिरते भी आप मंदिर प्रांगण से विकीर्ण होती ईश्वरीय आभा का अनुभव किए बिना नहीं रह सकते।

बाबा बैद्यनाथ के प्रादुर्भाव की कथा भी कुछ कम कौतुहलपूर्ण और अनोखी नहीं है। रामायण के सुविख्यात राक्षस राजा रावण को ही, जो एक उद्भट विद्वान् और सिद्ध योगी था, इस स्थान को स्थापित करने का श्रेय है। कथा इस प्रकार है–रावण कैलाश पर्वत से लौट रहा था, जहाँ उसने दीर्घकाल तक घोर तपस्या कर शिव से वरदान प्राप्त किया था। वरदान स्वरूप उसे एक ज्योतिर्लिंग प्राप्त हुआ था, जिसे वह लंका में स्थापित करने हेतु ले जा रहा था, ताकि उसके इष्ट देवता भगवान शिव शाश्वत रूप में वहाँ उपस्थित रहें। परन्तु रावण को यह शिवलिंग देने के पूर्व भगवान शिव ने एक शर्त लगा दी थी। उन्होंने रावण को समझा दिया था कि लंका जाने के मार्ग में उस शिवलिंग को कहीं धरती पर न रखा जाए, अन्यथा उसे पुन: उठाना संभव न होगा। रावण इस शर्त पर सहमत हो गया और शिवलिंग लेकर अपनी यात्रा पर चल पड़ा।

लंका में रावण के द्वारा शिव के ज्योतिर्लिंग सदृश अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति प्राप्त किए जाने पर भगवान विष्णु सहित सभी देवता सशंकित हो गए। अत: इन लोगों ने उसे किसी भी तरह से रोकने के लिए गुपचुप ढंग से विचार किया। वरुण रावण के शरीर में प्रवेश कर गए, फलस्वरूप उसे लघुशंका की तीव्र आवश्यकता महसूस हुई। अत: वह रुका और उसने पास खड़े एक ब्राह्मण युवक को देखा। उसने उस ब्राह्मण युवक को शिवलिंग देते हुए अनुरोध किया कि जब तक वह लघुशंका से निवृत्त होकर न लौटे, तब तक

उस शिवलिंग को नीचे नहीं रखे। रावण को काफी समय लग गया। और इधर उस ब्राह्मण युवा ने, जो कहा जाता है कि स्वयं भगवान विष्णु थे, शिवलिंग नीचे रख दिया, जिससे वह पृथ्वी में धँस गया। लौटकर रावण ने हर संभव प्रयत्न किया, पर वह पत्थर तिल भर भी नहीं हिला और वहीं रह गया। जहाँ यह घटना हुई, वह स्थान देवघर ही था। इसी कारण यह स्थान रावणेश्वर बैद्यनाथ का धाम भी कहलाता है। जिस स्थल पर रावण धरती पर उतरा था, उसे वर्तमान हरला जोरी मन्दिर बताते हैं और जहाँ शिवलिंग रखा गया, वही स्थान आज का देवघर है, लिंग का नाम बैद्यनाथ है।

देवघर तो आधुनिक नाम है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'देवताओं का घर'। पर संस्कृत ग्रंथों में इसका नाम हृदयपीठ, रावण-वन, हरितिकी वन या बैद्यनाथ मिलता है। बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के बीच के तीर्थ यात्रा सम्बन्धी कतिपय प्रमाणित ग्रन्थों में बैद्यनाथ की पवित्रता का उल्लेख है। पुराणों के प्रामाणिक अंग में इसकी चर्चा है और ये पुराण निर्विवाद रूप से दसवीं शताब्दी के हैं। अत: उस काल में भी वैद्यनाथ की अतिशय ख्याति थी।

आधुनिक काल की ओर दृष्टिपात करें तो 1695 से 1699 ईस्वी के बीच लिखे गए खुलासातुस्त-तवारीख में बैद्यनाथ की तीर्थयात्रा का बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है। उसमें लिखा है–'मुंगेर जिले की पहाड़ियों के उपान्त में बैजनाथ (बैद्यनाथ) का झारखण्ड नाम का एक स्थान है, जो महादेव के कारण पवित्र है। कोई भी व्यक्ति जो चीजों का बाह्य रूप ही देखता है, उस चमत्कारी प्रदर्शन से विस्मित हो जाता है। इस मंदिर के प्रांगण में एक पीपल का वृक्ष है, पर वह कब से है, कोई नहीं जानता। मन्दिर के किसी सेवक को अपने आवश्यक खर्च के लिए जब धन नहीं रहता है, तब वह उस पीपल वृक्ष के नीचे अन्न-जल का त्याग कर बैठ जाता है और अपनी कामना पूर्ति के लिए महादेव की स्तुति करता है। दो-तीन दिनों बाद वृक्ष से एक पत्ता निकलता है जिस पर हिन्दी में अदृश्य कलम से कुछ पंक्तियाँ लिखी रहती हैं, जिसमें संसार के किसी भी भाग के किसी भी व्यक्ति के नाम आदेश होता है कि वह प्रार्थना करने वाले को एक निश्चित मात्रा में धन दे दे।

भले ही उस आदमी का वास स्थान वैद्यनाथ से 500 लीग (1 लीग 35 मील लगभग) हो, पर उस पत्ते पर अंकित लेख से उस आदमी का नाम, उसके बच्चों, पत्नी, पिता, पितामह, घर और देश के नाम का पता चल

जाता था। मन्दिर का सरदार पण्डा उसके अनुरूप अलग कागज पर उसे लिखकर मन्दिर के उस सेवक को दे देता है। इसे बैजनाथ की हुण्डी कहते हैं। वह सेवक उस स्थान पर जाता है, जहाँ का पता उसमें लिखा रहता है। वह आदमी जिसके नाम से आदेश रहता, बिना हिला-हुज्जत के निस्संकोच रुपया सेवक को दे देता है। इस पावन स्थल के समीप ही एक गुफा है, जो और भी अद्भुत है। वर्ष में एक बार शिवरात्रि के दिन सरदार पण्डा उसमें प्रवेश करता है और थोड़ी मिट्टी वहाँ से लाता है, जिसमें से थोड़ी-थोड़ी मन्दिर के सभी पुरोहितों (पण्डों) को देता है। उस वास्तविक महिमावान के प्रताप से जिसकी जितनी योग्यता होती है, उसी अनुपात में मिट्टी से सोना बन जाता है।'

श्री स्वामीजी सर्वप्रथम अपने परिव्राजक जीवन में 1956 में देवघर आए थे और फिर सिद्ध तीर्थों की अपनी यात्रा के दौरान 1989 में। वैसे तो वे यहाँ अनेक बार आए हैं, कभी श्री अनुकूल चन्द्र ठाकुर के सत्संग में आयोजित कार्यक्रम में, तो कभी रोटरी या लायन्स क्लब जैसी संस्थाओं के आमंत्रण पर। वे बैद्यनाथ धाम को शिव की दीवानी कचहरी कहते हैं, जहाँ पर हर श्रद्धालु की प्रार्थना अविलम्ब सुनी जाती है। यदि ईश्वरत्व को देखने की आँखें हों और अलौकिक अनुभूतियों को सहन करने की शक्ति हो, तो यह स्थान संभवत: अत्यधिक शक्तिशाली है, ऐसा श्री स्वामीजी कहते हैं।

श्री स्वामीजी बताते हैं कि यह चिता-भूमि शिव के अघोर रूप की पीठ स्थली है। अघोर, साधुओं का एक सम्प्रदाय है, जिनके लिए कुछ भी निकृष्ट नहीं है। घोर का शाब्दिक अर्थ है 'अति' और अघोर का अर्थ हुआ 'न अति', जिसका तात्पर्य है कि अघोरी अपनी साधना से प्रकृति की पराकाष्ठाओं–अच्छा-बुरा, स्वच्छ-अस्वच्छ, रात-दिन का भी अतिक्रमण कर लेते हैं। अघोरी शिव को अपना गुरु मानते हैं। वे श्मशान में ही अपनी साधना करते हैं।

सच्चे अघोरी शरीर और पदार्थ के सभी रूपों का अतिक्रमण कर जाते हैं। उनके लिए एकमात्र वास्तविकता जिसका अस्तित्व है, वह शुद्ध चेतना ही है। समस्त भौतिक पदार्थों के प्रति उनकी अनासक्ति और वैराग्य भाव रहता है, जो उनके जीवन से ही परिलक्षित होता है। एक सामान्य दर्शक को तो एक अघोरी भयंकर रूप से विचित्र लगेगा। पर उसे दूसरों के विचारों से कुछ लेना-देना नहीं है। बैद्यनाथ धाम शिव की यह चिताभूमि अघोर साधना का अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण केन्द्र है तथा अनेक अघोरी यहाँ पर अपनी साधना पूरी कर लेना एक महान् उपलब्धि मानते हैं।

एक और विलक्षण पर लगभग अज्ञात तथ्य देवघर के विषय में यह है कि शिव का स्थान होने के अतिरिक्त यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्ति पीठ भी है। कुछ पुराण देवघर में बैद्यनाथ धाम का आविर्भाव सतयुग में हुआ मानते हैं, जबकि शिव प्रिया सती ने अपना आत्मदाह किया था। कहा जाता है कि शिव की भार्या सती ने अपने पिता के द्वारा अपने पति के अपमान के विरोध में यज्ञ के हवनकुण्ड में आत्मदाह कर लिया था और शिव उनका शव लिए घूम रहे थे। विष्णु ने जब उनका असह्य दुःख और आक्रोश देखा, तब अपना सुदर्शन चक्र भेजकर सती के शव के 64 खण्ड करवा दिए। शिव तो सारे ब्रह्माण्ड में अनियंत्रित विक्षिप्तावस्था में विचरण कर रहे थे। इसी क्रम में सती के शव के चौंसठ खण्ड विभिन्न स्थानों पर गिरे, ये सभी चौंसठ स्थान शक्ति उपासना के महत्त्वपूर्ण चौंसठ पीठ हो गए। उनका हृदय बैद्यनाथ धाम में गिरा था, इसलिए यह हृदय पीठ के नाम से भी जाना जाता है। ठीक उसी स्थान पर बाद में ज्योतिर्लिंग की स्थापना हुई। अतः प्रतिदिन पहले देवी की पूजा-आरती होती है, उसके बाद बैद्यनाथ मन्दिर के कपाट खुलते हैं।

घोर विरोध के बाद भी एक प्रथा युगों से चली आ रही है। प्रथा है प्रतिदिन मन्दिर में एक छागबलि। इसे बन्द कराने के अनेक प्रयास हुए, विशेषकर जब वैष्णव और बौद्धधर्म अपने उत्कर्ष पर थे, पर प्रथा चलती ही रही। मामला न्यायालय तक गया, पर निर्णय प्रतिवादियों के पक्ष में ही हुआ, क्योंकि उन्होंने शास्त्रों के प्रचुर उद्धरणों के द्वारा बलि प्रथा से सम्बन्धित अपने पक्ष को प्रमाणित किया। आजकल मंदिर की व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रशासन का है, अतः अब सरकार प्रतिदिन एक बकरे का मूल्य देती है, जिसकी बलि प्रतिदिन शिव और शक्ति के चरणों में दी जाती है।

श्री स्वामीजी बताते हैं कि अघोर साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के अतिरिक्त बैद्यनाथ धाम या देवघर का तांत्रिक साधना के लिए कामाख्या के बाद स्थान आता है। जैसा अधिकतर लोग सोच लेते हैं, तांत्रिक साधना का मतलब मात्र पाँच तत्त्वों की साधना नहीं है। वस्तुतः तंत्र के इस पक्ष के विषय में अत्यधिक भ्रामक व्याख्या है। एक बड़ा प्रसिद्ध भजन है, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा। यह गुरु के द्वारा शिष्य को दिए जाने वाले निर्देश की कथा है। गुरु शिष्य को पहली भिक्षा अन्न (मुद्रा भी इसका अनुवाद हो सकता है) की

लाने के लिए कहते हैं, परन्तु शिष्य को न गाँव में जाना है, न शहर में और किसी से माँगना भी नहीं है। फिर भी पर्याप्त लाना है। गुरु शिष्य को दूसरी भिक्षा माँस की लाने को कहते हैं, पर वे किसी भी प्राणी के पास जाने से मना कर देते हैं। शिष्य को न जीवित लाना है न मृत, परन्तु खप्पड़ भर कर लाना है। भजन इसी प्रकार आगे बढ़ता है। अन्त में वे शिष्य को कहते हैं कि उनके निर्देशों का अर्थ तो अत्यन्त गूढ़ है। अत: जो इस सारगर्भित पदों का अर्थ समझ सकेगा, वही शिष्य चतुर होगा। अतएव इन साधनाओं को समझने के लिए स्थूल अर्थ से स्तम्भित न होकर, इनके गूढ़ रहस्य को समझने के लिए गहरे में उतरना होगा।

जैसे तंत्र में दक्षिण और वाम दो मार्ग हैं, वैसे ही एक तीसरा मार्ग भी है। जिसे कौल मार्ग अथवा दक्षिण और वाम मार्गों का सम्मिश्रण कह सकते हैं। बीते दिनों में मिथिला (बिहार) और उड़ीसा में कौलमार्ग काफी प्रचलित था और कौलाचार ही वास्तविक तंत्र समझा जाता था। कौलाचार में दीक्षा कुल और परिवार के अन्दर ही दी जाती है। माँ पुत्र या पुत्री को दीक्षित करती है, फिर पुत्री अपने पति और बच्चों को दीक्षा देती है। यह अत्यन्त गोपनीय अभ्यास है, जिसे अब बहुत ही कम लोग जानते या सही अभ्यास करते हैं। देवघर में अनेक कौलमार्गी हैं। संभवत: जब मिथिला के ब्राह्मणों को ज्योतिर्लिंग की पूजा के लिए लाया गया, तो वे इस ज्ञान और विद्या को भी लेते आए। कौलमार्गी गृहस्थ हो सकता है, पर उसकी जीवन-शैली भिन्न होगी और उसकी चेतना साधना और आत्मानुभूति में ही समर्पित रहेगी।

बैद्यनाथ धाम की प्रमुख विशेषता, जिसका उल्लेख आवश्यक है, वह है श्रावण मास में लगने वाला वार्षिक काँवरिया मेला। ऐसी आस्था है कि संभवत: ज्योतिर्लिंग पर गंगाजल, फूल और बिल्वपत्र चढ़ाने और उनकी आराधना करने का यही शुभ समय है। यह विश्वास इतना प्रबल है कि करोड़ों श्रद्धालु, क्या धनी क्या गरीब, 104 किलोमीटर दूर अपने कलशों में गंगाजल ले, नंगे पाँव चलकर यहाँ आते हैं। यह गंगाजल सुल्तानगंज में लिया जाता है, क्योंकि देवघर से समीपतम गंगा यहीं हैं।

बाँस के एक डण्डे के दोनों ओर मिट्टी के कलश रस्सी में लटका कर काँवर बनाए जाते हैं। उन काँवरों को लेकर चलने वालों को काँवरिया कहते हैं। सुल्तानगंज से देवघर तक की यात्रा में काँवर को किसी भी स्थान पर भूमि

पर रखना वर्जित है। शिव के ज्योतिर्लिंग को रावण के द्वारा भूमि पर रख दिए जाने वाली भूल का ही यह स्मरण कराता है। स्थानीय प्रशासन के द्वारा व्यापक व्यवस्था की जाती है। जगह-जगह मार्ग पर विश्राम स्थल बनाए जाते हैं, आवश्यक सहायता के लिए रास्ते में गृह रक्षा वाहिनी को तैनात किया जाता है। चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था की जाती है। जैसे ही श्रावण मास में केसरिया परिधानों में सजे श्रद्धालु टेढ़े-मेढ़े रास्तों से 'बोल बम्' की ध्वनि करते हुए चल पड़ते हैं, सारा क्षेत्र एक बार जीवन्त हो उठता है।

देवघर में भी इस समय प्राण का संचार हो जाता है। सारा क्षेत्र शिव के इन अतिथियों (काँवरियों को शिव के अतिथि कहते हैं) के स्वागत-सत्कार में जुट जाता है। कोई भी काँवरिया बैद्यनाथ धाम में अपनी दृढ़ आस्था से असंतुष्ट या मोहभंग हो नहीं लौटता। ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति की कामना पूर्ण होती है। अत: ज्योतिर्लिंग की सेवा में जाते समय अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। अपने अज्ञानवश वस्तुत: जो आप नहीं चाहते, कहीं वही न माँग बैठें।

काँवरियों की एक विशिष्ट श्रेणी होती है, जिसे 'डाक बम्' कहा जाता है। अन्य काँवरिया जहाँ सवारी गाड़ी (पैंसेजर गाड़ी) की तरह हर स्थान पर रुकता चलता है, डाक बम् उसके विपरीत डाक गाड़ी (एक्सप्रेस ट्रेन) है। ये पूरी दूरी बिना कहीं रुके लगातार पूरी करते हैं। इनमें अभी तक की सर्वश्रेष्ठ एक 18 वर्षीया बालिका है, जिसने मात्र 12 घण्टे में 104 किलोमीटर की दूरी तय कर बाबा के चरणों में ही मोक्ष प्राप्त कर लिया।

वैसे देवघर और उसके आस-पास अनेक दर्शनीय पावन स्थल हैं, जिसमें वासुकीनाथ, जो देवघर से 25 किलोमीटर पूर्व में है, विशिष्ट और उल्लेखनीय है। श्री स्वामीजी वासुकीनाथ के विषय में कहते हैं कि यदि बैद्यनाथ धाम दीवानी कचहरी है, तो वासुकीनाथ फौजदारी कचहरी है। श्री स्वामीजी अपने एक शिष्य की कहानी बताते हैं कि उसे असाध्य चर्मरोग था, जिसके कारण वे दिनभर, चौबीसों घण्टे एक मसहरी में ही पड़े रहते थे, ताकि मक्खियाँ और कीड़े उनके संक्रामक और घाव वाले चमड़े पर न बैठें। सभी डॉक्टर और दवाएँ हार गई थीं।

वे श्री स्वामीजी के साथ वासुकीनाथ के अन्तिम आश्रय में इस संकल्प के साथ गए कि जब तक उन्हें भगवान शिव का आशीर्वाद नहीं मिलेगा, वे धरना दिए रहेंगे। वे मन्दिर के बाहर फर्श पर तीन रात्रि तक पड़े रहे। तीसरी

रात्रि में उन्हें स्वप्न में उस दवा का नाम मालूम हुआ जिससे वे रोग मुक्त होंगे और उस डॉक्टर का नाम मालूम हुआ जो वह दवा उन्हें देगा। बाद में वे पूर्णतया नीरोग हो गए। डॉक्टर ने भी उन्हें बताया कि भगवान वासुकीनाथ के द्वारा भेजे गए अनेक रोगियों की चिकित्सा उसने की है।

वासुकीनाथ में तो अनेक ऐसे चमत्कार हुए हैं कि उनकी गणना करना भी कठिन है। यहाँ शिव नागनाथ (सर्पों के राजा) के नाम से जाने जाते हैं। यह उनके अति शक्तिशाली पक्ष का साकार रूप है। सर्पों के राजा का रूप, ब्रह्माण्डीय चेतना को वशीभूत कर लेने का प्रतीक है। इस प्रकार वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्व शक्तिमान् हैं व ईश्वर में इन्हीं विशेषताओं को आरोपित करते हैं।

नागनाथ के सम्मान में श्रद्धालु सुल्तानगंज से वासुकीनाथ तक की दूरी पेट के बल रेंग कर पूरी करते हैं। यदि आपने इन्हें देखा है तो समझ सकते हैं कि ऐसा करना कितनी बड़ी तपस्या है। ये दण्डवत् करते जाने वाले साधु या तपस्वी नहीं, सामान्य गृहस्थ हैं, जिन्हें तपस्या करने का न तो अभ्यास है और न उसका कोई प्रशिक्षण ही उन्हें प्राप्त है। ये मात्र अपनी श्रद्धा और भक्ति के सहारे इसे पूरा करते हैं।

मन्दिर तो सादा है, पर इसका एकान्त परिवेश इसकी भव्यता और प्रेरणा को और भी बढ़ा देता है। कहा जाता है कि इस प्रदेश में राक्षस लोग रहते थे, जो इस क्षेत्र की अन्य जन-जातियों को परेशान करते थे। ये राक्षस एक समय तो इतने शक्तिशाली हो गये कि एक प्रधान जनजाति के राजा का ही अपहरण कर लिया। अपहृत राजा ने जब शिव स्मरण किया, तब वे पार्वती के साथ उसके सामने प्रकट हुए और उसे पाशुपत अस्त्र दिया, जिससे वह अजेय हो गया और समस्त राक्षसों का विनाश कर सका।

जनश्रुति यह भी है कि इस लिंग का वासुकी नाम के एक व्यक्ति को अचानक पता चला, जो जड़ी-बूटी खोजने के क्रम में इस पर आघात कर बैठा। जैसे ही उसने पत्थर पर आघात किया, उस पत्थर से रक्त बहने लगा। भयभीत वासुकी भगवान शिव की प्रार्थना और उनसे क्षमायाचना करने लगा। शिव ने न केवल उसे क्षमा कर दिया, वरन् वरदान दे दिया कि वह स्थान अब नागनाथ नहीं, वासुकी की भक्ति के कारण वासुकीनाथ के नाम से जाना जाएगा। वासुकीनाथ तांत्रिकों की साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समय-समय पर यहाँ अनेक तांत्रिक सिद्ध रह चुके हैं।

रिखिया का इतिहास

रिखिया नाम 'ऋषि' शब्द का अपभ्रंश है। किसी समय यह प्रदेश सघन वन था, जिसके आस-पास भी कोई घूमने-फिरने का साहस नहीं कर पाता था। परिवेश ने अनेक ऋषियों को आकृष्ट किया, क्योंकि वे अपनी साधना के अभ्यास के लिए एकान्त में रहना चाहते थे। इस लिए रिखिया वह स्थान है जहाँ ऋषि लोग रहते थे।

पाण्डिचेरी में अपने मिशन की स्थापना के पूर्व महर्षि अरविन्द भी यहाँ रहे थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इस क्षेत्र को विश्वविद्यालय के लिए पसन्द किया था, जो बाद में शान्ति निकेतन के नाम से बोलपुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित हुआ। महात्मा गाँधी का भी यहाँ एक आश्रम था, जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सभी बड़े-बड़े नेता आए थे। यहाँ के मुखिया श्री तारानाथ मुखर्जी जिनकी अवस्था अभी 98 वर्ष की है, यहाँ 19 वर्ष की अवस्था से ही अपने आदर्शों और सिद्धान्तों के अनुसरण में अपने अविभाज्य परिवार का सुख-वैभव छोड़कर रह रहे हैं। वे रिखिया का विगत 100 वर्षों का इतिहास पूरे विस्तार से बताते हैं। वे कहते हैं कि लगभग 40–50 वर्ष पहले एक संन्यासी, जिनका नाम भी सत्यानन्द था (रामकृष्ण मठ के स्वामी शिवानन्द के शिष्य), यहाँ एकान्त वास करने आये थे। यह भी एक विचित्र संयोग है। वे बड़े ही सक्रिय और सिद्धि प्राप्त संन्यासी थे। परन्तु इस स्थान पर साधना करने के लिए सबका परित्याग कर दिया था।

श्री पंच दशनाम परमहंस अलखबाड़ा

आज रिखिया एक छोटा कस्बा है, जिसमें अनेक छोटे गाँव हैं। उसमें एक पनियापगार भी है, जहाँ श्री स्वामीजी की साधना-स्थली है। श्री स्वामीजी ने एक बार कहा था कि साधु को अपना स्थान चुनते समय एक ही बात मन में रखनी चाहिए कि वहाँ पानी की प्रचुरता हो। सिर पर एक छप्पर से अधिक महत्त्वपूर्ण पानी की प्रचुरता होना है। अत: इस छोटे गाँव का नाम बड़ा ही सटीक है। स्थानीय बोली में पनियापगार का अर्थ होता है, 'पानी की प्रचुरता'।

पनियापगार में अवस्थित श्री स्वामीजी की साधना-स्थली का नाम श्री पंच दशनाम परमहंस अलखबाड़ा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी और गणेश श्री पंच हैं। इन्हीं पाँचों से श्री पंच दरबार गठित है और ये ही वैदिक परम्परा के

आधार-स्तम्भ हैं। समग्र ब्रह्माण्ड के क्रिया-कलाप, सृष्टि-पालन एवं संहार के ये ही नियंता हैं। ये पूर्णावतार हैं। इनके अंशावतार भी हैं, जो इनकी अपनी सृष्टि हैं, पर उनके कार्य सीमित हैं। श्री पंच और उनके सहायक वैदिक देव समुदाय के समस्त देवता और देवियाँ हैं। वे चेतना के विभिन्न स्तरों के प्रतीक हैं।

वैदिक और तांत्रिक परम्परा में यह सामान्य चलन है कि इन देवताओं को प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए प्रत्येक देवता या देवी के मन्त्रों, यन्त्रों, मण्डलों के रूप में अपने-अपने प्रतीक हैं। किसी देवता के आवाहन के लिए उनके प्रतीक का ध्यान करना ही पर्याप्त है। परमहंस अखाड़े के श्री पंचों के प्रतीक—शंख विष्णु का, कलश ब्रह्मा का, त्रिशूल महेश का है। देवी और गणेश के प्रतीक उनके अपने यंत्र हैं। यही परमहंस अखाड़े का चिह्न है।

'दशनाम' आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा स्थापित संन्यास परम्परा है। इसमें संन्यासियों के दस सम्प्रदाय आते हैं, जिनमें एक 'सरस्वती' भी है, जिसके अन्तर्गत श्री स्वामीजी हैं। सरस्वती समुदाय की विद्या और ज्ञान में निष्ठा है।

'परमहंस' श्री स्वामीजी को संन्यास दीक्षा के समय दी गई विद्या है। अपने गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के इस ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग उन्होंने अपने पर ही किया। उस समय भी उनको यह अत्यन्त स्वाभाविक जीवन-पद्धति लगी, परन्तु उनके श्रद्धेय गुरु ने आदेश दिया कि पहले योग विज्ञान को सिन्धु के आर-पार और द्वार-द्वार तक पहुँचाने का संकल्प पूरा करो और उसके पूरा हो जाने पर ही अपनी परमहंस जीवन-पद्धति की ओर कदम बढ़ाओ।

'अखाड़ा' का अर्थ है साधुओं का वास स्थान। परन्तु आदिगुरु शंकराचार्य या भगवान दत्तात्रेय के, जिन्होंने असंख्य संन्यासियों को दीक्षित किया और उन्हें विभिन्न सम्प्रदायों और संघों में सूत्रबद्ध किया, इतिवृत में इस शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। श्री स्वामीजी का कहना है संभवतः यह 'अलखबाड़ा' का ही परिवर्तित रूप है। इसका अर्थ है—पृथक् या अदृश्य घर, क्योंकि साधु बहुधा एकान्त स्थानों में ही रहते हैं। कुश्ती या शारीरिक व्यायाम सिखाने या अभ्यास करने के स्थान को भी अखाड़ा कहते हैं। नागा सम्प्रदाय ने ही, जो लड़ाकू साधुओं का समुदाय है, संभवतः इस शब्द को चलाया है, क्योंकि युद्ध कौशल उनके प्रशिक्षण का एक अंग है और वे जिस स्थान पर रहते हैं, और इस कला का अभ्यास करते हैं, उसे अखाड़ा कहते हैं। प्रत्येक

नागा साधु घुड़सवारी, तीरन्दाजी, भाला फेंकने में सिद्धहस्त होता है। इन कौशलों का उपयोग वे धर्म के उद्देश्यों की रक्षा हेतु करते हैं। यहाँ तक कि वे त्रिशूल का प्रयोग भी घातक अस्त्र के रूप में करते हैं। ऐसी धारणा है कि त्रिशूल उन्हें शिव से वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ है।

अखाड़ा आश्रम नहीं होता। आश्रम में तो श्रम किया जाता है, जहाँ संन्यासी अपने शरीर, मन, भावनाओं और आत्मा को परिशुद्ध बनाते हैं। जिस किसी को भी आध्यात्मिक आकांक्षा हो–संन्यासी या अन्य मनुष्यों के लिए इसका द्वार खुला रहता है। जीवन के उच्च ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रद्धालु लोग भी समय-समय पर रह सकते हैं। यहाँ योग और अन्य अध्यात्म विज्ञान की शिक्षा दी जाती है।

इससे भिन्न अखाड़े में संन्यासी, जिसने अपने को परिशुद्ध कर लिया है, अपने ज्ञान को संघटित करने और अध्यात्म के उच्चतर स्तरों को प्राप्त करने के लिए गति का संचय करते हैं। इन उपलब्धियों के लिए वे पृथक् और एकान्तवास चाहते हैं, जिससे कि उनके संकल्प या व्रत में व्यवधान न उपस्थित हो। इसी उद्देश्य से दर्शनार्थियों का अखाड़े में ठहरना वर्जित है। साधना की अवधि में साधु न उपदेश देते हैं, न दर्शन देते हैं और न दीक्षा देते हैं, इसलिए श्रद्धालु उनके साधना पथ में व्यवधान बन जाते हैं। श्री स्वामीजी कहते हैं कि दर्शनाभिलाषी श्रद्धालुओं का सतत् आगमन ही उनकी साधना में एकमात्र कठिनाई है। उन्हें शरीर, मन, भावना या आत्मा से कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वे सब आत्मानुभूति के पथ पर दृढ़तापूर्वक तत्पर हैं, पर दर्शनार्थियों का बराबर आते रहना उनकी साधना को भंग करता है।

श्री स्वामीजी कहते हैं, 'मुझे अब न तो किसी से कुछ कहना है और न किसी को कोई मार्गदर्शन देना है। विगत 27 वर्षों तक मैं सबके साथ रहा, उनके प्रश्नों के उत्तर दिए, आध्यात्मिक पथ पर उनकी सहायता की। अब मैं अपने उत्तरदायित्व समेट रहा हूँ। अब तक मैंने जो भी कहा है, ग्रहणशील लोग उसी से लाभान्वित होंगे। जो ग्रहणशील नहीं हैं, उन्हें अपने लिए नया मार्ग खोजना होगा।'

उनके कथन में जो निहित सत्य है, उसे हल्के ढंग से नहीं लिया जाना चाहिए। श्री स्वामीजी ने अपनी ओर से तो सब कुछ कह दिया है। कोई भी ऐसा विषय नहीं, जिसकी व्याख्या उन्होंने नहीं की हो। वे सारी बातें उनकी पुस्तकों में हैं। अब उनकी भूमिका सार्वभौम है। उन तक हम आत्मा के माध्यम

से पहुँच सकते हैं, शरीर या मन के माध्यम से नहीं। शरीर और मन का सम्बन्ध तो स्थूल है। गुरु-शिष्य का सच्चा सम्पर्क तो वहाँ होता है जहाँ आत्मा का संवाद होता है। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति उनके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आकुल हैं। संभवत: वे यह नहीं समझ पाते कि वास्तविक आध्यात्मिक उपलब्धि क्या है। जब गुरु भौतिक शरीर में न भी रहें, और शिष्य का अपने गुरु से संवाद होता रहे–यही है वास्तविक आध्यात्मिक उपलब्धि। हमें इसी के लिए प्रयास करना चाहिए, गुरु के साथ शिष्य का यही शाश्वत सम्बन्ध है।

अक्षर पुरश्चरण

साधना तो अब श्री स्वामीजी की जीवन विधा है, जिसमें सारा दिन ही बीत जाता है। यह मात्र कुछ घण्टों तक सीमित नहीं रहता। जब वे बैठे हों, उनके जीवन का हर पल और पक्ष साधना को समर्पित है और वह भी आवश्यकतानुसार परिवर्तित और पुनरानुकूलित होता रहता है। हम लोगों में से अधिकतर लोगों के लिए साधना का अर्थ क्या है? अपने आध्यात्मिक नवीनीकरण के लिए थोड़ी देर जीवन और उसकी अपेक्षाओं से अपने को अलग कर लेना। यह तो ठीक वैसा है, जैसे व्यक्ति पूरे सप्ताह गलत काम करे और सप्ताहान्त में एक दिन आत्मस्वीकृति द्वारा पाप प्रक्षालन कर पुन: अगले सप्ताह उन्हीं गलत कर्मों के लिए चल पड़े।

परन्तु जैसा दीखता है, सत्य वैसा नहीं। साधना के लिए व्यक्ति को दृढ़-प्रतिज्ञ, सामर्थ्यवान, साहसी और अनुशासित होना पड़ता है। प्रत्येक क्रिया और घटना को साधना के संदर्भ में देखा जाता है, अलग-अलग नहीं, केवल इसी स्थिति में साधना की परिणति आत्मानुभूति में होती है।

श्री स्वामीजी का जीवन महान् उपलब्धियों का इतिहास है। शिष्य की भूमिका में या गुरु की भूमिका में, प्रशासक के रूप में या योग और तंत्र के विशेषज्ञ के रूप में, वे हर क्षेत्र में अग्रणी रहे हैं, श्रेष्ठ रहे हैं। वे भिक्षु की तरह भी रहे हैं, और भूपाल की तरह भी। लक्ष्मी ने उन पर ऐश्वर्य की वर्षा की, सरस्वती ने सम्पूर्ण विद्याओं से विभूषित किया। काली ने ब्रह्माण्डीय चेतना से समृद्ध किया और माँ दुर्गा ने अपौरुषेय आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न किया। उन्होंने जो सृजन किया था, उसका एकदम परित्याग कर देवघर में इस अति संयमी ढंग से रहने की नितान्त रूप से कोई आवश्यकता नहीं थी।

जब श्री स्वामीजी ने संन्यास के लिए गृह-त्याग किया था, तब उनके अंदर गुरु-चरणों में आत्मानुभूति प्राप्त करने की उत्कट इच्छा थी। वह इच्छा वैभव एकत्र करने की न थी, क्योंकि जो अपना घर छोड़ा था, वहाँ भी लक्ष्मी की अपार कृपा थी। उनको न आश्रम निर्माण की इच्छा थी, न शिष्यों की मण्डली तैयार करने की और न यश-ख्याति प्राप्त करने की अभिलाषा थी। ये समस्त कार्य उन्होंने अपने गुरु के प्रति अपने कर्त्तव्य और सेवा की भावना से ही किए हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ कर्त्तव्य व दायित्व रहते हैं। व्यक्ति उन्हें छोड़े भी तो वे नहीं छोड़ते, कभी न कभी पकड़ ही लेते हैं। जो कर्त्तव्य संन्यासियों पर लागू होते हैं, वे हैं–देवऋण (ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य), पितृऋण (पूर्वजों के प्रति कर्त्तव्य) और गुरुऋण (गुरु के प्रति कर्त्तव्य)। श्री स्वामीजी का गुरुऋण शोध था–बिहार योग विद्यालय का निर्माण।

संन्यासी तत्त्वत: किसी का नहीं होता। वह तो सब कुछ का परित्याग कर संन्यास लेता है। उसका त्याग पूर्ण होता है। जिस दिन वह संन्यास लेता है, उसी दिन से उसका सम्पूर्ण अस्तित्व, शरीर, मन, भावनाएँ और आत्मा, गुरु और परमात्मा को अर्पित हो जाते हैं। जिस प्रकार कुत्ता दिन भर बेफिक्र सोया रहता है, परन्तु मालिक की पहली पुकार पर ही तत्क्षण तत्पर हो जाता है, उसी प्रकार विभिन्न कार्यों में व्यस्त संन्यासी आदेश के प्रति हर क्षण तत्पर और प्रस्तुत रहता है, चाहे आदेश मिले या न मिले। परन्तु जिस क्षण भी आदेश मिलता है, संन्यासी हाथ के कार्य को, चाहे कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, छोड़कर तैयार हो जाता है।

विगत वर्षों के श्री स्वामीजी के जीवन का यही सारांश है। अपने गुरु के आदेश और अपने इष्टदेव की प्रेरणा से उन्होंने बिहार योग विद्यालय का निर्माण किया। इस दिशा में उन्होंने जो कुछ किया था, अगला आदेश मिलते ही उन सबका त्याग कर दिया। श्री स्वामीजी कहते हैं, 'मैं केवल एक सेवक हूँ। आज यदि अन्य आदेश मिलता है, तो मैं यह सब भी छोड़ दूँगा। इसका कोई अर्थ नहीं है। किसी को अपने गुरु के अभाव पर दु:खी नहीं होना है। जिस दिन मैंने मुंगेर छोड़ा, उसी दिन गुरु की गरिमा भी उतार दी। यदि आपको आगे और मार्गदर्शन चाहिए तो आप मुंगेर जाइए या अन्य किसी साधु-महात्मा की खोज कीजिए। मेरे पास न आइए। मैं तो अब एक साधक हूँ।'

उनका कहना है, अखाड़ा यदि आश्रम के समान ही कार्य करे, जहाँ साधु श्रद्धालुओं को दर्शन देता है, उपदेश देता है, तब तो उन्हें मुंगेर में ही

रहना चाहिए था। अखाड़े का जीवन तो आश्रम से भिन्न होना चाहिए। यह तो नितान्त भिन्न एवं गूढ़ जीवन है। इसकी पूर्व अनुभूति के लिए व्यक्ति को अन्तर्मुखी और सतत् आत्मचैतन्य रहना होगा। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि आश्रम प्रशिक्षण स्थल है, जहाँ संन्यासी अपने को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप से तैयार करता है एवं अखाड़ा परीक्षण स्थल है, जहाँ धातु को जाँचा, परखा और आजमाया जाता है।

यह सत्य है आपने अखाड़े देखे होंगे जो ऐसे नहीं हैं। अधिकतर अखाड़े तो मठ या संस्था की तरह काम करते हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि जब अखाड़े के महात्मा गद्दी छोड़ते हैं, तब वहाँ कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति नहीं होता, जो अनुशासन बनाये रखने में सक्षम हो। कुछ अखाड़े सुदूर दुर्गम स्थानों पर हैं। वहाँ प्राय: साधु आते हैं, अपनी साधना के लिए, और बाद में फिर आबादियों में चले जाते हैं।

श्री स्वामीजी ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परम्परा को अपने ढंग से पुनर्जीवित किया है, क्योंकि एकान्त में ही योगी और महात्मा आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे महाकाव्यों और शास्त्रों में वर्णन है कि ऋषि-मुनियों, साधु-महात्माओं के आश्रम बीहड़ वनों या दुर्गम पर्वतों पर हुआ करते थे। ये आश्रम प्रकृति द्वारा छद्मावृत्त और छिपे रहते थे। यदा-कदा शिकार में निकले राजे-महाराजे संयोगवश उनका पता लगा लेते थे। पर जब महात्मा समाधि में रहते तो उनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता था, चाहे अतिथि कितने भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हों। तथापि, उस स्थान का, जहाँ महात्मा साधना कर रहे होते थे, दर्शन भी परम सौभाग्य का सूचक माना जाता था। भावना यही होती थी कि उनकी साधना-स्थली मात्र होने से वह भूमि पावन हो गई है। यह वही भावना है जो मंदिरों में प्रवेश करते समय मन में आती है। आपको भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं होता है, पर आप उनकी उपस्थिति को अपने हृदय में अनुभव करते हैं।

श्री स्वामीजी, क्या जाड़ा क्या गर्मी, सालों भर मुक्ताकाश के नीचे रहते हैं, केवल चातुर्मास के चार महीनों (जुलाई से अक्टूबर) में ही वे अपनी पर्णकुटी में पुरश्चरण करते हैं, शेष समय वे या तो अपनी धूनी के पास रहते हैं, जिसको महाकाल चिता धूनी कहा जाता है, या अपनी वेदी के पास रहते हैं, जहाँ पंचाग्नि विद्या सम्पन्न करते हैं। श्री स्वामीजी विनोद में कहते हैं कि वे विभिन्न ऋतुओं के विभिन्न कक्षों वाले राजाधिराज के समान रहते हैं।

श्री स्वामीजी जो मुख्य साधना करते हैं, वह है 'अक्षर पुरश्चरण', यद्यपि ऋतु के अनुसार उसका आधार भिन्न हो सकता है। उदाहरणार्थ, जाड़े में प्राणायाम के माध्यम से पुरश्चरण सम्पन्न होता है तो ग्रीष्म में पंचाग्नि साधना के माध्यम से, जो हमें तो ज्ञात नहीं, पर उनकी प्रासंगिक उक्तियों के अनुसार उच्चतर प्राणायाम पर आधारित है।

इस युग के लिए शास्त्रों में अक्षर पुरश्चरण की ही साधना विहित है। तंत्रों के अनुसार नाद, बिन्दु और कला ही ब्रह्माण्ड के तत्त्व और आधार हैं। इनके ही सिद्धान्तों पर यह साधना आधारित है। अक्षर पुरश्चरण यदि विशेषकर सिद्ध-महात्मा या तपस्वी के द्वारा किया जाए तो उससे अस्तित्व के अनेक स्तरों का शुद्धिकरण हो जाता है।

साधना के समय योगी देश-काल से परे रहता है, वह अनन्त में विचरण करता है। साधारण मनुष्य के लिए अज्ञात और अदृश्य विभिन्न क्षेत्रों को वह प्रभावित और पुनर्संचरित करता है। अत: यह परमावश्यक है कि साधना में प्रवेश करने से पूर्व सात्त्विक स्वभाव की प्राप्ति की जाए, जिससे सकारात्मक स्पन्दनों की अनुभूति हो सके। इस पवित्रता का अनुभव शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, सभी स्तरों पर हो सकता है। हम आध्यात्मिक और सकारात्मक रूप से उन्नत और अपौरुषेय अनुभव कर सकते हैं। अत: यद्यपि तपस्वी समाज से अलग रहता है, हम यह नहीं कह सकते कि वह समाज में कोई योगदान नहीं करता है। उसका योगदान सूक्ष्म हो सकता है। पर वही शाश्वत होता है और काल के प्रचण्ड प्रवाह में भी विद्यमान रहता है।

पंचाग्नि साधना

पंचाग्नि विद्या पाँच अग्नियों की तितिक्षा है। अग्नि देव के सम्मान में लकड़ी वाली चार धूनियाँ प्रज्वलित की जाती हैं और पाँचवीं तो स्वयं सूर्य ही हैं। बाहर की ये अग्नियाँ, अन्दर की पाँच अग्नियों–काम, क्रोध, लोभ, मद और मोह की प्रतीक हैं। श्री स्वामीजी कहते हैं कि जो अन्दर की पंचाग्नि को सहन कर सकता है, वही बाहर की पंचाग्नि को भी सहन कर सकता है अथवा इसके विपरीत भी।

इस विद्या का उल्लेख कठोपनिषद् में भी आता है, जहाँ मृत्यु के देवता यम ने बालक नचिकेता को समझाया है। इस विद्या का अनुष्ठान और धार्मिक

विधियाँ गोपनीय हैं। यह कुछ ही लोगों को मालूम है। साधक उच्च आध्यात्मिक क्षेत्रों का ज्ञान और अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है और साधना करने वाले योगी को अमरत्व प्राप्त होता है। यह विद्या उन्हीं के लिए अभीष्ट है जिनमें नचिकेता के समान पूर्ण वैराग्य हो। स्वामी शिवानन्द जी ने श्री स्वामीजी की प्रशस्ति में उनको नचिकेता के सदृश बताया है–

'इस कच्ची उम्र में ऐसा वैराग्य बिरले किसी-किसी में होता है। स्वामी सत्यानन्द नचिकेता तत्त्व से परिपूर्ण हैं। जो भी कार्य हाथ में लेते हैं, उसे आदर्श ढंग से पूर्ण करते हैं। वे अकेले चार व्यक्तियों जितना काम करते हैं, फिर भी कोई शिकायत नहीं करते। वे बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न एवं समर्थ भाषाविद् हैं, पर उतने ही विनम्र और निश्छल हैं– एक आदर्श साधक और निष्काम सेवक।'

शिवप्रिया पार्वती ने भगवान शिव को प्राप्त करने के लिए इस विद्या की साधना की थी। इसी कारण वे शिव की नित्य-अर्द्धांगिनी कहलाती हैं। अवधूत परमहंस भगवान दत्तात्रेय ने, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अवतार थे, पंचाग्नि साधना की थी। श्री रामकृष्ण परमहंस की अर्द्धांगिनी शारदा देवी ने भी यह साधना की थी।

कहते हैं कि पार्वती ने जब पंचाग्नि सेवन किया था, उस समय शिव का अखण्ड नाम-जप करते हुए उनको सतत् स्मरण करती रहीं। जलती हवा के झोंके चलते रहे, प्रचण्ड हवा से विशाल वृक्ष धराशायी होते रहे, पर वे शिव के ध्यान में अडिग रहीं। बाहरी बाधाएँ उन्हें विचलित न कर सकीं। जो व्यक्ति साधना में इसी प्रकार दृढ़तापूर्वक सस्थिर नहीं रहेगा, उसे काम, क्रोध, लोभ, मद या मोह का प्रबल प्रभंजन अचानक उठ कर आन्तरिक रूप से असंतुलित कर दे सकता है।

अखाड़े में प्रकृति की सर्वव्यापकता का स्पष्ट अनुभव होता है। पंचाग्नि साधना के समय सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और महत्त्वपूर्ण रूप से मौसम और वायु प्रभावी भूमिका निभाते हैं। अत: कतिपय आगमों के अनुसार यह साधना उन्हीं को अभीष्ट है, जिनका पंचतत्त्व पर नियंत्रण हो। रिखिया में ऋतुओं का रंग प्राय: बदलता रहता है, कभी-कभी तो घण्टे-घण्टे में। एक ही दिन में चारों ऋतुएँ दर्शन दे जायेंगी, तूफान तो मानो आपको अपने पंखों पर बिठा ले जाए। अत: जो योगी पंचाग्नि साधना करे, पहले वह पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश से सौहार्द्र स्थापित कर ले।

श्री स्वामीजी का रिखिया में पदार्पण

सबसे पहले श्री स्वामीजी रिखिया में 23 सितम्बर 1989 को आए। वह दिन भी आदर्श दिन था, जब रात और दिन बराबर थे, 12-12 घण्टे के। ऐसा वर्ष में दो बार ही होता है। उनका प्रथम अनुष्ठान आश्विन नवरात्र में 20 अक्टूबर 1989 को प्रारम्भ हुआ। अनुष्ठान के एक दिन पूर्व अखाड़े में जो भी संन्यासी उपस्थित थे, उन्हें बुलाकर श्री स्वामीजी ने एक भव्य दृश्य दिखलाया। गेरु रंग के सुपुष्ट 12 फीट लम्बे एक भुजंगराज अखाड़े की सम्पूर्ण भू-संपदा की परिक्रमा कर अखाड़े के मध्य में स्थित वृक्ष में अन्तर्धान हो गए। (इसे मात्र संयोग ही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस घटना का पूर्वाभास स्वप्न में ही मिल चुका था)। यह एक अत्यन्त शुभ संकेत था। अत: उसी स्थल पर स्वामी शिवानन्द जी व आदि शंकराचार्य की प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। श्री स्वामीजी को अपनी तीर्थयात्रा के क्रम में वासुकीनाथ में अपने गले में लिपटे नागनाथ के दर्शन हुए थे, जिन्होंने आशीष दिया था, 'चक्रवर्ती भव'।

महाकाल चिताधूनी

रिखिया में पदार्पण के तुरंत बाद श्री स्वामीजी ने धूनी प्रज्वलित की और उसे महाकाल चिताधूनी की संज्ञा दी। इस धूनी में केवल लकड़ी जलती है। अखाड़े में दो प्रकार की धूनियाँ हैं। वे हैं–तप धूनी और पूजा धूनी। तप धूनी में केवल लकड़ी जलती है और वह धूप हो या वर्षा, 24 घण्टे प्रज्वलित रहती है। यह तपस्या धूनी है, जिसमें सब कुछ भस्म हो जाता है, सब कुछ पावन हो जाता है। श्री स्वामीजी अपना भोजन इसी धूनी पर बनाते हैं।

दूसरी ओर पूजाधूनी में एक विशेष प्रकार का गोयठा (गाय के गोबर से बना) जलता है। यह धूनी केवल पुरश्चरण के समय प्रज्वलित की जाती है। इसमें धुआँ नहीं होता, एक विशेष प्रकार की सूक्ष्म सुगन्ध निकलती है, जो शुचिता प्रदान करती है। अखाड़े में लकड़ी और गोयठा ही प्रयुक्त होता है और श्री स्वामीजी विनोद में अपने को गोयठा परमहंस कहते हैं।

साधुओं में धूनी रमाने की बड़ी पुरानी परम्परा है। यह जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। श्री गोरखनाथ और भगवान दत्तात्रेय आदि अन्य महान् सिद्धों की धूनियों में चमत्कारी शक्तियाँ थीं और वे आज भी सुरक्षित हैं। ऐसा विश्वास है कि पवित्रता के कारण साधु की धूनी की भस्म शक्तिशाली होती है। ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि साधु जब एक बार धूनी प्रज्वलित करता

है तब अपनी सेवा और परिपोषण से धूनी को अनुप्राणित कर देता है। उसका सारा दिन धूनी के समक्ष व्यतीत होता है तथा अग्नि को ही साक्षी बना सभी क्रियाएँ करता है।

वैदिक और तांत्रिक परम्परा में समस्त सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक या आध्यात्मिक अनुष्ठानों में अग्नि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यहाँ तक कि विवाह के समय नव दम्पत्ति को पुरुष और पत्नी की संज्ञा अग्नि ही प्रदान करती है। जब सीता को लंका से मुक्त कराया गया, तब उन्हें भी अपनी मर्यादा प्रमाणित करने के लिए अग्नि में प्रवेश करना पड़ा था। आज जिस प्रकार न्यायालीय प्रक्रिया में भगवत गीता की शपथ ली जाती है कि साक्षी सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलेगा, उसी प्रकार लोग अग्नि की शपथ लेते थे। ऐसा निष्कपट विश्वास था कि अग्नि के सामने कोई न असत्य बोलेगा और न कोई कुकर्म करेगा।

योगी मन में इस भावना के साथ धूनी प्रज्वलित करता है कि धूनी उसके प्रत्येक विचार, वाणी और कर्म की साक्षी है। यदि वे सात्त्विक नहीं हैं, तो अग्नि की परीक्षा का सामना नहीं कर सकेंगे। व्यवहार में भी यह अखाड़े में प्रत्यक्ष हो गया, क्योंकि श्री स्वामीजी ने जैसे ही महाकाल चिताधूनी प्रज्वलित की, अखाड़े के सभी पक्षों ने स्वत: स्वरूप ग्रहण कर लिया।

अखाड़े की सभी वस्तुएँ अनुपम और बहुप्रयोजनीय हैं। उनका उपयोग पूजा और उपासना में, आत्म-रक्षा में, भोजन बनाने में, धूनी की देखभाल में और गायन के काम में भी होता है। कुछ तो मात्र अलंकरण के लिए हैं। कुछ का उपयोग साधना के समय या दूसरे को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने के समय होता है। इनका उपयोग हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता है, परन्तु परम्परानुसार साधु को इन्हें रखना है। वह इनकी विधिवत् पूजा करता है। इनमें भाला, धनुष-वाण, त्रिशूल, चिमटा, खप्पर, योग दण्ड, व्याघ्र-चर्म, मृग-चर्म, शंख, डमरू, नगाड़ा और परशुराम का परशु (फरसा) सम्मिलित हैं।

योगी की इस सम्पदा को कम नहीं समझना चाहिए। वेदों में ऋषियों द्वारा प्रयुक्त ऐसे मन्त्रों का उल्लेख है जिनके द्वारा एक कुश की नोंक को भी शक्तिशाली आयुध में परिणत किया जा सकता है। योगी अपने त्रिशूल, चिमटा व अन्य अस्त्रों के द्वारा ऐसा कर सकता है। ऐसे भी सिद्ध नागाओं के विषय में जानकारी है जो अपने त्रिशूल, योग-दण्ड या अन्य किसी चीज से

अगर किसी चीज पर आघात कर दें तो उसे कैंसर भी हो सकता है, या किसी को कोई भौतिक उपलब्धि हो जाए, या किसी को कोई आध्यात्मिक शक्ति ही प्राप्त हो जाए।

इन शस्त्रों को सत्संग के कारण अपराजेयता प्राप्त हो जाती है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि मात्र विष्णु के सतत् सत्संग के कारण शंख एक समादृत प्रतीक बन गया है। सत्संग का अर्थ है–'सत्य का साहचर्य' और संभवत: यही आध्यात्मिक रूपान्तरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निमित्त है। सत्संग के द्वारा हमारे आध्यात्मिक संस्कारों का पोषण और रूपान्तरण होता है। इसी प्रकार साधुओं की चीजें सतत् प्राप्त सत्संग के द्वारा रूपान्तरित हो जाती हैं।

अखाड़े में डमरू और शंख का ही अधिकाधिक उपयोग होता है। डमरू शिव का प्रतिनिधित्व करता है तथा शंख विष्णु का प्रतीक है। श्री स्वामीजी अपनी साधना डमरू की गड़गड़ाहट और शंखनाद से प्रारम्भ करते हैं। डमरू की आवाज से तम का विनाश होता है और शंख ध्वनि से सत्त्व की जागृति होती है। प्रतिदिन 4 बजे ब्रह्म मुहूर्त्त में रुद्राक्ष वृक्ष की पूजा के लिए डमरू और तुलसी माई की पूजा के निमित्त शंख का प्रयोग होता है।

अखाड़े की इष्टदेवी तुलसी माई हैं। सभी लोकों की अधिष्ठात्री हितैषणी तुलसी माई हैं। श्री स्वामीजी स्वयं प्रतिदिन तुलसी माई को स्नान कराते हैं, पूजा करते हैं। शास्त्रों में कुछ वृक्षों का भी वर्णन आता है, जो देवताओं के निवास हैं। प्रत्येक देवता का एक प्रिय वृक्ष है। इन वृक्षों से दैवीगुण विकीर्ण होते हैं। जिस प्रकार जीव विज्ञान वाले फल और ओषधि वृक्षों की बातें बताते हैं, शास्त्र कुछ ऐसे वृक्षों के विषय में बताते हैं जो देवताओं का अवतरण के लिए आवाहन करते हैं। ऐसे वृक्ष वायुमण्डल की शुचिता में अत्यधिक वृद्धि करते हैं और परिवेश में आध्यात्मिक स्पन्दन की वृद्धि करते हैं। अखाड़े में ऐसे ही वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिदिन पूजा होती है।

बाल कृष्ण के विषय में एक बड़ी मार्मिक कथा है। उन्होंने अपनी माता को इन्द्र की भक्ति में यज्ञ करने से मना किया। उन्होंने पूछा कि वे इन्द्र की पूजा क्यों करती हैं? इन्द्र उसके योग्य तो हैं नहीं। वे भीषण क्रोधी और प्रतिशोध की भावना वाले हैं। यदि उन्हें छेड़ दिया जाए तो वे ॠतुओं को अवरुद्ध कर अकाल और विनाश ला देंगे। आप वृक्षों की पूजा कीजिए, जो बिना माँगे खाने को फल देते हैं और आपके ईंधन के लिए लकड़ी।

आप भूमि की पूजा कीजिए, जो आपके भोजन के लिए अन्न उपजाने हेतु मिट्टी देती हैं तथा गाय, जो पीने के लिए दूध देती है। ये सब भक्ति के योग्य हैं।

संस्कृत में पेड़ों की संज्ञा वृक्ष है। वे वस्तुतः हमारे लिए समादरणीय हैं, क्योंकि उन पर हम अधिक से अधिक निर्भर हैं। किसी वृक्ष में दैवी आवाहन के अनुष्ठान को 'देवता आवाहन' कहते हैं। इसके उपरान्त तो ये वृक्ष योगी की साधना में रक्षक शक्ति बन उसकी सहायता करते हैं। योगी को अपनी साधना के मार्ग में भौतिक क्षेत्रों का ही सामना नहीं करना पड़ता, सूक्ष्म और अतीन्द्रिय स्तरों पर भी अनेक गहरे और उत्तुंग क्षेत्र हैं। इन स्तरों पर भी गौण शक्तियाँ रहती हैं, जिनका सामना करना दुष्कर होता है, क्योंकि उनमें असीमित सामर्थ्य होता है। योगी जब इस मन का अतिक्रमण कर अनन्त में ऊपर चढ़ता है, तब वह इन शक्तियों की चपेट में आसानी से आ सकता है। तब दैवी शक्तियाँ उसकी साधना में सहायता के लिए दौड़ पड़ती हैं। यही सिद्धान्त यन्त्र और मण्डलों की पूजा में लागू होता है। यहाँ भी देवतागण भूपुर अथवा बाह्य सुरक्षात्मक आवरण में नकारात्मक शक्तियों के प्रतिरोध हेतु अवस्थित हो जाते हैं।

श्री स्वामीजी अखाड़े में अकेले रहते हैं। दो उग्र कुत्ते ही उनके एकमात्र साथी हैं। कुत्ता भैरव का वाहन माना जाता है। जिस प्रकार पक्षीराज गरुड़ विष्णु के और वृषभ नन्दी शिव के वाहन हैं, उसी प्रकार भैरव के वाहन कुत्ते हैं। सभी महत्त्वपूर्ण शिव मन्दिरों की आखिरी परिक्रमा में आप भैरवनाथ के दर्शन कर सकते हैं। प्रथम आपको सुरक्षा पदाधिकारी का ही अभिवादन करना पड़ेगा, उसके बाद ही भगवान शिव का। श्री स्वामीजी के इन दो सुरक्षा पदाधिकारियों के नाम भोले और भैरवी हैं। वे चौबीस घण्टे श्री स्वामीजी की, उनकी धूनी और मण्डप की सुरक्षा करते हैं। यदि कोई उस क्षेत्र में प्रवेश करने का दुस्साहस करे तो कठिन आपत्ति प्रकट करते हैं। डमरू और शंख की ध्वनि सुनते ही उन्हें आभास हो जाता है कि श्री स्वामीजी ने साधना प्रारम्भ कर दी है। वे शीघ्र उनके पास दौड़ पड़ते हैं और अपना (दैनिक मिलने वाले) प्रथागत बिस्कुट लेने के बाद वेदी के पास अवस्थित हो जाते हैं। वे श्री स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य किसी के हाथ से भोजन नहीं लेते और चौबीस घण्टे अपनी ड्यूटी पर सन्नद्ध रहते हैं। वे बड़े सुन्दर और प्रिय हैं। सतर्कता में तो कोई अन्य पशु कुत्ते की तुलना में ऊपर आ नहीं सकता। वे जितने कर्त्तव्यनिष्ठ

हैं, उतने ही स्वामीभक्त, पर उनका सर्वोत्तम अनुकरणीय गुण है, उनका भोलापन। उनमें राग-द्वेष तो लेशमात्र भी नहीं है। उनके स्वामी एक ही हैं। इसीलिए श्री स्वामीजी कभी-कभी कहते हैं कि शिष्य को कुत्ते के समान होना चाहिए – स्वामीभक्त, आज्ञाकारी, और एक स्वामी का सेवक। निश्चय ही भोले और भैरवी के कोई पुण्य कर्म अवशेष होंगे कि उनका ही चयन श्री स्वामीजी की सेवा के लिए हुआ है।

परमहंस जीवनशैली

यहाँ अखाड़े में श्री स्वामीजी की जीवनशैली में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। उन्होंने गेरु वस्त्रों को त्याग कर कौपीन धारण कर लिया है। साधु के जीवन में यही प्रमाण चिह्न है कि वैराग्य और विरक्ति उसके स्वाभाविक अवयव हैं। शास्त्रों के अनुसार जो कौपीन और भिक्षापात्र धारण कर ले, वह साक्षात् शिव ही है। ऐसा कहा जाता है कि जो शिष्य गुरु के कौपीन स्पर्श कर ले उसे तीन वरदान प्राप्त हो जाते हैं, उसे मुक्ति प्राप्त हो जा सकती है। श्री स्वामीजी कहते हैं कि वह स्थिति भी आएगी, जब वे कौपीन का भी त्याग कर देंगे।

अखाड़े में आने के बाद श्री स्वामीजी ने उसके बाहर चरण नहीं रखा। वे कहते हैं, 'मैं यहाँ परमहंस के समान रहूँगा, जिसे दुनिया से कोई मतलब नहीं।' परमहंस नितान्त रूप से न्यूनतम भौतिक सुविधाओं में रहता है। उसकी शय्या नंगी दूब और वस्त्र उसकी त्वचा। वह अल्पाहारी होता है तथा अपना सादा भोजन स्वयं बनाता है। वह उपदेश, ज्ञान या दीक्षा नहीं देता, अपने को बड़े महात्मा की तरह प्रदर्शित भी नहीं करता, वह तो जनजीवन की चकाचौंध से दूर रहता है। इस भाव में यह औचित्यपूर्ण है कि परमहंस या जिन्हें परमहंस चेतना प्राप्त हो गई है, दैवी गुणों से सम्पन्न हो जाते हैं। तथापि ये सिद्धियाँ प्रदर्शन अथवा अर्थोपार्जन या भीड़ जुटाने के लिए नहीं हैं। ये तो आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हैं।

नारद परिव्राजकोपनिषद् में कहा गया है–

संसार में परमहंस भिक्षु साधु बिरले हैं। यदि कोई है, तो नित्य शुद्ध है। वह एक अकेला पुरुष है जिसकी महिमा वेदों ने गायी है। उस महान् महापुरुष का मन मुझमें रहता है। मैं भी केवल उसी में रहता हूँ। वह नित्य संतोषी है। वह शीत-ताप, सुख-दु:ख, मान-अपमान से अप्रभावित रहता है। वह अनादर और क्रोध सहता है। वह छ: मानवीय दुर्बलताओं (क्षुधा, तृष्णा, शोक और

भ्रान्ति तथा जरा और मृत्यु) से रहित होता है, और छः गुण-धर्मों (शरीर, जन्म, अस्तित्व, परिवर्तन, वृद्धि, नाश और मृत्यु के भय) से मुक्त होता है। वह वयोवृद्धत्व या अन्य हस्तक्षेपों से मुक्त रहता है। आत्मा के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं देखता। निर्वस्त्र, किसी के समक्ष झुकता नहीं, न स्वाहा का उच्चारण करता है न स्वधा का, निन्दा स्तुति से परे रहता है, मंत्र और धर्मशास्त्र का आश्रय नहीं लेता, परमेश्वर के अतिरिक्त उद्देश्यों हेतु या उनके अभाव से किसी देवता का ध्यान नहीं करता, सम्पूर्ण क्रियाएँ समाप्त कर, सच्चिदानन्द की चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थित एक परमानन्द में मस्त, ब्रह्म-प्रभव पर सदा ध्यानस्थ, कि वह ब्रह्म है, इस प्रकार अपने को पूर्ण बनाता है; ऐसा होता है परमहंस भिक्षु साधु।

संन्यास की चार अवस्थाएँ होती हैं– बहूदक, कुटीचक, हंस और परमहंस। बहूदक का मतलब वह अवस्था जब संन्यासी अपने गुरु की सेवा में शिष्य रूप में रहे। गुरु सेवा के उपरान्त जब वह परिव्राजक जीवन में प्रवेश करता है तब उसे कुटीचक कहते हैं। हंस की अवस्था में वह अपने गुरु के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसार से सम्पर्क करता है, परन्तु स्वयं को निष्कलुष रखते हुए, जैसे हंस जल में तैरते हुए भी जल से भींगता नहीं। परमहंस वह अन्तिम अवस्था है, जो उसकी आध्यात्मिक उपलब्धियों की चरम परणति है।

परमहंस निस्संदेह रूप से संन्यासियों की एक श्रेणी है, जिसमें उन्हें दीक्षित किया जाता है, पर अधिक महत्त्वपूर्ण रूप से वह चेतना का स्तर है। प्रत्येक परमहंस, जिनसे आप मिलें, संभव है चेतना के उस स्तर को प्राप्त न कर पाये हों, परन्तु परम्परा में दीक्षित होने से ही उन्होंने कम-से-कम सही दिशा में चलना तो प्रारंभ कर दिया है। अनेक परमहंसों ने इस स्तर को प्राप्त किया है, पर उनकी संख्या अधिक नहीं है। काफी लोग तो बिना परमहंस चेतना को प्राप्त किए भी परम्परागत आचरण संहिता का पालन करते हैं और कठोरता से सभी नियमों के अनुसार चलते हैं।

जो उस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, वे परम्परागत सीमाओं में नहीं बँधते, वे तो मुक्तात्मा हैं। फिर भी वे परम्परा के महत्त्व को अस्वीकार कभी नहीं करते, क्योंकि वे समझते हैं कि परम्पराहीन समाज तथा अव्यवस्था अन्ततोगत्वा विनाश को प्राप्त होते हैं। आज स्वघोषित साधुओं की भरमार है, पर यदि हम ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि उनका लक्ष्य आध्यात्मिक न होकर मात्र भौतिक है। अधिकतर तो संन्यास को जीविका मानते हैं। जब

व्यक्ति परम्परा को भंग करता है, तब ऐसा ही होता है। संन्यास परम्परा की यह अपेक्षा है कि व्यक्ति को बारह वर्षों तक गुरु के निर्देश में प्रशिक्षण लेना है। उसके बाद ही जो उसने सीखा है, उसका अपने पर प्रयोग करते हुए और अपने सामर्थ्य का परीक्षण करते हुए स्वत: परिव्रजन करता है। जब वह आध्यात्मिक जीवन के प्रति समर्पण में दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है, तब किसी एक स्थान पर टिकता है। उस अध्यात्म विज्ञान का, जो उसने सीखा और पक्का किया है, प्रचार करता है। समाज की यह सेवा निष्काम भाव से होती है। जब यह कर्म पूरा हो जाता है, तब वह एकान्तवासी हो जाता है।

काफी लोग प्रश्न करते हैं कि श्री स्वामीजी को इस साधना और कठोरता में रहने की क्या आवश्यकता है, जब उन्होंने अपने आध्यात्मिक सामर्थ्य को प्रमाणित कर ही दिया है। परन्तु श्री स्वामीजी का उत्तर है कि यह जीवन का अत्युत्तम मार्ग होने के अतिरिक्त अत्यधिक परितोषदायक भी है। इसके साथ ही उनका सोचना है कि यदि वे आदर्श प्रस्तुत नहीं करते हैं, तो भविष्य में आने वाले संन्यासी इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य अनुशासन का पालन किए बिना ही अपने को परमहंस घोषित करने की छूट पा जायेंगे। यह तो उनकी असीम करुणा और कृपा है कि भविष्य में सच्चे संन्यासियों के लिए अनुसरण का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

परम्परा के अनुसार परमहंस भिक्षा पर ही रहते हैं। वे दक्षिणा ग्रहण नहीं करते। दोनों में बड़ा सूक्ष्म अंतर है। दक्षिणा वह अर्पण है जो भक्त किसी साधु को निवेदित करना चाहता है। यह अर्पण भले ही उसके काम का हो या न हो, उसे स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु भिक्षा साधु भक्त से अपनी जरूरत के अनुसार माँगता है—न उससे अधिक न उससे कम। यही अपरिग्रह साधना है—भौतिक पदार्थों का नि:स्वत्व, जो साधु के लिए अनिवार्य है।

परमहंस ईश्वरीय हर्षातिरेक के आलिंगन में रहता है। उसकी चेतना अत्यन्त परिशुद्ध रहती है। उसे वह स्वेच्छानुसार नियंत्रित करने में सक्षम होता है तथा एक ही समय में अनेक स्थलों पर उसे प्रवर्तित कर सकता है। उसमें जीवन के द्वन्द्वों—सुख-दु:ख, अच्छा-बुरा आदि का संतुलित बोध परिलक्षित होता है। इन सबके प्रति वह मात्र साक्षी रहता है। ऐसा ही व्यक्ति अमरत्व प्राप्त कर लेता है। ऐसी ही आत्मा अमर हो जाती है।

महान् महाकाव्य महाभारत में परमहंस का वर्णन एक अत्युच्च तपस्वी के रूप में किया है, जिसने निराकार साधना के द्वारा अपनी इन्द्रियों को अपने

वश में कर लिया हो। निराकार साधना जैसी दु:साध्य कला में सिद्धि प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है। किसी प्रतीक पर ध्यान करने के प्रत्यय से तो हम अवगत हैं। यद्यपि देखने में यह कठिन लगता है, फिर भी निराकार ध्यान से तो बहुत ही अधिक सरल है। पर निराकार ध्यान तो एक कल्पित भाव पर या शून्य पर ध्यान करने के समान है। जिस वस्तु की कोई आकृति न हो, उस पर ध्यान करना ही निराकार ध्यान है। यदि आप अपने मन के साथ-साथ अपनी सम्पूर्ण चेतना को, जो आपके भीतर क्षुब्ध रहती है, संभालने में दक्ष नहीं हैं, तो आप चित्त-विक्षेप में ही खो जायेंगे।

इसके अतिरिक्त ध्यान का यह स्वरूप उच्च योग का एक अत्यन्त उच्च स्तर है, क्योंकि इन्द्रिय निग्रह से इसकी उपलब्धि असंभव है। इन्द्रिय निग्रह इन्द्रियों का दमन नहीं है। दमन के द्वारा तो इन्द्रियाँ वशीभूत हो भी नहीं सकतीं। इससे अपने व्यक्तित्व और व्यवहार में ही विकृति आ जाएगी।

इन्द्रियों का नियंत्रण अग्नि तत्त्व के द्वारा होता है। एक छोटी-सी चिनगारी से भी यह प्रज्वलित हो, अन्दर में जोरों से भड़क उठती है। आग को दबाना तो बारूदी सुरंग से खिलवाड़ करना है। अत: जब यह कहा जाता है कि परमहंस ने इन्द्रिय निग्रह प्राप्त कर लिया है, तब इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसका दमन कर दिया है, वरन् उस अग्नि का सामना किया है और शरीर, मन, भावना तथा आत्मा पर उसके प्रभावों का अतिक्रमण कर लिया है।

ठीक इसी कारण 'श्मशान साधना' (जो साधना श्मशान में की जाए), 'लता साधना' (जो साधना कुमारी कन्या के साथ की जाए), 'अघोर साधना' (नरमाँस, रक्त, विष्ठा भोजन) योगियों के लिए विहित की गई है कि वे अपनी थाह लगा सकें कि किस सीमा तक उन्होंने अपने पर अधिकार प्राप्त किया है। ये साधनाएँ काला जादू या व्यभिचार नहीं हैं। ऐसा लग सकता है, पर यह तो जिनको समझने का ज्ञान नहीं, वैसे दर्शकों का दृष्टिकोण मात्र है।

अब विचार कीजिए कि एक परमहंस को किस प्रकार का ज्ञान चाहिए। 'पातंजल योग सूत्र' में लिखा है कि मन पाँच वृत्तियों पर, जिनमें कुछ दु:खद हैं और कुछ नहीं, आधारित है या अपनी सहायता के लिए उनको रखता है। जब इन पाँच वृत्तियों का निरोध हो जाता है, तब मन ही विलीन हो जाता है, परन्तु मन का विलयन ही अन्तिम लक्ष्य नहीं है, क्योंकि मन के विलयन के साथ ही चेतना समाप्त हो जाती है। एक कदम और आगे बढ़ने के लिए मन

के विलयन के बावजूद आन्तरिक चेतना को बनाए रखना पड़ता है। यह एक महान् उपलब्धि है तथा एक परमहंस उस स्तर को प्राप्त कर चुका है, ऐसा माना जाता है। निरुक्त के अनुसार परमहंस का अर्थ है–सर्वोच्च हंस। यह शास्त्रों में सभी पदार्थों का सार तत्त्व निकाल लेने की क्षमता वाले के लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। हंस जल और दूध के मिश्रण से दूध अलग कर लेता है। एक परमहंस में भी यह गुण होता है। इसके अतिरिक्त हंस चेतना या परिशुद्ध ज्ञान का प्रतीक भी है। इसलिए कहा जाता है कि परमहंस परा ज्ञान में रहता है। यह एक असाधारण अवस्था है। यह हममें से अधिकतर के अनुभव की बात तो दूर, हमारी कल्पना के भी परे है।

हम सब नश्वर चेतना हैं, जो नष्ट हो जाती है और एक अनश्वर चेतना जो शाश्वत है, रहती है। यही शाश्वत चेतना सभी सजीव (मानवों सहित) और निर्जीव चीजों में विभिन्न मात्रा में परिलक्षित होती है। विकसित आत्माओं में यह ज्योति और कान्ति के रूप में व्यक्त होती है और उनके चारों ओर दिव्य वातावरण का निर्माण करती है। यही अनश्वर चेतना मृत्यु के उपरान्त आपकी अनुभूति का निर्धारण करती है। यदि आपने इसे अपने जीवन काल में जाग्रत करने का यत्न नहीं किया तो मृत्यु के बाद आपका प्रारब्ध ही प्रबल हो जाता है, पर यदि आपने इसे जाग्रत कर लिया है तो जीवन में और मृत्यु के बाद भी आप अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करेंगे। इसी कारण योगी, सिद्ध और महात्मा अपनी नश्वर काया के परित्याग के बाद भी हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

ऐसा व्यक्ति जो भी कार्य करता है, वह दैवी गुणों और उद्देश्यों से प्रेरित होगा। इसका कारण है कि उसके संस्कार भस्म हो गए रहते हैं। वह मात्र दैवी इच्छा की पूर्ति हेतु जीवित रहता है। इस प्रकार वह दैवीशक्ति को परावर्तित व विकसित करता है। वे मनुष्यवत् व्यवहार करेंगे, मनुष्यवत् दीख पड़ेंगे, परन्तु चाहे वे जो भी करें, असाधारण मनुष्य के समान रहेंगे। राम वैसे पुरुष थे, कृष्ण भी वैसे ही थे। हम अच्छी तरह जानते हैं कि वे लोग हमारी तरह ही पृथ्वी पर विचरण करते थे। उन्होंने सम्पूर्ण मानव जीवन में हमारी तरह दुःख और सुख को भोगा, फिर भी वे ईश्वर के समान आज भी समादृत हैं। उसका कारण है कि उनके प्रत्येक कार्य में दैवी ओज प्रस्फुटित होता रहा। उन्हीं कार्यों के कारण आज सदियों बाद भी समझा जाता है कि उनका पृथ्वी पर अवतरण दैवी उद्देश्यों से हुआ था।

ये दिव्य अवतार और प्रबुद्ध आत्माएँ भावी पीढ़ियों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर उनका मार्ग प्रशस्त करती हैं। संकट की स्थिति में हम उनसे प्रेरणा ले सकते हैं। श्री स्वामीजी ने जो आदर्श उपस्थित किया है, हम उसकी स्पर्धा तो नहीं कर सकते, पर उसकी प्राप्ति की अभिलाषा तो कर ही सकते हैं।

श्री स्वामीजी में बाल्यावस्था के प्रारम्भिक दिनों से ही उत्कट वैराग्य के कारण विलक्षण प्रतिभा प्रकट होने लगी थी। उनकी उपलब्धियाँ संन्यास और वैराग्य के सौन्दर्य को प्राप्त करने के लक्ष्य से उनको मोड़ न सकीं। किसी भी परिस्थिति में सहज और अन्तरंग रूप से रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति उनमें सदैव परिलक्षित हुई है। जब वे बिहार योग विद्यालय के अधिष्ठाता थे और विश्व के कोने-कोने की सहस्रों आत्माओं को जीवन में, और जीवन के पार भी पूर्णता के प्रयास में दिशा-निर्देश करते हुए भी नितान्त सहज और अनिंद्य रहे। आज भी गुरु गरिमा की चकाचौंध और मोहकता से बहुत दूर तपस्वी के रूप में भी उतना ही उत्साह और सहजता उनमें परिलक्षित होती है। ऐसा गुरु पाना सामान्य नहीं जो अपने जीवनकाल में अपनी गद्‌दी का परित्याग कर अपने उत्तराधिकारी को प्रतिष्ठित कर दे। ऐसा कोई उदाहरण तो हमें स्मरण भी नहीं आता। फिर भी श्री स्वामीजी ने यह कर दिया है, क्योंकि दिव्यपथ पर उनका लक्ष्य दृढ़तापूर्वक निर्धारित था।

स्वामी धर्मशक्ति के
भाव-सुमन



जय-जय-जय सत्यम्

(गंगोत्री यात्रा के समय वापसी में, गंगा दशहरा के दिन उत्तरकाशी में मन के भावनात्मक उद्‌गार)

हमने देखा औ’ पहचाना।
इस दिव्य-हृदय संन्यासी को ॥
सूर्य की ज्योति चमकती मुख पर।
चन्द्रमा की शान्तिदायक शीतलता॥
पावन गंगा की अमृतमय वाणी।
फूलों की मोह-मनहर-मुस्कान ॥ 1 ॥
विश्व बंधुत्व की अमर भावना।
प्रार्थना-जप-कीर्तन के उच्च विचार॥
अन्दर-बाहर जन-जीवन में।
रामकृष्ण गुरु जय-जय कार॥ 2 ॥
धन्य धन्य जय जय अल्मोड़ा।
जय-जय-जय सत्यम् सन्त महान् ॥
आलोकित हुआ विश्व का कोना।
गा रहा है यही अलौकिक गान ॥ 3 ॥
मैंने भी देखा और पहचाना।
अध्यात्म रत्न संन्यासी को ॥
मेरे पूज्य श्री पिता-गुरु-स्वामी।
स्वीकृत कीजिए प्रणाम नमामि ॥ 4 ॥

9 जून 1956

दीपक तुम्हीं जलाओगे

(8 सितम्बर 1956 को तेज बुखार व बेहोशी में स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन, आशीष व विशेष अनुभव होने पर)

कैसा सुन्दर समय सुहाना ...
सबने 'सत्यम्' को पहचाना ...
आज जगत् में साधु-संत ने,
ठग कौशल का जाल बिछाया।
भोली-भाली माँ-बहनों को,
बात-बात में है भरमाया ॥ 1 ॥

देख जगत् की मृग मारीचिका,
'सत्यानन्द' भये बेहाल।
धोखे का परदा फाड़ने का,
स्वामीजी ने किया विचार ॥ 2 ॥

दूर हिमालय की चोटी से,
करुणाकर ने जन व्यथा जानी।
छोड़ दिया गुरु चरण कमल को,
छोड़ दिया माँ गंगा का पानी ॥ 3 ॥

जिन चरणों के वे भ्रमर बने थे,
जिन सन्त पर वे न्योछावर थे।
उनसे मांगा यही वरदान इन्होंने,
जगत् में सत्य धर्म हो सार ॥ 4 ॥

एक ही हो धर्म-व्रत एक ही प्रभु नाम,
ऊँच-नीच और छुआ-छूत का।
पाप-पुण्य का नहीं यहाँ कुछ काम,
हम सब एक पिता की हैं सन्तान ॥ 5 ॥

कहा बिहँस गुरुदेव ने,
दीपक तुम्हीं जलाओगे।
सत्य-धर्म को आगे करके,
अलख निरंजन पाओगे ॥ 6 ॥

10 सितम्बर 1956

भावाञ्जलि

सुनते हैं प्रभु राम हुए थे, देखा नहीं कृष्ण को कभी।
राम और कृष्ण के सभी गुण गाते हैं ॥

इन्द्र के वैभव को, विश्वामित्र की तपस्या को।
किसी ने देखा नहीं, ग्रंथ ही बताते हैं॥

घर-द्वार छोड़ा, सर्वस्व छोड़, सन्त शिवानन्द हुए।
राह सत्य की बताते, जगत् गुरु कहाते हैं॥

मान सरोवर की राह में 'धर्मेन्द्र' सूर्य का उदय हुआ।
छोड़ दिया मोह-माया-ममता, गुरु चरणों में नमन किया॥

गुरु ने देखा औ' पहचाना, स्वामी 'सत्य-आनन्द' को।
दिया यही आशीष, देवदूत सत्यम्, जग को प्रकाश दो॥

25 दिसम्बर 1956

वन्दना

(गुरु बनाने की उत्कण्ठा, प्रार्थना ...गुरु बनने से बार-बार इंकार, पर वंदना)

मेरे गुरु मेरे स्वामी
ओ जीवन के अंतर्यामी
तुम जान रहे हो या
हो प्रभु भोले अनजान

कैसा उठ रहा तूफान
मिटा रहा मेरी मुस्कान
गुरु तो मैंने मान लिया है
कुछ दोगे यह भी जान लिया है

ओ भूले-भटकों के मार्ग बन्धु
कैसा है यह दण्ड तुम्हारा

हरे-भरे इस जीवन में
नीरसता का साम्राज्य देख

जीवन को हरा-भरा बनाया
हृदय कमल का फूल खिलाया
इसे सूखते देख सकोगे?
क्या इसीलिए बने हो माली?

संसार सागर है अथाह
साथी मेरा है अनजान
हमें डूबते देख सकोगे?
क्या इसीलिए बने हो माँझी?

मेरे राम, मेरे श्याम
मेरे पथ-प्रदर्शक महान्!
बसन्त पर छायेगा तूफान
देख सकोगे बन अनजान?

इस तन को तुम सितार बना दो
मन को भी तुम तार बना दो
इस वीणा को ऐसी शक्ति दो
झूम उठे सुन कर संसार

सुनाओ सबको ब्रह्म-संगीत
धीरे से छेड़ो मुक्ति के गीत
तुम हो आत्मज्ञान भण्डारी
जय हे दीन बन्धु दुःख हारी

मेरे गुरु मेरे स्वामी
ओ जीवन के अंतर्यामी।

19 मई 1958



गुरु चरणों में

फूलों की माला बना रही हूँ
जीवन रूपी फूलों की माला ...
इन फूलों में मेरे प्राण हैं।
जीवन के सभी अरमान हैं॥
कुछ पाने की भी आशा है।
गुरु चरणों की अभिलाषा है॥
बड़े गुरु के सामने ही मैंने
छोटे गुरु पर आस लगाई।
इसीलिए प्रभु ने मुझको
कुछ दिनों तक है भटकाया॥
बीत गई घड़ियाँ प्रतीक्षा की।
शुभ दिन शुभ क्षण आया॥
राम मंत्र आंचल में देकर।
'धर्मशक्ति' नाम बताया॥
शुभ दिन है श्रावण पूर्णिमा।
राम प्रभु की ज्योति जगाई ॥
जीवन रूपी फूलों की माला।
गुरु चरणों में भेंट चढ़ाई ॥

29 जून 1958, चौदस पूर्णिमा

पुष्पांजलि

25 दिसम्बर के
पावन पुनीत औ' अपार्थिव दिवस पर
माँ गंगा के वरद पुत्र
दिव्य पिता के चरणों में
तथा कोटि-कोटि
कण्ठों की संगीत-सुरभि,
काम-क्रोध, मदमोह, औ'
घृणा लिप्सा मय विश्व में,
परम तीर्थ–
प्रेम शान्ति के,
ज्योति ज्ञान के
दिव्य पुरोहित के,
तीर्थ स्वरूप चरण कमलों में
श्रद्धायुक्त प्रणाम,
नीराजना, आराधना,
पद वंदना॥

परम कृपामय
उर के हैं उद्‌गार यही,
कि सत्य-धर्म की
ज्ञान-भक्ति की
अनहद गंगा
निरंतर प्रवाहित होती रहे,
आप के गोमुख से।

मेरे स्वामी
इस जग को नित्य निरंतर,
द्वारका का चिर तीर्थ बनाओ,
और

हम सब भूले-भटके
पथ हटे पथिक
तुम्हारे आचरण चरणों पर
नित्य पहुँच कर
अपनी मथुरा की संकीर्ण गली को
चौड़ी सुन्दर व प्रशान्त बनावें।

भगवन्!
हमारे स्वामीजी का जन्म दिवस
सोने का हो
रातें इनकी चाँदी की हों!
इनके श्रीमुख के पवित्र शब्द
वेद वाक्य की अमर सुधा हों
और
सत्यानन्द सूर्य के
वर्चस्व तेज से
विश्व पटल का कोण-कोणा
अभिनव ज्योतित
प्रतिपल पावन
देवभूमि का मण्डप होवे

हे ज्योति स्तंभ!
पथ भ्रष्टों के मार्ग बन्धु
चरणों में कोटिशः प्रणाम,
साधुवाद,
अनेक देशों से जय-जयकार
कोटि-कोटि कण्ठों के संगीतों से
जय सत्यानन्द, जय जय सत्यानन्द
ॐ सत्यानन्द ॐ ॐ ॐ

भावांजलि

मेरे स्वामी, मेरे गुरुदेव।
आओ स्वागत है, ओ अंत:स्थल के देव!
आँखों के आगे आओ, किन्तु तुम्हारे पाँव
आँसुओं से ही आज पखारूँगी।
हृदय का आसन, नयनों के ही फूल,
आत्मा के दीप, आशा-निराशा से भरा मन ही
तुम पर वारूँगी।
यों तो नये वर्ष का आगमन
पुष्पमयी सुरभित बेला में
आशा भरे दीपक हृदय के
अंतरिक्ष में कितने ही जल रहे हैं।
चंदन की सुगन्ध, धूप का धुँआ
बेसुध करता है अंतर के तार-तार को,
जिधर देखती हूँ मंगलमय,
स्वर्ण रश्मियाँ, यह बेला है नव प्रभात की
या संध्या की,
युग का सूरज झाँक रहा नेह क्षितिज से,
और चाँद भी अमराई की घनी छाँह से,
स्निग्ध ज्योत्सना का कुमकुम उड़ा रहा है।
जब तक धर्मशक्ति के आँसू
उन चरणों में गिर-गिर कर
फूल न बन जायें और
जब तक उन फूलों से
ॐ सत्यम् की ध्वनि न आने लगे।
श्री सत्यम् ॐ जय सत्यम्।
होठों में हँसी नयनों में नीर लिये
विभोर धर्मशक्ति के मन-प्राण में
यही गूँजे 'ॐ सत्यम्'
ॐ श्री सत्यानन्दाय नम: ।



प्रभु से प्रार्थना

आई तेरे द्वार, हृदय का लेकर के उपहार।
चाहे तू इसको ठुकरा दे, या कर ले स्वीकार ॥

मेरे करुणामय क्रन्दन को, करुण स्वरों को सुन ले।
लाई हूँ आँसू का गजरा, ले ले या बिखरा दे ॥

धधक रहा है हृदय भवन, शीतल जल बरसा दे।
मेरे बन्द नयन खोल, जीवन की राह दिखा दे ॥

भूल गया मेरा पागलपन, तेरी उलझी अलकों में।
छिपी हुई है मेरी दुनिया, तेरी मृदु पलकों में ॥

पहना रही हूँ मंजु गले में, श्रद्धा कुसुम का हार।
बहता है यदि अश्रु नयन से, लो कर लो स्वीकार ॥

हे! शून्य गगन के शून्यदेव, ऐ ज्योति जगाने वाले।
हे अंतिम आधार जगत् के, चरण पराग बना ले ॥

समर्पण

देवता मेरे, मेरे गुरुदेव!
नये वर्ष के आगमन पर आओ,
मंगलमय स्वर्ण रश्मियाँ बिखेरते आओ,
देव हृदय के दीप, नयनों में फूल है ही,
आशा भरे हृदय में दीपक जगमगा रहा है
पूजा और पुजापा बनकर
हम चरणों में अर्पित हैं।
पर प्रभो...
दान-दक्षिणा भी स्वीकारनी होगी
एक अनमोल रत्न
अपने को मिटाकर, अपने प्राणों को उत्सर्ग कर
पाने को हूँ, उसे ही श्री चरणों में भेंट करने की
प्रबल अभिलाषा है

प्रभो
स्वीकार करोगे
अपनाओगे जरूर, फिर–
एक वायदा भी करना पड़ेगा
उस नन्हें रत्न को अपने अनुरूप
बनाने का,
अपने दिव्य गुणों से भर
उसे भी चमकाने का
तुम सूर्य बनो दिन के
उसे रात्रि का दीपक बनाने
आना ही होगा
व्रत-बसन्त को अपनाये जो हैं।

1959 विदा ले रहा है
मचल रहा है आने को 1960

अपने धरोहर का भविष्य
नये पन्ने में लिख जावो
ओ भाग्य विधाता,
होठों में हँसी, नयनों में नीर लिये
धर्मशक्ति प्रतीक्षा करेगी।
जय सत्यम्, श्री सत्यम्
जय जय श्री गुरुदेव ॥

आराधना

पूजा के क्षण बीत न जायें,
अर्घ्य चढ़ाने के पहले ही, नयनों के घट रीत न जायें ॥

दूर हिमालय में वास प्रभु का,
और मंद आलोक दीये का,
बुझ न जाये यह दीया प्राण का, फूल न पूजा के मुरझायें।

पथ निहार आँखें पथराईं,
सजल प्रार्थनायें दुहराईं,
वर न मुझे दे दर्शन दे दें, प्राण हँसे लोचन मुस्कायें ॥

आत्म विसर्जन की परिभाषा,
पढ़ लें उर-अंतर की भाषा,
साँस-साँस अभिमंत्रित कर प्रभो, मुझको परम पुनीत बनायें ॥

युग-युग के अर्चन वंदन से,
जप-तप-संयम के साधन से,
जीवन के शत-शत पुष्पों से, पाप पुरातन जीत न जायें ॥
पूजा के क्षण बीत न जायें ॥

तू मत हार

होने वाली है परीक्षा तेरी
आज तू मत बल हार।
फूलों को तू तज कर
पहन ले काँटों का हार ॥

सांसारिक क्षणिक शीतलता छोड़
अंगार पर धर ले कदम।
अपना काम किये जा तू
भूल कर जलने का गम ॥

एकाकी ही तू हँस कर
कर ले अपना लक्ष्य पार।
फूलों को तू तज कर
पहन ले काँटों का हार ॥

माया मोह को तज दे
मत दौड़ा मन इनकी ओर।
आस्तीन के काले सर्प जैसे
काटेंगे जहरीले बन कर ॥

हँसकर बढ़ा दे जल में
अपनी साहस की पतवार।
फूलों को तू तज कर
पहन ले काँटों का हार ॥





स्वर्ण जयन्ती

सत्यम् तुम हो महान्।
जग को अनुपम शक्ति दे रहे ॥

खुश हो, मान में, अपमान में, अमृत पान में, विषपान में।
तुम्हारे लिए कुछ भेद नहीं, अभिशाप व वरदान में ॥

विश्वास निज का है अटल, कठोर तुम्हारा आत्मबल।
जिसमें लगा दो हाथ स्वामी, वह काम हो जावे सरल ॥

तुम्हारी विजय में त्रस्त मानव का, सजग जयनाद है।
तुम्हारा मधुर स्वर चर-अचर के लिए आशीर्वाद है ॥

अनुराग पर आश्रित जगत् को, जीवन में अनुरक्ति दे दो।
बंधन मुक्त संयम सिखा कर, उत्सर्ग दो उन्मुक्ति दे दो ॥

सत्यम् तुम आलोक बन कर।
जग को विश्वास शक्ति दो ॥

अक्टूबर 1973



जय सत्यानन्द

गाये गंगा की कल-कल।
जय स्वामी सत्यानन्द, जय सत्यानन्द स्वामी ॥

सांसारिक सुख की झूठी माया,
जान विवेकी त्याग दिया।
और जहाँ है वास शान्ति का,
प्रभु चरणों का शरण लिया ॥

गाये गंगा की कल-कल ...
जीवन की भीषण दुःखद यात्रा में,
तुम हो सुखद शीतल छाया।
तुम उतरे दीन-दुखियों के जीवन में,
उन्हें दिया निर्मल मन सुन्दर काया ॥

गाये गंगा की कल-कल ...
तुम गाते हो मुक्तिगान युग के,
जीवन दाता सन्त महान् ।
तुम सत्यम् हो भारत के प्राण,
गुरुदेव तुम्हें शत कोटि प्रणाम ॥

गाये गंगा की कल-कल ...
जय सत्यानन्द स्वामी ॥

गुरु पूर्णिमा, 1978

सुमनांजलि

हे सर्वेश्वर,
मैंने तुम्हें देखा है,
सन्त समागम में रमते हुए,
वज्र कठोर वीणा पर लहराते हुए,
वासंतिक पुष्पों के परिधान में–
खिले कमल सा
हृदय के पराग-रूपी अमृत लुटाते हुए,
हे सर्वेश्वर... मैंने तुम्हें देखा है ॥

हे पर्वतेश्वर ..
हिमाद्रि तुल्य उत्तुंग तरंगों के
शिखर पर, अज्ञानी और
अंध-विश्वासी मानव को–
विनम्र धूलि-कण तथा
सूखे क्षुद्र तिनकों सा,
प्रमत्त प्रभंजन के पंखों पर
चढ़ा कर हिमालय की मंगल यात्रा
कराते हुए, महिमा बताते हुए,
मैंने तुम्हें देखा है।

हे गुरु देवेश्वर,
गंगा दर्शन प्रांगण में –
उगते सूर्य की किरणों सम
असंख्य मानवों के
हृदय सम्राट् को 'कर्ण चौरा' में,
योग गंगा बहाते हुए 'गंगा दर्शन' में
भूमि पूजन करते हुए,
तुम्हारे ही चरणों की,
रज-कण धर्मशक्ति ने
तुम्हें देखा है।

हे सर्वसमर्थ ..
प्राची के अरुण रथ पर
चढ़कर
कोमल किरण करों से,
विश्व को घोर निद्रा से
जगाते हुए, दिवस यामिनी के
मिलन महोत्सव में,
अनुकम्पा के मानस से
प्रवचन सुधा बरसाते हुए,
योग का शंख बजाते हुए,
मैंने तुम्हें देखा है।

पर जो अब देखा है
हे अनन्तेश्वर
मैंने तुम्हें अनेक रूपों में
बार-बार देखा है
उसे कहने में असमर्थ हूँ,
तुम्हारा योग अभियान
तुम्हारा त्याग, तपस्या व समर्पण
युगों-युगों तक अमर हो,
मानसरोवर व हिमालय को–
नयनों में छुपाये
मूक नमस्कार ही कर सकती हूँ।
ॐ नमो नारायणाय।

25 दिसम्बर 1982, मुंगेर

गंगा किनारे

उत्तर वाहिनी गंगा किनारे, गुरुदेव का आश्रम मेरा।
गंगा किनारे कर्ण चौरा में, गंगा किनारे हमारा डेरा ॥

श्री निवास में गुरुदेव रहते, कर्ण चौरा है साधना हॉल।
कष्ट हरणी घाट प्रसिद्ध है, मुंगेर साकेत हमारा है ॥
गंगा किनारे ...

गंगा दर्शन है तीर्थ हमारा, श्री निवास है स्वर्ग हमारा।
शक्ति विहार, योग आरोग्य, अन्नपूर्णा से गंगा माँ के दर्शन पाओ।
गंगा किनारे ...

प्रियदर्शी स्वामी सत्यानन्द, गुरुवर पूज्य हमारे।
देश-विदेश के भक्त पधारे, सुनकर यश गुरुदेव तुम्हारे ॥
गंगा किनारे...

सुमधुर वचन, प्रवचन सत्संग, धर्म-कर्म जीवन का मर्म।
दर्शन और विज्ञान की बातें, सरल शब्दों में समझावें ॥
गंगा किनारे ...

गंगा दर्शन में, रिसर्च सेंटर में, एक बार सब आओ।
सुन्दर स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, जीवन सुखद बनाओ ॥
गंगा किनारे...



भाव प्रसून

तुम्हें याद करने पर
एक स्वर्णिम दिवस खिल जाता है
सूर्य की किरणों के साथ
मन स्फूर्तिमय बन जाता है।
हे गुरुदेव!
चाहे तुम चिताग्नि के सामने रहो
या पंचाग्नि के मध्य रहो
या गुरुमूर्ति स्थल में ध्यानस्थ रहो
हम तुम्हें अपने अन्दर ही पाते हैं।

हे योगर्षि!
हमने तो तुम्हें अपने
लोचन पर्यंक में बिठाकर
पलक रूपी कपाट लगाया तो–
जो छवि प्रकाश भर गया है
हम उसी में विभोर हैं।
सब ओर अंधेरा है जग में
पर हम तुम्हारे प्रकाश में–
निर्विघ्न आगे बढ़ रहे हैं,
तुमने यही तो सिखाया है।

हे ब्रह्मर्षि!
ऋषियों ने जो राह बतायी
तुमने उस पर चल दिखलाया
तुम्हारा अलौकिक साहस युगों तक
सबको अमृत संदेश देता रहे।
हे देवर्षि, कोटि-कोटि प्रणाम स्वीकार करो।
ॐ नमो नारायणाय।



दर्शन पूर्णिमा

सात जुलाई की बात है
शिष्य भक्तों का सुप्रभात था
देवघर में दस हजार भक्तों का मेला था
बाबा बैद्यनाथ के दरबार में भी झमेला था,
सब गुरु दर्शन को आये थे
बाबा के दर्शन भी पाये थे,
सबके मन में उत्साह था
विविध विचारों का प्रवाह था,
अरुणोदय की लाली छाई
भक्तों की कतार सामने आई।

शंख बजा, दरवाजा खुला
भक्तों ने अन्दर प्रवेश किया,
शुद्धता का विचार था
मौन व शान्ति भी अपार थी,
परम गुरु शिवानन्द जी के दर्शन करके
आदि गुरु शंकराचार्य को प्रणाम करके
त्रिशूल के सामने जब पहुँचे
पंचाग्नि के मध्य गुरुदेव ध्यानस्थ थे।

सब ठगे से रह गये
सोच-विचार भी थम गये
हे विधाता! क्या तुमने दिखाया है,
बाल्मीकि-विश्वामित्र क्या सत्यम् बन आये हैं?
यह सच है या स्वप्न लोक है।
यही हमारे पूज्य प्रिय स्वामीजी हैं।
समय का विचार था
बाहर भक्तों का समूह अपार था,
तुलसी माई को कर प्रणाम
अपना मन वहीं छोड़ सब बाहर आ गये,
शान्ति साम्राज्य से बाहर आकर
मन व्यथित होने लगा।

गुरुदेव को हृदय में धारण किया
इनसे हमने सब कुछ सीखा
स्नेह, ज्ञान, नवजीवन पाया,
कलयुग में सतयुग दिखलाने
क्या इस धरा पर तुम आए हो,
स्वामी तुम सर्व समर्थ हो
तुम्हारा आदर्श हमारा गौरव है
इतना कह सब बिलख पड़े
उद्वेग आँसू बन कर बहने लगे,
हमारी यही प्रार्थना प्रभु से है
गुरुदेव युगों-युगों तक अमर रहें।

अगर यह कलयुग न होता
तो जैसे बाबा बैजनाथ के धाम में
शिव गंगा, नील गंगा, अमर हैं
भक्तों के आँसुओं से वही
भक्त गंगा भी युगों-युगों तक अमर होती।
हजारों-हजार भक्तों का प्रणाम
स्वीकारो हे गुरुवर महान्।

जो कुछ है, सो तू ही है

हे परमहंस अवधूत,
तुम्हारे मानसरोवर रूपी,
हंस नगरी में आकर चकित हूँ।
यह नगर भक्तों से भरा है,
माँ चण्डी स्वयं विराज रही हैं।
और तुम प्रसन्न मुद्रा में
जनमानस के मध्य घूम रहे हो–
कि कोई बिना दर्शन के न रह जाये।

हे परमहंस,
बाबा के धाम में आकर,
अपने पड़ोसियों को समर्थ बनाया,
भोले का भण्डार लुटाया–
शिवानन्द मठ के नाम से
गुरु का झण्डा फहराया,
हे परमहंस तुमने कैसा दृश्य दिखाया॥

पिता द्वारा पति के अपमान से दुःखी
सती माँ ने शरीर त्यागा
माँ के अंग जहाँ भी गिरे
पृथ्वी पर वह तीर्थ बना
भोले बाबा ने भी देवी के समीप ही
अपना निवास बनाया
बाबाधाम जग में विख्यात हुआ।

हे परमहंस अवधूत
आदेश पाकर चिताभूमि में–
अपना साधना स्थल बनाया।
बाल्यावस्था में माता पार्वती ने
पंचाग्नि साधना की थी
तुमने पंचाग्नि साधना कर जग को दिखलाया।

अब शतचण्डी यज्ञ करके
माता का सम्मान किया,
कन्या पूजन करके
नारी जाति को अभय दिया–
पूजनीय बनाया।

हे परमहंस अवधूत
तुमने यह कैसा रूप दिखाया
त्याग और वैराग्य का
अनूठा आदर्श अपनाया
चकित हो गया विशाल जनसमूह
जब तुमने अपना सब कुछ
धर्म-कर्म-सहित-साधना
स्वामी निरंजन को संभला दिया,
स्वामी निरंजन को
मेरा यही मंगल आशीष है
सदैव उसके सिर पर रहे
वरद हस्त तुम्हारा
उसका सिर सदैव तुम्हारे चरणों में झुका रहे,
तुम्हारे आदेश व चरण चिह्नों पर चलने,
निरंजन सदा तत्पर रहे।

हे जगत् पिता
तुम्हें क्या कह सकती हूँ
तुम तो महादेव से अडिग खड़े हो
तुम्हारे शरीर से आशीर्वाद की
गंगा बह रही है,
जिसे पाने सारे विश्व के लोग
तुम्हारे सामने नत-मस्तक हैं।
सबके मन के विचार व
नयनों में तुम्हीं समाये हो,
सभी ने तुमको अपना समझा, अपना पाया।

मातु हो तो ऐसी हो

जो पुत्र के कल्याण हित, तज पुत्र दे निर्मोही हो।
माता उसे ही जानिये, मातु हो तो ऐसी ही हो॥

हे पुत्र गोपीचंद, 'योग' ले लो, माता ने कहा।
है चिरंजीवी पुत्र, वह यश आज तक है रहा॥

प्रण किया दृढ़ मदालसा ने, मम गर्भ में जो आयेगा।
निश्चय करूँगी मुक्ति उसकी, नहीं जन्म दूसरा पायेगा॥

भव से निकाले पुत्र को, नहीं दूसरा फिर जन्म हो।
निज पुत्र की हितकारिणी, मातु हो तो ऐसी ही हो॥

मातु सुमित्रा ने सुना, लक्ष्मण को शक्ति वाण लगा है।
रण में राम अकेले हैं, सोच विह्वल होने लगी है॥

शत्रुहन से कहा तात, जाहू कपि संग तुरन्त अहो।
रघुनन्दन बिनु बंधु कुअवसर, मातु हो तो ऐसी ही हो॥

आशीष

तुम नयन के दीप मेरे, तुम सदैव समीप मेरे।
नयन सरि में तिर रहे हैं, भावना के दीप मेरे ॥

रक्त मांस मज्जा मेरा सब, चित्त वृत्तियाँ भी मेरी।
स्वर मेरा ओ ज्योतिर्मय सुत, तेरी प्राण प्रभा मेरी ॥

तुझमें यह तेरा पन मेरा, गति मेरी तेरे पग में।
बेटा मम मातृत्व भरा है, तेरे नस-नस रग-रग में ॥

ज्योति किरण तू अखिल विश्व का, मिटे तमस की अंधियाली।
माँ की यही कामना बेटा, बनो गुरु मस्तक की लाली॥

मेरा दीपक

तम से ज्योति की ओर चला मेरा दीपक।
चले तब तेरे पीछे-पीछे सब संसार॥

तुम बनोगे धरा के गुरु महान्,
शान्ति दूत असहायों के सहारे।
देते रहना प्रेरणा दीन-दु:खी को,
चुपचाप सहकर अंधकार के वार।

तम से ज्योति की ओर चला मेरा दीपक।
चले तब तेरे पीछे भूले-भटकों की कतार॥

जैसे जलता है दीपक तिल-तिल कर,
नहीं मानता तूफानों से हार।
इस दुनिया के स्वार्थी जन को,
सिखा दे करना, सेवा व प्यार॥

तम से ज्योति की ओर चला मेरा दीपक।
चले तब तेरे पीछे साधकों का संसार।।

सूरज ढले, चंदा भी चले,
मेरा दीपक जग में रोशनी भरे।
मेरी आशा का है सत्य दीप,
तुममें है गुरु की शक्ति व तेज॥

तम से ज्योति की ओर चला मेरा दीपक,
चले तब तेरे आगे-पीछे संन्यासियों की कतार॥



स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती का जन्म सन् 1924 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन, सहसपुर लोहारा (म. प्र.) में हुआ। उन्होंने सन् 1953 में अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रथम दर्शन किये और मन-ही-मन उन्हें अपना इष्ट गुरु मान लिया। सन् 1958 में आग्रहपूर्वक मंत्र दीक्षा ग्रहण की और श्री स्वामीजी की प्रथम शिष्या होने का गौरव प्राप्त किया। उन्हें श्री स्वामीजी के निकट सान्निध्य में रहने का सौभाग्य भी मिला।

सन् 1963 में योग और योगविद्या पत्रिकाओं का सम्पादन आरंभ किया। 1967 में संन्यास दीक्षा ग्रहण की और 1972 में उन्हें राजनन्दगाँव योग विद्यालय की संरक्षिका तथा अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की मनोनीत सचिव नियुक्त किया गया।

1990 में श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा की आचार्या एवं अध्यक्ष पद पर उनका मनोनयन हुआ।

1985 से गंगादर्शन, मुंगेर में प्रवास करते हुए वे अध्यात्म मार्ग के साधकों को निरंतर प्रेरणा और उत्साह प्रदान करती आ रही हैं।



यह ग्रन्थ श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के जीवन के कुछ अद्‌भुत घटनाक्रमों का संकलन है, आध्यात्मिक रत्नों की मंजूषा है। संतों का जीवन सदा से ही सामान्य जनों के लिए अजस्र प्रेरणा का स्रोत रहा है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ऐसे अनोखे साधु व योगी हैं, जिन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर वनान्त में समाधि नहीं लगायी, बल्कि अपनी योग-शक्ति का प्रयोग निरंतर जन-कल्याणार्थ करते रहे; और इस संसार सागर से निर्लिप्त ही रहे। इस महान् तपस्वी ने अपने कृत्यों से मानव-हृदय पर 'पूर्णरूपेण' अमर विजय प्राप्त की है। जो भी श्री स्वामीजी के सम्पर्क में आया, उसका जीवन परिवर्तित हो गया, और वह सदा के लिए इनका होकर रह गया।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस 'गुरु गीता' की महत्ता उतनी ही है, जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की। हमें विश्वास है कि श्री स्वामीजी के आध्यात्मिक रत्नों के प्रकाश में सभी मार्ग-बन्धुओं के मन-प्राण-आत्मा आलोकित होंगे।



[bar code here]

ISBN: 978-81-86336-88-5